A-PDF Merger DEMO : Purchase from www.A-PDF.com to remove the watermark

विश्व हिंदी पत्रिका

2013

विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

विश्व हिंदी पत्रिका

2013

प्रधान संपादक

गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल

विश्व हिंदी सचिवालय
स्विफ्ट लेन, फॉरेस्ट साइड
मॉरीशस

World Hindi Secretariat
Swift Lane, Forest Side
Mauritius

E-mail : info@vishwahindi.com
Website : www.vishwahindi.com
Phone : 00-230-6761196 • Fax : 00-230-6761224

अनुक्रम

श्रद्धांजलि

1.	गौतम सचदेव की संवेदनशीलता और साहित्य मेरी नज़र में	ललित मोहन जोशी	3
2.	द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के मेरे अनुभव	आर.एस. मैकग्रेगर	7
3.	भानुमती नागदान का साहित्य : एक अवलोकन	श्रीमती रत्ना सुखलाल	10

वैश्विक हिंदी : क्षेत्र व आयाम

4.	फीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य	डॉ. विमलेश कांति वर्मा	17
5.	जापानी और हिंदी : अनुवाद का उद्‌देश्य	तोमोको किकुचि	26
6.	फ्रांस नगरी (पांडिचेरी) में हिंदी	डॉ. अनीता गांगुली	30
7.	जापान में हिंदी-शिक्षण : बदलता परिप्रेक्ष्य	हरजेंद्र चौधरी	33
8.	हिंदी के दैनंदिन प्रयोग का महत्व एवं चेक गणराज्य में हिंदी का शिक्षण	स्वेतिस्लव खोस्तिच	36
9.	विदेश में हिंदी अध्यापन : कुछ स्मृतियाँ	विजया सती	40
10.	बेलारूसी हिंदी-प्रेमी सुश्री आलेसिआ माकोव्स्काया से आत्माराम शर्मा की बातचीत	आत्माराम शर्मा	43
11.	हिंदी-प्रेमी डॉ. हाईंत्स वर्नर वेसलर से आत्माराम शर्मा की बातचीत	आत्माराम शर्मा	46
12.	हिंदी की वैश्विकता में फ्रेडरिक पिंकॉट का योगदान	डॉ. कृष्ण कुमार	50
13.	अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी	हितेश कुमार शर्मा	56
14.	हिंदी का बढ़ता अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व और उससे संबंधित समस्याएँ	प्रो. हरिराज सिंह 'नूर'	60
15.	हिंदी में मानकीकरण की आवश्यकता	डॉ. श्याम नारायण शुक्ल	63

16.	हिंदी में विज्ञान-लेखन की प्रगति एवं उसका स्वरूप	डॉ. राकेश कुमार दूबे	66
17.	हिंदी तो बढ़ती ही चली जा रही है, पर उसके पैरों में जंजीरें पड़ी हैं	श्रवणकुमार गोस्वामी	70
18.	बारहवीं सदी में प्रशासन की भाषा थी हिंदी	उमेश चतुर्वेदी	75
19.	हिंदी भाषा के संबंध में कुछ विचार	प्रो. महावीर सरन जैन	78

हिंदी और सूचना-संचार प्रौद्योगिकी

	चुनौती तो आगे है…	अतिथि संपादक की ओर से	82
20.	सूचना प्रौद्योगिकी में नागरी लिपि	डॉ. ओम विकास	83
21.	तकनीकी दुनिया में हिंदी को सक्षम बनाया यूनिकोड ने	भूपेंद्र कुमार	89
22.	हिंदी भाषा शिक्षण में मल्टीमीडिया की भूमिका	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी	92
23.	सूचना प्रौद्योगिकी और कोशकारिता…		
	मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि : भाषा	अरविंद कुमार	97
24.	हिंदी के वैश्विक परिदृश्य के निर्माण में इंटरनेट की भूमिका	स्नेहसुधा	103
25.	हिंदी के विकास में संचार माध्यमों का योगदान	शिखा द्विवेदी	108
26.	हिंदी वेब साहित्य—हर विमर्श की झलक है हिंदी वेब साहित्य में	डॉ. सुनीलकुमार लवटे	112
27.	मानकीकरण की शाश्वत समस्या और नए दौर की चुनौतियाँ	बालेंदु शर्मा दाधीच	118

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य शताब्दी (1913-2013)

	मॉरीशसीय हिंदी साहित्य की शताब्दी		*126*
28.	मॉरीशसीय गद्य—पहली शताब्दी	श्री रामदेव धुरंधर	127
29.	मॉरीशसीय पद्य—पहली शताब्दी	श्री राज हीरामन	130
30.	'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका एवं मॉरीशस का प्रारंभिक हिंदी साहित्य	श्री धनराज शंभु	139
31.	मॉरीशसीय हिंदी साहित्य का अनुवाद, प्रक्रिया एवं समस्याएँ	डॉ. राजरानी गोबिन	144
32.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता : अंतर्संघर्ष एवं मुक्ति का आह्वान	डॉ. संयुक्ता भुवन रामसारा	149
33.	मॉरीशस में हिंदी पत्रिका का उद्भव और विकास	धरमवीर गंगू	152
34.	मधुकर की काव्य-कला का स्वरूप-भाषा और छंद	डॉ. लालदेव अंचाराज	154

हिंदी के विविध आयाम : कुछ विचार-बिंदु

35.	क्यों पिछड़ी और कैसे हाइटेक होगी हिंदी?	तुषार बनर्जी	161
36.	'लिवे देबते' क्या होता है? मामला लिप्यंतरण का	योगेंद्र जोशी	163
37.	'अंतरराष्ट्रीय' और 'अंतर्राष्ट्रीय'	सुयश सुप्रभ	165
38.	हिंदी का संकोच...और अंग्रेज़ी के संकेत!	श्री ललित कुमार	166

अंतरराष्ट्रीय हिंदी
कहानी प्रतियोगिता 2012
के विजेताओं की कहानियाँ प्रस्तुत हैं।

39.	ब्रेकिंग न्यूज़	श्री रवींद्र कात्यायन	171
40.	ऊपर वाला कमरा	सुश्री भावना हरिशरण	178
41.	अटेंशन—एक व्यंग्य कथा	विजय कुमार सप्पत्ति	180

-: निवेदन :-

विश्व हिंदी पत्रिका में प्रकाशित लेखों के विचार लेखकों के अपने हैं। विश्व हिंदी सचिवालय और संपादक मंडल का उनके विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी
शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री
एम.आई.टी.डी. हाउस
फेनिक्स, मॉरीशस

REPUBLIC OF MAURITIUS

MINISTRY OF EDUCATION AND HUMAN RESOURCES
(Office of the Minister)

संदेश

'विश्व हिंदी दिवस' के उपलक्ष्य में प्रकाशित होने वाली विश्व हिंदी पत्रिका के साथ लगातार पाँचवें वर्ष के लिए जुड़ना तथा सचिवालय की गतिविधियों में भाग लेना मेरे लिए बहुत ही सुखद अनुभव है।

मॉरीशस में स्थापित, भारत तथा मॉरीशस सरकार की यह द्विपक्षीय संस्था 'विश्व हिंदी सचिवालय' आज विश्व भर में अपनी पहचान स्थापित कर चुकी है। अपनी गतिविधियों तथा प्रकाशनों के माध्यम से सचिवालय विश्व हिंदी जगत के बीच एकता का पुल स्थापित कर रहा है, जिससे हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने हेतु मंच तैयार हो रहा है। शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय का सहयोग हमेशा सचिवालय के साथ है। आशा है कि दोनों सरकरों के संयुक्त सहयोग से सचिवालय अपने लक्ष्य के रास्ते पर और आगे बढ़े।

यह स्पष्ट है कि हर वर्ष अधिक-से-अधिक देश और व्यक्ति सचिवालय की गतिविधियों में भाग लेने के लिए उत्साह दिखा रहे हैं। इसका एक प्रमाण यह वार्षिक पत्रिका है, जिसमें भारत व मॉरीशस के अतिरिक्त विश्व के विभिन्न देशों के प्रसिद्ध व स्थापित साहित्यकार, लेखकों, विद्वानों का योगदान प्राप्त है।

एक बात मुझे विशेष रूप से सुखद लगती है कि हिंदी के प्रचार के लिए सचिवालय स्थापित मार्गों के साथ-साथ नए रास्तों पर भी उत्साह से आगे बढ़ रहा है। वर्तमान जीवन में प्रौद्योगिकी (technology) के महत्व को जानते हुए, सचिवालय हिंदी के प्रचार में इस नए औज़ार का अधिक प्रयोग कर रहा है, जिससे भाषा का एक आधुनिक रूप हिंदी-जगत के सामने आ रहा है और विशेष रूप से नवजवानों पर इसका बहुत प्रभाव पड़ रहा है। 2013 में सचिवालय ने मॉरीशस और दक्षिण अफ्रीका में हिंदी आई.सी.टी. कार्यशाला का आयोजन किया और अब विश्व हिंदी पत्रिका में भी हिंदी आई.सी.टी. आलेखों का एक भाग रखा गया है। मुझे खुशी है कि सचिवालय आप सभी विद्वानों के साथ मिलकर भविष्य की हिंदी का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

ऐसे प्रयोगों से ही विश्व हिंदी पत्रिका आज एक परिष्कृत प्रकाशन बन चुका है, जो विश्व भर में हिंदी की स्थिति की जानकारी देने के साथ-साथ अनुसंधान की नई दिशाओं के लिए द्वार खोल रहा है।

मैं विश्व हिंदी सचिवालय के कार्यवाहक महासचिव श्री गंगाधरसिंह सुखलाल तथा पूरी संपादन टीम को इस प्रकाशन के लिए बधाई देता हूँ। साथ ही इस अंक में सहयोग देनेवाले सभी लेखकों को भी साधुवाद। सभी पाठकों तथा विश्व हिंदी जगत को 'विश्व हिंदी दिवस' तथा 'नववर्ष 2014' की हार्दिक शुभकामनाएँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस वर्ष सचिवालय और अधिक उत्साह तथा नित्य नए दृष्टिकोणों के साथ वैश्विक मंच पर उभरेगा।

वसंत बनवारी

(डॉ. वसंत कुमार बनवारी)

20.12.2013

MITD House Phoenix, MAURITIUS
Tel. No. : 686 2402/03, Fax No. : (230) 698 3601
E-mail : vkbunwaree@mail.gov.mu

भारतीय उच्चायुक्त
पोर्ट लुई, मॉरीशस

सत्यमेव जयते

HIGH COMMISSIONER OF INDIA
PORT LOUIS, MAURITIUS

संदेश

मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि विश्व हिदी सचिवालय अपनी वार्षिक 'विश्व हिदी पत्रिका' के पाचवें अंक का लोकार्पण 10 जनवरी, 2014 को विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर करने जा रहा है ।

इतनी अल्प अवधि में इस पत्रिका ने दुनिया भर के सुधी पाठकों के बीच अपनी एक विशिष्ट बौद्धिक पहचान बना ली है। यह जनमानस को विश्व हिंदी सचिवालय की गतिविधियों से परिचित कराने का एक सराहनीय माध्यम तो बनी ही है साथ ही यह दुनिया भर में हुई हिंदी की प्रगति के अतीत और वर्तमान से भी पाठकों को परिचित कराने एवं उसकी प्रगति के मूल्यांकन को सामने रखने का एक महत्वपूर्ण वार्षिक अभिलेख बन चुकी है।

मैं पत्रिका के संपादक-मंडल को उनकी उपलब्धियों के लिए बधाई देते हुए आगामी विश्व हिंदी दिवस के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रकट करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत और मॉरीशस के साझे सहयोग से चल रही विश्व हिंदी सचिवालय की गतिविधियाँ न सिर्फ सफलता के नए शिखर का स्पर्श करेंगी बल्कि उसके माध्यम से जनमानस में एक नई चेतना का भी उदय होगा। आगामी वर्ष उपलब्धियों से भरा वर्ष हो ऐसी शुभकामना व्यक्त करते हुए मैं पाठकों को **नव वर्ष की मंगलकामनाएँ** प्रेषित करता हूँ।

(अशोक कुमार)
12.12.20013

6th Floor, L.I.C. Building, President John Kennedy Street, Port Louis, Mauritius
Tel. : (230) 208 3578, Fax : (230) 2088891
E-mail : hicomdhc@intnet.mu

मिलकर उगाएँ हिंदी का नया सूर्य...

विश्व हिंदी पत्रिका के पाँचवें अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए जो प्रसन्नता हो रही है, उससे अधिक गर्व इस बात पर है कि लगातार चौथी बार के लिए इस पत्रिका से जुड़ने का सौभाग्य मिला है और इसके माध्यम से आपसे कुछ बातें करने का अवसर पुन: प्राप्त हो रहा है।

परंतु यह गर्व अपनी आड़ में बहुत जोखिम भी लाया है। पिछले चार अंकों में पाठकों के समक्ष संपादकीय द्वारा अपने विचार रखने, अपना संदेश देने, आपको यथासंभव पत्रिका के प्रथम पन्ने से अंतिम पन्ने के बीच स्थित महत्वपूर्ण विचारों का निचोड़ भी कुछ शब्दों में प्रस्तुत करने तथा आभार ज्ञापन आदि सभी दायित्वों का भार दो कंधों में बँटा रहा है। इस बार मैं इस अवलंब से वंचित अकेला आपके समक्ष आया हूँ। अनेक भूमिकाएँ एक साथ निभानी हैं। आशा है, आपको निराश नहीं करूँगा।

सूर्य अथवा ब्लैक होल

सचिवालय के साथ जब से जुड़ा हूँ, हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप की संकल्पना पूर्ण करने की, हर प्रकार से इसको समझने की क्लिष्ट प्रक्रिया निरंतर चलती रही है। यह इतनी विशाल संकल्पना है और इसके अनेकानेक आयामों में इतने अधिक गतिशील तत्व हैं कि हर बार अलग-अलग रूपों में अथवा रूपकों के माध्यम से, अलग-अलग दृष्टिकोण से इसको देखने का प्रयास करना आवश्यक रहा है और हर नवीन रूप, रूपक, दृष्टिकोण अपने साथ नए विश्वास, नई आस्था तथा नए मुद्दे और नई चिंताएँ भी साथ लाया है। यह प्रक्रिया आगे भी जारी रहेगी। पिछले कुछ दिनों से हिंदी का यह स्वरूप एक ऊर्जा-पुंज के रूप में परिकल्पित करना रोचक लग रहा है, सो आपके साथ बाँट रहा हूँ।

विश्व भाषा हिंदी—सूर्य अथवा अन्य तारों के समान एक ऊर्जा-पुंज, जिसके केंद्र अथवा क्रोड में अमाप्य ऊर्जा है, जैसी ऊर्जा हिंदी के पारंपरिक क्षेत्रों में है। यह उस ऊर्जा-पुंज का आंतरिक वृत्त होता है। फिर वह केंद्रीय ऊर्जा बाहर के वृत्तों की ओर 'रेडिएट' अथवा विकीर्ण होती है। बाहरी वृत्त जो हिंदीत्तर क्षेत्र हैं, उनसे और बाहर विदेशी/भारतेत्तर क्षेत्र। आंतरिक वृत्त से बाह्य वृत्त तक अणु से अणु को ऊर्जा मिलती है, जैसे एक भाषा-भाषी से दूसरे को और प्रकाश फैलता है।

हिंदी के संदर्भ में इस आंतरिक वृत्त में केवल वे करोड़ों हिंदी भाषी नहीं हैं, जो इसका प्रयोग मातृभाषा के रूप में सर्वाधिक करते हैं। इस केंद्र में ही हिंदी संबंधी सभी महत्वपूर्ण निर्णयों (भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक, साहित्यिक, लिपिगत आदि सभी आयामों के संदर्भ में) की प्रक्रियाएँ भी स्थित हैं। हिंदी विश्व भाषा बनने के लिए जिस विशेष प्रक्रिया से गुज़र रही है उसके लिए यह अत्यंत सुखद संकेत ही माना जाएगा कि उसको ऊर्जा के अनेक ध्रुव होने की जटिल समस्या का सामना न करना पड़े।

इस संकल्पना के आधार पर हिंदी का वैश्विक स्वरूप उकेरते हुए जो बात स्पष्ट होती है, वह यह कि जब हिंदी प्रांत, देश, समूह अथवा समुदाय विशेष की भाषा के रूप में सीमित न होते हुए, अर्थात अपने अंत:क्रोड़ की ऊर्जा को केंद्र तक ही सीमित न रखते हुए एक वैश्विक भाषा के रूप में आचरण करेगी, अर्थात आंतरिक वृत्तों की ऊर्जा अधिक बाहरी वृत्तों की ओर जितनी विकीर्ण होगी, भाषा का वैश्विक फैलाव उतना ही अधिक होगा। प्रकाश फैलेगा। अन्यथा केंद्र उस ऊर्जा को विकीर्ण करने में जितना असमर्थ होगा अथवा उसे जितना अधिक अपने में समेटेगा, उतना ही उसका स्वयं ही सारी ऊर्जा सोखने का संकट होगा जिस स्थिति में प्रकाश के फैलने, सूरज के चमकने का नहीं बल्कि एक कृष्ण विवर (ब्लैक होल) के उत्पन्न होने का संकट होगा।

और बनेंगे अभिमन्यु

इसी संकल्पना की बाँह पकड़कर आइए, आपको विश्व हिंदी पत्रिका 2013 की आवरण से आवरण तक की यात्रा करवाता हूँ। आरंभ पार्श्व आवरण से करते हैं—

विश्व-हिंदी-पुत्र अभिमन्यु अनत को भारतीय साहित्य अकादमी ने मानद महत्तर सदस्यता (Honorary Fellowship) प्रदान किए जाने की घोषणा की है। इस बात की चर्चा सचिवालय के त्रैमासिक सूचनापत्र के सितंबर 2013 अंक में करने का अवसर प्राप्त हुआ है और उसी चर्चा के कुछ अंश यहाँ दोहराना समीचीन मान रहा हूँ। इस विशिष्ट समूह में उपस्थित दिग्गजों को तथा इसमें प्रवेश के मापदंडों पर एक दृष्टिपात मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि भारत की सर्वोच्च साहित्यिक संस्था ने अभिमन्युजी के माध्यम से मात्र एक विलक्षण साहित्यकार को ही सम्मानित, प्रतिष्ठित तथा गौरवान्वित नहीं किया अपितु हिंद महासागर की गोद में भारत से दूर, तमाम विषमताओं तथा चुनौतियों के बावजूद हिंदी की ज्योति को निरंतर प्रज्वलित रखने वाली मॉरीशसीय भूमि तथा उसकी साहित्यिक धरोहर को भी साहित्य की मुख्यधारा में उचित स्थान प्रदान किया है।

अभिमन्यु एक व्यक्ति नहीं है, आंतरिक वृत्त से ऊर्जा पाकर विश्व भर में विकीर्ण होने वाला प्रकाश है।

साहित्य अकादमी के महत्तर सदस्यों की सूची में हिंदी साहित्यकारों के नामों पर ही एक नज़र डालें, इनमें एक सहस्राब्दी लंबी साहित्यिक परंपरा के उत्तराधिकारी साहित्यकारों के नाम हैं। उनके अतिरिक्त जिन विदेशी साहित्यकारों-विद्वानों को मानद महत्तर सदस्यता दी जा चुकी है, उनके यहाँ साहित्य अथवा अकाडीमिया की परंपरा बँधुआ मज़दूरी के माध्यम से बसाए गए मॉरीशस जैसे देशों में मानव सभ्यता के इतिहास से भी लंबी है। इनके समक्ष 2013 में अपनी पहली हिंदी कविता और गद्य के प्रकाशन की शताब्दी मनाने वाले मॉरीशस के अभिमन्यु भी चौदह वर्ष के ही दिखते हैं। भारत के बाहर लगभग सौ वर्ष पूर्व आरंभ हिंदी साहित्य की परंपरा का प्रथम पल्लव!

ध्यातव्य है कि इस अभिमन्यु को अपनी भाषा और साहित्य रचना का ज्ञान किन विशिष्ट परिस्थितियों में प्राप्त हुआ है। अर्जुन (भारतीय साहित्य) अपना ज्ञान सुभद्रा (भारतीय जनमानस) को ही दे रहे थे। अभिमन्यु ने तो इस जनमानस की संस्कृति और इतिहास के साथ अपने भावात्मक गर्भनाल संबंध के माध्यम से परोक्ष रूप से ही वह ज्ञान पाया। अन्यथा बाह्य वृत्त में रहकर लाल पसीना की रचना कर पाना सामान्य बात नहीं है। उपलब्धि अधिक असामान्य हो जाती है, जब आप यह सोचें कि वे और उनके युग के कई लेखक दासता-तुल्य परिस्थितियों में रही कई पीढ़ियों के बाद क ख ग पढ़ पाने वाली पहली संतानें हैं।

साहित्य अकादमी ने इस दिशा में जो कदम उठाया है, वह महत्वपूर्ण, सराहनीय और अनुसरणीय है। बधाई!

भारत के हिंदी प्रांतों की संस्थाओं, पत्रिकाओं आदि द्वारा हिंदीत्तर क्षेत्र और भारतेत्तर क्षेत्र (बाहरी वृत्त) के साहित्यकारों और विद्वानों को सम्मानित करने की लंबी परंपरा रही है। यह बात और है कि आजकल इस परंपरा में कुछ ऐसे चलन भी उभर रहे हैं,

जिनमें मापदंडों, चयन प्रक्रियाओं, मानसिकता, उद्‌देश्यों और तौर तरीकों पर कई प्रश्न उठाए जा सकते हैं। ऐसे 'सम्मान वितरण सम्मेलनों' से हिंदी का लाभ कम, हानि अधिक होने की आशंका है, इसलिए इनके प्रति सचेत रहना भी आवश्यक है। इन उदाहरणों को छोड़ दें तो इस लंबी परंपरा ने हिंदी के वैश्विक फैलाव में अतुलनीय योगदान दिया है। साहित्य अकादमी की मानद महत्तर सदस्यता इस प्रक्रिया की स्वाभाविक पराकाष्ठा है।

यह केंद्रीय ऊर्जा के विकीर्ण होने का अभूतपूर्व उदाहरण है।

मन इस विचार से ही गद्‌गद होता है कि इस उदाहरण का प्रभाव कितनी दूर तक जा सकता है। मॉरीशस से लेकर अमेरिका तक इस प्रकार के सम्मान के योग्य रचनाकार और हिंदी-सेवी अपनी मेहनत को दुगुना करेंगे। उनकी मेहनत से अन्य अभिमन्यु तैयार होंगे, जो हिंदी को अपनी ज्योति से प्रकाशमान करनेवाले अमर दीपों, भानुमती नागदान, स्तुअर्ट मैकग्रेगर आदि के पदचिह्नों पर चलने में संकोच नहीं करेंगे। प्रकाश फैलेगा!

लेकिन नए अभिमन्यु के निर्माण की प्रक्रिया को अब अलग रूप में देखना अनिवार्य हो गया है। ऊर्जा का फैलाव अब उसी रूप में नहीं हो पा रहा है । आवश्यकता है नए संदेशवाहक औज़ारों की : यहाँ से कहानी आरंभ होती है मुखपृष्ठ की।

नई किरण के लिए नया औज़ार

हमारे और आपके सौभाग्य से सूचना संचार प्रौद्योगिकी और हिंदी पर विशेष ध्यान केंद्रित किए हुए इस अंक में इस क्षेत्र के ऐसे पुरोधाओं के विचार प्रस्तुत किए गए हैं, जो नई दिशाओं की ओर हिंदी की इस यात्रा के आरंभ से ही, एकदम आरंभ से जुड़े हुए हैं और कुछ ऐसे महारथी भी बोल रहे हैं, जो इस यात्रा में भविष्य के मार्गदर्शक होंगे। इस यात्रा में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर एक बात कह सकता हूँ कि आम तौर पर इस मार्ग की मुख्य रुकावट वह मानसिकता होती है, जो यह कहकर नवीन तकनीक को टालने का (निरर्थक) प्रयास करती है कि ''यह क्या है? एक औज़ार ही तो है! इससे कुछ नहीं होता, यदि प्रयोगकर्ता में प्रतिभा/मेहनत/योग्यता आदि हो तो वह पुराने औज़ारों से भी वही लक्ष्य पा सकता है।'' सच है यह। लेकिन शुद्ध साहित्यिक शब्दों में कहूँ तो देशकाल वातावरण से कटा हुआ सत्य। आज न तो औज़ार की परिभाषा वही है, जो पहले थी, न प्रतिभा की और विशेष रूप से न लक्ष्य की। सब बदल चुके हैं। विस्तृत वृत्त में संकुचित मानसिकता का स्थान नहीं है। कागज़ की कश्ती की पाल में फूँक मारकर महासागर पार नहीं होगा!

नए अभिमन्यु उसी दुनिया में नहीं जीते।

भारतेतर क्षेत्र के आज के (आप्रवासियों की चौथीं-पाँचवीं पीढ़ी के) युवकों के मन में हिंदी के प्रति वही भावना खोजना, जो सौ वर्ष पूर्व के युवकों में थी, इस पीढ़ी की वास्तविकताओं को न समझते हुए उसके प्रति अन्याय करने के समान होगा। किसी भाषा के ऐतिहासिक योगदान का हवाला लेते हुए उसकी लंबी सांस्कृतिक परंपरा के साथ तादात्म्य स्थापित करने की अनुमति इनको बहुत हद तक वर्तमान परिस्थितियाँ नहीं देतीं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह पीढ़ी भाषा के साथ जुड़ेगी ही नहीं। जुड़ेगी तब जब यह भाषा उसकी दुनिया का अंग बनेगी।

इसके लिए आवश्यकता है नए औज़ारों की।

विस्तार न देते हुए इतना कहना चाहूँगा कि मॉरीशस तथा दक्षिण अफ्रीका में पाठशालाओं में हिंदी आई.सी.टी. की कार्यशाला के दौरान जानकारों के लिए अति साधारण लगने वाले लिप्यंतरण टूल के माध्यम से जब बच्चों ने पहली बार कंप्यूटर के स्क्रीन पर नागरी में अपना नाम लिखा देखा तो उनकी आँखों में जो चमक आई, उससे लगा कि ऊर्जा की किरण एक मोटी अपारदर्शी तह को भेदकर नए आकाश में पहुँची। अनुभव हुआ कि इनके माता-पिता और उनसे पूर्व की पीढ़ियों की मेहनत से

इन देशों में कायम भाषा (जिससे वे बच्चे माता–पिता के प्रति आदर भाव के कारण जुड़ तो जाते हैं, लेकिन विभिन्न परिस्थितियों की मिलीभगत उनको शीघ्र ही उससे दूर भी ले जाती है) को इन बच्चों ने अपनी उस वर्चुअल दुनिया में शामिल पाया, जिसमें उनकी पीढ़ी अपनी अस्मिता तलाशती है।

इन औज़ारों का ज्ञान और महत्व 'मात्र औज़ार ही तो हैं' तक सीमित नहीं है। और इस अंक के विशेष आलेख यह बात स्पष्ट करते हैं कि आज इस क्षेत्र में इतनी प्रगति हो चुकी है कि अब ये औज़ार ही केंद्र की ऊर्जा को बाह्य वृत्तों तक पहुँचाने के सबसे महत्वपूर्ण साधन बनने की क्षमता रखते हैं।

हिंदी अपनी अपनी या हम सब की…

दोनों आवरणों से आपको बाँधकर उनके बीच की लंबी कहानी आगे पढ़ने का दायित्व आपको सौंपता हूँ। परंतु हिंदी की आंतरिक ऊर्जा के वैश्विक फैलाव के विषय में एक और आयाम उद्घाटित करने की अनुमति चाहूँगा। उदाहरण और औज़ार के बाद अनिवार्य चर्चा है निर्णय लेने की प्रक्रियाओं की।

मैंने आरंभ में कहा कि विश्व भाषा हिंदी के अंत:क्रोड में ही हिंदी संबंधी सभी महत्वपूर्ण निर्णयों की प्रक्रियाएँ (भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक, साहित्यिक, लिपिगत आदि सभी आयामों के संदर्भ में) भी स्थित हैं और यह भी कि हिंदी के लिए यह अत्यंत सुखद संकेत है कि उसको ऊर्जा के अनेक ध्रुव होने की जटिल समस्या का सामना नहीं करना पड़ रहा है।

परंतु ऊर्जा का एक ही केंद्र होने का उत्तरदायित्व भी बहुत बड़ा हो जाता है : निर्णय के इन सभी क्षेत्रों में किरणों के समान वितरण का। कहीं ताप के अतिक्रमण से लू की और कहीं अत्यधिक अभाव के कारण शिथिलता दोनों ही स्थितियाँ हिंदी के विश्व भाषा स्वरूप के लिए क्षतिकर होंगी। स्पष्ट करने के लिए दो संदर्भ लूँगा।

पिछले महीने छठी कक्षा की हिंदी परीक्षाओं के समय एक भतीजे को पाठों की आवृत्ति करा रहा था। एक पाठ पढ़ते हुए बच्चा एक ऐसे शब्द पर अटका जिसमें, अर्द्ध नासिक्य व्यंजन के हलंत रूप के स्थान पर अनुस्वार (बिन्दी) का प्रयोग किया गया था। समझ में आया कि बच्चा निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह बिन्दी का उच्चारण 'न' अथवा 'म' करे।

दूसरे संदर्भ में मॉरीशस में एक सम्मेलन के लिए पधारे हिंदी के एक विनम्र सेवक, प्रतिभागियों के समक्ष अपनी प्रस्तुति के अंतर्गत हिंदी शब्दों के लिंग की पहचान पर कुछ रोचक नुस्खे बता रहे थे। उन्होंने शब्दों के बहुवचन रूप के आधार पर (स्त्रीलिंग शब्दों में 'एं' और 'आँ' प्रत्यय को देखते हुए) लिंग की पहचान का तरीका सिखाया। हिंदी के जानकार इस बात से सहमत होंगे कि यह परिचित नुस्खा काफी हद तक कारगर होता है।

इन दोनों संदर्भों से जो बात उभारना चाहता हूँ, वह यह कि दोनों ही हिंदी के आंतरिक वृत्त और बाहरी वृत्त के प्रयोगकर्ताओं के लिए समान अर्थ तथा सुविधा नहीं प्रदान करते, क्योंकि इन दोनों में (चाहे वह नियम हो या उसे पहचानने का नुस्खा) यह पूर्वधारणा कार्यरत है कि प्रयोगकर्ता शब्द (और उसी क्रम में भाषा) का प्रयोग पहले से कर रहा होता है, उससे परिचित होता है और बाद में उसे पढ़ता है अथवा उसका व्याकरण सीख रहा होता है। यह धारणा हिंदीत्तर और भारतेत्तर क्षेत्र के प्रयोक्ताओं व अध्येताओं पर लागू नहीं होती। मंदिर, अंग, हिंदी आदि शब्दों में बिंदी की पहचान नए प्रयोगकर्ताओं के लिए आसान होगी, लेकिन जो परीक्षा–पत्र में अथवा स्वाध्याय के लिए खोली गई किसी पुस्तक में प्रथम बार 'गेंडा' पढ़ रहा हो उसके लिए बिंदी का अर्थ कैसे निश्चित किया जाए? नासिक्य व्यंजन के हलंत रूप के स्थान पर अनुस्वार के प्रयोग के नियमों को उस अवस्था में कैसे समझाया जाए अथवा जो कक्षा में गज और गज़ के बीच का अंतर खोजने का अभ्यास करता आया है, उसके लिए नुक़्ता न होने का क्या अर्थ होगा?

स्वाभाविक रूप से हिंदी के मानकीकरण की प्रक्रिया में नासिक्य व्यंजन के हलंत रूप के स्थान पर अनुस्वार (बिन्दी) का प्रयोग 'ज़', 'फ़' आदि में नुक़्ता न लगाने का चलन आदि इसलिए लागू किए गए हैं, ताकि भाषा सरलीकृत हो, दुविधाएँ कम हों आदि-आदि, परंतु इन सभी निस्संदेह अच्छे उद्देश्यों के निर्धारण में क्या बाहरी वृत्त के प्रयोगकर्ताओं के बारे में विचार किया गया है?

अंत:क्रोड में एक निर्णय का विदेश के पाठ्य-पुस्तक निर्माताओं ने पालन करते हुए ऊर्जा को विकीर्ण करने में अपनी भूमिका निभाई, परंतु क्या केंद्र ने निर्णय की प्रक्रिया में इन सभी प्रयोगकर्ताओं को शामिल करना आवश्यक समझा?

यहाँ उदाहरण एक प्रक्रिया का लिया गया है, और भी हो सकते हैं। इन प्रश्नों का उद्देश्य दोषी तलाश करना नहीं है। उद्देश्य इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना है कि :

- यदि हिंदी का आंतरिक वृत्त हिंदी को संख्यात्मक और गुणात्मक दृष्टि से विश्व भाषा के रूप में देखना चाहता है।
- यदि भाषा को यह रूप देने में बाहरी वृत्त के प्रयोगकर्ताओं के योगदान को महत्वपूर्ण माना जाता है।

तो यह अनिवार्य हो जाता है कि भाषा संबंधी निर्णयों की प्रक्रिया में बाहरी वृत्त के हिंदी भाषियों की चिंताएँ, आवश्यकताएँ, सुविधाएँ और मान्यताएँ अपना स्थान पा सकें।

ऐसा न होने पर दो स्थितियाँ उत्पन्न होने का संकट है :

पहली, जिस प्रकार आज अंग्रेज़ी और फ्रेंच आदि भाषाओं के लिए इंग्लैंड और फ्रांस से स्वतंत्र कई निर्णय स्थलियाँ—ऊर्जा के अनेक ध्रुव हैं (एम.एस. वर्ड में अंग्रेज़ी भाषा के ऑस्ट्रेलिया से लेकर ज़िंबाब्वे तक रूप उपलब्ध हैं और फ्रेंच के बेल्जियम से वेस्ट इंडीज़ तक) उसी प्रकार हिंदी के लिए हिंदी (भारत), हिंदी (नेपाल), हिंदी (मॉरीशस) आदि रूप बनें। इस स्थिति में समस्या यह है कि ऊर्जा बँट जाएगी। हिंदी के लिए विश्व भाषा बनने की प्रक्रिया क्लिष्ट होगी।

दूसरी स्थिति में (क्योंकि ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहाँ हिंदी के प्रति नई पीढ़ी की रुचि बनाए रखना ही प्राथमिकता है। सारी शक्तियाँ उसी ओर केंद्रित रहती हैं। इसलिए···) बाहरी वृत्त के अनेक देश केंद्र के निर्णयों की या तो अवहेलना करेंगे अथवा बच्चों व अध्येताओं को भ्रांत करने का संकट उठाते हुए उनका पालन करेंगे। आप सभी सहमत होंगे कि भ्रांत अभिमन्यु हिंदी के किसी काम के नहीं होंगे।

दोनों स्थितियाँ हिंदी के लिए हितकर नहीं हैं, इसलिए हिंदी के केंद्रीय वृत्त को अब हिंदी के विषय में निर्णय की प्रक्रियाओं के समय हिंदी के वैश्विक स्वरूप को ध्यान में रखने के लिए उपयुक्त कदम उठाने होंगे।

बाहरी वृत्त के हिंदी-प्रेमी अन्य अभिमन्यु तैयार करने के लिए कार्यरत रहें, इस प्रक्रिया में पारंपरिक संसाधनों के साथ उचित और कारगर नए औज़ारों का प्रयोग हो और अंतत: अंत:क्रोड अपनी प्रक्रियाओं में बाहरी वृत्तों की स्थिति का ध्यान रखे—ये तीनों परिस्थितियाँ साथ हो लें तो विश्व क्षितिज पर हिंदी का नया सूर्य उदय होने से कोई नहीं रोक सकेगा।

चलिए इस सूर्य को साथ मिलकर उगाएँ।

शुभकामनाएँ।

मॉरीशस 17.12.2013

—गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल

कार्यवाहक महासचिव

आभार

मैंने आरंभ में ही कहा था कि इस संपादकीय के माध्यम से अनेक भूमिकाएँ निभा रहा हूँ। उनमें से एक एक ऐसी संस्था के प्रमुख की भी है, जिसकी स्थापना से लेकर निरंतर प्रगति और सतत क्रियाशीलता में भारत और मॉरीशस सरकारों की अपरिहार्य भूमिका है। वर्ष 2013 में उनके सहयोग के लिए दोनों के प्रति इस मंच से आभार प्रकट करने का अवसर आप सभी विश्व हिंदी-सेवियों की ओर से आभार प्रकट करने का पर्याय है और इसका लाभ हम अवश्य उठाना चाहेंगे।

विश्व हिंदी पत्रिका 2013 भारत-मॉरीशस संबंध-सूत्र को अपने स्नेह से तीन वर्षों तक सींचने वाले महामहिम टी.पी. सीताराम की विदाई की वेला में आ रही है। धन्यवाद महामहिम। यही धन्यवाद जाएगा इस अवधि में एक दृढ़ सेतु के समान कार्यरत रहे कार्यवाहक उच्चायुक्त श्री अशोक कुमार को भी। विश्व हिंदी सम्मेलन 2012 के आयोजन में प्रमुख भूमिका निभा चुके हिंदी के अंतरराष्ट्रीय विस्तार के प्रति समर्पित नए भारतीय उच्चायुक्त महामहिम अनूप कुमार मुद्गल के आगमन के साथ ही अभियान में सतत सहयोग की निरंतरता बनी रहने का विश्वास भी बना। स्वागत महामहिम! द्वितीय सचिव श्री मीमांसक और उच्चायोग के सभी अधिकारियों के योगदान को भी रेखांकित किये बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता।

मॉरीशस की ओर से मुख्य उत्तरदायी, शिक्षा व मानव संसाधन मंत्री माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी के संरक्षण में व मंत्रालय के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी के दिशानिर्देश में सचिवालय के लिए कार्यरत श्री गनपत, श्री वराधन सचिवालय के लिए पथप्रदर्शक हैं। महत्वपूर्ण सहयोगी कला एवं संस्कृति मंत्रालय के माननीय श्री चुनी, स्थायी सचिव श्री भगन और सुश्री चमन भी हमारे और आपके धन्यवाद के पात्र हैं।

वर्ष 2013 के लिए सचिवालय की गतिविधियों में सहयोग देने वालों के प्रति आभार के इस क्रम में उन राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का उल्लेख भी अनिवार्य है, जिन्होंने सचिवालय के हर अनुरोध को अपना कर्तव्य बनने का सम्मान प्रदान किया। ये सभी संस्थाएँ और कई व्यक्ति भी विश्व भर में सचिवालय के ऐसे अपरिहार्य दूत बन रहे हैं, जिनके सहयोग के बिना सचिवालय के कार्यों को वैश्विक प्रसार दे पाना असंभव होता।

अब बारी आती है पत्रिका के संपादक मंडल के सहयोगियों की। मॉरीशस और दक्षिण अफ्रीका में कार्यशालाओं के दौरान प्राप्त जिन अनुभवों की चर्चा पहले की गई है, उनके आधार पर जब श्री बालेंदु शर्मा दाधीच के समक्ष इस अंक में हिंदी और सूचना संचार प्रौद्योगिकी पर कुछ विशेष आलेख प्रकाशित करने का विचार रखा, तभी से उनका समर्थन प्राप्त

था और उन्होंने संभावित लेखकों से संपर्क स्थापित करने में भी सहयोग किया। और जब उनसे अनुरोध किया गया कि इस क्षेत्र में अपने अनुभव के आधार पर संपादक मंडल का मार्गदर्शन करें तो वे व्यस्तताओं के बावजूद पीछे नहीं हटे। धन्यवाद बालेंदुजी। सचिवालय के अन्य सहयोगी मित्रों से अनुरोध है कि अभी विश्व हिंदी पत्रिका को हिंदी के अन्य अनेक महत्वपूर्ण आयामों को उभारना है। आपका बहुमूल्य सहयोग भी वांछनीय रहेगा।

पत्रिका के संपादन में इस वर्ष अंजलि, विजया, प्रीति ने जहाँ पिछले अंकों के अनुभव के सहारे मोर्चा सँभालने में और अधिक कुशलता दिखाई, वहीं कार्य के साथ नए-नए जुड़ने पर भी देव और उषा ने पुरजोर हाथ बँटाया। पत्रिका संबंधी कार्य के आरंभ में जिष्णु का योगदान नहीं भुलाया जाएगा। विद्या विहार प्रकाशन के मित्रों ने इस वर्ष भी हमारी मेहनत के समतुल्य प्रस्तुति करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ये सभी आपकी बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका में अपने अनुभव और अपनी मनीषा से योगदान देनेवाले लेखकों की सूची इस बार अधिक लंबी है। यह उत्साहवर्धक है। कुछ आलेखों को अगले अंक के लिए सँजोकर रखने का कठिन निर्णय तक लेना पड़ा, जिसके लिए हम विद्वानों से क्षमाप्रार्थी हैं। साभार प्रकाशन की अनुमति देकर जिन पत्रिकाओं ने अपने परिश्रम का फल बाँटने में तनिक भी संकोच नहीं किया, उनके हम सदा ऋणी हैं।

एक बार पुन: अंतिम वाक्य आप पाठकों और भावी लेखकों को अर्पित होगा। विश्व हिंदी पत्रिका प्रत्येक प्रकाशन की तरह लेखकों, संपादकों और प्रकाशकों के अथक परिश्रम की उपज है, जो आपकी अमानत होते हुए भी पूरी निष्काम भावना से आपको अर्पित नहीं कर पाते हैं। क्योंकि एक फल की इच्छा हृदय में सदैव रहती है कि आप इसका अवलोकन, पठन, समर्थन, इसकी चर्चा, समालोचना आदि करेंगे तथा अनुभव, मनीषा और परिश्रम की अमूर्त सृष्टियों से आए विचारों को यथासंभव अपने अपने क्षेत्र में कार्यान्वित करते हुए मूर्त रूप प्रदान करेंगे।

विश्व हिंदी सेवी हैं तो विश्व हिंदी सचिवालय और विश्व हिंदी पत्रिका सार्थक हैं। आप सभी का सहयोग भी इसी प्रकार प्राप्त होता रहेगा, इसी कामना के साथ आपकी पत्रिका आपको सौंप रहे हैं।

'नव वर्ष' व 'विश्व हिंदी दिवस' की हार्दिक शुभकामनाएँ।

—संपादक

पुस्तकों से विहीन घर! खिड़कियों से विहीन भवन के समान है।

—अज्ञात

श्रद्धांजलि

1

गौतम सचदेव की संवेदनशीलता और साहित्य मेरी नज़र में

ललित मोहन जोशी

एक साहित्यकार के रूप में गौतमजी की कृतियों पर बात करने से पहले एक इनसान और मित्र के रूप में उनकी चर्चा करना सही होगा। गौतमजी की मित्रता मेरे लिए समीपता के साथ-साथ 'निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय' को भी चरितार्थ करती है। मेरी नज़र में गौतम सचदेव कभी भी आज के कुछ अन्य लेखकों की तरह सतही लोकप्रियता हासिल करने की दौड़ का हिस्सा नहीं रहे हैं।

चौखटों में बंद हैं हम सभी
या टँगे हैं दीवारों पर
और काँच की तरह टूटते हैं
बिखरते हैं
चुभते हैं
पर चौखटें, दीवारें और काँच
कितने अलग हैं
हम सबके

अपने नवीनतम कविता संग्रह 'सूरज की पँखुड़ियाँ' (2011) में 'माँ' शीर्षक कविता की ये अंतिम पंक्तियाँ गौतम सचदेव की काव्य रचना की एक झलक देती हैं कि किस तरह वे अपनी उपमाओं और कथ्य में सहसा परिवर्तन कर पाठकों के मानस में सामाजिक यथार्थ के नए असर पैदा कर सकते हैं और वह भी सहजता के साथ, जहाँ हम कथ्य परिवर्तन को महसूस भी नहीं कर पाते। इसे समझने के लिए आपको इस कविता की पहली पंक्तियों पर नज़र डालनी होगी—

माँ मुसकराती है
न पूछती है
न डाँटती है
निर्लिप्त देखती रहती है बस
हार पहने हुए
दीवार पर टँगी
मौन एकटक
कुछ नहीं होता अब उसे
काँच में जड़ी आँखों से
निहारती रहती है माँ
अलग-अलग कमरों में कैद घर को
और खुश है

श्रद्धांजलि

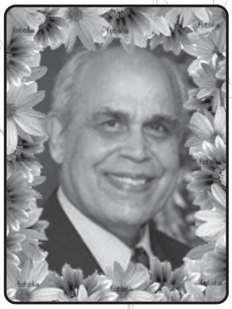

1939-2012

जन्म : 8 जून, 1939 को मंडी वारबर्टन (अब पाकिस्तान में)

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी. (दिल्ली विश्वविद्यालय)

कृतित्व : बी.बी.सी. हिंदी सेवा लंदन में 18 वर्षों से प्रसारक। दिल्ली विश्वविद्यालय में 21 वर्षों से अधिक समय तक अध्यापन और शोध-निर्देशन। कुछ समय केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी हिंदी साहित्य का अध्यापन किया।

प्रकाशन : 'प्रेमचंद : कहानी-शिल्प' *(शोध प्रबंध)*, 'अधर का पुल', 'एक और आत्मसमर्पण' *(कविता-संग्रह)*, 'गीतों भरे खिलौने' *(बालगीत-संग्रह)*, 'सिंदूर की होली-कसौटी पर' *(आलोचना)*, 'गबन समीक्षा' *(आलोचना-सहलेखन)*, 'नवयुग हिंदी व्याकरण' *(सहलेखन)*।

सम्मान : गीतों भरे खिलौने बालगीत संग्रह पर राष्ट्रीय पुरस्कार; तितली कहानी पर हरियाणा हिंदी अकादमी द्वारा अखिल भारतीय पुरस्कार; 'हमसे पूछिए' रेडियो कार्यक्रम की वर्षों तक उत्कृष्ट प्रस्तुति पर बी.बी.सी. हिंदी सेवा द्वारा विशेष पुरस्कार।

निधन : 29 जून, 2012

कवि के रूप में वे अपने भावात्मक सरोकार को पीछे छोड़कर जटिल अभिव्यक्ति को अपनाते हैं। माँ को समर्पित अपनी एक सहज और भावुक रचना को वे एक जटिल मोड़ देते हैं, जहाँ पाठक इससे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और उन्हें इन चौखटों में अपने चेहरे नज़र आने लगते हैं। शायद ऐसी रचना को गौतम सचदेव की प्रतिनिधि अभिव्यक्ति माना जा सकता है, जो उनकी कहानियों, लेखों और समूची रचनाशीलता के मंतव्य को परिभाषित करती है। गौतम सचदेव की कहानियों में भी यही बात है। वे अंततः अपनी परिधि लाँघती हैं और हमारी संवेदना को एक वृहद सामाजिक यथार्थ से दो-चार करवाती हैं।

गौतम सचदेव से मेरा परिचय करीबन 24 वर्ष पुराना है और उनसे मेरी अंतरंगता कोई दो दशक की। हम दोनों ही बी.बी.सी. हिंदी सेवा में एक लंबे समय तक रेडियो पत्रकार व प्रसारक थे।

जब मैं 1988 में बी.बी.सी. हिंदी सेवा में लंदन आया, तब वे बी.बी.सी. से वापस भारत जा चुके थे। पर जब भी बीच-बीच में लंदन आते तो बी.बी.सी. हिंदी सेवा में प्रसारण के लिए बुलाए जाते और उनके साथ काम करने का अवसर मिलता। हमारी निकटता का श्रेय भारतीय साहित्य और सिनेमा के प्रति हमारे समान रुझान को भी जाता है। 1990 में जब मैं भारतीय सिनेमा के इतिहास पर 19 भागों की एक विस्तृत रेडियो फीचर श्रृंखला तैयार कर रहा था, तो सिनेमा के विभिन्न पहलुओं पर अक्सर उनसे बात होती। बी.बी.सी. हिंदी सेवा के युवा प्रसारक भाषा और हिंदी व्याकरण की गुत्थी सुलझाने अक्सर उनकी टेबल पर पहुँच जाते।

ललित मोहन जोशी

एक फिल्म इतिहासकार और साउथ एशियन सिनेमा फिल्म पत्र के संपादक। लंदन स्थित बी.बी.सी. हिंदी सेवा में गौतम सचदेव के सहयोग और 20 वर्षों तक रेडियो प्रसारक। उनकी पुस्तकों बॉलीवुड पॉपुलर इंडियन सिनेमा और अ डोर टू अडूर और वृत्तचित्र बियांड पार्टीशन ने अंतरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है। ललित मोहन जोशी सिनेमाई संस्कृति और सार्थक सिनेमा के विकास के लिए प्रतिबद्ध संगठन साउथ एशियन सिनेमा फाउंडेशन (एस.ए.सी.एफ.) के वर्ष 2000 से संस्थापक निदेशक हैं।

बिलकुल सहज है। गौतम सचदेव द्वारा रचित 'नवयुग हिंदी व्याकरण' भारत के विद्यालयों में सर्वाधिक लोकप्रिय व्याकरण माना जाता था और छपने के बाद डेढ़-दो वर्षों की अवधि में उसके तीन संस्करण बिक गए थे।

अक्सर बी.बी.सी. और लंदन की अन्य सामाजिक गोष्ठियों में उनकी साफगोई उनके समकक्षियों के क्षोभ का कारण बनी है। पर मज़ेदार बात यह है कि मैंने उनके विरोधियों को ज़रूरत पढ़ने पर उन्हीं की शरण में जाते हुए भी देखा है। स्पष्टवादिता का अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि गौतम सचदेव सुसंस्कृत और शालीन नहीं हैं। सहयोग की दृष्टि से जब भी कोई उनके पास लेख लिखवाने अथवा साहित्यिक संगोष्ठी में सहायता के अनुरोध से गया है, उन्हें उनका सहयोग अवश्य मिला है।

मेरी दृष्टि में ब्रिटेन के हिंदी लेखकों में गौतम सचदेव की जगह बेजोड़ है। यानी उनके साहित्यिक सृजन की परिधि ब्रिटेन में बसे किसी भी साहित्यकार से कहीं व्यापक है। उनकी कहानियों,

कथाशिल्प में महारत के साथ-साथ एक और पहलू, जो गौतम सचदेव को ब्रिटेन के अन्य हिंदी साहित्यकारों की भीड़ से अलग करता है, वह है शैली और विषय को लेकर उनके प्रयोग। विशेष तौर पर अनजाने विषयों में अपनी रचनात्मकता तलाशने का जोखिम उठाना गौतम सचदेव की फ़ितरत का हिस्सा रहा है। ईश, केन और कठ उपनिषदों का काव्यरूपांतर त्रिवेणी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

अक्सर अंग्रेज़ी से हिंदी अनुवाद या भाषा के प्रयोग में अगर कोई समस्या आती तो गौतमजी एक सजीव शब्दकोश बन जाते। धीरे-धीरे मुझे पता लगा कि वे न केवल एक प्रसारक व दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी के जाने-माने शिक्षक हैं, बल्कि एक चर्चित लेखक, कवि और कहानीकार भी हैं। प्रेमचंद के कहानी शिल्प पर की गई मौलिक शोध पर आधारित उनकी एक अहम पुस्तक बी.बी.सी. में आने के पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी। यह पुस्तक आज भी प्रेमचंद के साहित्य का एक निर्णायक, गंभीर और वैज्ञानिक अध्ययन है; इसकी विशेषता है कि यह पढ़ने और समझने में

लेखों और व्याखानों का दायरा समाज, राजनीति, कला और दर्शन सभी को अपने आप में समेटता है। अंतरंग होने के नाते पिछले डेढ़ दशक से जब भी उनकी कोई नई पुस्तक आई है, मुझे उनके स्नेह और हस्ताक्षर के साथ नसीब हुई है। भले ही गौतमजी कहानी, व्यंग्य, कविता, गज़ल और निबंध एक सी रवानगी के साथ रचते हों, मेरी नज़र में कहानी उनकी सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति है और इन कहानियों में भी सबसे ज़्यादा असरदार हैं विभाजन की त्रासदी को अंकित करने वाली कथाएँ। बेचारा दरियाई शाह एक अतियथार्थवादी मील का पत्थर है, जिसकी तुलना ब्रिटेन

के ग़ज़लकार प्राण शर्मा ने चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' से की है। गौतम सचदेव की ऐसी ही एक और विभाजन कथा 'साढ़े सात दर्ज़न पिंजरे' है, जो कि भारत के बँटवारे से उपजे मानसिक असंतुलन की परतें खोलती है। विभाजन पर रचित कहानियों में गौतम सचदेव की 'अनुष्ठान' कहानी की चर्चा सबसे अधिक हुई है, जिसके पंजाबी, अंग्रेज़ी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।

कथाशिल्प में महारत के साथ-साथ एक और पहलू, जो गौतम सचदेव को ब्रिटेन के अन्य हिंदी साहित्यकारों की भीड़ से अलग करता है, वह है शैली और विषय को लेकर उनके प्रयोग। विशेष तौर पर अनजाने विषयों में अपनी रचनात्मकता तलाशने का जोखिम उठाना गौतम सचदेव की फ़ितरत का हिस्सा रहा है। ईश, केन और कठ उपनिषदों का काव्यरूपांतर त्रिवेणी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है।

इस चराचर जगत के
प्रत्येक कण में
हर जगह जल और थल में
ईश का है वास
इस कारण करो जो भोग
उसमें भाव हो बस त्याग का
रखो न मन में लालसा कोई
न कोई लोभ
धन-वैभव
किसी का भी नहीं
सब ईश का है।

त्रिवेणी के प्राक्कथन में डॉ. कर्ण सिंह ने गौतम सचदेव के इस प्रयोग को भरपूर सराहा है। डॉ. गौतम सचदेव ने ईश, केन और कठ को यद्यपि मुक्तक छंदों में ढाला है, लेकिन उसमें न केवल अभिव्यक्ति की सहजता, सुबोधता, सातत्य और निरंतर बहती हुई धारा का प्रवाह है, अपितु एक प्रकार की अंतर्निहित संगीतात्मकता भी है।

व्यक्तिगत तौर पर गौतम सचदेव का हुलिया ढीले-ढाले कुरता-पैजामे वाले एक पारंपरिक साहित्यकार का नहीं है। उन्हें हर अवसर पर आप सुरुचिपूर्ण पोशाक में पाएँगे। काम के मामले में उनका समय-प्रबंधन चौंकाने वाला है। अगर आप ज़रा भी ढीले हैं तो गौतम सचदेव के साथ काम करना भूल जाएँ। ब्रिटेन में भारतीय फ़िल्म संस्कृति के विकास के लिए प्रतिबद्ध संस्था साउथ एशियन सिनेमा फाउंडेशन के उपाध्यक्ष और सांस्कृतिक संगठन सान्निध्य के अध्यक्ष के रूप में उनका सहयोग उल्लेखनीय है। 1990 में गौतम सचदेव द्वारा दिया गया एस.ए.सी.एफ. फाल्के मेमोरियल व्याख्यान का विषय था, 'फ़िल्मों में प्रेमचंद' जो भारत की साहित्यिक पत्रिका 'लमही' के जुलाई-सितंबर 2010 के सिनेमा विशेषांक में प्रकाशित और चर्चित हुआ।

गौतम सचदेव की रुचियों का दायरा काफ़ी फैला हुआ है। वे चित्रकारी करते हैं, गाना गाते हैं और अगर आप उनके मित्र हैं व प्रेम से अनुरोध करते हैं तो आपकी बहुमूल्य क्षत-विक्षत पुस्तक की निःशुल्क जिल्दबंदी भी कर सकते हैं। 1970 में मैंने एक अंग्रेज़ी नाटक 'योर्स कृष्णामेनन' (तुम्हारा कृष्णामेनन) लिखा और उसके मंचन में जब किरदारों का अकाल पड़ा, तो मैंने उन्हें कृष्णामेनन के पिता कृष्ण कुरूप और लाला लाजपत राय दोनों की भूमिकाएँ निभाने का आग्रह किया, और गौतमजी ने एक मित्र और सहयोगी का कर्तव्य निभाया। दोनों भूमिकाएँ सराही गईं। अक्सर गौतम सचदेव ने अपनी पुस्तकों के आवरण चित्र बनाए हैं, खासतौर से त्रिवेणी।

सामाजिक इतिहासकार और अध्येता डॉ. कुसुम पंत जोशी के लिए गौतम सचदेव एक चलती-फिरती विकिपीडिया हैं, जिस पर भरोसा किया जा सकता है। साहित्यकार के रूप में गौतम सचदेव

कवि, संस्कृतिकर्मी एवं भारत की जानी-मानी 'लमही' साहित्यिक पत्रिका के प्रधान संपादक विजय राय डॉ. गौतम सचदेव को हिंदी का एक ऐसा वरिष्ठ कथा लेखक मानते हैं, जिनका भारतीय पाठकों और प्रवासी भारतीय पाठकों के बीच अपार सम्मान है। उनका अपना एक अलग पाठक वर्ग भी है। उन्होंने कई अपरिहार्य महत्व की कहानियाँ हिंदी साहित्य को दी हैं। उनके कथात्मक अवदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यद्यपि हिंदी के आलोचकों द्वारा उनकी कहानियों का मूल्यांकन किया जाना अभी बाकी है। डॉ. सचदेव की कहानियों में जीवन द्रव्य है। उन्होंने अपने समय के प्रसार को बख़ूबी जिस रचनात्मकता के साथ देखा है, उसी ओजस्विता से हूबहू उसे अपनी कहानियों में अक्सर किया है।

की कृतियों में गहराई और सतत बदलते समाज की तस्वीर है। एस.ए.सी.एफ. और सान्निध्य में नए विचार मंथन के लिए हम अक्सर उनकी राय और सहयोग लेते हैं।

व्यंग्य भी गौतमजी की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। उनका व्यंग्य संग्रह 'सच्चा झूठ' उनके लंदन प्रवास की कृतियों का संग्रह है, पर इनका दायरा मात्र लंदन केंद्रित, ब्रिटेन केंद्रित अथवा भारत केंद्रित नहीं है। गौतमजी के सरोकार अंतरराष्ट्रीय हैं, पर विचार अभिव्यक्ति अथवा संदेश देने के लिए उनका माध्यम आम आदमी है, जो बदल तो रहा है पर अपने ही जाल में फँसता भी जा रहा है। अपने व्यंग्य के कैनवास में गौतमजी के आकर्षक रंग न केवल उपमाएँ, घटनाएँ एवं किस्से-कहानियाँ ही हैं, बल्कि इतिहास और सांस्कृतिक तत्व भी हैं।

कवि, संस्कृतिकर्मी एवं भारत की जानी-मानी 'लमही' साहित्यिक पत्रिका के प्रधान संपादक विजय राय डॉ. गौतम सचदेव को हिंदी का एक ऐसा वरिष्ठ कथा लेखक मानते हैं, जिनका भारतीय पाठकों और प्रवासी भारतीय पाठकों के बीच अपार सम्मान है। उनका अपना एक अलग पाठक वर्ग भी है। उन्होंने कई अपरिहार्य महत्व की कहानियाँ हिंदी साहित्य को दी हैं। उनके कथात्मक अवदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। यद्यपि हिंदी के आलोचकों द्वारा उनकी कहानियों का मूल्यांकन किया जाना अभी बाकी है। डॉ. सचदेव की कहानियों में जीवन द्रव्य है। उन्होंने अपने समय के प्रसार को बखूबी जिस रचनात्मकता के साथ देखा है, उसी ओजस्विता से हूबहू उसे अपनी कहानियों में अक्सर किया है। छोटी-छोटी बातें, जो अक्सर जल्दबाज़ी में कथाकार भूल जाते हैं, उन्हें पूरी कुशलता के साथ वे अपनी कहानियों में अंकित करते हैं। यह सब उनके गहन जीवनावलोकन के कारण ही मुमकिन हुआ है। वे सचमुच हिंदी की प्रगतिशील परंपरा के एक वस्तुनिष्ठ दृष्टिसंपन्न कथाकार हैं।

गौतम सचदेव का साहित्य एक बहते हुए झरने की तरह है। उनसे बात करते, गपशप करते हुए अक्सर अचरज होता है कि नई रचनाओं के लिए उन्हें नए विचारों की धाराएँ कहाँ से नसीब होती हैं। ब्रिटेन के एशियाई युवाओं के मानस में उनकी पैठ है, जिसके सहारे वे 'कच्ची गिरियाँ' जैसी चुभती कहानियाँ लिख सकते हैं। साथ ही उनकी निगाह ब्रिटेन और भारत में चल रही राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल पर भी रहती है। उनके समसामयिक नजरिए का एहसास आपको दैनिक जागरण समाचार-पत्र में प्रकाशित होनेवाले उनके नियमित लेखों से मिल सकता है। मूलतः गौतम सचदेव एक साहित्यकार हैं, जिनकी रचनाओं में हमें लगातार बदल रहे समाज और उसके पीछे काम कर रही कड़वी सच्चाइयों के बिंब नज़र आते हैं।

□

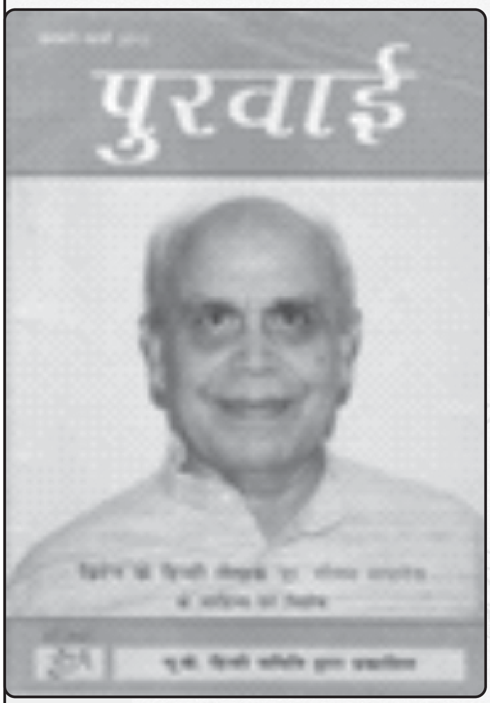

29 जून, 2012 को ब्रिटेन के वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार गौतम सचदेव का निधन हो गया। उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए विश्व हिंदी सचिवालय सचदेवजी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर आधारित श्री ललित मोहन जोशी द्वारा रचित लेख प्रस्तुत कर रहा है। यह लेख यू.के. हिंदी समिति द्वारा प्रकाशित पुरवाई पत्रिका के डॉ. गौतम सचदेव विशेषांक, जनवरी-मार्च 2012 अंक 58 से साभार लिया गया है। 'पुरवाई' यू.के. हिंदी समिति द्वारा प्रकाशित एक त्रैमासिक हिंदी पत्रिका है। इस पत्रिका के मुख्य संरक्षक श्रीमती कमला सिंघवी हैं तथा संपादक डॉ. पद्मेश गुप्त हैं। अधिक जानकारी के लिए hindisamiti@hotmail.com पर संपर्क किया जा सकता है। डाक पता है : यू.के. हिंदी समिति, 130, पविलियन वे, रूस्लिप, मिडलसेक्स एच.ए.49जी.पी., यू.के.।

2

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के मेरे अनुभव

आर.एस. मैकग्रेगर

जन्म : 1929 में न्यूजीलैंड में। स्कॉटिश माता-पिता की संतान।

कृतित्व : हिंदी एवं संस्कृत के विद्वान् स्टुअर्ट मैकग्रेगर को बालपन में फ़िजी से प्रकाशित हिंदी के एक व्याकरण की प्रति किसी ने दी थी, जिसने उनके जीवन का रुख हिंदी की ओर मोड़ दिया। 1964 से 1997 तक वे कैंब्रिज विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाते रहे। सर्वप्रथम 1959-60 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिंदी की पढ़ाई करने वे भारत आए थे। उनका पी-एच.डी. शोध 1968 में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक था 'The Language of Indrajit of Orchâ-A Study of Early Braj Bhâsâ Prose'।

प्रकाशन : 'The Oxford Hindi-English Dictionary', 'Shorter Oxford English Dictionary', 'Lestey Brown', 'Outline of Hindi Grammar: With Exercises', 'Exercises Spoken Hindi Cassette', 'Devotional Literature in South Asia', 'The Language of Indrajit of Orch: A Study of Early Braj Bhâsâ Prose', 'Exercises In Spoken Hindi', 'The Round Dance Of Krishna, And Uddhav's Message'.

दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलन एक ऐसा अवसर था, जो कि भाग लेनेवालों के मन में चिरकाल के लिए स्मरणीय रहेगा। कितने प्रतिनिधि दूरावस्थित देशों से आए हुए थे, जिन में हिंदी बोली जाती है। हिंदी वास्तव में अंतरराष्ट्रीय भाषा है, यह वहाँ इसी से दिखाई दे रहा था। साथ-ही-साथ दूसरे प्रतिनिधि भी थे, एक और बड़े दायरे के, वह दायरा जिस में हिंदी का आधुनिक महत्व समझा जाने के कारण हिंदी भाषा और साहित्य की अब पढ़ाई हो रही है। इस विशाल दायरे की परिधि सारी दुनिया से, विश्व से, कम नहीं है।

ऐसे बहुरूपी सम्मेलन का ध्येय एक रूपी ही रहा होगा, यह अस्वाभाविक सी बात होती। लेकिन सम्मेलन का मूल दृष्टिकोण जो मॉरीशस सरकार के निमंत्रण पर इतने प्रतिनिधियों को उधर खींचे हुए था, इतना व्यापक और उदार था कि विविध प्रसंग और दृष्टिकोण विशेष उसके अंदर समाविष्ट हो सके। मॉरीशस के प्रतिनिधि थे, जिनके सामने अपने देश की परिस्थितियाँ और समस्याएँ विशेष रूप से थीं। पूर्वी अफ्रीकी देशों के प्रतिनिधि थे, जहाँ परिस्थितियाँ दूसरी हैं। भारत का एक बड़ा प्रतिनिधि-मंडल था। लेकिन ऐसा कहा जा सकता है कि सभी प्रतिनिधि-मंडल मॉरीशस आकर बहुत हद तक एक ही मानसिक भूमि पर खड़े हुए थे। दूसरे देशों से प्रतिनिधियों के, इन पूर्वोक्त सभी देशों के आए हुए संकायाध्यक्ष से साहित्य और भाषा के नए और पुराने संबंध स्थापित और पुन: स्थापित करने का एक मूल्यवान अवसर था।

सम्मेलन का व्यापक, निर्माणप्रद वातावरण सब पर पड़े बिना रह ही न सकता। इसके परिणामस्वरूप सब प्रतिनिधियों को अपने-अपने देश में अपनी पढ़ाई और शोधकार्य के लिए नया प्रोत्साहन मिला होगा, मुझे संदेह नहीं है। उनका यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर हो गया होगा कि हिंदी का प्रयोग, जिसकी उपयोगिता के विषय में कहीं-कहीं शक बना रहता है दुनिया में, इसलिए बढ़ता ही जाएगा कि भारत और मॉरीशस जैसे देशों में संचार और संपर्क की ऐसी आवश्यकताएँ हैं, जो हिंदी भाषा ही, दूसरी सभी भाषाओं की अपेक्षा अच्छी तरह पूरी कर सकती है।

विदेश के दूसरे प्रतिनिधियों की ही तरह मैं हिंदी के इस द्वितीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर सम्मेलन के आयोजकों को बधाई देना चाहता हूँ। मॉरीशस में सम्मेलन के इस बार आयोजित होने के कई कारण हैं। एक तो हिंदी भाषा मॉरीशस के इतने लोगों की सांस्कृतिक बपौती है और यह बपौती इतने साल के बाद जीवित है, ज़िंदा है, यह मैं मॉरीशस की कई नई हिंदी कविताएँ पढ़कर, जो हाल ही में महात्मा गांधी संस्थान से प्रकाशित हुई हैं और अब कुछ अपनी आँखों देखकर समझ पाया हूँ। मॉरीशस का नया हिंदी साहित्य अखिल हिंदी साहित्य के क्षेत्र में एक समुचित स्थान ले रहा है, इसका मुझे थोड़ा पढ़कर ही विश्वास है। कहने का मतलब यही है

कि मॉरीशस के दृष्टिकोण से अब हम बाहर की तरफ़ देखते हैं, दुनिया पर तो हिंदी का यहाँ होना सिर्फ़ किसी पुराने या ढीला होते हुए सांस्कृतिक संबंध का प्रतीक जैसा ही नहीं दिखाई देता, बल्कि एक जीवित माध्यम है, संपर्क और समाचार का, जिसके ज़रिए एक असली रिश्ता ठोस बना रह सकेगा दूसरे देशों और देशवालों से, जहाँ भी हिंदी बोली जाती है। जैसे-जैसे भारत में हिंदी की व्यावहारिक महत्ता बढ़ती जा रही है, ठीक वैसे ही उसकी महत्ता मॉरीशस में भी बढ़ेगी। और यह महत्ता सांस्कृतिक भी होगी, व्यावहारिक भी होगी।

व्यावहारिक और सांस्कृतिक महत्ता, इन दोनों के कारण ही विदेशों में हिंदी पढ़ी और पढ़ाई जाती है। अब आज के लिए मेरा कर्तव्य यह है कि ब्रिटेन में हिंदी का जो अध्ययन-अध्यापन हो रहा है, मैं इसके बारे में आप लोगों से कुछ कहूँ। पुरानी बातें अगर मैं करना चाहता तो यह कहानी कुछ लंबी पड़ती, क्योंकि अठारहवीं शताब्दी से लेकर आज तक कई अंग्रेज़ होते रहे हैं, जो हिंदी की व्यावहारिक महत्ता समझ पाए हैं। लेकिन हिंदी की आधुनिक पढ़ाई की पृष्ठभूमि आज छूट सकती है। मेरा विषय है '1945 के बाद ब्रिटेन में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का विकास'।

हमारे यहाँ हिंदी के विकास के दो पहलू हैं। एक तो विश्वविद्यालयों का, जो अभी तक ब्रिटेन में मुख्य रहा है, लेकिन पिछले कई वर्षों में हिंदी की स्थिति का एक और पहलू दिखाई देने लगा है, जो आगे चलकर बहुत ही ज़्यादा अहमियत रखेगा। यह नई स्थिति उन लोगों का इंग्लैंड में बस जाना है, जिनकी मातृभाषा या तो हिंदी-उर्दू कही जा सकती है या हिंदी से संबंध रखनेवाली कोई और भारतीय भाषा है। बहुत कुछ ऐसा होता है कि ये लोग इंग्लैंड में बसकर भारत से अपने सांस्कृतिक संबंध बनाए रखना चाहते हैं और सांस्कृतिक संबंधों का एक महत्वपूर्ण अंग भाषा ही है। इसलिए मुझे विश्वास है कि ब्रिटेन में हिंदी की ओर ज़्यादा ध्यान दिया जाने लगेगा। इसके साथ विद्यार्थियों की संख्या बढ़ भी जाएगी; और वे विद्यार्थी स्वयं अपने साहित्य व संस्कृति का अध्ययन करके मानसिक संतोष और तृप्ति भी पाएँगे। लंदन जैसी नगरपालिकाओं से आयोजित extension courses में, जो बहुत साल से चलते रहे हैं, हिंदी अब शामिल होने लगी है। और जैसे-जैसे नए बसनेवालों के बच्चे बड़े हो रहे हैं, हिंदी की और दूसरी भारतीय भाषाओं की स्कूली शिक्षा की भी माँग सुनाई देने लगी है। इन माँगों को किसी-किसी क्षेत्र में सहानुभूति से सुना जाएगा और इन पर जहाँ तक हो सके, अमल भी किया जाएगा, मुझे इसपर विश्वास है। इसी तरह के विश्वास से हिंदी भाषा यूनाइटेड किंगडम में अपना एक समुचित स्थान बना लेगी और हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की पहुँच इसके अनुसार ही विकसित हो पाएगी। रही विश्वविद्यालयों की बात। इस संबंध में मुझे यहाँ आपको पहले हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था के बारे में कुछ बात करनी है। पढ़ाई की व्यवस्था होते समय यह निश्चय कर लिया गया था कि पढ़ाई जहाँ तक हो सके, विस्तृत पैमाने की होगी।

स्टुअर्ट मैकग्रेगर की कुछ प्रमुख कृतियाँ

इस निश्चय के फलस्वरूप अब हिंदी और हिंदी साहित्य

तीन या चार वर्ष के अध्ययन-काल में पढ़ा जा सकता है। यह समझा गया था कि विदेशी विद्यार्थी सिर्फ़ ऐसा अध्ययन करने से ही भारत की संस्कृति, साहित्य और भाषा में, जो उसके लिए नई है, असली लाभ पाकर पैठ सकेंगे। साथ ही एक-दूसरी बात सोचने की थी : विद्यार्थियों को भारत के जीवन के अलग-अलग पहलुओं से परिचित करा देना था, इतिहास, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था, कला इत्यादि, जिससे कि उन्हें साहित्य और भाषा के अध्ययन की ठोस पृष्ठभूमि मिले। ये बहुरूपी अध्ययन पश्चिमी देशों के क्षेत्रोन्मुख या area studies बहुत कुछ कहलाते हैं। उनमें भाषा विज्ञान का भी अध्ययन आ जाता है। यह समझा गया था कि भाषा का विज्ञान भाषा सीखने-सिखाने के नए तौर-तरीके पाने के लिए बहुत सहायक हो सकता है, विशेषकर तब, जब एक नई भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में आ रही है। इसी दोमुखी पृष्ठभूमि में हिंदी का अध्ययन ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों में स्थापित हो गया है। पहले लंदन के SOAS में, जहाँ भारत के अध्ययन के लिए पृष्ठभूमि की सामग्री उसी एक क्षेत्रोन्मुख संस्थान में मिलती है और बाद में कैंब्रिज में, जहाँ वह कुछ विश्वविद्यालय के अलग-अलग संकायों में बिखरी मिलती है। और कुछ प्राच्य विधा के ही संकाय में; यार्क में, जहाँ हिंदी का अध्ययन-अध्यापन अधिकतर भाषा-विज्ञान के ही संबंध में विकसित हुआ है।

आप यह चाहते होंगे कि मैं पढ़ाने के तौर-तरीकों और पाठ्यक्रम के बारे में कुछ कहूँ। चूँकि हमारे विद्यार्थी आरंभिक स्तर से ही हिंदी का अध्ययन शुरू करते हैं, इसलिए हमें उनको उस स्तर तक 3-4 वर्षों के अंदर ही पहुँचाने के लिए, जहाँ साहित्य पढ़ने से पूरा लाभ उठा सकते हैं, जल्दी ही काम करना पड़ता है। अध्यापकों का कार्य यदि एक ओर उनके सामने एक विविधता भरी साहित्य सामग्री रखना है, तो दूसरी ओर वह कार्य देखना है कि विद्यार्थी हिंदी बोलने में तरक्की करते रहें, नहीं तो वे पढ़ने में भी कम प्रगति करेंगे। विदेशी भाषाओं को पढ़ाने का सबसे अच्छा ढंग कौन सा है, इसके बारे में मतभेद ही है। पिछले कई वर्षों में अमरीका में भी, यूरोप में भी और भारत में भी विदेशियों के काम के कई हिंदी कोर्स निकले हैं। मैंने और मेरे सहकार्यकर्ताओं ने ऐसा पाया है कि हमारे ध्येय के लिए हिंदी सिखाने के एक दोतरफा तौर-तरीका सफल हो सकता है। सिखाने की नवीनतम प्रक्रियाओं का प्रयोग भी करना, और साथ ही शुरू से ही लिपि और व्याकरण, दोनों की ओर ध्यान भी देना। व्याकरण संबंधी कुछ काम करने से विद्यार्थी प्राध्यापक पर पूरी तरह निर्भर न होकर अपने वाक्य कुछ स्वतंत्र रूप से बनाने में समर्थ हो जाते हैं। इस तरह पढ़ाना वर्तमान और परंपरागत प्रशिक्षण-प्रणालियों में एक समझौता करना है। वह सफल है, हमें ऐसी आशा है।

विद्यार्थी अपने कोर्स के हर वर्ष में हिंदी बोलने का अभ्यास और अनुवाद या निबंध लिखने का अभ्यास करते हैं। साहित्य का अध्ययन पहले वर्ष में शुरू होता है, जिसमें आधुनिक हिंदी कहानियाँ पढ़ी जाती हैं। आगे चलकर वे तुलसी, सूर, नंद और कबीर को पढ़कर मध्यकालीन हिंदी साहित्य के कई पहलुओं के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं। आधुनिक प्रतिनिधि गद्यात्मक और पद्यात्मक कृतियाँ भी पढ़ते हैं। साथ-ही-साथ वे हिंदी का और हिंदी की विभाषाओं का इतिहास संक्षेप में पढ़ते हैं। ऐसा करके वे समझने लग जाते हैं कि हिंदी का बढ़ता हुआ प्रयोग भारतवर्ष के लिए कितना लाभदायक हो सकेगा। □

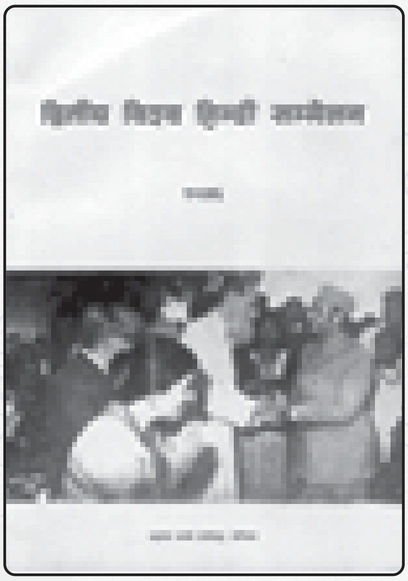

19 अगस्त, 2013 को प्रो. मैकग्रेगर के निधन से विश्व हिंदी जगत को भारी क्षति पहुँची है। उनके प्रति श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस में आयोजित द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन (1976) के उपलक्ष्य में महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस द्वारा प्रकाशित, मुद्रित और संपादित विशेषांक से प्रो. आर.एस. मैकग्रेगर का लेख साभार प्रकाशित कर पाठकों को समर्पित कर रहा है।

3

भानुमती नागदान का साहित्य : एक अवलोकन

श्रीमती रत्ना सुखलाल

श्रद्धांजलि

भानुमती नागदान
12-07-1933 — 18-11-2013

18 नवंबर, 2013 की सुबह, लंबी अस्वस्थता के कारण अस्सी साल की उम्र में मॉरीशसीय हिंदी साहित्य जगत की सब से प्रबल लेखिका सुश्री भानुमती नागदान का देहांत हो गया। उनका देहावसान हिंदी जगत के लिए बहुत भारी क्षति है। अपनी अदम्य वाणी से सबको रोमांचित करने वाले स्वर के मौन हो जाने से जो कमी हुई है उसको पाटने में मॉरीशसीय हिंदी जगत को शायद कई साल लग जाए, किंतु नागदानजी का साहित्य सदैव जीवित रहेगा।

श्रीमती भानुमती नागदानजी का जन्म 12 जुलाई, 1933 ई. को मॉरीशस के रोज़-हिल शहर के निवासी व माहवा गाँव, सौराष्ट्र भारत से आए श्री नारएदास हवाभाई के परिवार में हुआ। सुश्री नागदान ने 13 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण की, सत्रह साल की उम्र में उनका विवाह हुआ, जिसके कारण उनकी माध्यमिक शिक्षा अपूर्ण रही, किंतु विवाह के बारह वर्ष बाद कई विरोधों के बावजूद उन्होंने एस.सी. तथा ए. लेवल (10वीं तथा बारहवीं) की परीक्षाओं में सफलता पाई। हिंदी अध्यापिका के लिए उन्होंने अर्ज़ी दी, किंतु बन न पाई, यह कहकर कि उनकी हिंदी अच्छी नहीं है। फिर भी उन्होंने गुजराती, हिंदी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच आदि भाषाओं की शिक्षा प्राप्त की तथा हिंदी-गुजराती के अध्यापन में संलग्न रहीं।

नागदानजी की रचनाओं ने न केवल मॉरीशस में बल्कि भारत के साथ-साथ अन्य देशों में ख्याति प्राप्त की। हिंदी परिषद् के अध्यक्ष स्वर्गीय सोमदत्त बखोरी (मॉरीशस के प्रसिद्ध कवि) की प्रेरणा से उन्होंने सर्वप्रथम रेडियो प्रोग्रामों के लिए एकांकी लेखन आरंभ किया। लेखन के साथ-साथ हिंदी परिषद् की अन्य गतिविधियों, गोष्ठियों, अभिनय, अध्यापन तथा समाज-सेवा में जुड़ी, जिससे वे साहित्य-सृजन की ओर अग्रसित हुई। उनकी पहली रचना 'बुढ़िया की शादी' नामक गुजराती एकांकी है तथा पहली हिंदी रचना 'ज़ख्म का चिह्न' है। उनकी तीन कहानी-संग्रह 'मिनिस्टर' (1981), 'दरार' (1993) तथा 'डॉन्' (Dawn), 2007-अंग्रेज़ी कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 1973 में हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा उन्हें हिंदी मंदोदरी भगत सम्मान, 1993 में चौथे विश्व हिंदी कान्वेन्शन द्वारा हिंदी साहित्य सम्मान, 2003 में महात्मा गांधी संस्थान द्वारा हिंदी साहित्य सम्मान, 2006 में सर खेर जगतसिंह सम्मान, 2010 में सृजन सम्मान, 2013 में विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा विश्व-हिंदी भाषा सम्मान से सम्मानित किया गया। साहित्य जगत के साथ-साथ वे समाज सेवा-कार्यों में भी बहुत सक्रिय रहीं, वे Mauritius Women's Alliance की बहुत प्रभावी सदस्या रहीं। उनके कार्यों के लिए वर्ष 2007 में उन्हें कात्र-ब्रोर्न नगरपालिका द्वारा मानद नागरिकता प्रदान की गई।

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य में सुश्री नागदानजी का आविर्भाव एक ऐसे समय में हुआ, जब पूरा साहित्य जगत पुरुष-प्रधान था, उन दिनों वे उन इनी-गिनी महिला लेखिकाओं में से थीं, जिन्होंने साहित्य रचना में पदार्पण किया। स्वभाव से साहसी, स्वाभिमानी व निडर भानुमतीजी ने पूरी तटस्थता के साथ इस क्षेत्र में अपना स्थान बनाया। समाज सुधार के कार्यों में बहुत निकटता से भाग लेनेवाली भानुमतीजी के काव्य में समाज का कोना-कोना झाँकता है। मॉरीशस के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक जीवन की स्थितियों और विसंगतियों को उनकी कहानियाँ प्रतिबिंबित करती हैं।

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य का भारतीय आप्रवासीयों के इतिहास

के साथ गहरा संबंध रहा है। मॉरीशसीय साहित्यकार की प्रेरणा का स्रोत उसके पूर्वज़ों की पीड़ा-यातना के साथ बँधा रहा। अभिमन्यु अनत तथा रामदेव धुरंधर जैसे मूर्धन्य कथाकार जहाँ काफ़ी हद तक इस नोस्ताल्जिया को अपनी रचनाओं में उकेरते रहे, वहीं भानुमतीजी इस लड़ी से हटकर अपनी कहानियों को एक अलग भावभूमि पर विकसित करती रहीं। उनकी रचनाएँ साधारण मनुष्य के जीवन की विडंबनाओं, विसंगतियों, द्वंद्वों व संघर्षों का चित्रांकन करती है। उनकी पेनी नज़र को वर्तमान समाज की अच्छी परख रही। समाज के जिस वर्ग के साथ वे संबंधित थीं, उसके खोखलेपन तथा समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर उतारने में उनकी लेखनी कभी न रुकी। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारतवंशी समाज का चित्र बहुत सशक्त, स्पष्ट एवं सरल शैली में अभिव्यक्त करके अपने विचारों तथा सिद्धांतों को अपने पाठक के सामने प्रस्तुत किया। उनकी लेखनी में इतनी शक्ति थी कि अब तक वर्जित विषयों को शब्द देने का साहस किया। तीखे व्यंग्य से सब उनके शब्द भ्रष्ट राजनीतिक 'हथकंडे' मान-सम्मान के खोखले प्रदर्शन (मिनिस्टर), अन्यायपूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ (एक घंटे का सवाल), अर्थहीन सम्मान व बूढ़ापे की दयनीयता (एम.बी.ई), टूटते-बिखरते पारिवारिक संबंध (दोस्ती, अनुबंधन), विकृत होते मानव मूल्य (पार्टी), मानव हृदय के द्वंद्व (अनुबंधन), अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई (हड़ताल), पर्यटन उद्योग के नकारात्मक प्रभाव (बुझ गया दीपक) को सपाट रूप से परिलक्षित करते जाते हैं। 1981 में प्रकाशित उनके 'मिनिस्टर' कहानी संग्रह में सत्रह कहानियाँ संकलित हुई हैं। इस संग्रह की कहानियाँ सशक्त रूप से मॉरीशसीय समाज की समस्याओं को उजागर करती हैं। नागदानजी की दृष्टि ने समाज के हरेक पहलू को मथा है।

1981 में प्रकाशित उनके मिनिस्टर कहानी संग्रह में सत्रह कहानियाँ संकलित हुई हैं। इस संग्रह की कहानियाँ सशक्त रूप से मॉरीशसीय समाज की समस्याओं को उजागर करती हैं। नागदानजी की दृष्टि ने समाज के हरेक पहलू को मथा है।

समाज के बड़ों तथा वृद्धों के प्रति नई पीढ़ी की संवेदनहीनता तथा बूढ़ापे की दयनीयता का चित्रांकन एम.बी.ई. और अंग्रेज़ी कहानी

जन्म : 01 मार्च, 1975, मॉरीशस।

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए. (ऑनर्स), एम.ए. (हिंदी)। मॉरीशस विश्वविद्यालय से एम.फिल. (हिंदी) पी-एच.डी. जारी।

संप्रति : सरकारी माध्यमिक पाठशाला में हिंदी शिक्षिका।

'The Lonely Women' में बहुत ही प्रभावशाली रूप से किया गया है। एम.बी.ई. (राष्ट्रीय सम्मान) की उपाधी की अर्थहीनता, झुठे मान-सम्मान के खोखले यथार्थ, वृद्धों के प्रति नई पीढ़ी की सहानुभूतिशून्यता को जिस सहजता से प्रस्तुत किया है, वह सराहनीय है। पारिवारिक ममत्व से वंचित माँ-बाप की पीड़ा, यातना व अकेलेपन का अनुभव उन्होंने शायद बहुत निकटता से किया है। 'The Lonely Women' की मेघना जब कह उठती है

''But you know Roshi, sitting at home in this solitude; I think I will become mad. Life is so dull, lonely and stale, as if all the morosity of the world has gathered around us. There is nothing to look forward to, no gaiety and no excitement.'' तो स्पष्ट होता है कि बच्चों के स्नेह से वंचित एकांत जीवन जीनेवाले अभिभावकों के दर्द से वे अंभिज्ञ नहीं थी।

उनकी मिनिस्टर कहानी जहाँ एक असफल राजनीतिज्ञ के जीवन की गाथा कहती है वहीं भ्रष्ट एवं एक तरफ सरकारी नीतियों को उजागर करती है। शहरों के विकास के आगे गाँवों के पिछड़ेपन को देखकर, मिनिस्टर सर ब्यास को अपने राजनीतिक जीवन की निरर्थकता का एहसास होता है। एक घंटे का सवाल में बहुत तीखेपन से उन्होंने देश के कानून और स्वास्थ्य सेवाओं की अकुशलता पर व्यंग कसा है।

शंकर और माया दोनों ज़मीन पर बैठ गए। वे लोग अपने मरे बच्चे को रोते थे। अपनी मजबूरी पर रोते थे। डिस्पेंसरी की डिसीप्लिन पर रोते थे। देश के कानून पर रोते थे।

इस कथन से न केवल पाठक का आक्रोश बढ़ता है वरन् समय

नागदानजी के काव्यों में मुख्यत : नारी विमर्श, नारी के प्रति अत्याचार, नारी शक्ति, आधुनिक नारी, उसके अधिकार आदि भाव उजागर होते हैं। नारी स्वतंत्रता की पक्षधर नागदान जी ने अपनी कहानियों में ऐसी नायिकाओं को चित्रित किया जो समाज के विभिन्न वर्गो से संबंध रखती है। उनकी नायिका आधुनिक विचारधारा वाली स्वतंत्र, आत्मविर्भर, स्वाभिमानी व साहरी रही है। उनकी पात्राओं पर उनका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। वे स्वयं कहती है, 'मैं किसी के सामने नहीं झुकी। अपने पति से भी सहायता नहीं ली। मैं एक सेल्फ-मेड वूमन हूँ'।

पर इलाज न मिलने पर शिशु की मृत्यु पर रोती बेबस माँ की पीड़ा को दिखाकर भ्रष्ट कानूनों में सुधार की आवश्यक्ता का स्वर गूँजता है।

उनकी हड़ताल कहानी पूँजीवादी समाज की स्वार्थपरता व निमर्मता को चित्रित करती है। गरीब तथा अमीर के बीच बढ़ती खाई के चलते नवजवानों के भविष्य का नष्ट हो जाना कितनी स्वाभाविक सी बात बन गई है, इसका स्पष्ट वर्णन किया गया है, साल भर मेहनत करने वाला गरीब लड़का केवल जब बस की हड़ताल के कारण समय पर परीक्षा कक्ष में नहीं पहुँच पाता, तो अपने मन में उफनते विद्रोह को अभिव्यक्त करते हुए कहता है—

स्वार्थ की भी कोई हद होती है। यहाँ पर तो स्वार्थ के लिए कितने नौजवानों के भविष्य से खेला जा रहा है। वह फरियाद करे तो किस के पास जाकर करे। उसको सारा समाज सड़ा हुआ सा लगता था।

भानुमती नागदानजी की कृति

दोस्ती कहानी दांपत्य जीवन के पावित्र्य की आवश्यक्ता पर बल देती हुई पति–पत्नी के बीच समान अधिकार की माँग करती है। समाज में व्याप्त इस गंभीर समस्या पर नागदानजी ने टिप्पणी की है कि पति–पत्नी के संबंध का आधार परस्पर प्रेम होता है, वह न हो, तभी दोनों बाहर प्रेम तलाशते हैं।

नागदानजी की सब से चर्चित रचना अनुबंधन विभाजित क्षणों को जीने वाली नारी की विवशता की कहानी है। चौदह वर्ष के लंबे अंतराल के उपरांत विवाहित विलास अपने प्रेमी स्वप्नील के प्रति पुनः आकृष्ट होती है। विलास की मनोव्यथा और उसके आन्तरिक द्वंद्व पर पूरी कहानी निर्मित है। उन्होंने मन की अस्थिरता को चित्रित किया है। प्रेम तथा सामाजिक दायित्व के बीच फँसी नारी के मनोभावों का बहुत सफल चित्रण हो पाया है।

नक्षत्र मिला दीजिए, पार्टी तथा अंग्रेज़ी रचना 'Meera-a Spare Part' में सांस्कृतिक मूल्यों के हनन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। नक्षत्र मिला दीजिए में ब्राह्मण समाज पर व्यंग्य किया गया। पैसे के लालच में पंडित हर किसी के न मिलने वाले नक्षत्र भी मिला आता है, किंतु जब उसकी संतान पथभ्रष्ट होती है, तब उसे धार्मिक नियमों का उल्लंघन करने में झिझक होती है। पार्टी कहानी में भारतवंशी परिवारों पर पाश्चात्य संस्कृति–सभ्यता के प्रभाव से अपने धर्म और सांस्कृतिक मूल्यों के परित्याग का भाव स्पष्ट होता है, तो 'Meera-a Spare Part' में मध्यवर्गीय परिवार पर मूल्यहीनता व सांस्कृतिक पतन के परिणाम दृष्टव्य होते हैं। नागदानजी ने बड़े ही स्पष्ट भावों में कहानी के उद्देश्य को अभिव्यक्त करते हुए यह अंकित किया कि अगर हमारे बड़े–बुजुर्ग स्वयं गलत मार्ग को अपनाए तो नई पीढ़ी को कुमार्ग से हटाना असंभव है।

इस संग्रह में उनकी सब से सशक्त कहानियाँ दोस्ती, अनुबन्धन तथा बुझ गया दीपक है जो न केवल कथ्य बल्कि शिल्प की दृष्टि से भी प्रभावकारी बन पाई हैं।

दोस्ती पति–पत्नी के वैवाहिक संबंध में स्नेह के अभाव के कारण उत्पन्न तनाव का चित्रांकन करती है। व्यसनी पति को पुनः पारिवारिक दायित्वों का आभास दिलाने के लिए पत्नी उज्ज्वल भी होटलों, क्लबों आदि की राह जब लेती है तो पति की इज्ज्त को ठेस पहुँचती है।

नागदानजी के काव्यों में मुख्यतः नारी विमर्श, नारी के प्रति अत्याचार, नारी शक्ति, आधुनिक नारी, उसके अधिकार आदि भाव उजागर होते हैं। नारी स्वतंत्रता की पक्षधर नागदानजी ने अपनी कहानियों में ऐसी नायिकाओं को चित्रित किया, जो समाज के विभिन्न वर्गों से संबंध रखती है। उनकी नायिका आधुनिक विचारधारा वाली स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी व साहसी रही हैं। उनकी पात्राओं पर उनका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। वे स्वयं कहती है, ''मैं किसी के सामने नहीं झुकी। अपने पति से भी सहायता नहीं ली। मैं एक सेल्फ़–मेड वूमन हूँ।''

नारी को प्रेमिका, पत्नी, माँ, बहू, श्रमिका, वेश्या आदि रूपों में उसके गुणों का चित्रांकन करती हुई उसे उच्चकोटि की श्रेणी में रखा है।

उनकी नायिकाओं में उनकी स्पष्टवादिता, निर्भीकता, उनका आत्मविश्वास व स्वाभिमान द्रष्टव्य है। चाहे 'दोस्ती' की उज्ज्वल, 'अनुबंधन' की विलास, 'बुझ गया दीपक' की लीलावती, 'कालगर्ल' की डिंपल, 'Meera a Spare Part' की मीरा या 'सारा बी' की सारा क्यों न हों, उन्होंने कहीं भी नारी को कमज़ोर, निस्सहाय, अबला के रूप में वर्णित नहीं किया, बल्कि उन की नारी निडर, अपने अधिकारों की माँग करती हुई समाज के अन्याय, विद्रूपताओं व अभावों से जूझकर विजयी होने वाली स्त्री है। उन्होंने स्त्री को पुरुषसत्तामक समाज की आश्रयी स्वरूप नहीं बल्कि उसकी प्रतिद्वंद्वी के रूप में खड़ा किया है।

'सारा बी' (अंग्रेज़ी कहानी) की सारा को Muslim Personal Law के तहत अपने अधिकारों की माँग करते दिखाया। अगर पति को दूसरा निकाह करने का हक है तो पत्नी भी अपनी अस्मिता को जीवित रखने की आकांक्षी है, उसे दूसरी औरत बनकर जीना स्वीकार नहीं। वह कहती है "I am going to defy this law, I have taken a resolution…I am going to ask my 'Khulla' from Dawood…I'll find a rich man and get married, I am going to ask for a big amount of 'Maher'."

इसी प्रकार पुरुष अहं से टकरा जाने की क्षमता 'दोस्ती' की उज्ज्वल में दिखती है, जो व्यसनी पति के व्यवहार को रो-बिलखकर स्वीकारने के बजाय पति को पुन:-सही मार्ग पर लाने के लिए स्वयं क्लब, पार्टी व पर-पुरुष के साथ उठने-बैठने लगती है, ताकि पति दांपत्य की मर्यादाओं के महत्व के प्रति सजग हो सके।

भानुमतीजी की नारियाँ भले ही आधुनिक थीं, किंतु वे पारिवारिक मूल्यों, परंपराओं, रीति-रिवाज़ों की संरक्षिका स्वरूप चित्रित हुईं। 'दोस्ती' की उज्ज्वल अगर पथभ्रष्ट होती है तो उसके लिए स्वयं पुरुष ज़िम्मेदार है। अगर पुरुष इस संबंध की पवित्रता का आदर करने में अक्षम है तो नारी से ऐसी अपेक्षा रखने की आवश्यकता क्यों?

उज्ज्वल पुरुषसत्तामक प्रवृत्ति को ललकारती हुई कहती है—

"तुम उन पुरुषों में से हो, जो पत्नी को सिर्फ़ खाना-खाने वाली, कपड़ा पहनने वाली, सेक्स की गुड़िया समझते हो। थोड़े से प्यार के लिए तरस जाती हूँ। यदि वह मुझे घर में ही मिल जाता तो कभी भी मैं घर से बाहर कदम नहीं रखती। यदि समाज बिगड़ता है तो वह तुम जैसे पतियों के कारण।"

उज्ज्वल की भाँति 'अनुबंधन' की विलास वैवाहिक नियमों को चुनौती देती हुई नज़र आती है। प्रेम और विवाह की परवशता की तुलना करती हुई कहती है, "मन की एक अलग दुनिया होती है। विवाह विधि की पवित्र-अग्नि मंत्रोच्चारण और अर्थहीन रस्में उसे नहीं बदल सकतीं, इनसे पुरुष को सिर्फ़ सामाजिक और शारीरिक अधिकार प्राप्त होते हैं।' विलास अपने कर्तव्यों के प्रति सजग होते हुए भी प्रेमी के प्यार को नहीं भुला पाती। किंतु अंत में विलास को अपनी जड़ों, अपने पारिवारिक दायित्वों एवं अपने दांपत्य जीवन के संरक्षण की ओर वापस आते दिखाया है। क्योंकि स्वयं भानुमती जी अपने शब्दों में कहती है, "वह मन में विभाजित है। इन दोनों में संतुलन लाने के लिए उसका संघर्ष है। संघर्ष तर्क के आधार पर है, कर्तव्य के आधार पर है, दो परिवरों की इज़्ज़त के आधार पर है। एक सामाजिक बंधन है।"

ध्यातव्य है कि भानुमतीजी आधुनिकता के साथ-साथ सामाजिक परंपराओं तथा मूल्यों के संरक्षण पर ज़ोर देती रहीं।

'Meera—A Spare Part' में श्रमिका मीरा कारखाने तथा घर में यांत्रिक जीवन जीती हुई परिवार को पतन से बचाने के लिए संघर्षशील रही।

'बुझ गया दीपक' तथा 'कालगर्ल' तथा 'Unsung Heroines' (अंग्रेज़ी कहानी)में उनकी नारी वेश्या के रूप में वर्णित हुई। सामाजिक यातनाओं व आर्थिक अभावों के कारण देह व्यापार की ओर झुकी लीलावती, लारा तथा डिंपल आत्मग्लानि से ग्रसित नहीं दिखतीं बल्कि उनकी इस स्थिति के लिए समाज पर व्यंग्य कसती हुई कहती है—

"ऐसी कितनी लड़कियाँ इस व्यापार में आ गई हैं। उन लोगों का बाज़ार गरम है। वे देश की सेवा कर रही हैं। आखिर भ्रमणार्थियों का मन बहलाव तो करना चाहिए। मॉरीशस को धन चाहिए, तो त्याग भी करना आवश्यक है।"

नारी को इस रूप में चित्रित करते हुए उसके प्रति अपनी संवेदना अभिव्यक्त की। वे कहती है—"देखकर सहानुभूति होती थी। मन में दया उमड़ती थी। मन में कई सवाल उठते, आखिर कौन सी विवशता थी कि इस व्यापार में लीलावती को उतरना पड़ा?" वेश्या नारियों को पतिता की संज्ञा देने वाले समाज के अनीतिपूर्ण नियमों व व्यवस्थाओं के सामने ये प्रश्न रखती हुई कहती है—"मॉरीशस को आज क्या हुआ? क्या मॉरीशस वेश्या बनेगा? घुँघट में छिपी दुल्हन बाज़ार में आ गई है। पायल के बदले में पैर में घुँघरू आ गए हैं, जो झंझना कर सारी दुनिया को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। तीखे शब्दों में सामाजिक व्यवस्था पर कठोराघात करती हुई, इन स्त्रियों के पतन का ज़िम्मेदार समाज को ही ठहराया है। लीलावती की मृत्यु पर नागदानजी लिखती है, "खैर, कोई कुछ भी कहे, लीलावती शहीद हुई। वह देश की सेवा करते-करते मरी।"

समग्रत: नागदानजी की रचनाएँ कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। जहाँ सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर दृष्टिपात हुआ, वहीं सरल, सपाट, सटीक शैली में अपनी कहानी के उद्देश्यों को प्रस्तुत किया।

निस्संदेह मॉरीशसीय हिंदी साहित्य में भानुमती नागदान जैसी प्रखर-प्रबल स्वर वाली लेखिका का स्मरण सदैव रहेगा। 30 नवंबर, 2013 महात्मा गांधी संस्थान मोका के सुब्रमण्यम भारती सभाकक्ष में उनकी स्मृति में हुई शोक सभा में उनके परिवार के सदस्यों, पुत्र आदर्श एवं बहू शालिनी नागदान, हित मित्रों, साहित्यकारों, छात्रों एवं हिंदी प्रेमियों ने उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित किए।

महात्मा गांधी रोड,
पेची राफ्रे, मॉरीशस
ratnasooklall@gmail.com

□

वैश्विक हिंदी : क्षेत्र व आयाम

4

फीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य

डॉ. विमलेश कांति वर्मा

जन्म : 1943, इलाहाबाद

शिक्षा : हिंदी में एम.ए. तथा डी.फिल. तथा भाषा विज्ञान में एम.लिट. की उपाधि। भारतीय राजनयिक के रूप में फीजी के भारतीय उच्चायोग में प्रथम सचिव (हिंदी और शिक्षा) के पद पर भी कार्य किया है। पिछले तीन दशकों से प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य का अध्ययन और अनुसंधान। इनकी कई विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन के अतिरिक्त आपने बल्गारियन साहित्य की अनेक कालजयी कृतियों का मूल बल्गारियन भाषा से हिंदी में अनुवाद। देश और विदेश में हिंदी शिक्षण पर पाँच पुस्तकें प्रकाशित।

फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और यह साहित्य प्रधानत: भारतीयों के फीजी आगमन, उनके संघर्ष और विकास का दस्तावेज़ कहा जा सकता है। फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य की मूल संवेदना प्रवास की पीड़ा है, जो साहित्य में आद्यंत देखने को मिलेगी, यद्यपि उसका स्वरूप विविध सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बदलता हुआ दिखता है। प्रवास में जहाँ व्यक्ति के मन में एक ओर नई जगह जाने का उत्साह है, चुनौती है, नई आशाएँ और कामनाएँ हैं, वहीं दूसरी ओर विछोह की पीड़ा है, विस्थापन का कष्ट है और भविष्य की आशंकाएँ हैं। इन दोनों भावों में डूबता-उतरता मानव प्रवास का निश्चय करता है। अपनों का विछोह, अपनी मिट्टी का विछोह प्रवासी के मन में एक गहरी कसक उत्पन्न करता है। इस कसक को व्यक्ति नए सुखमय भविष्य की आशा में भुलाने की चेष्टा करता है। यदि नया वातावरण अधिक सुख-सुविधा संपन्न है तो प्रवासी धीरे-धीरे नए वातावरण में रम जाते हैं और विछोह की पीड़ा धीरे-धीरे कम होती जाती है। वहीं दूसरी ओर यदि प्रवास वह वातावरण नहीं दे पाता, जिस आशा से व्यक्ति अपना घर-बार छोड़कर विदेश गया है, तो प्रवास बड़ा कष्टकर लगता है, उसका मन क्षोभ और ग्लानि से भर जाता है। न वह वापस अपने देश जा सकता है और न ही उसका मन यहाँ लगता है।

फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य को हम तीन कालखंडों में बाँटकर देख सकते हैं। ये कालखंड फीजी में भारतीयों के संघर्षमय जीवन के मुख्य पड़ाव हैं और इनमें हम भारतीयों की सृजनात्मक साहित्यिक अभिव्यक्ति के विशिष्ट मोड़ों को भी देख सकते हैं।

पहला कालखंड 1879 से 1920 ई. का है। 1879 का वर्ष फीजी में भारतीयों के पदार्पण का वर्ष है। भारतीय मज़दूरों की पहली खेप इसी वर्ष लेवनीदास जहाज से फीजी पहुँची थी। 1916 ई. तक भारतीयों के फीजी आने का सिलसिला चलता रहा और फीजी सरकार ने भारतीयों के आने पर अब प्रतिबंध लगा दिया। 1920 में गिरमिट प्रथा समाप्त हो गई और अब भारतीय मज़दूर, जो गिरमिट प्रथा के अंतर्गत नारकीय जीवन बिताने को विवश थे, अब वे स्वतंत्र जीवन जीने तथा फीजी में स्थायी रूप से बसने के अधिकारी हो गए। इस प्रकार सन् 1879 का वर्ष तथा सन् 1920 का वर्ष दोनों ही फीजी में बसे हुए भारतीयों के लिए महत्वपूर्ण हैं और इस कालखंड की सृजनात्मक अभिव्यक्ति कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। चालीस वर्ष की इस अवधि में इन प्रवासी भारतीयों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति लोकगीतों में हुई, जो साहित्यिक दृष्टि से उत्तम अभिव्यक्तियाँ तो हैं ही, प्रवासी भारतीयों के गिरमिट जीवन के मौलिक दस्तावेज़ भी हैं, जिनका ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय महत्व है। इनका मुख्य विषय गिरमिट जीवन के कष्ट, निराशा, क्षोभ और ग्लानि हैं; गिरमिट की अपमानजनक स्थिति से उबरने की आशा न देखकर हताशा और घोर पश्चात्ताप है।

मानव चाहे धनी हो या निर्धन, शिक्षित हो या निरक्षर, सामान्य नागरिक हो या सम्मानित महापुरुष, वह अभिव्यक्ति चाहता है, अपने सुख-दु:ख को बाँटना चाहता है। कहा जाता है, सुख बाँटने से बढ़ता है और दुख बाँटने से घटता है। 1879 में जब भारतीयों ने

फीजी की भूमि पर पैर रखा तो रोज़ दिनभर के कठिन श्रम के बाद वे सब साथ बैठते, आपस के सुख-दु:ख बाँटते और अपने साथ जो रामचरितमानस की पोथी ले गए थे, उसको बाँचते। राम के वनवास के 14 वर्ष की अवधि की वे अपने फीजी प्रवास से तुलना करते और सोचते कि जब राम के कठिन वनवास के 14 वर्ष बीत गए तो उनके ये पाँच-छह वर्ष भी बीत जाएँगे और फिर वे अपने देश भारत वापस लौट जाएँगे। इन प्रवासी भारतीयों ने अपने गिरमिट जीवन के दारुण दुखों को गीतों में पिरो दिया है।

एक भारतीय, जो अपना घर-बार सबकुछ छोड़कर ब्रिटिश एजेंटों द्वारा बहला-फुसलाकर गन्ने के खेतों में काम करने के लिए फीजी भेज दिया गया था, फीजी पहुँचकर जब स्थिति पूर्णतया विपरीत देखता है तो दुखी हो जाता है, उसे लगता है कि वह छला गया है। उसकी पीड़ा इस रूप में व्यक्त हुई है—

काली कोठरियाँ मां बीते नाहिं रतिया हो,
किसके बताई हम पीर रे बिदेसिया।
दिन रात बीती हमरी दुख में उमरिया हो,
सूखा सब नैनुआ के नीर रे बिदेसिया॥

एक भोली-भाली भारतीय स्त्री अपने फीजी पहुँचने की कहानी रो-रोकर पश्चात्ताप के स्वर में इस प्रकार बताती है—

भोली हमें देख आरकाटी भरमाया हो,
कलकत्ता पार जाओ पाँच साल रे बिदेसिया।
डीपुआ मां लाए पकरायो कागदुआ हो,
अँगुठवा लगाए दीना हाय रे बिदेसिया।
पाल के जहाजुआ मां रोय धोय बैठी हो,
कैसे होइ कालापानी पार रे बिदेसिया।
जीउरा डराय घाट क्यों नहिं आए हो,
बीते दिन कई, भए मास रे बिदेसिया।
आइ घाट देखा जब फीजिया के टापुआ हो,
भया मन हमरा उदास रे बिदेसिया॥

फीजी पहुँचकर एक नए सुखमय जीवन की आशा थी, किंतु उसके स्थान पर रहने के लिए जो अँधेरी कोठरी मिली, उसका सजीव चित्र कवि इस प्रकार खींचता है—

सब सुख खान सी.एस.आर. कोठरिया।
छह फुट चौड़ी, आठ फुट लंबी,
उसी में धरी है कमाने की कुदरिया।
उसी में सिल और उसी में चूल्हा,
उसी में धरी है जलाने की लकरिया।
उसी में महल उसी में दुमहला,
उसी में बनी है सोने की अटरिया॥

एक स्त्री भारत में अपना सबकुछ छोड़कर नए सपने सँजोए हुए इस अनजान देश में आई थी किंतु यहाँ की स्थिति तो इतनी विषम थी कि उसने इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। न रहने की सुविधा, न पेट भर खाने को अन्न। दिनभर कड़ी मेहनत और न ही कोई आत्मसम्मान। वह घोर पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगती है और सोचती है—

जो मैं ऐसा जानती, फीजी आए दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, फीजी न जइयो कोय॥

ये अभिव्यक्तियाँ इतनी मार्मिक इसलिए बन पड़ी हैं, क्योंकि ये रचनाकार के भोगे हुए कष्ट और दुख हैं, वे दुखी मन की ईमानदार अभिव्यक्ति हैं और मन को गहरे तक छूनेवाली हैं। इनकी भाषा मानक हिंदी न होकर इन भारतीयों की अपनी हिंदी है, जो मूलतः अवधी है, किंतु उसमें भोजपुरी का मिश्रण है, जिसे वहाँ के भारतीय 'फीजी हिंदी' कहते हैं। यही हिंदी गिरमिटियों की हिंदी है और इसी की सुरक्षा और प्रतिष्ठा में आज भी फीजी के भारतीय लगे हुए हैं, क्योंकि यह उनकी भारतीय अस्मिता का प्रतीक है।

फीजी के हिंदी साहित्य का दूसरा कालखंड 1921-1980 तक कहा जा सकता है। सन् 1920 में गिरमिट प्रथा समाप्त हो गई और भारतीय श्रमिक, जो एक बड़ी संख्या में फीजी पहुँच चुके थे, अब शर्तबंदी से मुक्त हो स्वेच्छा से जीने के हकदार हो गए। अधिकांश भारतीयों ने गिरमिट पूरा करने के बाद भारत वापस लौटने के बदले फीजी में स्थायी रूप से बसने का मन बना लिया।

इस काल का साहित्यिक फलक बहुत विशाल है। अनेक नए कवि साहित्य क्षितिज पर उभरे। बदली हुई परिस्थितियों ने भारतीयों के मन में जो आशा का नव संचार किया उससे अनेक नई और अच्छी रचनाएँ सामने आईं। हिंदी पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन हुआ और वे देश के कोने-कोने तक पहुँचीं। गिरमिट जीवन अभी भी साहित्य की मूल संवेदना बना रहा किंतु अनेक नए विषयों पर भी कवियों ने लिखा।

वे तो अपना घर-बार सब छोड़कर फीजी आए थे और उन्हें अब यह भी लगने लगा कि फीजी में जीवन की सुख-सुविधाएँ अधिक हैं और यहाँ वे सुखी जीवन बिता सकते हैं। अब उनमें आत्मसम्मान की भावना जगी और आत्मविश्वास बढ़ा कि वे फीजी में नए जीवन का निर्माण करेंगे। भारतीयों में अब नव चेतना का विकास हुआ। वे राजनीतिक अधिकारों के प्रति भी सजग हुए। शिक्षा की ओर उनकी दृष्टि गई और भारतीयों के मध्य अब नए जीवन का उत्साह दिखने लगा। अब वे फीजी के बहुजातीय समाज में अपनी अस्मिता बचाए और बनाए रखने के लिए सजग हो गए।

सन् 1921 से 1980 तक का समय फीजी में सर्जनात्मक हिंदी साहित्य का दूसरा चरण माना जा सकता है। अब साहित्य ने नई करवट ली। जो साहित्यिक अभिव्यक्ति अब तक केवल लोकमानस तक ही सीमित थी और जन भावनाएँ लोकगीतों में ही अभिव्यक्ति पा रही थीं, उनका स्वरूप बदला, अभिव्यक्ति के विषय व्यापक हुए और अब साहित्य में निराशा, क्षोभ तथा ग्लानि के स्थान पर उत्साह और उल्लास भी दिखाई देने लगा। भारतीयों के मन में नए सिरे से जीवन जीने की लालसा और उसके साथ जुड़ी हुई चिंताएँ मन में उठने लगीं। भारतीयों ने फीजी को अपना नया देश स्वीकार कर लिया। देश के विकास में उन्हें अपना विकास दिखने लगा। यह समय गिरमिट में आए हुए प्रवासी भारतीयों की तीसरी तथा चौथी पीढ़ी का था। भारतीयों ने अब संगठित होकर आत्म-विकास के लिए योजनाएँ बनाईं, संघर्ष किया और नए देश में नए सिरे से अपने को प्रतिष्ठित किया।

1920 का वर्ष जहाँ फीजी के इतिहास में गिरमिट प्रथा की मुक्ति के कारण महत्वपूर्ण है, वहीं 1970 में फीजी ब्रिटिश शासन से मुक्त हो स्वाधीन राष्ट्र बना। देश ने विकास के लिए नई योजनाएँ बनाईं और उसमें भारतीयों की भागीदारी बढ़ी। 1979 में शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत आए भारतीयों ने अपने फीजी आगमन के सौ वर्ष पूरे किए और शताब्दी वर्ष विजय वर्ष के रूप में मनाया। इस प्रकार 1920 से 1980 तक का कालखंड जहाँ फीजी के राजनीतिक जीवन में महत्व स्थान रखता है, वहीं इन साठ वर्षों में सृजनात्मक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी विशेष प्रगति हुई और अनेक उत्तम रचनाएँ पाठकों को मिलीं।

गिरमिट प्रथा से मुक्त होते ही भारतीयों ने संगठित होकर रहने और एक-दूसरे से जुड़े रहने के लिए पत्रकारिता के महत्व को समझा और हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ निकालनी प्रारंभ कीं। 'जागृति', 'फीजी समाचार', 'जय फीजी', 'वृद्धि', 'वृद्धिवाणी' आदि अनेक हिंदी समाचार-पत्र निकले। यहाँ तक कि अंग्रेज़ कंपनी 'फीजी टाइम्स' ने फीजी में भारतीयों की बड़ी संख्या देखकर 'फीजी टाइम्स' के हिंदी संस्करण निकालने की बात सोची और 1935 में 'शांतिदूत' साप्ताहिक पत्र पं. गुरुदयाल शर्मा के संपादन में निकालना प्रारंभ किया जो आज अपनी 75वीं जयंती मना चुका है। अनेक मंदिरों, गुरुद्वारों और मस्जिदों का निर्माण भी हुआ, जो भारतीयों के लिए सांस्कृतिक केंद्र की भूमिका निभाते थे। अनेक रामायण मंडलियाँ बनीं, जिनमें प्रति सप्ताह रामायण गायन तो होता ही था, साथ ही भारतीय आपस में मिल-जुलकर बैठते, साहित्यिक गोष्ठियाँ होतीं, जीवन की विविध समस्याओं पर विचार होता तो भारतीय जीवन को सुखद बनाने के उपाय सोचते। 1954 में ही फीजी ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन की स्थापना हुई और इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा रेडियो प्रसारण की सुविधा ने लेखकों और कवियों को लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। विशाल स्तर पर फीजी के विभिन्न विद्यालयों में हिंदी भाषा और साहित्य का शिक्षण भी प्रारंभ हुआ और हिंदी को फीजी की प्रधान भाषा के रूप में सरकारी मान्यता भी मिली।

इस काल का साहित्यिक फलक बहुत विशाल है। अनेक नए कवि साहित्य क्षितिज पर उभरे। बदली हुई परिस्थितियों ने भारतीयों के मन में जो आशा का नव संचार किया, उससे अनेक नई और अच्छी रचनाएँ सामने आईं। हिंदी पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन हुआ और वे देश के कोने-कोने तक पहुँचीं। गिरमिट जीवन अभी भी साहित्य की मूल संवेदना बना रहा, किंतु अनेक नए विषयों पर भी कवियों ने लिखा।

इस काल के लेखकों में पं. कमला प्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। गिरमिट जीवन की यातनाओं को एक बालक के रूप में मिश्र जी ने बहुत निकट से देखा था। किस प्रकार भोले-भाले भारतीयों को गोरे अंग्रेज़ ओवरसियर अपमानित करते, लात-घूँसे मारते, भूखा रखते और दिन-रात काम में लगे रहने पर भी जब गालियाँ खाते तो उनका स्वाभिमान जाग्रत हो जाता और वे बदला लेना चाहते। एक अपमानित गिरमिटिया मज़दूर की भावना कवि के शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है—

एक गिरमिटिया छुरी लेकर बाहर निकल रहा था,
क्रोध में उसके नयन से अश्रु का सागर बहा था।
साथियों के पूछने पर क्रोध से उसने कहा था
यह नहीं साहब कुलंबर, जंगली यह जानवर है,
हम सबों के कष्ट का इस पर न कोई असर है।
देश में है राज्य इनका, न्याय से इनको न डर है,
यह अँधेरी कोठरी, उनके यहाँ दीवालियाँ हैं।
मैं कभी रोया, बजाने झट लगे ये तालियाँ हैं,
इस छुरी से चोख ज़्यादा साहबों की गालियाँ हैं॥

—कमला प्रसाद मिश्र, एक गिरमिटिया मज़दूर

इस काल की रचनाओं में आपको अपने पूर्वज़ों के गिरमिट जीवन की स्मृतियाँ दिखेंगी। यह समय गिरमिटियों की दूसरी, तीसरी, चौथी पीढ़ी का है। पूर्वज़ों का फीजी प्रवास और प्रवास के कष्ट वह क्षण भर के लिए भी नहीं भूल पाता। वह उसकी आँखों के आगे निरंतर घूमता रहता है। वह यह भी जानता है कि उसके बाप-दादा का ही श्रम और निष्ठा थी कि बियावान जंगल जैसा फीजी एक सुविधा संपन्न सुंदर देश बन सका। 1979 में भारतीयों ने 'गिरमिट शताब्दी वर्ष' का आयोजन 'विजय दिवस' के रूप में मनाया। 100 वर्षों में प्रवासी भारतीयों ने अपनी निष्ठा और श्रम से फीजी देश को एक नया रूप दिया था। कवि पं. राघवानंद शर्मा अपनी कविता 'अगर तुम इस धरती पर आए न होते' में अपने पूर्वज़ों के प्रति श्रद्धा अर्पण इस रूप में करते हैं—

रमणीक देश फीजी हर्गिज़ न कहाता,
जंगलों का टापू जंगल ही दिखाता।
निज मुल्क से अगर, जो तोड़ के नाता,
बनते नहीं तुम इसके यदि भाग्य विधाता।
गगनचुंबी महल सर उठाए न होते,
ईंट महलों के यदि तुम जुटाए न होते॥

फीजी के लोकप्रिय रचनाकार ज्ञानीदास अपने पूर्वज़ गिरमिटियों के योगदान का स्मरण करते हुए कहते हैं—

गिरमिटिये कस लिए कमर, सब ने अपना सुख दुख बाँटा।
चट्टानों को चूर-चूर कर दिया, बन जंगल को काटा॥
भर दिया उपज से फीजी को, हर तरह से देश को आबाद किया।
रखी लाज भारत माँ की, चाहे खुद अपने को बरबाद किया॥
तुम कहते हो भाग्यहीन थे, रोटी के चक्कर में फँसे।
दानवता जब उमड़ पड़ी थी, वो उसके कीचड़ में धँसे॥
मैं कहता हूँ कर्मवीर थे, मुसीबतों को ललकारा।
मर मिटे राष्ट्र की सेवा में, रणधीरों ने कब हारा॥

—ज्ञानीदास : बीत गए सौ वर्ष

फीजी में बसे भारतीयों ने फीजी को अपना देश समझा, उसके चतुर्दिक् विकास का संकल्प लिया। काशीराम कुमुद फीजी के प्रसिद्ध हिंदी कवि हैं। वे कहते हैं कि हमारे माता-पिता फीजी आए, इस देश को उन्होंने अपनी कर्मभूमि बनाया और यहीं पंचतत्व में विलीन हो गए। काशीराम कुमुद फीजी देश को स्वर्गभूमि के रूप में संबोधित करते हुए इस देश को विश्व का सरताज बनाने का संकल्प लेते हैं। कवि की कामना देखिए—

हम फीजी माँ के लाल,
कर उन्नति सफल दिखा देंगे।
इस स्वर्ग भूमि को मिलजुल के,
जग का सिरताज बना देंगे।

—काशीराम कुमुद : प्रतिज्ञा

फीजी की प्राकृतिक सूक्ष्मता का वर्णन भी हिंदी कवियों का प्रिय विषय रहा है। फीजी की चमकती हुई रेत के मीलों लंबे स्वच्छ समुद्र तट, चीड़ के घने जंगल, रेवा और सिंगातो की नदियाँ, हरे भरे पहाड़, तारों भरा स्वच्छ नीला आकाश—हर सैलानी का मन मोह लेते हैं। फीजी का क्षण-क्षण बदलने वाला मौसम, कभी रिमझिम बारिश तो दूसरे ही क्षण बिजली की गड़गड़ाहट, मूसलाधार वर्षा और समय-समय पर अपने अस्तित्व की सूचना देने वाले तूफान फीजी की पहचान हैं।

सरस्वती देवी फीजी की रेवा नदी की सुंदरता का वर्णन इस प्रकार करती हैं—

इसके तट पर सब आते हैं,
हँसते हैं और नहाते हैं,
गोरे काले नर और नारी,
सबके दिल को यह भाती है,
यह रेवा बहती जाती है।
रेवा की सुंदर हस्ती है,
रेवा की मादक मस्ती है,
इसका जल है मद सा मादक,
जिसमें यह नित मदमाती है,
यह रेवा बहती जाती है॥

—सरस्वती देवी : रेवा नदी

फीजीवासियों को इस बात पर भी गर्व है कि विश्व में उषा की पहली किरण का स्वागत सबसे पहले फीजी में ही होता है। कवि कमला प्रसाद मिश्र के शब्दों में—

यहाँ सूरज पहले निकलता है और दूर अँधेरा होता है।
फीजी फिरदौस है पैसिफक का यहाँ पहले सबेरा होता है।
हर ओर अजब हरियाली है हर ओर छटा मतवाली है।
यह फीजी वही जिसमें हर माह बहार का फेरा होता है।

—कमला प्रसाद मिश्र : यहाँ पहले सबेरा होता है

यह समय फीजी के भारतीयों के लिए नव निर्माण का समय है। वे अपनी संस्कृति, अपनी भाषा की सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए

निरंतर प्रयत्नशील दिखते हैं। प्रवासी मन की यह विशेषता एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रवासी अपनी जड़ों से जुड़े रहकर वह अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। यही कारण है कि फीजी का हर प्रवासी भारतीय अपनी भाषा हिंदी के प्रति एक सम्मान का भाव रखता है और वह उसे अपनी अस्मिता का प्रतीक मानता है। यही कारण है कि इस काल के सभी कवियों ने हिंदी भाषा के बारे में कुछ-न-कुछ अवश्य लिखा है।

कवि काशीराम कुमुद की एक रचना का शीर्षक ही 'हिंदी बिरवा' है। हिंदी की रक्षा प्रवासी भारतीयों ने कितने जतन से की है, यह कुमुदजी की कविता में प्रतिबिंबित होता है—

शर्त में जिसने जीवन को उत्सर्ग किया,
हम उन्हीं के श्री चरणों में शीश झुकाते हैं,
हम रक्त बिंदुओं से सींच-सींच,
हिंदी बिरवा पनपाते हैं।

कवि सुखराम की कविता 'हिंदी : हमारी मातृभाषा' में हिंदी भाषा के प्रति कवि की निष्ठा तथा हिंदी की प्रतिष्ठा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता की कविता में झलक मिलती है—

हिंदी हमारी मातृभाषा, हिंदी हमारा धर्म है,
हिंदी हमारी संस्कृति, हिंदी हमारा कर्म है।
भारत की प्राचीन भाषा, हिंदी को प्रणाम है,
अन्य भाषा की तरह हिंदी का बड़ा नाम है॥

अपने ही देश में जो मातृभूमि है और कर्मक्षेत्र भी वहाँ प्रजातंत्र होते हुए भी यदि अधिकारों की समानता नहीं तो मन दुखी हो जाता है। फीजी में सब प्रकार की स्वतंत्रता और सुविधा होते हुए भी भारतीयों को भूमि प्राप्ति का अधिकार नहीं है, जो उनके मन को बार-बार कचोटता है कि वे यहाँ अभी भी प्रवासी और परदेसी ही हैं। कवि पं. कमला प्रसाद मिश्र अपनी भावनाएँ इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

फीजी देश हमारा सुंदर,
जीवन यहाँ मलीन नहीं है।
अगणित यहाँ शराब सुंदरी,
लेकिन यहाँ ज़मीन नहीं है॥

—कमला प्रसाद मिश्र : हमारा देश

फीजी की महिला रचनाकारों में सबसे अधिक चर्चित नाम श्रीमती अमरजीत कौर का है। प्रवास की पीड़ा, प्रवासी भारतीयों के दुख-दर्द को जहाँ उन्होंने एक ओर निकटता से देखा है, वहीं दूसरी ओर फीजी के जन-जीवन में रमी हुई हैं। देश में भारतीयों के संबंध में बढ़ती राजनीतिक अस्थिरता लेखिका के मन को चिंतित कर देती है। फीजी उनका कर्मक्षेत्र है। वह देश में सुख-शांति की कामना करती हैं और सच्चे मन से ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि हे ईश्वर फीजी को ऐसा वरदान दे कि यह रमणीक सुंदर देश विश्व का महान देश बने—

हे ईश्वर दया निधान,
फीजी होवे सदा महान।
यहाँ कभी तूफान न आएँ,
न ही दुख के बादल छाएँ।
हम सबको दो सुख का दान,
अमन चैन रहे सदा यहाँ।
हर काँटा बने फूल यहाँ।
ऊँची होवे इसकी शान,
रमणीक है यह सुंदर धाम।
ऊँचा होवे इसका नाम,
ऐसा दो इसे वरदान।

—अमरजीत कौर : फीजी होवे सदा महान

फीजी के सर्वाधिक प्रतिष्ठित कवि पं. कमला प्रसाद मिश्र विपुल साहित्य के सर्जक हैं और उनकी कविता के विषय भी अनंत हैं। उनका संस्कृत, अंग्रेज़ी और हिंदी, तीनों ही भाषाओं पर अच्छा अधिकार है और अपनी बात प्रभावशाली ढंग से कहने में समर्थ भी हैं। मिश्र जी 'जय फीजी' और 'जागृति' पत्रिका के संपादक भी रहे हैं। एक संपादक की क्या चिंताएँ और क्या कठिनाइयाँ हैं, इसका चित्र उन्होंने कितने स्वाभाविक रूप में खींचा है—

सुंदर रचना के प्रेमी कम, सब पढ़ते अश्लील,
बात-बात पर रिट निकाल देते हैं नए वकील,
पाठक मुश्किल से मिलते हैं शिक्षित और सुशील।
खून खराबी की खबरों से ही इनको आराम,
पृष्ठ उलट कर खोजा करते केवल अपना नाम,
संपादक की हँसी उड़ाना बड़ा सहज है काम।
पीनट बीन बेचने का तुम कर लेना व्यापार,
जूते की पॉलिश कर लेना या रहना बेकार,
किंतु न करना संपादक का काम कभी स्वीकार।

—कमला प्रसाद मिश्र : संपादक का काम

चित्रोपमता मिश्र जी के काव्य की विशेषता है कि उनके शब्दचित्र महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की याद दिलाते हैं। मिश्र जी

जहाँ एक ओर श्रमिक का कारुणिक चित्र खींचते हैं, वहीं दूसरी ओर अंत तक पहुँचते-पहुँचते कविता को एक दार्शनिक मोड़ दे देते हैं। कवि का बनाया शब्दचित्र देखिए—

थकित पाँव
विकल वदन
जीर्ण देह
शिथिल नयन
सम्मुख है
एक श्रमिक
सिर पर है
भार अधिक
मंद-मंद
चलता है
क्षुब्ध हृदय
जलता है
ढोता है
कठिन भार।

—कमला प्रसाद मिश्र : यही है दुनिया

चुटीला व्यंग्य कमला प्रसाद मिश्र की विशेषता है। सरल स्वभाव वाले, सीधे-सादे दिखने वाले मिश्र जी की बातों में एक खास चुटीलापन है। वे बड़ी बात बड़े सहज ढंग से कह जाते हैं। भाषा पर उनका अच्छा अधिकार है, जिससे वे व्यंग्य रचना सफलतापूर्वक कर पाते हैं। प्रजातंत्र की व्याख्या देखिए कवि किस प्रकार करता है—

मुझसे कहने लगा अचानक एक अनुभवी नेता।
प्रजातंत्र थोड़ देता है ज़्यादा है ले लेता।
किसी देश में कभी-कभी खतरा पैदा कर देता॥
प्रजातंत्र में झुंड बनाकर आपस में लड़ते हैं।
किसी व्यक्ति के भव्य गुणों पर ध्यान नहीं धरते हैं।
किसके साथ लोग कितने हैं, यही गिना करते हैं॥

—कमला प्रसाद मिश्र : प्रजातंत्र

नंगोना फीजी का राष्ट्रीय मादक पेय है और फीजी में कहीं भी आप जाएँ, अतिथि का नंगोना से स्वागत किया जाता है, इसलिए अनेक कवियों ने नंगोना को अपनी रचना का विषय बनाया है। ईश्वरी प्रसाद चौधरी की कविता 'नंगोना' बड़ी चर्चित है—

तरल तरंगित मादक पेय॥
सघन विपिन का कल्पमूल यह चिंता हरण अचूक अजेय।
मधुर सोमरस यह फीजी का शांति प्रदायक सुखकर पेय।
तरल तरंगित मादक पेय॥
यह प्रशांत का निज उत्पादित, जगता शीत तराई कूल।
दुग्ध फेन सम स्वाद तिक्त कटु, उष्ण शीत में सम अनुकूल।
फीजी की यह देन विश्व को शांत चिंतना इसका ध्येय।
तरल तरंगित मादक पेय॥

—ईश्वरी प्रसाद चौधरी : नंगोना

रामानारायण ने अधिक नहीं लिखा, पर वे अपनी 'हाँ मैं मंथरा हूँ', शीर्षक कविता के लिए फीजी के सारे हिंदी जगत में जाने जाते हैं। यह उनकी एक प्रौढ़ एवं छंद मुक्त काव्य रचना है। शुद्ध, प्रभावशाली, परिष्कृत भाषा में लिखी गई ऐसी रचनाएँ फीजी हिंदी साहित्य की निधि हैं। 'हाँ मैं मंथरा हूँ' एक लंबी कविता है, इसका अंतिम अंश उद्‌धृत किया जा रहा है, जो कवि की भाषा। सामर्थ्य का पाठकों को परिचय देगा—

कौन हूँ मैं?
घृणा के सागर में डुबोई
कलंकित, उपहसित
ताड़न की अधिकारी
नारी
मंथरा
या कि फिर
राम के रामत्व की निर्मात्री
अहिल्या की उद्धारक
केवट का अहोभाग्य
शबरी की जीवन-स्वप्न
जटायु की मुक्ति दात्री
मैं हूँ दासी रूप
सरस्वती स्वरूप
शक्ति की प्रतीक
वाणी अनूप
मंथरा
हाँ मैं मंथरा हूँ

—रामानारायण : हाँ मैं मंथरा हूँ

गद्य भाषा की कसौटी है। गद्य में साहित्य-सृजन भाषिक प्रौढ़ता का परिचायक होता है। यही कारण है कि हर सर्जक साहित्यकार प्रारंभ में कवि होता है और बाद में गद्य विधाओं की ओर बढ़ता है। फीजी भी उसका अपवाद नहीं है। फीजी में सृजनात्मक गद्य लेखन बहुत बाद में शुरू हुआ। बीसवीं शती के चौथे दशक में तारा प्रेस के

मालिक ज्ञानीदास ने गद्य की तीन छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं। ये पुस्तिकाएँ 'भारतीय उपनिवेश फीजी', 'गुप्त शक्तियाँ' तथा 'फीजी गल्पिका' थीं। इनमें फीजी गल्पिका 63 पृष्ठों की थी, जिसमें उनकी सात कहानियाँ संकलित थीं। संभवत: फीजी में सृजनात्मक गद्य लेखन में ये ही पहली रचनाएँ थीं, जिनका श्रेय ज्ञानीदास को जाता है।

सूवा के भरत वी. मोरिस ने 1974-75 के आसपास अपनी दो गद्यात्मक रचनाएँ प्रकाशित कीं, जिन्हें हम लघु उपन्यास या लंबी कहानी की संज्ञा दे सकते हैं। ये प्रेम और रोमांसपरक होने के कारण सामान्य जनवर्ग के मध्य लोकप्रिय थीं। उनकी गीतों भरी कहानियाँ फीजी रेडियो से लंबे समय तक प्रसारित होकर जनता का मनोरंजन करती रही हैं। श्रोताओं के प्रशंसा और प्रोत्साहन ने उन्हें 'हाय रे जिंदगी' और 'गली-गली सीता रोए' के लिए प्रेरणा दी; पर फीजी में सृजनात्मक लेखक को उपयुक्त प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन न मिलने के कारण निराश होकर वे लेखन से संन्यास ले ऑस्ट्रेलिया चले गए और फिर व्यापार में लग गए।

जोगिंद्र सिंह कँवल ने गिरमिट के अंतर्गत फीजी आए वृद्ध भारतीयों से संपर्क किया, उनकी कठिनाइयों और उनकी महत्वाकांक्षाओं को समझने का प्रयत्न किया तथा इन प्रवासी भारतीयों को अपनी रचना के केंद्र में रखते हुए कई औपन्यासिक कृतियाँ हिंदी जगत को दीं। सन् 1976 में कँवल का प्रथम उपन्यास सवेरा प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'धरती माता' (1976) तथा 'करवट' (1978) प्रकाशित हुए। ये तीनों ही कृतियाँ गिरमिट जीवन के साहित्यिक औपन्यासिक दस्तावेज़ हैं, जिनमें लेखक ने गिरमिटियों की यंत्रणा, उनके संघर्ष, आशा-निराशा को विविध मौखिक अनुभवों के सहारे कथा सूत्र में पिरोकर पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

सन् 1979 में भारतीयों को फीजी आए सौ वर्ष पूरे हो रहे थे। भारतीय संगठित होकर देश की राजनीति में भागीदारी चाहते थे। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन से भी वे परिचित और प्रभावित थे। भारतीयों की यही बदली हुई दृष्टि लेखक ने 'करवट' शीर्षक रखकर बतानी चाही है। 'धरती मेरी माता' उपन्यास में लेखक फीजी में भारतीयों के ज़मीन के अधिकार को लेकर उसे कहानी का रूप देता है। वस्तुत: जोगिंद्र सिंह कँवल के ये तीनों ही उपन्यास फीजी में बसे भारतीयों की विविध समस्याओं को आधार बनाकर लिखे गए महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

फीजी के साहित्यिक इतिहास का तीसरा कालखंड 1980 से प्रारंभ होता है। अब फीजी के बहुजातीय समाज में भारतीयों की स्थिति सम्मानजनक थी। संपन्न, सुशिक्षित तो थे ही, वे फीजी में प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत भी थे। देश को नए ढंग से सँवारने में, उसके चतुर्दिक विकास में वे लगे हुए थे और साथ ही सुसंगठित भी थे। अपने भारतीय जीवन-मूल्यों को सँजोए हुए वे स्वभाषा, स्वसंस्कृति की रक्षा और प्रतिष्ठा में लगे हुए थे।

संयोग ऐसा कि जब फीजी अपने नव निर्माण में व्यस्त था, अचानक फीजी के राजनीतिक जीवन में एक तूफान आया और कर्नल रंबूका ने फीजी की शासन सत्ता बलात् अपने हाथों में ले ली और फीजी में 1987 में सैनिक शासन लागू हो गया। इस सत्ता परिवर्तन के मूल में फीजी के मूल निवासियों-काईबीतियों के मन में भारतीयों की देश में बढ़ती सामाजिक तथा राजनीतिक वर्चस्विता के प्रति शंका थी कि भारतीय फीजी की शासन सत्ता अपने हाथों में लेना चाहते हैं। स्वाभाविक ही था कि देश की बदली हुई राजनीतिक स्थिति में देश की साहित्यिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं, 1987 में हुई राजनीतिक अशांति देश में बढ़ती ही गई और भारतीयों के विरुद्ध शासन का दमनचक्र तेज़ होता गया। यह अशांति का दौर लगभग 20 वर्षों तक चलता रहा। सन् 2000 में फिर राजनीतिक संकट देश पर आया और देश में संविधान बदलकर भारतीयों के अधिकार कम कर दिए गए। भारतीयों के मन में क्षोभ, असंतोष और ग्लानि ने जन्म लिया। 1987 से 2000 ई. के बीच की साहित्यिक रचनाओं में इस असंतोष की झलक दिखाई पड़ेगी। पर आतंक के साए में सृजनात्मकता कुंठित हो जाती है और शासकीय व सैनिक भय के कारण कवि कुछ कहने और लिखने से कतराते हैं, फिर जब देश के मूल निवासी न हों तो भावनाओं की अभिव्यक्ति और भी संभव नहीं होती।

1987 में कर्नल रंबूका के सत्ता हथियाने और राजनीतिक अस्थिरता का जो दौर देश में चला, उसको थमने में पर्याप्त समय लग गया और भारतीय के मन में शंका, अविश्वास तथा असुरक्षा ने घर कर लिया। जोगिंद्र सिंह की पुस्तक 'दर्द अपने-अपने में' संकलित कविताएँ स्थिति का पारदर्शी चित्र खींचती हैं। कवि कहता है—

कभी गिरमिट की आई गुलाबी
कभी बाढ़ों ने मार दिया
कभी रंबूका कू कर बैठा
कभी स्पेट ने वार किया
बार-बार कठिनाइयों में फँसे
पर किसी के आगे हाथ न फैलाए
ऊबड़ खाबड़ पगडंडियों को
बड़े गौरव से पार किया॥

— जोगिंद्र सिंह कँवल : हम भारतीयों को

भारतीयों के मन में बैठा हुआ आतंक का साया किस प्रकार सारे वातावरण को प्रभावित कर रहा है। कवि इसका कितना मार्मिक

चित्र खींचता है—

गाँव की रामायण मंडलियों में
भजन कोई गाता नहीं
आम के पेड़ पर बैठकर
पंछी चहचहाता नहीं
नदी किनारे जवाँ गबरू
कोई गज़ल गुनगुनाता नहीं
कुड़ियों का झुरमुट डाल से
झूला लटकाता नहीं

—जोगिंद्र सिंह कँवल : कितना अँधेरा है अभी

भारतीयों को ज़मीन का अधिकार चाहिए था। वह ज़मीन पर खेती कर अन्न उगाते थे, किंतु ज़मीन पर उनका अधिकार नहीं था। ज़मीन अपनी हो तो देश अपना लगता है। ज़मीन अपनी न हो तो व्यक्ति का देश से जुड़ाव नहीं हो पाता। देश के स्वतंत्र होते ही भारतीय इस अधिकार के लिए प्रयत्नशील रहे और इस अधिकार की माँग मूल निवासियों के मन में भावी आशंका पैदा करती रही। भारतीयों का एक ही नारा रहा—

हमें अब ज़मीन दो
हम इसमें हल चलाएँगे
गर खिसक गया वक्त हाथ से
तो हम सब पछताएँगे
हमें अब ज़मीन दो
हम उसमें हल चलाएँगे।

—जोगिंद्र सिंह कँवल : हमें ज़मीन दो

देश में धीरे-धीरे फिर शांति का वातावरण बना और भारतीयों के मन में जो आतंक, अविश्वास और शंका ने घर कर लिया था, उसको थोड़ी राहत मिली। इस कालखंड में यद्यपि अधिक श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि नहीं हो सकी, किंतु कुछ प्रमुख गद्य कृतियाँ सी समय-समय पर प्रकाशित हुईं और उन्होंने देश-विदेश में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की। 21वीं शती के पहले दशक में ही सुब्रमणी की कृति 'डउका पुरान' (2001) प्रकाशित हुई, ब्रज विलास लाल की उपन्यासिका 'मारित' (2004) का प्रकाशन हुआ, बाबू राम शर्मा के लेखों का पुस्तकाकार संकलन (2003) प्रकाशित हुआ।

सुब्रमणी, ब्रज विलास लाल, रेमंड पिल्लई—ये सभी गिरमिटियों के वंशज रहे हैं। इन सभी ने अपने माता-पिता के जो शर्तबंदी में भारत से सब कुछ छोड़ आए थे, दुख-दर्द को देखा है, उसके भागी रहे हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में जीवन की यथार्थता का जो परिचय दिखता है, वह अन्य भारतीयों की रचनाओं में सामान्यत: नहीं दिखता। संभवत: यही कारण है कि अपने पूर्वज़ों की भाषा, जो उनकी भाषा भी रही, उसे ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, क्योंकि इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। इसकी भाव व्यंजनाओं को वे अच्छी तरह समझते हैं और नित्य प्रयोग करते हैं। इन कृतियों की भाषा ही इनका सबसे बड़ा सौंदर्य है। यदि ये मानक हिंदी जो इन्होंने सीखी, और केवल औपचारिक अवसरों पर भारतीयों से बात करने के लिए जिसका व्यवहार करते हैं, में उपन्यास लिखते तो रचना का सारा सौंदर्य बिखर जाता। फीजी हिंदी में लिखने का सबसे बड़ा लाभ इन लेखकों को यह मिला कि इनमें व्याकरणिक अशुद्धियाँ नहीं दिखतीं, जो भाषा के सहज प्रवाह को बनाए रखती है और पठनीयता में बाधा उत्पन्न नहीं करतीं। साथ ही इन कृतियों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को और संप्रेषणीय बनाता है।

इस काल की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जाएगी कि अब देश के प्रतिष्ठित सुशिक्षित साहित्यकारों ने फीजी हिंदी के महत्व को समझा और उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना। फीजी हिंदी में भारतीय समाज की चिंताओं और जीवन को उकेरने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि इनकी कृतियों को

साहित्य का मूल्यांकन केवल साहित्यिक कलात्मकता के परिप्रेक्ष्य में ही सर्वदा नहीं होता, प्रवासी सृजनात्मक हिंदी लेखन का साहित्य के साथ ही एक समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी है, जिसमें भारतीय गिरमिटियों का जीवन संघर्ष प्रतिबिंबित होता है। वह एक सरल मन की सहल अभिव्यक्ति भी है और हर पाठक के अंतर्मन को छूने वाली है, इसीलिए बड़ी मार्मिक लगती है। कलात्मकता का सौंदर्य उनमें इसलिए नहीं है, क्योंकि वे जिस हिंदी में अपने भावों की अभिव्यक्ति का प्रयास कर रहे हैं, वह परिनिष्ठत हिंदी उनकी अपनी नहीं है, सायास सीखी हुई है, इसलिए उसमें भाषा की व्याकरणगत अशुद्धियाँ तो हैं, सीमित शब्द-संपदा के कारण अर्थ-छवियों का सौंदर्य भी नहीं है, किंतु जो रचनाएँ फीजी हिंदी में लिखी गई हैं, वे साहित्यिक विषय में भी श्रेष्ठ हैं।

फीजी में तो लोकप्रियता प्राप्त हुई ही, विश्व के सभी भारतीयों के मध्य प्रतिष्ठित रचना के रूप में स्वीकृति मिली। फीजी के सृजनात्मक हिंदी लेखन में लेखकों का सम्मान अपनी हिंदी के प्रति निरंतर बढ़ता जा रहा है और अधिक अच्छी रचनाएँ आ रही हैं। मानक हिंदी में लिखने वाले अच्छे लेखक निरंतर कम होते जा रहे हैं। प्रवासी लेखन की यह प्रकृति केवल फीजी में ही नहीं, सूरीनाम में दिख रही है, जहाँ प्रतिष्ठित लेखकों का रुझान सरनामी की ओर अधिक बढ़ रहा है। राजनीतिक अस्थिरता के युग में सृजनात्मक हिंदी लेखन निश्चय ही प्रभावित हुआ है और जो एक उत्साह 1986 तक फीजी के भारतीयों में सृजनात्मक लेखन के प्रति दिखता था, वह अब नहीं दिख रहा। मुझे लगता है कि प्रगति का नैसर्गिक स्वरूप भी यही है, जब व्यक्ति की जड़ जम जाती है, जब वह आरोपित माध्यमों में रुचि नहीं लेता तथा सृजनात्मक रचना अपनी मातृभाषा में ही करना चाहता है और यही स्थिति फीजी के सृजनात्मक लेखन में भी पनप रही है।

फीजी को सृजनात्मक हिंदी साहित्य में चाहे विषयगत विविधता बहुत अधिक न हो; भाषा की दृष्टि से उनमें व्याकरणिक अशुद्धियाँ भी दिखाई पड़ें, किंतु भावों की सीधी-सच्ची अभिव्यक्ति निश्चित ही इनमें मिलेगी। यह सत्य है कि फीजी के हिंदी साहित्य की तुलना भारत के हिंदी साहित्य से नहीं की जा सकती, किंतु प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य में फीजी के हिंदी साहित्य का अपना महत्व है और वे एक दूर देश में बसे हुए प्रवासी भारतीयों की अभिव्यक्तियाँ हैं, जो नए देश में उनके जीवन संघर्ष की प्रारंभिक काल से लेकर आज तक की विविध परिस्थितियों का सच्चा स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

विदेश में लिखे जा रहे सृजनात्मक हिंदी लेखन तथा भारत में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य में स्तर का अंतर निश्चित ही है, किंतु यह अंतर वहीं है, जो अंग्रेज़ी भाषी देशों में लिखे जा रहे अंग्रेज़ी साहित्य का है। अंग्रेज़ी कई देशों की मुख्य भाषा है, जबकि हिंदी केवल भारत देश की ही मुख्य भाषा है। भारत से बाहर लिखा जा रहा हिंदी साहित्य भी यदि परिमाण की बात छोड़ दी जाए, अनेक ऐसे लेखक हैं, जिसकी तुलना भारत के किसी भी श्रेष्ठ लेखक से की जा सकती है। फीजी के पं. कमला प्रसाद मिश्र, प्रो. सुब्रमणी, प्रो. रेमंड पिल्लई, श्री जोगिंद्र सिंह कँवल आदि अनेक ऐसे लेखक हैं, जो अपने देशों में तो श्रेष्ठ लेखक माने ही जाते हैं, भारत में भी उनकी प्रतिष्ठा है। भारत सरकार ने उन्हें विश्व हिंदी सम्मान से सम्मानित कर उन्हें अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी दिलाई है।

साहित्य का मूल्यांकन केवल साहित्यिक कलात्मकता के परिप्रेक्ष्य में ही सर्वदा नहीं होता, प्रवासी सृजनात्मक हिंदी लेखन का साहित्य के साथ ही एक समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य भी है, जिसमें भारतीय गिरमिटियों का जीवन संघर्ष प्रतिबिंबित होता है। वह एक सरल मन की सहल अभिव्यक्ति भी है और हर पाठक के अंतर्मन को छूने वाली है, इसीलिए बड़ी मार्मिक लगती है। कलात्मकता का सौंदर्य उनमें इसलिए नहीं है, क्योंकि वे जिस हिंदी में अपने भावों की अभिव्यक्ति का प्रयास कर रहे हैं, वह परिनिष्ठत हिंदी उनकी अपनी नहीं है, सायास सीखी हुई है, इसलिए उसमें भाषा की व्याकरणगत अशुद्धियाँ तो हैं, सीमित शब्द-संपदा के कारण अर्थ-छवियों का सौंदर्य भी नहीं है, किंतु जो रचनाएँ फीजी हिंदी में लिखी गई हैं, वे साहित्यिक विषय में भी श्रेष्ठ हैं। उत्कृष्ट साहित्य लेखन भाषा पर पूर्ण अधिकार की अपेक्षा रखता है, तभी अभिव्यक्ति की भंगिमाएँ संप्रेण्य चमत्कार उत्पन्न करती हैं। वस्तुत: साहित्यिक उत्कृष्टता देश में या विदेश में लिखे साहित्य से नियंत्रित नहीं होती। साहित्यिक उत्कृष्टता सहज मन की सरल अभिव्यक्ति में देखी जाती है, इसलिए भौगोलिक सीमाओं को पार कर वह सार्वजनीन बन जाती है। पर मानक हिंदी में लिखित श्रेष्ठ रचनाओं की भी फीजी में कमी नहीं है। पं. कमला प्रसाद मिश्र की रचनाओं की तुलना हिंदी के किसी भी श्रेष्ठ कवि से की जा सकती है।

फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हमें हिंदी के वैश्विक स्वरूप को ध्यान में रखना होगा। हिंदी आज केवल भारत की ही भाषा नहीं है, वह विदेश में बसे हुए दो करोड़ से अधिक भारतीयों की संपर्क भाषा भी है। उन की भारतीय अस्मिता की प्रतीक बन गई है। किंतु प्रवासी भारतीयों की हिंदी की अनेक विदेशी भाषिक शैलियाँ उसी प्रकार बन गई हैं, जैसे भारत में हिंदी की जगह प्रमुख ग्रामीण बोलियों के अतिरिक्त हिंदी की कितनी अंतर्प्रांतीय शैलियाँ बन गई हैं, जैसे बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी, मद्रासी हिंदी, दक्खिनी हिंदी आदि। इसी प्रकार प्रवासी भारतीयों ने हिंदी की विविध शैलियाँ अपने देशों में विकसित की हैं, जैसे फीजी हिंदी, सरनामी हिंदी, नैताली हिंदी आदि। इन सभी शैलियों में लिखित साहित्य हिंदी का अपना साहित्य है, जो हिंदी के विश्वव्यापी स्वरूप को प्रदर्शित करता है। फीजी में आज हिंदी के ऐसे अनेक साहित्यकार हैं, जिनकी रचनाएँ अपने देश में तो अति लोकप्रिय हैं ही, भारत में भी हिंदी पाठकों के बीच पढ़ी जाती हैं और प्रशंसित हैं। ऐसी सभी उत्कृष्ट रचनाएँ हिंदी साहित्य की निधि हैं।

73 वैशाली प्रीतमपुरा,
दिल्ली-110034
भारत
vimleshkanti@gmail.com
http://vimleshkanti.org

□

5

जापानी और हिंदी : अनुवाद का उद्देश्य

तोमोको किकुचि

मैंने जापान की दो पुस्तकें और एक फिल्म का हिंदी में अनुवाद किया, जो हिरोशिमा की त्रासदी पर आधारित हैं। जापानी साहित्य के क्षेत्र में मैंने दो मशहूर कवयित्रियों की कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया, जिनका मूल संदेश स्त्री की स्वाधीनता है। इस प्रकार मेरा अनुवाद कार्य हमेशा विश्व शांति एवं स्त्री से संबंधित है और उसकी प्रेरणा मुझे महादेवी वर्माजी से मिली। मैंने उनके बारे में एम.फिल. और पी-एच.डी. में अध्ययन किया और 2009 में पुस्तक 'महादेवी वर्मा की विश्वदृष्टि' (किताबघर, परमेश्वरी प्रकाशन) का भी प्रकाशन हुआ। उन्होंने स्त्रियों की स्वाधीनता के लिए बहुत सारी रचनाएँ लिखीं, साथ ही उसी संदेश को साकार करने के लिए समाज में व्यावहारिक प्रयास भी करती रहीं। मसलन, वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या और 'चाँद' पत्रिका की संपादिका रहीं, गाँव के बच्चों के लिए शिक्षा अभियान भी चलाती थीं। इसलिए मैं मानती हूँ कि अनूदित पुस्तक के संदेश को लोगों तक पहुँचाने के लिए साक्षात एवं व्यावहारिक प्रयास करना बहुत आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में मेरी अनूदित रचनाओं और व्यावहारिक प्रयासों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

तोक्यो, जापान के में दो साल हिंदी भाषा सीखने के बाद सन् 1992 में भारत आई।

शिक्षा : केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, महारानी कॉलेज राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर में बी.ए., जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में हिंदी में एम.ए. से पी-एच.डी. तक की सन् 2005 में पुरी की।

प्रकाशन : 'महादेवी वर्मा की विश्वदृष्टि' (आलोचना), 'हिरिशिमा का दर्द' (जापान के सचित्र-पुस्तक का हिंदी अनुवाद), 'कानेको मिसुजु की कविताएँ' (जापानी कवयित्री की जीवनी और कविताओं का हिंदी अनुवाद), 'नीरव संध्या का शहर, साकुरा का देश' (हिरोशिमा त्रासदी पर आधारित जापानी कोमिक का हिंदी अनुवाद), आदि।

अनुवाद : हिरोशिमा से संबंधित जापानी एनीमेशन फिल्म 'सारस पर चढ़ कर' का हिंदी अनुवाद कर उसका डब बनवाया।

सम्मान : 2012 में नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन, दक्षिण अफ्रीका में हिंदी सेवा के लिए सम्मानित। पिछले दो दशकों से भारत में हैं।

'हिरोशिमा का दर्द' सुप्रसिद्ध जापानी सचित्र पुस्तक का हिंदी अनुवाद है, जो 2011 में नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से प्रकाशित हुआ। इसकी मूल रचनाकार तोशि मारुकि जापान की विख्यात चित्रकार हैं। 1980 में प्रकाशित इस सचित्र पुस्तक के माध्यम से आज भी जापान में स्कूल के बच्चों को परमाणु बम संबंधी शिक्षा दी जाती है। इस पुस्तक में बताया गया है कि जब हिरोशिमा शहर में परमाणु बम गिरा, तब सात साल की लड़की को किस प्रकार उसका सामना करना पड़ा। उसकी माँ को कैसे नरक जैसे शहर में इधर-उधर भागना पड़ा, अपनी बेटी को बचाकर और अपने घायल पति को अपनी पीठ पर उठाते हुए। कहानी के अंत में लड़की की माँ कहती है, ''परमाणु बम कभी नहीं गिरता, अगर इनसान उसे नहीं गिराता।'' इसी संदेश को भारतीय पाठकों, विशेषकर बच्चों तक पहुँचाना मेरा मुख्य उद्देश्य है। इस पुस्तक की 'अपनी बात' में मारुकि कहती हैं, ''मेरा कोई बच्चा नहीं है, इसलिए पोता भी नहीं। फिर भी मैंने पोतों के लिए एक वसीयत के रूप में इस पुस्तक को लिखा है।'' उनका जन्म 1912 में हुआ और मेरी उम्र उनकी पोती की ही पड़ती है, इसीलिए मेरे लिए पुस्तक का अनुवाद उनकी वसीयत को आगे बढ़ाने की कोशिश है।

सन् 1993 में फ्रांस में रहने वाली जापानी महिला मिहो सिबो ने विश्व के बच्चों को परमाणु बम के समापन और विश्व शांत की शिक्षा देने के लिए जापानी एनीमेशन फिल्म 'सारस पर चढ़कर' बनाई। आज तक लगभग 65 देशों में इसका प्रदर्शन हुआ है। 2012 में जापान फाउंडेशन के सहयोग से मैंने इसका हिंदी डब बनवाया। इस एनीमेशन फिल्म में मुख्य पात्र तोमोको छठी कक्षा की लड़की है और हिरोशिमा शहर के परमाणु बम संग्रहालय में उसकी हमउम्र सदाको से रहस्यमय मुलाकात होती है। इस फिल्म में विभीषिका की

अभिव्यक्ति बहुत कम है, फिर भी बच्चों को यह सीधे बताती है कि किस प्रकार हिरोशिमा के लोगों को परमाणु बम के हादसे का सामना करना पड़ा था।

2012 के अगस्त को जापान फाउंडेशन, नई दिल्ली में 'हिरोशिमा की कहानी' नाम का एक आयोजन हुआ। उस अवसर पर सचित्र पुस्तक 'हिरोशिमा का दर्द' की रचनाकार तोशि मारुकि और उसके कलाकार पति इरि मारुकि द्वारा चित्रित मशहूर विशाल चित्र 'परमाणु बम का चित्र' की 10 अनुकृतियाँ जापान से आईं। उन अनुकृतियों की प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह में विख्यात कवयित्री अनामिका ने 'हिरोशिमा का दर्द' का कहानी पाठ किया। उनके संवेदनशील एवं प्रभावशाली पाठ में मूल रचनाकार तोशि मारुकि का संदेश भरा हुआ था और उससे श्रोताओं का मन द्रवित हो उठा। इस आयोजन में एनीमेशन फ़िल्म 'सारस पर चढ़कर' का भी प्रदर्शन हुआ और 853 भारतीय बच्चों ने उस फ़िल्म को देखा। उन सब बच्चों को 'परमाणु बम का चित्र' की प्रदर्शनी दिखाते हुए मैंने हिरोशिमा के बारे में विस्तार से बताया। आयोजन में आए दर्शकों से मैंने अक्सर यह सुना, "हम हिरोशिमा और परमाणु बम के बारे में पुस्तक से जानते थे, परंतु यह नहीं मालूम था कि वहाँ इतनी घोर विपत्ति आई थी और इसका असर लंबे समय तक लोगों को पीड़ित करता रहा", "इस एनीमेशन फ़िल्म का प्रदर्शन भारत के हर स्कूलों में होना चाहिए, ताकि बच्चों को शिक्षा मिल जाए" इत्यादि। इस आयोजन की बड़ी सफलता यह हुई कि स्कूलों के बहुत सारे बच्चों ने इसमें भाग लिया और उनको विश्व शांति के बारे में सोचने का अवसर मिला। विश्व शांति की स्थापना आज के बच्चों पर पूर्ण रूप से निर्भर है, इसलिए युद्ध और परमाणु बम के यथार्थ से उन्हें परिचित कराने की आवश्यकता है। उस साल भारत और जापान के राष्ट्रीय संबंध की 60वीं वर्षगाँठ मनाई जा रही थी। विश्व शांति की स्थापना के लिए दोनों देशों की मित्रता को और घनिष्ठ बनाने में 'हिरोशिमा की कहानी' के आयोजन का बड़ा योगदान हुआ।

मैंने 'हिरोशिमा का दर्द' का अनुवाद छोटे बच्चों के लिए किया। उसके बाद मैं सोचने लगी कि उसी संदेश को भारत के युवा पाठकों तक कैसे पहुँचाया जाए। अक्सर युवा पीढ़ी युद्ध और विश्व शांति के विषय से विमुख रहती है। संयोग से हिरोशिमा की त्रासदी पर आधारित जापानी कॉमिक 'नीरव संध्या का शहर', 'साकुरा का देश' से मेरी मुलाकात हुई। 2004 में जापान में प्रकाशित इस कॉमिक को कई पुरस्कार मिले हैं। मैं इस पुस्तक से सहसा आकर्षित हुआ और लगा कि कॉमिक्स का रूप भारतीय युवा पाठकों को भी ज़रूर आकर्षित करेगा। मैंने इसका जापानी से हिंदी में सीधा अनुवाद किया, जो कॉमिक्स के संदर्भ में पहली कोशिश थी। वैसे ही भारत में जापानी कॉमिक्स का हिंदी अनुवाद बहुत कम हुआ है। यहाँ कॉमिक्स को छोटे बच्चों के लिए माना जाता है, परंतु आजकल भारतीय युवाओं के बीच जापानी कॉमिक्स की लोकप्रियता बढ़ रही है। असल में मानव जीवन से संबंधित हर विषयों को जापानी कॉमिक्स में उठाया जाता है और बड़े पाठकों को अपेक्षित कर कहानी लिखी जाती है। 'नीरव संध्या का शहर', 'साकुरा का देश' दो कहानियों का संग्रह है। 'नीरव संध्या का शहर' में ऐसी महिला की कहानी है, जिसके साथ परमाणु बम की त्रासदी हुई और 10 साल बाद परमाणु विकरण के कारण वह मर जाती है। 'साकुरा का देश' वर्तमान में उन संतानों की कहानी है, जिनके माता-पिता के साथ परमाणु बम की दुर्घटना हुई। इन पीढ़ियों को हमेशा डरते रहना पड़ता है, क्योंकि उन लोगों के शरीर में जन्मजात रूप में विकिरण का असर है।

आज के वैज्ञानिक युग में भी यह किसी को भी पता नहीं है कि

जापान फाउंडेशन की सहयोग योजना के तहत वाणी प्रकाशन से प्रकाशित इस पुस्तक का लोकार्पण इस साल के 6 अगस्त को जापान फाउंडेशन, नई दिल्ली में हुआ, जो आज से 68 साल पहले इसी दिन हिरोशिमा में परमाणु बम गिरा था। इस अवसर पर कॉमिक के 30 मूल चित्रों की प्रदर्शनी जापान फाउंडेशन में हुई। लगभग 900 लोग प्रदर्शनी में आए, उनमें से अधिकांश दर्शक स्कूल के विद्यार्थी थे। गवर्मेंट स्कूलों के दसवीं एवं ग्यारहवीं कक्षा के 450 छात्र-छात्राएँ और कुछ प्राइवेट स्कूलों से भी विद्यार्थी आए। मैंने उन लोगों को प्रदर्शनी दिखाते हुए अनूदित पुस्तक और परमाणु बम के बारे में बात की। विद्यार्थियों ने मुझसे बहुत सारे प्रश्न पूछे—मसलन, अब हिरोशिमा कैसा है? हिरोशिमा में अभी भी रेडिएशन का असर है और वह कब तक चलता है? रेडिएशन के कारण कैसी बीमारी होती है? आज भी हिरोशिमा और नागासाकी में मरीज़ हैं? काली बारिश क्यों हुई थी? परमाणु बम क्यों गिरा और किसने गिराया? हम क्यों युद्ध करते हैं इत्यादि। उन लोगों की जिज्ञासा प्रशंसनीय है।

उन लोगों को कब और कैसी बीमारी झेलनी पड़ेगी। इतना ही नहीं, विवाह के समय भेदभाव का भी सामना करना पड़ता है। इन तीन पीढ़ियों की कहानी में सब पात्र सामान्य जीवन जीने के लिए संघर्ष करते हैं। इसका मूल संदेश है कि परमाणु विकिरण का असर पीढ़ी-दर-पीढ़ी लगातार चलता रहता है। जब तक परमाणु बम रहेगा, तब तक विश्व के प्रत्येक पाठक के साथ यह कहानी साकार होने की संभावना है, इसीलिए यह सुदूर जापान की ही कहानी नहीं हो सकती। इस पुस्तक की भूमिका में मूल रचनाकार कोनो फुमियो कहती हैं, ''जिस विश्व में जापान और हिरोशिमा स्थित हैं, उसी विश्व के प्रेम करने वाले सभी पाठकों के लिए मैंने यह कहानी लिखी है।'' विश्व को, मित्रों को और अपने आप को प्यार करने वालों के लिए यह कहानी लिखी गई है और यह पुस्तक कई भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है। आज हिंदी भाषा बोलनेवाले लगभग 4 अरब लोग हैं और विश्व में उसे तीसरा स्थान प्राप्त है। भारत में हिंदी भाषा का वक्त अंग्रेज़ी वक्त से अधिक है और हिंदी न केवल उच्च वर्ग की भाषा है, बल्कि मध्य और निम्न वर्ग के लोगों की भी है। विश्व शांति के संदेश को अंग्रेज़ी बोलने वाले उच्च वर्ग के अतिरिक्त विभिन्न वर्ग के लोगों तक पहुँचाने के लिए इस पुस्तक के हिंदी अनुवाद का बड़ा योगदान होगा। इसको भारत और जापान के सांस्कृतिक संबंध के इतिहास में विशेष रूप से याद किया जाएगा और जापान-प्रेमी भारतीय पाठक इस पुस्तक को अवश्य पसंद करेंगे।

जापान फाउंडेशन की सहयोग योजना के तहत वाणी प्रकाशन से प्रकाशित इस पुस्तक का लोकार्पण इस साल के 6 अगस्त को जापान फाउंडेशन, नई दिल्ली में हुआ, जो आज से 68 साल पहले इसी दिन हिरोशिमा में परमाणु बम गिरा था। इस अवसर पर कॉमिक के 30 मूल चित्रों की प्रदर्शनी जापान फाउंडेशन में हुई। लगभग 900 लोग प्रदर्शनी में आए, उनमें से अधिकांश दर्शक स्कूल के विद्यार्थी थे। गवर्मेंट स्कूलों के दसवीं एवं ग्यारहवीं कक्षा के 450 छात्र-छात्राएँ और कुछ प्राइवेट स्कूलों से भी विद्यार्थी आए। मैंने उन लोगों को प्रदर्शनी दिखाते हुए अनूदित पुस्तक और परमाणु बम के बारे में बात की। विद्यार्थियों ने मुझसे बहुत सारे प्रश्न पूछे—मसलन, अब हिरोशिमा कैसा है? हिरोशिमा में अभी भी रेडिएशन का असर है और वह कब तक चलता है? रेडिएशन के कारण कैसी बीमारी होती है? आज भी हिरोशिमा और नागासाकी में मरीज़ हैं? काली बारिश क्यों हुई थी? परमाणु बम क्यों गिरा और किसने गिराया? हम क्यों युद्ध करते हैं इत्यादि। उन लोगों की जिज्ञासा प्रशंसनीय है।

8 अगस्त को नई दिल्ली के सलवान स्कूल में भी इस पुस्तक का परिचय दिया गया, तब वहाँ विश्व शांति के विषय पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हो रहा था और दस स्कूलों के 120 विद्यार्थियों ने उसमें भाग लिया। यह मेरे लिए गर्व की बात थी कि जागरूक छात्र-छात्राओं को इस पुस्तक का परिचय दे सकी। 11 अगस्त को जापान फाउंडेशन में हिरोशिमा और नई दिल्ली के 50 युवकों को भी इस पुस्तक का परिचय दिया गया। इस कार्यक्रम के तहत युवकों ने औपचारिक और अनौपचारिक रूप में अपने विचार और भावना का आदान-प्रदान किया। इस प्रकार इस पुस्तक ने दो देशों के नवयुवकों को जोड़ने वाली कड़ी की भूमिका सफलतापूर्वक निभाई।

20वीं शताब्दी की शुरूआत में जापान की स्त्रियों के लिए सामाजिक बंधन अधिक था। प्रेम, स्वाधीनता आदि विषयों की अभिव्यक्ति उनके लिए निषिद्ध थी। ऐसे समय में जापान की सुप्रसिद्ध रोमांटिक एवं क्रांतिकारी कवयित्री आकिको योसानो अपनी कविताओं में खुलकर प्रेमानुभूति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने लगीं। 1901 में प्रकाशित कविता-संकलन 'मिदोरेगामि' यानी 'बिखरे हुए बाल' में उन्होंने मीपीधरन्न की कामानुभूति का खुलकर चित्रण किया और एक मीपीधरन्न के रूप में अपने हृदय की चीख की सीधी अभिव्यक्ति की। परंपरावादी साहित्यकारों ने उनकी कविता की घोर निंदा की, परंतु युवा पाठकों से उनकी कविता को असीम प्रशंसा मिली। वे न केवल कविता लिखती थीं, बल्कि उन्होंने स्त्री की समस्याओं को लेकर बहुत सारे निबंध भी लिखे। कृति की बहुलता होने के बावजूद उनकी सभी रचनाओं में उच्च कोटि का साहित्यिक गुण पाया जाता है। आकिको की इस प्रवृत्ति को देखकर मुझे सहसा महादेवी वर्मा की याद आती है। उनका भी आश्चर्यजनक व्यक्तित्व था कि सामाजिक कार्यों में अति व्यस्त रहने के बावजूद उन्होंने अनेक लेखों और कविताओं की रचना की। मैंने आकिको और महादेवी दोनों की रचनाओं का अनुवाद किया, तब दो कवयित्रियों की साहित्यिक चेतना के मूल में यह समानता देखी कि दोनों में स्त्री के प्रति गहरी करुणा है और स्त्रियों में जागरूकता लाने का सुदृढ़ संकल्प एवं कर्तव्य-बोध है।

2012 के फरवरी में जापान फाउंडेशन, नई दिल्ली एवं इंद्रप्रस्थ कॉलेज में आकिको की जीवनी पर व्याख्यान और कविता पाठ का आयोजन हुआ। उसमें न केवल जापान के अत्यंत मशहूर साहित्य का हिंदी में परिचय दिया गया, बल्कि जापान और भारत दोनों देशों के स्त्री संबंधी विषयों को भी सामने लाया गया। 20वीं शताब्दी की शुरुआत में दो देशों की स्त्रियों की स्थिति में समानता पाई जाती है, उससे परिचित होने के बाद वर्तमान में दोनों के अंतर की ओर हमारी दृष्टि सहसा केंद्रित हो जाती है। इस संदर्भ में आकिको योसानो के संदेश को इंद्रप्रस्थ कॉलेज की छात्राओं जैसी नई पीढ़ी तक पहुँचाना एक सफल प्रयास कह सकते हैं। मैं मानती हूँ कि किसी देश को संपूर्ण रूप से समझने के लिए सर्वोत्तम विधा उस देश का साहित्य

है। विभिन्न जापानी साहित्य के माध्यम से जापान की संस्कृति, समाज आदि का परिचय भारतीय पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास आगे भी मैं करती रहूँगी, ताकि आईने की तरह भारतीय समाज की छवि भी हम जापानियों के सामने स्पष्ट हो जाए।

कानेको मिसुजु 20वीं शताब्दी के जापानी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध गीतकार हैं, जो 'बाल-गीत की कवयित्री का नया और महान सितारा' के नाम से जानी जाती है। यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में उनको असीम सफलता मिली, पर उनका व्यक्तिगत जीवन बहुत दयनीय रहा, मात्र 26 साल की उम्र में उनकी मृत्यु हुई। मिसुजु का रचना-काल केवल पाँच साल (1923-28) के होने के बावजूद उन्होंने 500 से अधिक गीतों की रचना की और ये गीत जापानियों के बीच अत्यंत लोकप्रिय बने। मैंने मिसुजु के 27 प्रतिनिधि गीतों का जापानी में अनुवाद किया और उनके जीवनी सहित 'कानेको मिसुजु की कविताएँ' शीर्षक से 'तनाव' साहित्यिक पत्रिका के विशेष अंक 123 (जुलाई-सितंबर 2012) में प्रकाशित हुआ। मिसुजु के गीतों को पढ़ने पर हम हैरान हो जाते हैं कि उनके गीतों में कितनी शांति, आनंद, कौतूहल एवं वात्सल्य है, जबकि उनका सर्वथा विपरीत किस्म का जीवन था। मिसुजु के कोमल एवं समृद्ध हृदय और असीम रचनाशीलता की संभावना का हरण उनके पति द्वारा जिस प्रकार किया गया, उसके प्रति घोर आक्रोश उत्पन्न हो जाता है। असल में वह अमूल्य साहित्यिक संपत्ति के साथ हुई क्रूर हत्या थी। मैंने कई भारतीय पाठकों से यह सुना कि मिसुजु के स्त्री-जीवन की कहानी सुनकर उनका मन भर आया। यह अहसास होता है कि देश और संस्कृति में अंतर होने के बावजूद इनसान की संवेदना में समानता सहज ही पाई जाती है।

इस प्रकार मेरा संपूर्ण अनुवाद-कार्य विश्व शांति एवं स्त्री से संबंधित है। मैं विभिन्न प्रकार का प्रयास करती हूँ, ताकि साहित्य के माध्यम से भारत और जापान में सांस्कृतिक आदान-प्रदान को सक्रिय बनाया जाए। अनुवाद की प्रक्रिया में भी अनजाने में दो देशों की संस्कृति का काफ़ी आदान-प्रदान हो जाता है, क्योंकि अनुवादक को दो भाषाओं से संबंधित संस्कृति और इतिहास का पूरा ध्यान रखना होता है। पाठकों को अपरिचित संस्कृति से परिचित कराने के लिए अनुवादक को दो संस्कृतियों को जोड़ने वाले पुल की भूमिका निभानी होती है। अनुवादित रचना और उसी के साथ हुए व्यावहारिक प्रयास के जरिए विश्व शांति के संदेश को दो देशों के लोगों तक पहुँचाना मेरा उद्‌देश्य है।

एक माँ के रूप में मैं अपने बच्चों का सुखी जीवन चाहती हूँ, ठीक वैसे ही, जैसे सब माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य में सुख-शांति चाहते हैं, समाज में युद्ध नहीं चाहते। इसलिए मैं मानती हूँ कि विश्व शांति एक व्यक्तिगत कामना है और उसी की स्थापना के लिए सांस्कृतिक आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस प्रक्रिया में विभिन्न देशों एवं संस्कृति से जुड़े हुए लोगों को नज़दीक लाया जाता है। हम सब अपने-अपने तरीकों से विश्व शांति के लिए कोशिश कर सकते हैं। मेरा तरीका अनुवाद और लेखन कार्य है और उसी के द्वारा भारत और जापान की मित्रता को बढ़ाने का प्रयास बराबर करती रहूँगी।

ए-104, द रेसीडेंसी, आरदी सिटी
सेक्टर 52, गुड़गाँव,
हरियाणा-122003,
भारत
indtmc@yahoo.co.jp

□

हमारी नागरी लिपि दुनिया की सबसे वैज्ञानिक लिपि है।

—पंडित राहुल सांकृत्यायन

6

फ्रांस नगरी (पांडिचेरी) में हिंदी

डॉ. अनीता गांगुली

जन्म : कोलकाता (1954)।

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत, हिंदी), भाषा विज्ञान में डिप्लोमा, पी-एच.डी. (हिंदी एवं बँगला क्रियाएँ) आगरा विश्वविद्यालय।

कृतित्व : दस वर्षों तक हिंदी शिक्षण सामग्री का निर्माण। कई प्रांतों के पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के साथ उराँव क्षेत्र में जाकर आदिवासी कुडुख बोली पर कार्य किया। जहाँ तीन वर्ष तक (1994-97) हेलसिंकी विश्वविद्यालय के छात्रों को बँगला, हिंदी एवं कुडुख भाषाओं का अध्यापन किया तथा भारतीय संस्कृति से परिचय करवाया।

प्रकाशित पुस्तकें : हिंदी एवं बंग्रला की सहायक क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी फिनिश शब्दकोश, सरल हिंदी व्याकरण (सह लेखक), फिनलैंड जैसा मैंने देखा, बरसात की एक शाम, कहावतों की संस्कृति (तुलनात्मक अध्ययन)।

भारत की संस्कृति, प्रकृति एवं उदार हृदय ने सदैव विदेशियों को लुभाया है, जिसके कारण प्राचीनकाल से ही शक, हूण, डच, पठान, मुगल, पुर्तगाली एवं ब्रिटिश लोगों ने उदार चेता भारत की ओर कदम बढ़ाया। शायद बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि अपनी भाषा और देश पर गर्व करने वाले फ्रांसीसी भी व्यापार के सिलसिले में भारत आए थे तथा समुद्र तट पर सुंदर शांत पांडिचेरी में डेरा डाला था, उन्होंने यहाँ अपना उपनिवेश बनाया था। जब पूरे भारत में अंग्रेज़ राज्य करते थे तब पांडिचेरी में फ्रांस का साम्राज्य था।

सन् 2006 से इसे पुदुच्चेरी कहते हैं, जिसका अर्थ है 'सुंदर गाँव'। इसके चार जिले हैं। यह बात बड़ी अजीब सी लगती है कि इसके चारों जिले एक साथ नहीं हैं, बल्कि अलग-अलग प्रांतों में बिखरे हुए हैं। कारैकल, पुदुचेरी माहे और यामन। कारैकल और पुदुचेरी तमिलनाडु में आता है। माहे केरल में एवं यानम आंध्र प्रदेश में। इसकी राजधानी पुदुच्चेरी ही है। यह सबसे बड़ा जिला तमिलनाडु से जुड़ा हुआ है तथा वहाँ से 160 कि.मी. की दूरी पर है। स्वतंत्रता से पहले फ्रांस सरकार यहाँ राज करती थी। भारत 15 अगस्त, 1947 को आजाद हुआ, मगर पांडिचेरी को फ्रांस सरकार से 16 अगस्त, 1954 के दिन आज़ादी मिली, अर्थात 1954 तक यह फ्रेंच भारत का हिस्सा था। फ्रांसीसियों ने यहाँ लगभग 300 वर्षों तक राज्य किया। आज़ादी के बाद पांडिचेरी एक केंद्र भासित प्रदेश (Union Territory) के रूप में भारत से जुड़ गया।

हिंदी शिक्षकों के नवीकरण के संबंध में 25 फरवरी, 2013 को पाँच दिनों के लिए पांडिचेरी आना हुआ। वैसे मैं पहले भी पांडिचेरी आई थी, पर उसे 20 वर्ष हो गए। पहले और अब में बहुत फर्क आ गया है। यहाँ मैं हिंदी से संबंधित थोड़ी-बहुत चर्चा करूँगी—

स्कूलों में हिंदी

जब पांडिचेरी फ्रांसीसी सरकार के अधीन था, उन दिनों हिंदी पढ़ाने की कोई खास व्यवस्था स्कूलों में नहीं थी। आज़ादी के बाद हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी, वह भी अधिकतर प्राइवेट स्कूलों में। पांडिचेरी में अलग से शैक्षिक बोर्ड नहीं है। तमिलनाडु बोर्ड के अनुसार चलना पड़ता है। उसमें पहली से आठवीं तक तमिल अनिवार्य है। पर इस वर्ष 2013 से दसवीं तक अनिर्वाय हो गई है। अंग्रेज़ी पढ़नी पड़ती है। हिंदी अनिवार्य विषय के रूप में नहीं है। तृतीय भाषा के रूप में फ्रेंच, मलयालम, तेलुगु है। चूँकि यह संघ राज्य है, अत: हिंदी को भी छात्र चाहें तो वैकल्पिक विषय के रूप में ले सकने की अनुमति बोर्ड ने दी है, पर कक्षा में छात्रों की संख्या कम होती है। इसका कारण है फ्रेंच। यहाँ पर 35 प्रतिशत लोगों की फ्रेंच राष्ट्रीयता है, इसलिए वे फ्रेंच पढ़ते हैं, दूसरे उसमें अंक भी ज़्यादा मिलते हैं। यह भी एक बड़ी चुनौती हिंदी अध्यापकों के सामने है। तीसरी समर्पण संधि के अनुसार फ्रेंच यानी फ्रांसीसी यहाँ की वैधानिक आधिकारिक भाषा है। फ्रांस सरकार ने इस शर्त पर भारत छोड़ा था कि यहाँ पर फ्रेंच भाषा की पढ़ाई बराबर जारी रखी जाएगी। दो-चार सरकारी स्कूलों को छोड़कर सरकारी स्कूलों में हिंदी नहीं है। छात्रों को हिंदी सीखने में कठिनाई होती है, क्योंकि (1) बच्चों के माता-पिता हिंदी बिलकुल नहीं जानते। व्याकरण

सीखने में और भी कठिनाइयाँ आती हैं। अधिकतर छात्र उसे कंठस्थ कर लेते हैं। परीक्षा के बाद भूल जाते हैं। (2) सरकारी स्कूलों में हिंदी अध्यापकों का अभाव है। (3) हिंदी का वातावरण नहीं है, कक्षा के अलावा हिंदी बोलने का अवसर नहीं मिलता।

अधिकतर माता-पिता बच्चों के हिंदी सीखने के पक्ष में हैं। वे यह भी जानते हैं कि यह भविष्य के लिए लाभकारी है। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि हिंदी भाषा बहुत सरल है तथा आसानी से सीखी जा सकती है। पांडिचेरी की सी स्थिति कारैकल में भी है। क्योंकि वह भी तमिलनाडु के अंतर्गत आता है। यानम जिला आंध्र प्रदेश में है, अत: आंध्र प्रदेश की शिक्षा नीति आरंभ से पांडिचेरी सरकार अपना रही है। यहाँ आंध्र का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। हिंदी दूसरी भाषा के रूप में छठी कक्षा तक पढ़ाई जाती है। इस प्रकार माहे केरल के घेरे में है, अत: वहाँ केरल सरकार की शिक्षा नीति अपनाई जा रही है।

पंडिचेरी में दो केंद्रीय विद्यालय हैं—एक जीपमेर में तथा दूसरा विश्वविद्यालय कैंपस में। विश्वविद्यालय के पास ही एक नवोदय विद्यालय भी है। कारैकल, माहे और यानम में भी एक-एक केंद्रीय विद्यालय है। कारैकल में केंद्र सरकार का एक माध्यमिक विद्यालय भी है। केंद्र सरकार के इन विद्यालयों में हिंदी अनिवार्य विषय के रूप में है।

स्कूलों की संख्या यहाँ अच्छी खासी है। राज्य सरकार के 431 स्कूल हैं। प्राइवेट स्कूल दोनों प्रकार के हैं—सरकार से सहायता प्राप्त करने या सहायता न प्राप्त करने वाले। कुल मिलाकर उनकी संख्या 712 हैं, इन विद्यालय पाठ्यक्रमों में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित 'नवीन हिंदी रीडर' पुस्तक लागू है।

अभी 25.02.2013 से 01.03.2013 तक केंद्रीय हिंदी संस्थान ने पांडिचेरी के शिक्षा निदेशालय के अंतर्गत राज्य प्रशिक्षण केंद्र (S.T.C.) में हिंदी अध्यापकों की एक कार्यशाला आयोजित की थी, जिसमें 30 लोगों ने भाग लिया था। उनमें से चार ही सरकारी स्कूलों से थे, बाकी प्राइवेट स्कूलों के हिंदी अध्यापक थे। पर यह बात महत्व की है कि प्राइवेट स्कूल भी शिक्षा निदेशालय की देख-रेख में हैं। इससे पहले भी यह संस्थान 1984, 1991, 1993, 1998 में पांडिचेरी के हिंदी अध्यापकों के लिए पुनश्चर्या कार्यक्रम आयोजित कर चुका है।

महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय

पांडिचेरी की शैक्षिक व्यवस्था बहुत अच्छी है। यहाँ सात मेडिकल कॉलेज ही नहीं, बल्कि सात इंजीनियरिंग कॉलेज भी हैं। तीन डेंटल कॉलेज हैं। इसके अलावा कला एवं विज्ञान के अन्य कॉलेज भी हैं, जिनमें हिंदी विषय लेकर छात्र पढ़ सकते हैं। 1985 में बना केंद्रीय विश्वविद्यालय शहर से 12 कि.मी. की दूरी पर कालापेट में है। यहाँ के भाषा विभाग में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, संस्कृत एवं हिंदी पढ़ाई जाती है। हिंदी विभाग में चार प्राध्यापक हैं। वे बहुत सक्रिय एवं जागरूक हैं, जिनसे मेरा परिचय भी है। उसमें अनेकों छात्र एम.ए., एम.फिल. एवं पी-एच.डी. कर रहे हैं। इसके अलावा यहाँ पर प्रायोगिक हिंदी (Functional Hindi) भी पढ़ाई जाती है। 2013 में एम.ए. और पी-एच.डी. करने वाले छात्रों की संख्या लगभग 22 है; इस वर्ष इंटीग्रेटेड पी-एच.डी. शुरू की गई है, जिसमें छात्रों को शोध-छात्रवृत्ति देने का प्रावधान भी है। अंडमान एवं निकोबार के कॉलेज पांडिचेरी विश्वविद्यालय से जुड़े हुए हैं।

विश्वविद्यालय का पुस्तकालय काफ़ी समृद्ध है। वैसे भी यहाँ हर मोहल्ले में पुस्तकालय है, पर समुद्र किनारे गणपति मंदिर के पास रोमन रोलेंड पुस्तकालय में सभी भाषाओं की पुस्तकें उपलब्ध हैं, परंतु हिंदी की नवीनतम पुस्तकें भी आपको वहाँ पर मिल जाएँगी।

प्रचार संस्थाएँ एवं पत्र-पत्रिकाएँ

यहाँ पर दक्षिण की सबसे पुरानी सभा दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेनई का केंद्र बड़ी मुस्तैदी से अपना कार्य कर रहा है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्या में छात्र इनकी परीक्षाओं में बैठकर उत्तीर्ण होते हैं। इनकी पत्रिका 'हिंदी प्रचार सभा' तथा 'हिंदी पत्रिका' यहाँ प्राप्त होती हैं। बहुत से लोग सभा से हिंदी सीखते हैं। इसके साथ ही एक-दो निजी प्रचार संस्थाएँ भी राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रचार कर छात्रों में हिंदी सीखने के प्रति रुचि उत्पन्न कर रही हैं।

यहाँ पर हिंदी समाचार-पत्र या दूसरे प्रकार की पत्रिका मुझे नहीं दिखी। हिंदी का कोई समाचार-पत्र वहाँ प्रकाशित नहीं होता। हाँ, यह बात अवश्य है कि मैंने टी.वी. के कई चैनलों, जैसे—आस्था, सोनी, सोनी मैक्स, जी टी.वी., लाइफ ओके में हिंदी के कार्यक्रम तथा न्यूज चैनल पर समाचार देखे हैं। सिनेमाघरों में भी हिंदी फिल्में चलती हैं, पर हिंदी के सी.डी. एवं डी.वी.डी. अपनी गति से अपना कार्य करते ही रहते हैं।

मैं कुछ अनुवादकों से मिली हूँ, जो अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करते हैं। तमिल में संक्षिप्त हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले जे.एस. कृष्णमूर्ति का कार्य उल्लेखनीय है। यहाँ मैं यह भी उल्लेख करना चाहूँगी कि पांडिचेरी का फ्रेंच इंस्टीट्यूट (Institute Français De Pondichery) हिंदी के न केवल संस्कृत और तमिल भाषा और

साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों को फ्रेंच भाषा में अनुवादित करवाती है, बल्कि उसका व्यय वहन करती है तथा शोध को प्रोत्साहन भी देती है। इसका एक विशाल पुस्तकालय भी है। इस संस्थान में भोजपत्र पर लिखित बहुत पुरानी-पुरानी 8600 महत्वपूर्ण पांडुलिपियाँ हैं। भारत सरकार का 'नेशनल मिशन फॉर मैनुस्क्रिप्ट' तथा 'मैनुस्क्रिप्त रिसोर्स सेंटर' हमारी पुरानी धरोहर को सँभालकर रखती है। इन पांडुलिपियों को लेमन ग्रास तेल से सुरक्षित रखा जाता है। वहाँ के डॉ. मिश्रा ने बताया एवं दिखाया भी। उसी सुंदर इंस्टीट्यूट (जो रास्ते से लेकर समुद्र किनारे के मुख्य मार्ग तक जाती है) के बगल में फ्रांस कांसोलेट की पीली इमारत शान से खड़ी है एवं फ्रांसीसी झलक प्रस्तुत करने में पूरी तरह समर्थ है।

यहाँ पर बहुत से सरकारी कार्यालय हैं, जहाँ के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के लिए हिंदी का सेवाकालीन प्रशिक्षण राजभाषा विभाग करता आ रहा है। कई बैंक हैं, जो एक वाक्य, तीन शब्द हिंदी में रोज़ लिखते हैं। बैंकों के नाम अंग्रेज़ी के साथ हिंदी में भी मिल जाते हैं। यहाँ पर दुकानों के उपर नामपट्टी अंग्रेज़ी में है। अवश्य ही राष्ट्रीय राजमार्ग पर हिंदी बोर्ड दिखाई पड़ जाता है।

बोलचाल की हिंदी

आम जनता हिंदी चाहती है। अपने बच्चों को हिंदी सिखाना चाहती है। भले ही निजी ट्यूशन द्वारा भी। एक अधिकारी ने मुझसे कहा, ''कार्यालयी कार्य के सिलसिले में जब मैं दिल्ली जाता हूँ तो हिंदी न जानने के करण मैं अपना आत्मविश्वास खो बैठता हूँ।'' लोगों की यही सोच एक दिन हिंदी को आगे लाएगी। यहाँ की जनसंख्या आठ लाख से ज़्यादा है तथा हिंदी बोलने वालों की संख्या तीन लाख है। ज़्यादातर हिंदी प्रदेशों से आने वाले लोग या जो अंग्रेज़ी नहीं जानते, वे ही हिंदी बोलते हैं।

पांडिचेरी श्री अरविंद एवं उनके आश्रम के लिए पहचाना जाता है, जिसके कारण यह पर्यटन स्थल के रूप में विकसित होता जा रहा है। आश्रम में ही पुस्तक बिक्री केंद्र है, जहाँ श्रीअरविंद एवं श्रीमाँ की लिखी एवं उनसे संबंधित पुस्तकें आप खरीद सकते हैं। पुस्तक मूलतः अंग्रेज़ी में होने पर भी उनके अनुवाद उपलब्ध हैं। जैसे योग के आधार, विचारमाला और सूत्रावली (अनुवादक चंद्रदीप), मृणालिनी, हमारी आँखें, सुंदर कहानियाँ आदि। 'हमारी आँखें' पुस्तक में श्रीमाँ की वाणी देखिए—''मन जितना अधिक शांत होगा, दृष्टि उतनी अधिक अच्छी होगी।''

इसके अलावा कई पुस्तकें भी मैंने देखी और पढ़ी हैं, जिससे उन मनीषी महर्षि को जाना-समझा। जैसे श्रीअरविंद और उनका आश्रम, श्रीअरविंद दर्शन आदि। इन पुस्तकों को हिंदी में उपलब्ध कराने का श्रेय श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट सोसाइटी को जाता है।

महर्षि की प्रधान शिष्या मदर मीरा (श्रीमाँ) ने शहर से 15 किलोमीटर दूर ध्यान मंडप (ओरोविला) का निर्माण किया, जहाँ विश्व का प्रत्येक व्यक्ति ध्यान साधना कर सकता है। यहाँ लाखों की संख्या में विदेशी पर्यटक (विशेषकर फ्रांस से) आत्माज्ञान एवं शांति की खोज में आते हैं, रहते हैं, जिनका काम फ्रेंच एवं अंग्रेज़ी से चल जाता है, परंतु जब भारतीय पर्यटकों की संख्या बढ़ेगी, तो हिंदी का प्रयोग बढ़ेगा।

मैं यहाँ के बड़े-बड़े बाजारों की बात तो नहीं कह सकती, पर छोटे विक्रेताओं एवं दुकानदारों से आप हिंदी में बातें कर सकते हैं। वे हिंदी समझते हैं। मैं जिस होटल में रहती थी, उसमें अधिकारी, कर्मचारी, कुल मिलाकर 40 लोगों में से 7-8 लोग ही हिंदी समझते थे एवं कुछ-कुछ बोल सकते थे। मैं वहाँ की हिंदी के कुछ नमूने प्रस्तुत कर रही हूँ—

1. दो बजे हो गए।
2. हमारी ओर से मन भरी धन्यवाद
3. प्रेमपूर्ण कृतज्ञता भर दी।
4. हम सब अध्यापक दोस्त बन गए हैं।
5. हमको बहुत लाभ मिला।
6. मुझे बहुत खुशी हूँ।
7. हम सब आपका आभारी हूँ।
8. जबाव मालूम था उससे पन्ने भर रहे थे।
9. हमके लिए सम्मान मिलेगा।
10. मैं दिल पर बोलता हूँ।
11. हमको ना मालूम होते थे।
12. आम जनता बोलने के लिए हिंदी चाहते हैं।
13. मैं दिल्ली का टिकट बनाया।
14. फ्रेंच में अंक अधिक डालते हैं।
15. बच्चे आसान से पढ़ते हैं।
16. ठंड बैठ गई दवा लेने गया।
17. उसको पढ़ाई में रुचि दिया जाए।
18. मैं उनके घर गया वे ना मिले।
19. क्या तुम वहाँ जाएगी?
20. सोना हो गया? (नींद के अर्थ में)।
21. बैठकर सोना हुआ लेटकर नहीं होता।

केंद्रीय हिंदी संस्थान,
सी-7, डी.डी.कॉलोनी
हैदराबाद-500 007
anitaganguly1954@gmail.com

□

7

जापान में हिंदी-शिक्षण : बदलता परिप्रेक्ष्य

हरजेंद्र चौधरी

जन्म : 02 दिसंबर,1955; गाँव धनाना, ज़िला भिवानी (हरियाणा)।

पिछले तीन दशकों से देश-विदेश में हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति का अध्यापन।

1983 से दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज़ में अध्यापन। ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय (जापान,1994–1996), वार्सा विश्वविद्यालय (पोलैंड, 2001–2005) तथा ओसाका विश्वविद्यालय (जापान, 2010–2012) में विज़िटिंग प्रोफेसर। जापान में हिंदी-नाट्य-मंचन की ठोस परंपरा का सूत्रपात। एशिया, अमेरिका तथा यूरोप में हिंदी व भारतविद्या संबंधी अनेक सम्मेलनों में सक्रिय बौद्धिक भागीदारी।

हिंदी की लगभग सभी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में कविताओं/कहानियों/समीक्षाओं के अलावा शैक्षिक-सांस्कृतिक मुद्दों पर हिंदी व अंग्रेज़ी में अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

प्रकाशन : तीन कविता-संग्रह तथा एक कहानी-संग्रह प्रकाशित। अनेक रचनाएँ अनेक भारतीय व विदेशी भाषाओं में अनूदित-प्रकाशित।

मंत्रालय द्वारा प्रकाशित ''विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका'' (2012) के सहयोगी संपादक।

जापान में हिंदी-हिंदुस्तानी भाषा के शिक्षण का इतिहास एक सौ चार साल लंबा है। यहाँ की हिंदी-शिक्षण की गौरवशाली परंपरा और प्रक्रिया से मेरा प्रथम जुड़ाव उस समय हुआ, जब अप्रैल 1994 में मैंने ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में बतौर विजिटिंग प्रोफेसर पढ़ाना प्रारंभ किया। (अब यह विश्वविद्यालय अपना पुराना और स्वतंत्र अस्तित्व खोकर ओसाका विश्वविद्यालय के एक संकाय के रूप में सक्रिय है।) 1994 में भारत और जापान की आर्थिक और ढाँचागत परिस्थितियों में दिन-रात का अंतर था। इधर या उधर के हवाई-अड्डे पर उतरते ही तीव्रता से अनुभव होने वाला यह फर्क सचमुच बहुत तीखा था; इतना तीखा कि दोनों देशों की परिस्थितियों की तुलना के लिए किसी सीमा तक स्वर्ग-नरक जैसी पारंपरिक अवधारणाओं का इस्तेमाल भी उस समय बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं लगता था।

शिक्षण-सुविधाओं की उपलब्धता पर भी यह बात लागू होती थी। मुझ दिल्लीवासी के लिए भी वहाँ की सुविधाएँ प्राय: गहरे सुख और कभी-कभी आश्चर्य का विषय होती थीं। मसलन, ओसाका विदेशी भाषा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में हिंदी भाषा और भारत संबंधी पुस्तकों का अच्छा-खासा सुव्यवस्थित कलेक्शन था, उच्चारण-अभ्यास के लिए उत्कृष्ट भाषा-प्रयोगशाला थी, प्रत्येक विद्यार्थी के पास टेपांकन-यंत्र (टेप-रिकॉर्डर) जैसी (उस दौर में ज़रूरी) शिक्षण-सामग्री होती थी, विश्वविद्यालय में सब शिक्षकों के अपने अलग-अलग और बड़े-बड़े टेलीफोन, फैक्स आदि सुविधाओं से लैस कमरे होते थे। जापान में कई दशक पहले से निरंतर उपलब्ध ऐसी सुविधाएँ अब भारत के कुछ शिक्षा-संस्थानों में भी उपलब्ध होने और दिखाई पड़ने लगी हैं। पर सत्रह-अठारह साल पहले के भारत में ऐसी सुविधाएँ बिरले ही देखने में आती थीं। 1994-1996 के अपने दो वर्षीय अनुभवों को टटोलकर देखता हूँ तो इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि तब जापानी मानस में भारत की छवि 'विश्व की एक उभरती हुई महाशक्ति' के रूप में न होकर या तो एक अति पिछड़ी अर्थव्यवस्था और साधनवंचित लोगों वाले देश के रूप में या फिर प्राचीन-संस्कृति-संपन्न राष्ट्र के रूप में अवस्थित थी। भारत मुख्यत: बौद्ध धर्म की जन्म-स्थली होने के कारण एक आम जापानी के लिए आकर्षण और रुचि का केंद्र था। जापान की तत्कालीन युवा पीढ़ी भी इसका अपवाद नहीं थी।

पाठ्यक्रम-निर्धारण के मामले में अठारह साल पहले जापानी विश्वविद्यालयों में जैसी उदारता बढ़ती जाती थी, वैसी ही आज भी बढ़ती जाती है। अध्यापकों द्वारा अध्येताओं की आवश्यकताओं और रुचियों को ध्यान में रखकर पाठ्य-सामग्री का चुनाव किया जा सकता है। अठारह साल पहले भी ऐसा था, आज भी ऐसा है। मोटे

तौर पर पाठ्यक्रम का एक पूर्वनिर्धारित खाका मौजूद रहता है, परंतु उस खाके से संबंधित पाठ्य-सामग्री के चुनाव के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता से काम लिया जाता है। किसी प्राध्यापक की रुचि, विशेषज्ञता और शिक्षण-अनुभव के साथ-साथ उसके विद्यार्थियों की रुचि व ज़रूरत इस सिलसिले में अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाने वाले प्रमुख तत्व हैं। मुझे स्मरण है कि उस समय दक्षिण एशियाई इतिहास तथा भारतीय संस्कृति संबंधी पाठ्य-सामग्री के चुनाव की चर्चा के दौरान अनेक विद्यार्थियों ने प्राचीन भारत के पठन-पाठन में अधिक रुचि दिखाई थी, जिसके फलस्वरूप हमने कुछ कक्षाओं में प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति से जुड़ी पाठ्य-सामग्री का उपयोग किया था। मुझे याद है कि आधुनिक हिंदी कविता की कक्षा में पढ़ाए जाने के लिए बहुत सी दूसरी कविताओं के अलावा श्रीकांत वर्मा के कविता-संग्रह 'मगध' से अनेक ऐसी कविताएँ भी चुनी थीं, जिनमें प्राचीन भारतीय इतिहास के अनेक पात्र और संदर्भ मौजूद थे। यह सब विद्यार्थियों की रुचि को देखते हुए तय किया गया था। यहाँ तक कि विश्वविद्यालय के नवंबर 1994 में आयोजित बहुभाषी सांस्कृतिक समारोह में हिंदी की नाट्य-प्रस्तुति के लिए विद्यार्थियों के सुझावों को दृष्टि में रखते हुए कालिदास के विश्वप्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (शकुंतला नाटक) का चुनाव किया गया था।

यहाँ यह सब कहने का अर्थ यह नहीं है कि 1994 के आसपास 'नए' भारत के प्रति जापानी विद्यार्थियों के मन में कतई कोई रुचि नहीं थी; मेरा तात्पर्य केवल इतना है कि तब तक विद्यार्थियों का झुकाव वर्तमान भारत के बजाय प्राचीन भारत की ओर अधिक था। 'आप हिंदी भाषा क्यों पढ़ रहे हैं?' के उत्तर में तब अधिकतर जापानी विद्यार्थी 'भारतीय संस्कृति के प्रति रुचि होने और उसके बारे में जानने की इच्छा' जैसे कारण गिनाया करते थे। तब जापान में बेरोज़गारी की समस्या नहीं थी, इसलिए विद्यार्थियों में अपने भविष्य के प्रति आश्वस्ति का भाव रहता था। अनेक विद्यार्थियों से बात करने पर मुझे पता चला कि उस समय अधिकतर, संभवत: सब के सब, युवा नास्तिक थे। उन्हें ईश्वर जैसी किसी सत्ता की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती थी। विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी या कोई भी अन्य विषय पढ़ने के बाद सब को रोज़गार मिल जाता था। यानी हिंदी भाषा की पढ़ाई से रोज़गार पाने में कोई अतिरिक्त मदद नहीं मिलती थी, पर सबको रोज़गार मिल जाता था। तब के अधिकतर विद्यार्थी भारत की प्राचीन संस्कृति वाली छवि या पिछड़े देशवाली छवि मन में सँजोए होते थे, इसके बावजूद तब भी पाठ्यक्रम में ऐसी काफ़ी सामग्री शामिल की जाती थी, जिसमें पारंपरिक भारतीय सोच के साथ-साथ भारत की विशिष्ट स्थितियों और समस्याओं का उद्घाटन किया गया हो तथा जिससे भारत और जापान के बीच के सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर को समझने में मदद मिल सके। तब एम.ए. के विद्यार्थी भीष्म साहनी द्वारा रचित उपन्यास 'तमस' और नागार्जुन की कविता 'मास्टर' जैसी रचनाओं के माध्यम से सांप्रदायिकता और शिक्षा-जगत की बदहाली जैसी 'टिपिकल दक्षिण एशियाई' समस्याओं से रू-ब-रू और परिचित हुए। इस तरह 'पुरातन भारतविद्या' और 'नव भारतविद्या' के बीच संतुलन बनाकर रखना ज़रूरी होता था।

आज भारत एक उभरती हुई विश्वशक्ति है। स्वाभाविक है कि अब स्थिति बदल चुकी है, जापानी मानस में भारत की वह पिछड़ी अर्थव्यवस्था और अति निर्धनता, अभावग्रस्तता वाली पूर्व-स्थापित छवि धीरे-धीरे विस्थापित और तिरोहित होती जा रही है। अब अतीत के मुकाबले भारत का गतिशील वर्तमान और संभावनाशील भविष्य हिंदी पढ़ रहे जापानी युवाओं को कहीं अधिक लुभाता है। आर्थिक मंदी से उत्पन्न उथल-पुथल और अनिश्चितता के दबाव में

आज का हिंदी/भारतविद्या का जापानी विद्यार्थी 'नए' भारत में अधिक रुचि रखता है, इस संक्षिप्त लेख के माध्यम से इस संदर्भ से जुड़े 2010-2012 के दौरान के अपने अध्यापन-काल के कुछ अनुभव मैं आप लोगों के साथ बाँटना चाहता हूँ। ओसाका विश्वविद्यालय के 2010-2011 के शैक्षिक सत्र में भारतीय इतिहास और दक्षिण एशियाई संस्कृति संबंधी वैकल्पिक पाठ्यक्रमों को चुनने वाले अपने विद्यार्थियों से जब मैंने उनकी रुचि का क्षेत्र पूछा तो अधिकतर ने आधुनिक भारत बल्कि तेज़ी से बदलते और वैश्विक महाशक्ति बनने के रास्ते पर बढ़ते वर्तमान भारत के अध्ययन को प्राथमिकता दी। उनकी रुचि को ध्यान में रखते हुए बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के भारत से संबंधित पाठ्य-सामग्री का चुनाव करने की प्रक्रिया में मुझे काफ़ी सोच-विचार करना पड़ा। साथ ही अपने विभागीय सहयोगी प्रोफेसर आकिरा ताकाहाशि से काफ़ी विचार-विमर्श किया। हमें अनेक स्रोतों से भारत में घटित हो रहे भाषायी और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को रेखांकित करने वाली सामग्री जुटानी पड़ी। साहित्य की कक्षाओं के लिए भी खूब सोच-समझकर रचनाओं का चुनाव करना पड़ा।

उनके मन से कभी-कभी प्रार्थनाएँ फूटने लगी हैं। अपनी नास्तिकता पर अब वे पहले की तरह अडिग नहीं रह पाते। अनेक कंपनियों में इंटरव्यू देने के बाद भी बेरोज़गारी की आशंका बनी रहने की स्थिति में उन्हें ईश्वर की ज़रूरत महसूस होने लगी है। पर बढ़ती बेरोज़गारी के इस दौर में भारत में स्थापित जापानी कंपनियों में उन्हें रोज़गार के अवसर मिलने लगे हैं। हिंदी की पढ़ाई अब रोज़गार पाने में सहायक होने लगी है। इन कारणों से हिंदी-पाठ्यक्रम में प्रवेश पानेवाले युवा प्रत्याशियों को अब ओसाका विश्वविद्यालय में अधिक कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है।

आज का हिंदी/भारतविद्या का जापानी विद्यार्थी 'नए' भारत में अधिक रुचि रखता है, इस संक्षिप्त लेख के माध्यम से इस संदर्भ से जुड़े 2010-2012 के दौरान के अपने अध्यापन-काल के कुछ अनुभव मैं आप लोगों के साथ बाँटना चाहता हूँ। ओसाका विश्वविद्यालय के 2010-2011 के शैक्षिक सत्र में भारतीय इतिहास और दक्षिण एशियाई संस्कृति संबंधी वैकल्पिक पाठ्यक्रमों को चुनने वाले अपने विद्यार्थियों से जब मैंने उनकी रुचि का क्षेत्र पूछा तो अधिकतर ने आधुनिक भारत बल्कि तेज़ी से बदलते और वैश्विक महाशक्ति बनने के रास्ते पर बढ़ते वर्तमान भारत के अध्ययन को प्राथमिकता दी। उनकी रुचि को ध्यान में रखते हुए बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के भारत से संबंधित पाठ्य-सामग्री का चुनाव करने की प्रक्रिया में मुझे काफ़ी सोच-विचार करना पड़ा। साथ ही अपने विभागीय सहयोगी प्रोफेसर आकिरा ताकाहाशि से काफ़ी विचार-विमर्श किया। हमें अनेक स्रोतों से भारत में घटित हो रहे भाषायी और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों को रेखांकित करने वाली सामग्री जुटानी पड़ी। साहित्य की कक्षाओं के लिए भी खूब सोच-समझकर रचनाओं का चुनाव करना पड़ा। मसलन, तृतीय-चतुर्थ वर्ष के हिंदी कविता के पाठ्यक्रम के लिए मैंने कुछ जीवित और वरिष्ठ हिंदी-कवियों की प्रसिद्ध कविताओं का चुनाव किया तो एम.ए. के गद्य-पाठ्यक्रम में पिछली चौथाई सदी के दौरान लिखी गईं कुछ कहानियों को भी शामिल करना मुझे श्रेयस्कर लगा।

'हिंगलिश' और बोलचाल की नई हिंदी का परिचय देनेवाली कुछ सामग्री भी जहाँ-तहाँ पाठ्यक्रम में रखकर मैंने किताबी हिंदी पढ़ने से उत्पन्न एकरसता को तोड़कर हिंदी भाषा और भारतविद्या के शिक्षण को अधिक रुचिकर व अधिक प्रासंगिक बनाने का उपक्रम किया। यहाँ तक कि विद्यार्थियों की रुचि को ध्यान में रखते हुए विश्वविद्यालय के 2010-2011 के बहुभाषी सांस्कृतिक समारोह के लिए मैंने विशेष रूप से 'मुझे आंटी मत कहियो' नामक नाटक लिखा, जिसका कथ्य भारत में घटित हो रहे अनेक सकारात्मक-नकारात्मक परिवर्तनों से गुज़रते सामाजिक संबंधों पर केंद्रित था। साथ ही अगले शैक्षिक सत्र 2011-2012 का नाटक 'भारतीय सपनों का रिअलिटी शो' भारत और जापान के अनेक अधुनातन संदर्भ-सूत्रों को अपने में इस तरह समेटे हुए था कि एक ओर तो सहज ढंग से दोनों देशों के बीच की कुछ सांस्कृतिक समानताओं-असमानताओं को रेखांकित किया जा सके तथा दूसरी ओर विश्वशक्ति के रूप में उभरते भारत की छवि को 'प्रोजेक्ट' करना संभव हो सके। ओसाका विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई विभाग की बहुआयामी गतिशीलता और इसके हिंदी-नाट्य दल की सक्रियता के परिणाम स्वरूप ये दोनों नाटक ओसाका विश्वविद्यालय के अलावा कोबे शहर में भी मंचित किए गए। यहाँ तक कि जनवरी 2012 के विश्व-हिंदी-दिवस के आयोजन के अवसर पर ओसाका विश्वविद्यालय के हिंदी-नाट्य-दल को भारत के कांसुलेट द्वारा 'भारतीय सपनों का रिअलिटी शो' की एक और प्रस्तुति के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था।

यहाँ प्रसंगवश यह बताना भी प्रासंगिक जान पड़ता है कि पिछले कुछ वर्षों से जापान में हिंदी-शिक्षण के क्षेत्र में जापान की युवा पीढ़ी के साथ-साथ भारत सरकार भारतीय दूतावास और कांसुलेट की सक्रियता भी पहले की अपेक्षा काफ़ी बढ़ गई है। तोक्यो युनिवर्सिटी ऑफ़ फॉरेन स्टडीज़ में सन् 2006 दिसंबर सन् 2008, जनवरी 2012 में तथा ओसाका विश्वविद्यालय में नवंबर 2010 में आयोजित अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों जैसे बड़े आयोजनों में तो भारत सरकार से सहयोग मिला ही, साथ ही अनेक अन्य आयोजनों और कार्यक्रमों में भी इसी तरह की पारस्परिकता देखने को मिलती है। हमारे कांसुलेट द्वारा कोबे शहर में समुद्र-तट स्थित 'मेरिकान पार्क' में कुछ वर्षों से आयोजित होनेवाले वार्षिक 'इंडिया मेला' में ओसाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की भागीदारी ज़रूर होती है। ऐसे अवसरों पर अनेक जापानी विद्यार्थी मेले में पधारने वाले भारतीयों से हिंदी में बातचीत करने का प्रयास करते देखे जा सकते हैं। ऐसे आयोजनों और भारत सरकार की इस बढ़ती सक्रियता को भारत के गतिशील विकास के कारण और परिणाम, दोनों रूपों में देखा जा सकता है। अब तो जापानी युवा ही नहीं, जापान के नीति-निर्धारक भी 'नए' भारत को पहले के मुकाबले अधिक महत्व देने लगे हैं। इस परिदृश्य में जापान में हिंदी-शिक्षण को नई दिशा-गति मिलना स्वाभाविक और लाजिमी है। उम्मीद की जा सकती है कि आनेवाले समय में भारत-जापान संबंध, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और विश्व शांति के क्षेत्रों में हिंदी अधिक प्रभावी और बहुआयामी भूमिका निभाएगी।

ई-1/32, सेक्टर 7, रोहिणी
नई दिल्ली-110085 (भारत)
visproharwar@yahoo.com

8

हिंदी के दैनंदिन प्रयोग का महत्व एवं चेक गणराज्य में हिंदी का शिक्षण

स्वेतिस्लव खोस्तिच

शिक्षा : पी–एच.डी, एम.ए., हिंदी भारतविद्या, भाषाविज्ञान।

संप्रति : चार्ल्स विश्वविद्यालय, प्राग, चेक गणराज्य में हिंदी अध्यापक, विश्वविद्यालय में हिंदी का प्रवेश, हिंदी व्याकरण, संस्कृत का प्रवेश, संस्कृत व्याकरण, आर्य भाषाओं का विकास, पुरानी हिंदी, हिंदी साहित्य का पाठन, संस्कृत का पाठन, हिंदी से चेक में अनुवाद पढ़ाते हैं।

प्रकाशन : हिंदी एवं आर्य भाषाओं का शोधकार्य—दो पुस्तकें तथा कई शोध निबंध प्रकाशित, Verb Syntagmata in Hindi, Universita Karlova v Praze-Nakladatelsvi Karolinum, Praha 1999., A Syntagmaticon oh Hindi Verbo-nominal syntagmas, Charles University in Prague, Karolinum Press 2009., हिंदी साहित्य पाठन के लिए मुंशी प्रेम चंद की सर्वश्रेष्ठ 22 कहानियों का संग्रह प्रकाशित :, Premchand's Short Story Reader. The Best Short Stories by Premchand (selection oh 22 stories, linguistic analysis, vocabulary, comments, notes on cultural and historic events). Karolinum. Praha 2011. इस पाठ्य पुस्तक में अहिंदी पाठकों एवं विद्यार्थियों के लिए शब्दावली एवं टीका सम्मिलित हैं, हिंदी साहित्य–कृतियाँ (कहानियों और कविताओं के अनुवाद) युरोपीय साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित, हिंदी भाषा के प्रसार–प्रचार के लिए सन् 2003 को सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मिलित।

हिंदी औपचारिक रूप से भारत संघ की राष्ट्रभाषा स्वीकृत की गई थी, परंतु वास्तविकता में उसका यह कार्य पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं हुआ। उस का मुख्य कारण, जैसा कि सर्वविदित है, कि भारत के कुछ प्रदेशों की इस विषय में राजनीतिक सहमति की कमी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 65 वर्ष के उपरांत या 63 वर्ष हिंदी की आधिकारिक रूप में स्वीकृति के उपरांत, अंग्रेज़ी ही भारतीय समाज की, कार्यालयों की, विद्यालयों की आदिप्रधान भाषा रही। ऐसा लगता है कि अधिकतर भारतीय लोग अंग्रेज़ी के मोहपाश में जकड़े हुए हैं। आज स्वाधीन भारत में अधिकांश सरकारी व लगभग पूरा गैर–सरकारी काम अंग्रेज़ी में ही होता है। दुकानों आदि के बोर्ड अंग्रेज़ी में होते हैं, होटलों, रेस्टोरेंटों इत्यादि के मैन्यू अंग्रेज़ी में ही होते हैं। अधिकांश नियम, कानून या अन्य काम की बातें, पुस्तकें इत्यादि अंग्रेज़ी में ही हैं, उपकरणों या यंत्रों को प्रयोग करने की विधि अंग्रेज़ी में लिखी होती है। अंग्रेज़ी में निजी पारिवारिक पत्र–व्यवहार भी बढ़ता जा रहा है। अंग्रेज़ी एक तरह से भारतीय मानसिकता पर पूरी तरह से हावी हो गई है।

यह आलोचनापूर्ण मत हमारी अपनी कल्पना का परिणाम नहीं है, पर भारतीय भाषा–वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों का भी मत है, जो उनके अनुभवों तथा अन्वेषणों पर आधारित है।

अंततः यदि भारत को कभी उन्नत देशों की श्रेणी में गिना जाना है तो उसे अंग्रेज़ी से मुक्त होने की आवश्यकता है। उसे एक अतिथि सा सम्मान देना है, जैसे दूसरे स्वाधीन देशों में दिया जाता है। अंग्रेज़ी के प्रति दुर्भावना या दुर्विचार रखना नहीं चाहिए, पर अपनी राष्ट्रभाषा को उसका उचित सम्मान देना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत एक महान देश है, जो जनसंख्या के दृष्टिकोण से संसार में द्वितीय स्थान पर है।

भारत में अधिकांश लोगों द्वारा उत्तर भारतीय भाषाएँ, जो भारोपीय भाषा परिवार से संबंधित हैं तथा दक्षिण भारतीय या द्राविड़ भाषाएँ बोली जाती हैं। पर इन दोनों भाषावर्गों की शब्दावली संस्कृत शब्दों से परिपूर्ण है। भारत सांस्कृतिक रूप से अनेकता में एकता का उदाहरण है और पूरे देश का सांस्कृतिक उत्साह एक है। इसका यह कारण देश का सांस्कृतिक एवं मानसिक संबंध तथा एकता एवं अखंडता है। स्वाभाविक रूप से हिंदी भाषियों की संख्या सबसे अधिक है। हिंदी न केवल भारत की प्रमुख भाषा है, पर संसार में भी उस का स्थान तृतीय है।

आजकल संसार की संप्रेषण–प्रणाली के क्षेत्र में क्रांति हो रही है। वह भारतीय भाषाओं को अनदेखी भी नहीं कर सकती। हिंदी के पोर्टल भी अब व्यावसायिक तौर पर आत्मनिर्भर हो रहे हैं। पहले

किसी भी अंतरराष्ट्रीय आई.टी. कंपनी ने हिंदी इंटरनेट के क्षेत्र में दिलचस्पी नहीं दिखाई, पर अब विदेशी कंपनियाँ हिंदी के बाजार में कूद पड़ी हैं। पाश्चात्य आई.टी. विशेषज्ञों ने कुछ महीने पहले यह कहा था कि आनेवाले कुछ ही वर्षों के भीतर भारत संसार का सबसे बड़ा इंटरनेट बाजार बन जाएगा। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ वर्षों में इंटरनेट पर जिन तीन भाषाओं का दबदबा होगा, वे हैं—हिंदी, चीनी और अंग्रेज़ी।

इसलिए हिंदी का प्राचार-प्रसार विदेशों में करने के साथ-साथ पहली आवश्यकता उसे भारत में आगे बढ़ाने की है। भारत की भाषा-संबंधी नीति अर्थात प्रारंभिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा-संबंधी नई नीति के आधार पर हिंदी का प्रचार-प्रसार अधिक बढ़ सकता है। इसी प्रकार से परिवारों में, समाज में, सड़कों पर, दुकानों में, मित्रों से, अर्थात दैनंदिन संपर्क एवं संप्रेषण में हिंदी के प्रयोग पर बल देना चाहिए। एक उल्लेखनीय तथ्य है कि हिंदी के प्रसार में हिंदी फिल्मों की प्रमुख भूमिका रही है। बोलीवुड फिल्मों के दर्शक आजकल न केवल भारत में है, बल्कि ये चलचित्र अहिंदी भाषियों के दूसरे देशों में भी लोकप्रिय हो गए। इसके परिणामस्वरूप हिंदी वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय भाषा बनती जा रही है।

बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक से लेकर आज तक चेक और स्लोवाक गणराज्य में (भूतपूर्व चेकोस्लोवाकिया को सम्मिलित करके) हिंदी के लगभग साठ स्नातक निकले हैं, जिन में से कुछ वैज्ञानिक या सांस्कृतिक संस्थाओं में, संग्रहालयों में आदि कार्यक्षेत्रों में काम करते हैं। कभी प्राच्य-विद्याविद् के रूप में अपनी सेवाएँ देते हैं, किंतु हिंदीविद् के रूप में उनका उपयोग बिरले ही होता है, क्योंकि, खेद की बात है कि अभी तक भारत में अंग्रेज़ी का बोलबाला रहा और जो भारत के अधिकारी, राजनीतिक, व्यापारी आदि लोग यूरोप आते हैं, वे हिंदी दुभाषिया कभी नहीं माँगते, इसलिए हिंदी में काम करने का अवसर नहीं मिलता।

संस्कृत को छोड़कर आधुनिक भारतीय भाषाएँ, जैसे बँगला, हिंदी आदि पढ़ाई जाने लगीं। इन भाषाओं के साहित्यिक विकास और इतिहास पर भी ध्यान केंद्रित होने लगा। समसामयिक भारतीय राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं तथा गतिविधियों को अध्ययन-अध्यापन में सम्मिलित कर लिया गया था। उनकी देखरेख में हिंदी और बँगला दोनों भाषाएँ प्राग के चार्ल्स विश्वविद्यालय में नियमित तौर पर शिक्षा के स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाई जाने लगीं। दूसरे सहयोगियों के साथ उन्होंने सन् 1945 में नई प्राची (या मूल चेक में नोवी ओरिंट) नामक मासिक पत्रिका का आरंभ करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। यह पत्रिका उस समय से लेकर आज तक निकलती आ रही है और उसके पृष्ठों पर आगे चलकर प्रेमचंद, सुमित्रानंदन पंत, हरिवंशराय बच्चन, दिनकर, अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, श्रीकांत वर्मा, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव आदि हिंदी लेखकों की रचनाओं के चेक अनुवादों के नमूने प्रकाशित होते रहे।

जहाँ तक हिंदी भाषा और साहित्य की बात है, उसका शिक्षण संसार के विश्वविद्यालयों में, मुख्यतया अहिंदी भाषियों के बीच में होता है। इस शिक्षण का उद्देश्य मुख्यतः साहित्यिक और भाषावैज्ञानिक अन्वेषण है। विदेशों में हिंदी शिक्षण एवं अनुसंधान से अन्य देशों का भारत के साथ एक विशेष सांस्कृतिक संपर्क कायम होता है।

चेक देश में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति अभिरुचि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों से ही देखने में आती है। सन् 1911 में अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के 'देवबाला' नामक उपन्यास का चेक भाषा में अनुवाद हुआ। मूल हिंदी से उस कृति के अनुवादक थे प्रसिद्ध चेक भारत-विद्याविद विंत्सेंत्स लेसनी। आचार्य लेसनी ने सन् 1917 से लेकर 1953 तक की अवधि में चार्ल्स विश्वविद्यालय की चेक भारतविद्या के नए विकास की नींव डाली। उन्होंने हिंदी के वैज्ञानिक अध्ययन को अधिक विस्तृत और बहुआयामी बनाया।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले ही आचार्य लेसनी ने प्राग में प्राच्य भाषाओं के संध्याविद्यालय की स्थापना की थी, जहाँ विभिन्न व्यवसायों से जुड़े व्यक्ति सायंकाल को हिंदी, बँगला, संस्कृत आदि भाषाओं को पढ़ सकते थे। यहाँ प्राच्य भाषाओं के विद्यालय में, विशेषकर ऐसे छात्र पढ़ते थे, जिनको भारतीय संस्कृति, कला और सभ्यता में गहरी रुचि है, जो भारत को अपनी आँखों से देखना चाहते हैं या योगाभ्यास करते हैं और साथ ही हिंदी जानना चाहते हैं या जो साहित्य-प्रेमी हैं और साहित्यिक रचनाएँ मूल हिंदी में पढ़ने को उत्सुक हैं।

हिंदी भाषा भारत में राजभाषा घोषित होते ही प्राग के चार्ल्स विश्वविद्यालय में, प्राचीन भारत-विद्या के साथ-साथ, अध्ययन-अध्यापन तथा शोध का विषय बन गई।

हिंदी शिक्षण के लिए प्रथम चेक पाठ्यपुस्तक को हिंदी के प्रथम विख्यात प्रचारक ओताकार पेरटोल्ड ने सन् 1939 को प्रकाशित किया। चार सौ पृष्ठों की इस पुस्तक के अनुसार हिंदी कई दशकों तक पढ़ाई गई थी। जैसे उस समय सर्वमान्य था, उस में दोनों लिपियाँ—देवनागरी और उर्दू—सम्मिलित थीं तथा हिंदी की दोनों

शैलियों पर—हिंदुस्तानी और शुद्ध हिंदी पर—समान रूप से ध्यान दिया गया है। दूसरी हिंदी पाठ्य-पुस्तक की रचना विंत्सेंत्स पोरिज्का के द्वारा सन् 1963 को हुई।

यद्यपि यह पुस्तक हमारे चेक विद्यार्थियों के लिए विरचित की गई है, उसमें सारा स्पष्टीकरण चेक भाषा के अतिरिक्त अंग्रेज़ी में भी दिया गया है। इसी कारण वह पाठ्य-पुस्तक विश्वविख्यात हो गई थी। जहाँ तक हमें पता चला यूरोप के कई विश्वविद्यालय उसे प्रयोग में लाते थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि प्रोफेसर पोरिज्का की पाठ्य-पुस्तक का दूसरे (1972) और तीसरे संस्करण (1986) भी छप गए थे। इस पुस्तक का शीर्षक हिंदी में भी दिया गया है। पाँच सौ से अधिक पृष्ठों पर व्याकरणात्मक प्रश्नों को अधिक स्थान दिया गया है, जिससे यह स्पष्ट है कि हमारे यहाँ हिंदी किस प्रकार, किस विधा से पढ़ाई जाती है।

प्रोफेसर पोरिज्का की पुस्तक से सामान्य पाठ्यक्रम सुरक्षित तो था, जो कि प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पर्याप्त रहा। परंतु विश्वविद्ययीय उच्च स्तरीय जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए दूसरे ढंग की पाठ्य-सामग्री की आवश्यकता का अनुभव किया गया था। इस प्रकार के हिंदी शिक्षण में समुचित मार्गदर्शन के लिए डॉ. ओदोलेन स्मेकल द्वारा पाठ्य-पुस्तकों की माला तैयार की गई, जिस की सूची पर्याप्त लंबी है। उनकी ये प्रमुख पाठ्य-पुस्तकें हैं—अनुप्रयुक्त हिंदी व्याकरण, वार्तालाप, क्रिया प्रयोग, साहित्य-पाठन पुस्तक आदि।

डॉ. ओदोलेन स्मेकल चेक गणराज्य के भारत में राजदूत (1994 से लेकर 1997 तक) थे। उससे पहले वे सन् 1990 से दिल्ली विश्वविद्यालय में चेक भाषा के अध्यापक बन कर भारत में रहते थे। उनका स्वर्गवास 1998 को प्राग में हुआ। उन्होंने जीवन भर हिंदी की सेवा में रहकर भाषा एवं साहित्य पर शोधकार्य किया। भाषा-शास्त्र में मुख्यतया पुनरुक्ति-द्वंद्व समान एवं अनुकरणात्मक शब्दों पर तथा क्रिया-नामिक शब्द-बंधों पर शोध-कार्य करके निबंध लिखे तथा साहित्य-शास्त्र में, विशेषकर ग्रामीण तथा आंचलिक उपन्यासों पर प्रकाश डाला। डॉ. स्मेकल ने चेक भाषा में हिंदी की पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त महान् हिंदी उपन्यासकार प्रेमचंद की कालजयी रचना 'गोदान' (1959) और अवस्थी के रचित उपन्यास 'जंगल के फूल' आदि सहित गद्य एवं पद्य की रचनाओं के चेक भाषा में अनुवाद किए हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार करने के लिए उनका सब से बड़ा योगदान है कि महान हिंदी प्रेमी तथा हिंदी भक्त होकर वे स्वयं हिंदी में काव्य-रचना करते थे। हिंदी में उनके ग्यारह कविता-संग्रह दिल्ली में प्रकाशित हुए। संग्रहों के शीर्षक हैं—तेरे दान किए गीत, मेरी प्रीत तेरे गीत, नमो नमो भारत माता, स्वातिबूँद, कमल को लेकर चल, तेरे दिगदिगंतर अभिराम, अविराम, मधुमिलन सेतु, हमारा हरित नीम, दीपकों के देश में आदि।

उपर्युक्त हिंदीविदों के अतिरिक्त डॉ. दागमार मरकोवा का नाम भी उल्लेखनीय है। वे चेक अकादमी के प्राच्य विभाग में नियुक्त होकर हिंदी आधुनिक साहित्य पर शोध करती हैं तथा अनेक हिंदी उपन्यासों एवं कहानियों के अनुवाद किए हैं। वे अभी भी हिंदी साहित्य के इतिहास के पाठ हमारे विभाग में देती हैं।

डॉ. स्मेकल 1990 तक चार्ल्स विश्वविद्यालय में अध्यापक के पद पर नियुक्त थे। उस समय उनकी पहचान विश्वस्तरीय भारत-विश्वविद के रूप में हो चुकी थी। भारत में उनको हिंदी की सेवा के लिए कई बार सम्मानित किया गया।

उनका शिष्य बनकर मैं भी भारतीय भाषा-विज्ञान से आकर्षित होकर हिंदी प्रेमी बन गया। उनकी कृपा से हिंदी-चेक कोश निर्माण में तथा अनुप्रयुक्त हिंदी व्याकरण की पुस्तक लिखने में जुटा था। उनके प्राग छोड़ने और भारत जाने के साथ ही 1990 को मैं विश्वविद्यालय में उनके पद पर आया। भाषा अध्यापन के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान के शोधकार्य एवं कोश-निर्माण में लगा। हिंदी क्रिया तथा संयुक्त क्रिया के क्षेत्र में कतिपय शोध-निबंध और दो पुस्तकें—हिंदी संयुक्त क्रियाएँ 1996 को एवं हिंदी में संज्ञा पर आधारित क्रियार्थक या क्रिया-नामिक अभिव्यक्ति कोश सन् 2009 में प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त हिंदी कहानियों के अनुवाद भी साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए।

आजकल हिंदी का अध्ययन-अध्यापन चार्ल्स विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के संकाय के एक विभाग में दक्षिण एवं केंद्रीय संस्थान में किया जाता है। हमारे संस्थान में हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, बँगला, तमिल, रोमानी या जिपसी, तिब्बती, बहासा इंदोनेसिआ एवं मंगोली भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं।

हर एक भाषा के लिए एक या दो शिक्षक नियुक्त हैं, पर कभी-कभी बाह्य-शिक्षकों को भी पढ़ाने का अवसर दिया जाता है। चार्ल्स विश्वविद्यालय में हिंदी के कोर्स प्रतिवर्ष आरंभ नहीं होते, बल्कि तीन-तीन वर्षों के बाद। विद्यार्थियों की संख्या 20 तक होती है। पंचवर्षीय शिक्षा-काल में तीन वर्ष का बी.ए. कोर्स होता है, जिसके उपरांत दो वर्ष का एम.ए. कोर्स आता है।

चेक विद्यार्थियों को एक ओर तो व्यावहारिक हिंदी सीखनी पड़ती है, दूसरी ओर हिंदी साहित्य, भारत के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं की जानकारी प्राप्त करनी भी अनिवार्य है। पाठ्यक्रम का उद्देश्य यह है कि एक विद्यार्थी न केवल हिंदी भाषा और साहित्य से परिचित हो जाए, परंतु

पूरी भारतीय सभ्यता के विकास का ज्ञान प्राप्त करे। साथ ही समूचे भारत का भूगोल और सभी प्रदेशों की स्थानीय विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करें।

हमें यह बात सर्वथा स्वाभाविक लगती है कि विदेशों में हिंदी को सीमित दृष्टिकोण से नहीं पढ़ाया जा सकता है। उसके अध्ययन में संस्कृत व्याकरण और साहित्य को भी सम्मिलित किया जाए, साथ ही एक और आधुनिक भारतीय या अन्य प्राच्य भाषा भी पाठ्यक्रम में हो। हिंदी तो भारत की प्रतिनिधि भाषा है और समूचे भारत-राष्ट्र का प्रवेश-द्वार है। वह भाषा जो अभारतीय विद्यार्थियों के लिए संस्कृति और सभ्यता की अखंडता तथा भाँति-भाँति के मार्ग खोल देती है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हम चेक गणराज्य में आधुनिक ढंग की पाठ्य-सामग्री पर बल देते हैं। हिंदी के विवेचनात्मक अध्ययन-अध्यापन के लिए हम केवल नए प्राविधिक सुधारों का चिंतन करते हैं, पर पाठ्यसार और विषय-वस्तु पर बल देते हैं। पाठ्य-सामग्री चुनने में प्रयत्न करते हैं कि वह अधिक बोधगम्य और अधिक ज्ञानवर्धक हो, कि भारतीय सभ्यता के बारे में अधिकतम मूलभूत प्राचीन एवं अर्वाचीन तथ्य प्रस्तुत करे।

आधुनिक काल में इंटरनेट हमें यह सुविधा देता है कि साहित्यिक एवं वैज्ञानिक नवीनताएँ तथा भारत की दैनंदिन सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं की सूचनाएँ शीघ्र विदेशों से या सीधे भारत से प्राप्त कर सकें।

जहाँ तक चार्ल्स विश्वविद्यालय में आधुनिक हिंदी शिक्षण की स्थिति का प्रश्न है, तो यह कहना चाहिए कि चेक निवासियों की संख्या बस एक करोड़ ही है। इसलिए हिंदी सीखने वालों की संख्या भी सीमित है। युवा लोग अपनी रुचि के अनुसार पढ़ने का विषय चुनते हैं। जो लोग हिंदी को शिक्षा का विषय चुनते हैं, उनकी संख्या बदलती रहती है। विश्वविद्यालय में प्रति तीन वर्ष के बाद 20 विद्यार्थी नियमित रूप से पढ़ने लगते हैं। सन् 1990 तक यह संख्या मात्र पाँच ही थी।

बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक से लेकर आज तक चेक और स्लोवाक गणराज्य में (भूतपूर्व चेकोस्लोवाकिया को सम्मिलित करके) हिंदी के लगभग साठ स्नातक निकले हैं, जिन में से कुछ वैज्ञानिक या सांस्कृतिक संस्थाओं में, संग्रहालयों में आदि कार्यक्षेत्रों में काम करते हैं। कभी प्राच्य-विद्याविद् के रूप में अपनी सेवाएँ देते हैं, किंतु हिंदीविद् के रूप में उनका उपयोग बिरले ही होता है, क्योंकि, खेद की बात है कि अभी तक भारत में अंग्रेज़ी का बोलबाला रहा और जो भारत के अधिकारी, राजनीतिक, व्यापारी आदि लोग यूरोप आते हैं, वे हिंदी दुभाषिया कभी नहीं माँगते, इसलिए हिंदी में काम करने का अवसर नहीं मिलता।

हिंदी भाषा का इतिहास देखकर यह सुस्पष्ट है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के काल से लेकर आधुनिक काल तक हिंदी का संवर्धन आगे चलता आता है, फिर भी यह विदित है कि भाषा और समाज पर अंग्रेज़ी का प्रभाव आज तक उन्मूलित नहीं हुआ। भारत का दुर्भाग्य यह है कि उसके समाज में विदेशी भाषा को प्राथमिकता दी जाती है, जिससे उसकी अपनी सभ्यता, अपनी भाषा उपेक्षित होती है। हमारा विचार है कि भारतीयों को अधिक गंभीर प्रयास करने होंगे कि देश में हिंदी भाषा का अधिक प्रचार-प्रसार हो। केवल भारतीय भाषाएँ ही देश की एकता तथा सभ्यता और संस्कृति के संरक्षण में सहायक हो सकती हैं। संस्कृत तो भारतवर्ष की अस्मिता की प्रतीक है, पर आधुनिक भाषाओं में से हिंदी ही उसकी उतराधिकारिणी है और उसमें देश की समूची पहचान अभिव्यक्त होती है।

इसलिए वही अपने मानक रूप में प्रतिनिधि भाषा है। मानक हिंदी ही आधुनिक भारत की एकता तथा परंपरागत अस्मिता की संरक्षक हो सकती है।

चार्ल्स विश्वविद्यालय,
भारत-विद्या विभाग, प्राग 1
चेक गणराज्य

संस्कृति किसी समाज में प्रचलित कला या साहित्य या नृत्य या संगीत या चित्रकला नहीं है। यह तो समाज द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत आचार-पद्धति है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

9

विदेश में हिंदी अध्यापन : कुछ स्मृतियाँ

विजया सती

शिक्षा : बी.ए. (ऑनर्स) और एम.ए. हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय।

विजिटिंग प्रोफेसर, भारोपीय अध्ययन विभाग, ऐल्ते विश्वविद्यालय, बुदापेश्त, हंगरी-वर्ष 2011-2013। दिल्ली विश्वविद्यालय के जीवन-पर्यंत शिक्षण संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ़ लाइफ़ लॉन्ग लर्निंग) में इ-कंटेंट निर्माण योजना में एसोसिएट को-ऑर्डिनेटर के रूप में चयनित।

प्रकाशन : एक सहयोगी कविता-संकलन के अतिरिक्त दो शोध पुस्तकों का प्रकाशन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलेख और कविताएँ निरंतर प्रकाशित।

पुरस्कार : दिल्ली विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सर्वश्रेष्ठ छात्रा होने के नाते 'सरस्वती पुरस्कार', 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' और 'प्रोफ़ेसर सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण पदक' से पुरस्कृत।

संप्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज में एसोसिएट प्रोफ़ेसर के रूप में कार्यरत।

वर्ष 2011 में मुझे भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के सौजन्य से यूरोपीय देश हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट के प्रसिद्ध ओत्वोश लोरांद विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में अतिथि प्रोफ़ेसर के रूप में आने का अवसर मिला।

भाषा का पुल

जनवरी के बिलकुल अंतिम दिन थे, जब चरम ठंड के मौसम में मैं बुडापेस्ट पहुँची। भारतीय जीवन-क्रम से सर्वथा भिन्न परिवेश में सब कुछ अनजाना-अनपहचाना! जानी-पहचानी थी तो केवल अपनी हिंदी भाषा, जो विभाग के अतिरिक्त भारतीय दूतावास के प्रांगण में बोली और सुनी। बुडापेस्ट में हिंदी का अध्यापन शुरू करने से पहले ही चार फरवरी को भारतीय दूतावास के सांस्कृतिक केंद्र में विभाग द्वारा आयोजित विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर प्रस्तुत मेरी कविता की ये पंक्तियाँ भाषा की उस ताकत को ही दर्शाती हैं, जो मनुष्य को मनुष्य से और समाज से सहज ही जोड़ देती है—

पहले ही दिन से महसूस नहीं हुआ
कि अपने देश और परिवेश से
इतनी दूर चली आई हूँ!
शायद यह भाषा ही थी
कि मैं सहज भाव से
इस देश और परिवेश से जुड़ गई।

मारिया में मीरा की झलक
क्रिस्तीना में कृष्णा
और ओरशी, मुझे उर्वशी ही तो लगी।
शायद नहीं यह सचमुच भाषा ही थी
जिसने मुझे पहले ही दिन से
अकेला नहीं होने दिया!

फिर समय पंख लगाकर उड़ने लगा। लगभग चार महीने बीतते-बीतते हंगरी मुझे यूरोप के केंद्र में जागता हुआ-सा एक देश नज़र आने लगा। वसंत के आरंभ में मौसम कई करवटें लेने लगा—कभी तेज़ धूप, कभी सर्द हवा और कभी हलकी बारिश होने लगती। बर्फ से सूखे पेड़ों पर हरियाली आने लगी। फूल भी अनेक रंगों में मुसकराने लगे। सुबह पंछियों का स्वर भी कानों में पड़ने लगा। अब सबकुछ इतना अनजाना-अनपहचाना सा नहीं लगता था। हंगेरियन भाषा भी अब उतनी पराई नहीं रही। पहला ही शब्द बहुत सकारात्मक कानों में पड़ा था—इगेन यानी हाँ। मेट्रो स्टेशन से बाहर आते समय एस्केलेटर पर साथ खड़ी सुंदर लड़की दोहराती चली जा रही थी—इगेन-इगेन-इगेन-इगेन। विभाग पहुँचते ही पहला काम किया था—सोतार यानी शब्दकोश देखकर अर्थ जाना, इगेन यानी हाँ! शुरुआत अच्छी है, मन ने संतुष्ट हो कर कहा था।

बुडापेस्ट शहर के बीच दुना नदी बहती है। यह डैन्यूब है, पर

हिंदी की 'ट', 'ड', 'ढ' जैसी कठोर ध्वनियाँ यहाँ नहीं हैं, इसलिए यह दुना है। जैसे छुट्टी नहीं छुत्ती, डैनियल नहीं दानियल। दुना के एक ओर है मैदानी इलाका पैश्त। दूसरी ओर है छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरा पहाड़ी इलाका बुदा। दुना पर कई पुल हैं—मारगित पुल, एलिजाबेथ पुल, पेतोफी पुल।

लेकिन नहीं, पुल केवल दुना पर ही नहीं है। यहाँ मेरे लिए भाषा भी एक पुल है। इस भाषाई पुल से होकर मैं अपने विद्यार्थियों तक पहुँच पा रही हूँ। और वे भी मुझ तक आ रहे हैं। मैं उनका कहा समझ पाती हूँ, अपना कहा समझा पाती हूँ। यह बहुत बड़ी नियामत है। गालिब सा अपना कहा आप ही समझे तो क्या समझे की पीड़ा नहीं है। संवादों की हलचल से भरा भाषा का यह पुल बहुत जीवंत है।

पर्यटन नगरी में हिंदी की बदौलत एक मुलाकात

धीरे-धीरे मैं जानती गई कि बुडापेस्ट हंगरी का राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक केंद्र होने के साथ-साथ हंगरी का अकादमिक केंद्र भी है। यहाँ कई शोध संस्थान, विश्वविद्यालय और अकादमियाँ हैं। बुडापेस्ट पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है और इस पर्यटन नगरी में एक दिन अचानक मेरी मुलाकात डोल्मा से हो गई—तिब्बत की बेटी, जिन्होंने पहली ही भेंट में बेझिझक कहा था कि वे भारत से हैं, धर्मशाला में पढी-लिखीं, फिर दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्रा बनीं। अब बारह वर्ष से हंगरी में हैं। हंगेरियन से विवाह किया है, हिंदी, तिब्बती, इंग्लिश और हंगेरियन भाषाएँ बोलती हैं। उनकी बेटी अभी हिंदी को छोड़कर तीनों भाषाएँ बोलती है। यहाँ कुछ तिब्बती शरणार्थी भी रहते हैं, उन्हीं में से एक तिब्बती युवक उनकी बेटी को तिब्बती गीत और नृत्य सिखाता है। डोल्मा कहती हैं—तिब्बती संस्कृति खत्म होने को है, इस तरह भी बचाएँगे तो कुछ दिन जीवित रह पाएगी।

उन्हें यह सुखद लगता है कि अब वे अपनी भूली हुई हिंदी याद कर सकती हैं, मेरे साथ हिंदी बोलने का अभ्यास कर सकती हैं। डोल्मा सदैव हिंदी बोलती और हँसते हुए यह भी कहती जाती—'मेरा हिंदी बहुत खराब है ना!'

सार सार को गहि रहे

भारोपीय अध्ययन विभाग में एम.ए. हिंदी का छात्र पेतैर केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से हिंदी पढ़कर आया है। वह अपनी भाषा में ब्लॉग लिखता है 'इंडिया इज़ इंडिया'। इसके माध्यम से वह भारत जानेवाले अपने देशवासियों के लिए एक अनूठे गाइड की भूमिका निभा रहा है। उसने हिंदी भाषा का अपना निजी कोष बनाया है। विदेश में ऐसे हिंदी प्रेमियों से मिलकर मन बाग-बाग होता रहा।

बुडापेस्ट में हंगेरियन भाषा ही मुख्य है। सब जगह सब कुछ इसी भाषा में दर्ज़ है। देश के युवा भी अधिकतर इंग्लिश नहीं बोलते हैं। यहाँ पाठ्यक्रम कुछ ऐसे हैं कि विद्यार्थी बहुत सी भाषाएँ सीखते हैं। मेरी कक्षा में ही एक छात्रा जापानी, संस्कृत, अरबी और हिंदी सीखती है। हंगेरियन उसकी मातृभाषा है और इंग्लिश भी वह जानती है। लेकिन यहाँ कक्षा का जो अनुशासन है, उसका रूप मेरे लिए नया था। सबसे पहले तो अध्यापक-अध्यापिका सर या मैडम नहीं, विजयाजी या मारियाजी हैं। दूसरी बात यह नई देखी कि अध्यापक पढ़ा रहे हैं, विद्यार्थी चाय या ठंडा पी रहे हैं। वातानुकूलित कक्षों में भी जब सर्दी लगी, कपड़े पहन रहे हैं, गरमी का अनुभव हुआ उतार रहे हैं। मुझे लगा कि देश और विदेश में अच्छा और बुरा दोनों हैं। ज़रूरत इस बात की है कि हम सार सार को गहि रहें और थोथा दें उड़ाए।

स्मृति का एक दिन

बुडापेस्ट में हिंदी पढ़ाने की स्मृतियों के साथ-साथ बहुत से अन्य विशिष्ट दिनों की स्मृतियाँ भी मन में डेरा डाले हुए हैं। ऐसा ही एक दिन तीस जनवरी की सुबह आया, जब दुना के किनारे गुमसुम सी एक इमारत के सामने एक-एक कर कई जन आ जुटे। इमारत की दीवार पर लगे संग-ए-मरमर पर सुनहरे अक्षरों में अंकित था—इस मकान में 30 जनवरी, 1913 को जन्म लिया भारतीय पिता उमराव सिंह शेरगिल और हंगेरियन माँ अंतोनिया की बेटी के रूप में चित्रकार अमृता शेरगिल ने! बुदापैश्त में भारतीय दूतावास, हंगरी के कला, संस्कृति और मानव संसाधन मंत्रालय

कला का क्षय नहीं होता। कला स्मृतियों में जीवित रहती है। कला धरोहर के रुप में संचित रहती है। इसलिए चित्रकार अमृता शेरगिल की स्मृतियाँ सौ वर्ष बाद भी बनी हुई हैं। उनके सेल्फ पोर्ट्रेट, गाँव के दृश्य, युवतियाँ, दुल्हन, पहाड़ की स्त्रियाँ, विश्राम, ब्रह्मचारी और मिट्टी के हाथी उसी स्मृति के प्रतिरूप हैं। कला जोड़ने वाले सूत्र के रुप में कैसे अपनी सार्थक भूमिका निभाती है, इसका जीता-जागता उदाहरण बुदापैश्त में आयोजित यह आत्मीय समारोह था।

और शहर की सामाजिक संस्था द्वारा आयोजित यह कार्यक्रम चित्रकार की स्मृति को समर्पित था, जहाँ बूढ़े, युवा, सामान्य, विशिष्ट—सभी जन सहज भाव से बारिश की बूँदों के बीच केवल अमृता शेरगिल की स्मृति से स्पंदित खड़े थे।

अमृता शेरगिल बीसवीं सदी की महत्वपूर्ण चित्रकार के रूप में जानी गईं। उनका आरंभिक जीवन बुदापैश्त में बीता, जहाँ ओपेरा गायिका माँ और प्रख्यात भारतविद् मामा इरविन बकतय के संरक्षण में कला और संगीत के प्रति उनकी अभिरुचि को आकाश मिला। पैतृक आवास गोरखपुर के पास के ग्रामीण परिवेश में रहते हुए उन्होंने भारतीय जीवन की गरीबी और हताशा के साथ-साथ विशेष रूप से नारी-जीवन के विषाद को नजदीक से देखा, जो उनकी चित्रकला में बारंबार अंकित होता रहा। उनकी यह आत्मस्वीकृति बहुत मर्मस्पर्शी है कि जब मैं यूरोप में होती हूँ, तो भारतीय जीवन की स्मृतियाँ मुझे भारत खींच लाती हैं, जैसे मेरी कला का सूत्र भारत से गहरे जुड़ा है।

कला का क्षय नहीं होता। कला स्मृतियों में जीवित रहती है। कला धरोहर के रुप में संचित रहती है। इसलिए चित्रकार अमृता शेरगिल की स्मृतियाँ सौ वर्ष बाद भी बनी हुई हैं। उनके सेल्फ पोर्ट्रेट, गाँव के दृश्य, युवतियाँ, दुल्हन, पहाड़ की स्त्रियाँ, विश्राम, ब्रह्मचारी और मिट्टी के हाथी उसी स्मृति के प्रतिरूप हैं। कला जोड़ने वाले सूत्र के रूप में कैसे अपनी सार्थक भूमिका निभाती है, इसका जीता-जागता उदाहरण बुदापैश्त में आयोजित यह आत्मीय समारोह था।

हिंदी का परचम

हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्ताँ हमारा—इन पंक्तियों के सही मायने यूरोप में बखूबी समझ आए। बुदापैश्त के ऐल्ते विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन विभाग में भूतल पर पहले कक्ष में दाखिल होते ही दरवाज़े पर कलात्मक अल्पना और बंदनवार स्वागत करती मिली, दीवारों पर हिंदी तिथि और माह सहित कलेंडर टँगे थे, एम.ए. हिंदी के छात्र पीटर ने सुंदर कैलीग्राफ़ी करते हुए कक्ष में यह उक्ति उकेर दी थी—

'कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी!'

और वह साथियों को भारत के संदर्भ में इसका अर्थ भी समझाता। विभाग के अन्य विभिन्न कक्षों में अठारह हज़ार हिंदी-संस्कृत ग्रंथ सुव्यवस्थित रूप से रखे हैं। हिंदी का आलोचनात्मक और नवीनतम सर्जनात्मक साहित्य मौजूद है। कैसेट्स और सीडी पर हिंदी से संबंधित सामग्री के साथ-साथ कुछ विशिष्ट हिंदी फ़िल्में भी संजोयी गई हैं। विभाग के विद्यार्थी भारतीय भोजन के अतिरिक्त यहाँ के नृत्य और संगीत में रुचि लेते हैं, भारतीय फ़िल्में भी इन्हें प्रिय हैं। विभाग के विद्यार्थियों का कला फ़िल्म क्लब सत्यजित रे की देवी, पथेर पांचाली और शतरंज के खिलाड़ी जैसी फ़िल्में न केवल दिखाता ही है बल्कि उन पर विमर्श भी करता है।

यहाँ हिंदी से हंगेरियन भाषा में अनूदित रचनाओं में प्रेमचंद की कहानियाँ तथा उपन्यास निर्मला और हरिशंकर परसाईजी की व्यंग्य रचनाएँ उपलब्ध हैं। उदय प्रकाशजी की 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' कहानी का अनुवाद विभागाध्यक्ष ने प्रस्तुत किया है। इस वर्ष हिंदी में दो शोधपत्र प्रस्तुत किए गए—'मोहन राकेश की कहानियों में स्त्री पात्र' और 'बदलता भारत—स्त्रियों की बदलती भूमिकाएँ : मन्नू भंडारी की कहानियों के संदर्भ में नारी की छवि'। फ़ेसबुक पर प्रथम वर्ष के छात्र लोरांद की यह पसंद दर्ज़ हुई पंडित रविशंकर और जॉर्ज हैरिसन की संगीत रचना—'प्रभुजी कृपा करो, मन में आन बसो'!

विभाग से अब तक चालीस से अधिक भारतविद् अध्ययन कर चुके हैं। इन्होंने देश और विदेश में विभिन्न पदों पर कार्य किया और वर्तमान में भी कार्यरत हैं। ये विशिष्ट क्षेत्र हैं—अध्यापन, सांस्कृतिक केंद्रों तथा संग्रहालयों में निदेशक, निजी और आधिकारिक रूप से हिंदी अनुवादक। हर दूसरा छात्र कुछ समय के लिए भारत ज़रूर हो आना चाहता है, ताकि जो यहाँ पढ़ा, जैसा यहाँ जाना, उसका साक्षात्कार कर सके। हिंदी और भारत से जुड़े विशिष्ट अवसरों, जैसे हिंदी दिवस, होली, दीवाली पर ये भारतीय परिधान में आने की कोशिश करते हैं।

यहाँ विश्वविद्यालय की योजना में एक साथ दो डिग्री के लिए अध्ययन करना अब तक वर्जित न था, इसलिए वर्तमान समय में कुछ छात्र-छात्राएँ हिंदी-संस्कृत के साथ-साथ पर्यटन, रचनात्मक लेखन, अंतरराष्ट्रीय संबंध, कला का इतिहास जैसे पाठ्यक्रमों से भी जुड़े हैं। इनके पास विकल्प है कि वे मुख्य या गौण विषय (माइनर या मेजर) के रूप में हिंदी-संस्कृत पढ़ सकते हैं। रोज़गार के अवसर कम हैं, फिर भी इनकी लगन और अभिरुचि देखकर प्रसन्नता होती है।

यह हिंदी थी, जिसका आत्मीय संस्पर्श दूर देश में सदैव अनूठी प्रेरणा का स्रोत बना रहा।

हिंदी विभाग
हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

□

10

बेलारूसी हिंदी-प्रेमी सुश्री आलेसिआ माकोव्स्काया से आत्माराम शर्मा की बातचीत

आत्माराम शर्मा

आत्माराम : हिंदी-प्रेमी पाठकों को अपने बारे में बताना चाहेंगी?

आलेसिआ : मैं बेलारूस में रहती हूँ और 2005 में मैंने केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से हिंदी भाषा दक्षता डिप्लोमा प्राप्त किया। आजकल हिंदी लेखों, कहानियों, दार्शनिक ग्रंथों तथा विभिन्न दस्तावेज़ों आदि का अनुवाद कर रही हूँ। बेलारूस में मेरे अलावा कोई अधिकृत हिंदी अनुवादक नहीं है। मैं बेलारूस के नोटरी चैंबर में पंजीकृत एकमात्र हिंदी अनुवादिका हूँ। विश्व हिंदी पत्रिका 2011 में मेरा आलेख प्रकाशित किया गया है। इसके अलावा मैं हिंदी की अध्यापिका भी हूँ।

अपने हिंदी प्रेम के बारे में बताएँ।

मेरा हिंदी प्रेम उस समय शुरू हुआ, जब मैंने भारत की संस्कृति में रुचि लेना प्रारंभ किया और शीघ्र ही मुझे इस बात का एहसास हो गया कि हिंदी भाषा का अध्ययन किए बिना भारत की संस्कृति की समग्रता एवं गहराई से ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकेगा।

बेलारूस में हिंदी प्रेमियों के बारे में बताना चाहेंगी?

बेलारूस में ऐसे लोग ज़रूर हैं (लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है) जो हिंदी में रुचि रखते हैं। लड़कियाँ हिंदी फ़िल्में पसंद करते हुए उन्हें मूल भाषा में देखना चाहती हैं। या फिर कोई भारतीय नृत्य सीखता है, बॉलीवुड डांस वगैरह और उन्हें गीतों का अनुवाद चाहिए। कभी-कभी किसी को भारतीय दर्शन में दिलचस्पी होती है तो उन्हें दार्शनिक ग्रंथों के अनुवाद की ज़रूरत पड़ती है। लेकिन उन सभी को हिंदी-प्रेमी मुश्किल से कह सकती हूँ, क्योंकि मेरे विचार से सही हिंदी-प्रेमी वह होता है, जो हिंदी के प्रचार के लिए प्रयास करता है, हिंदी के क्षेत्र में काम करता है।

रूस एवं यूरोप की युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं के बारे में क्या उतनी जानकारी रखती है, जितनी भारतीय उपमहाद्वीप के युवा यूरोप आदि के बारे में रखते हैं?

मेरे खयाल से अगर पूरे यूरोप के बारे में कहें तो वहाँ की युवा पीढ़ी भारतीय संस्कृति और भाषाओं के बारे में शायद ज़्यादा जानकारी नहीं रखती है। भारत की युवा पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति और भाषाओं से इसलिए भी ज़्यादा परिचित हैं, क्योंकि भारत में शायद उन विश्वविद्यालयों की संख्या कहीं ज़्यादा है, जिनमें यूरोपीय भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। जबकि यूरोप में ऐसे विश्वविद्यालयों की संख्या कम है, जिनमें भारतीय भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। रूस एवं यूरोप के युवा अपनी संस्कृति एवं जीवन शैली में गहरे तक डूबे रहते हैं। हालाँकि मेरा ऐसा मत है कि भारतीय संस्कृति यूरोपीय संस्कृति की अपेक्षा दुनिया में ज़्यादा प्रभाव रखती है।

बेलारूस में हिंदी शिक्षण और अनुवाद की क्या स्थिति है।

बेलारूस में एक भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं है, जिसमें हिंदी पाठ्यक्रम हो। अभी तक बेलारूस में जो हिंदी साहित्य पाया जाता था, उसका अनुवाद या तो रूस में किया जाता था या बेलारूस में। लेकिन खुद हिंदी से नहीं, बल्कि अंग्रेज़ी से। लेकिन पिछले कई सालों से मैं हिंदी साहित्य का रूसी और बेलारूसी में तथा रूसी और बेलारूसी साहित्य का हिंदी में अनुवाद कर रही हूँ। एक प्रसिद्ध बेलारूसी साहित्यिक पत्रिका ने मेरे इस काम की ओर ध्यान दिया है और बहुत जल्दी मेरे द्वारा अनुवादित कई आधुनिक और शास्त्रीय रचनाएँ उस पत्रिका में प्रकाशित होंगी।

हिंदुस्तान में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ लगातार हाशिए पर धकेली जा रही हैं। ऐसे में देश एवं विदेश में आयोजित होने वाले हिंदी सम्मेलनों की उपयोगिता को आप किस नज़र से देखती हैं?

हरेक भाषा अपनी संस्कृति की वाहक होती है, लिहाजा इसे बनाए रखने के लिए प्रचार-प्रसार करना अनिवार्य है। मेरे खयाल से भारत की एकजुटता के लिए हिंदी ने बहुत बड़ा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक योगदान दिया है, जबकि हिंदी के मुकाबले अन्य भारतीय भाषाएँ क्षेत्रीय संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। हिंदी में विभिन्न भारतीय संस्कृतियाँ समाहित हो गई लगती हैं। अत: हिंदी को दूसरों

की तुलना में ज़्यादा बढ़ावा देने की आवश्यकता है। इसका मतलब यह बिलकुल नहीं है कि अन्य भारतीय भाषाओं को भुला देना चाहिए। भारतीय जातियाँ अपनी संस्कृतियों और अपनी भाषाओं को सँभालने में बड़ी सक्षम हैं।

हिंदी अखबारों में हिंदी को इंग्लिश के तौर पर स्थापित करने की होड़ सी लगी हुई है। क्या आपको लगता है कि 20-30 सालों में हिंदी का स्वरूप घर के भीतर बोली जाने वाली बोली का बन जाएगा?

इंग्लिश काफ़ी पुराना विषय है और आजकल वह अधिक-से-अधिक गंभीर होता जा रहा है। हाँ, अंतरराष्ट्रीय भाषा होते हुए भी अंग्रेज़ी का प्रभाव बहुत ताकतवर है और इससे डरने का बहुत गहरा आधार है कि 20-30 सालों में हिंदी घर की बोली बन सकती है। हालाँकि गुज़रे दौर में भले ही हिंदी पर बहुत से संस्कृतियों और भाषाओं ने प्रभाव डाला था, तो भी हिंदी नया रूप पाते हुए भी हमेशा हिंदी ही बनी रहती थी और घर की बोली बनी रहकर भी आखिर में घरों से निकलकर पूरे देश में फैलती थी। लेकिन वर्तमान दौर जरा मुश्किल ज़ान पड़ता है। नहीं कहा जा सकता कि आनेवाले समय में इसका स्वरूप कितना बदलेगा।

साहित्य के ज़रिए समाज कैसे आंदोलित होता है?

एक रूसी कवि ने कहा, ''एक ही शब्द मार सकता है, मौत से बचा भी सकता है, एक ही शब्द सेना का नेतृत्व भी कर सकता है।'' इतिहास गवाह है कि किसी भी देश के साहित्य का प्रभाव देश के समाज पर असीमित है। और कई ऐसी रचनाएँ भी हैं, जिसने दुनिया के लोगों पर प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए, बाइबिल लीजिए, रचनाओं को पढ़कर लोग कुछ सोचने-समझने लगते हैं। और जब बहुतों की सोच में एकता पैदा होती है तभी समाज में आंदोलन भी पैदा हो सकता है, जो देश भर में या दुनिया में भी फैल सकता है।

हिंदी साहित्य में आपको कौन सी विधा प्रिय लगती है?

हालाँकि हिंदी साहित्य से मेरा बहुत निकट का परिचय नहीं है तो भी निःसंदेह पद्य मुझे सबसे ज़्यादा प्रिय लगता है। पद्य पाठकों को सबसे प्रभावशाली रूप से रचनाकर के विचारों और अनुभवों के बारे में बता देता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में वर्तमान समय-समाज का अंकन हो पा रहा है?

हाँ, यह बिलकुल सही है। कोई भी लेखक, चाहे वह कितना भी काल्पनिक साहित्य सृजन करता हो, असल में अपने देश, समय और समाज की परिस्थितियों के बारे में लिखता है और इन परिस्थितियों के विषय पर अपनी राय व्यक्त करता है। और इस राय में वर्तमान समय-समाज का अंकन अवश्य होता है।

विदेशों में लिखे जा रहे हिंदी साहित्य के बारे में एक राय यह बनती है कि यह नॉस्टेल्जिया का साहित्य है।

एक राय यह भी है कि कोई भी साहित्य हमेशा नॉस्टेल्जिया का ही साहित्य होता है और नॉस्टेल्जिया के बिना साहित्य भी नहीं होता है। मैं इससे सहमत नहीं हूँ, लेकिन यह राय भी सोचनीय है। मुझे नहीं लगता है कि विदेशों में लिखा जा रहा हिंदी साहित्य पूरी तरह से नॉस्टेल्जिया का साहित्य है; लेकिन हाँ, इस राय में सच्चाई का बड़ा हिस्सा है। असल में यह अव्यक्त नॉस्टेल्जिया ज़्यादा है, स्पष्ट नॉस्टेल्जिया कम।

लेखक एक आम आदमी से किस प्रकार भिन्न होता है?

अच्छे साहित्यकार को रचने के लिए पिटी-पिटाई बातों से, पिटे-पिटाए विचारों से मुक्त हो जाना चाहिए। आम आदमी इसीलिए आम है, क्योंकि उस के मन में बहुत पिटे-पिटाए विचार हैं, जबकि अच्छे लेखक का मन उनसे मुक्त है, इसलिए वह उत्कृष्ट कृति को आकार दे पाता है।

आज का युवा वर्ग साहित्य से दूर होता जा रहा है, इस पर क्या कहेंगी?

एक तरफ़ लगता है कि ऐसा ही हो रहा है, लेकिन दूसरी तरफ युवा पीढ़ी पहले से कहीं ज़्यादा साहित्य पढ़ती है। क्या सबसे लोकप्रिय 100 पुस्तकों की सूची आज हाज़िर नहीं है? ज़रूर है! नया-नया साहित्य आता है, युवा वर्ग पुराने साहित्य को छोड़कर नए में रुचि रखता है। यह स्वाभाविक प्रवृति है।

हिंदी के प्रिय साहित्यकारों के बारे में बताना चाहेंगी?

जैसाकि मैंने पहले कहा कि हिंदी साहित्य से मेरा निकट परिचय नहीं है और मैं बहुत नामों को नहीं जानती। क्लासिक साहित्यकारों में से मैं सबसे पहले मुंशी प्रेमचंद का उल्लेख करना चाहूँगी। वैसे मैं अभी उनका 'ग़बन' पढ़ रही हूँ तथा मैंने उनकी कई कहानियों का अनुवाद बेलारूसी पत्रिका के लिए किया है। प्रेमचंद की रचनाओं का सद्गुण है पात्रों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का गहन और विस्तृत वर्णन। उस समय के अन्य लेखकों की अपेक्षा प्रेमचंद की रचनाओं में तत्कालीन भारत की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर सबसे अधिक रोशनी डाली जाती है। जिन आधुनिक लेखकों की रचनाओं को मैंने पढ़ा तथा जिनकी रचनाओं का अनुवाद किया, उनमें कर्तार सिंह दुग्गल, जिनके 'चाँदनी रात का दुखेत' नामक संग्रह का अनुवाद मैं जल्दी ही खत्म करूँगी, विमल चंद्र पांडेय, एस.आर. हरनोट, राम आसरे गोयल, अनीता कपूर एवं सईद अयूब आदि प्रमुख हैं।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के भविष्य को आप किस नज़र से देखती हैं?

आज भी दुनिया में हिंदी की माँग बहुत कम है। लेकिन मेरे विचार से आज की दुनिया पहले की अपेक्षा ज़्यादा खुली है। ज़्यादा से ज़्यादा भारतीय विदेश जा रहे हैं तथा यूरोपीय भी भारत पहुँच रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप हिंदी धीरे-धीरे सारी दुनिया में फैल रही है। एक बहुत अच्छा उदाहरण है पूरी दुनिया में हिंदी फ़िल्में साल-दर-साल अधिक-से-अधिक लोकप्रिय हो रही हैं और यद्यपि इंग्लिश की समस्या ने यहाँ भी प्रवेश किया है, तथापि फ़िल्मों की बदौलत हिंदी संसार भर में प्रचार पा रही है। इसके अलावा अनेक देशों में हिंदी प्रचार करने वाली विभिन्न संस्थाएँ पहले से ही मौजूद हैं, जिनमें विश्व हिंदी सचिवालय भी शामिल है। इस प्रकार मैं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का अच्छा भविष्य देखती हूँ, कम-से-कम ऐसी आशा करती हूँ कि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल होगा।

हिंदी के नाम पर प्रायोजित पुरस्कारों, सम्मानों और विदेश यात्राओं की भरमार है, क्या इससे साहित्य लेखन के स्तर में इजाफा हुआ है या फिर स्तर में गिरावट आई है?

यह इस बात पर निर्भर है कि उन पुरस्कारों, सम्मानों और विदेश यात्राओं के आयोजन करने वाले लोग साहित्य का क्या स्तर मानते हैं, लेखन का कैसा स्तर चाहते हैं। इस विषय पर हर किसी की राय अलग-अलग हो सकती है। लेखक कई प्रकाशकों को अपनी किताब देता है और देखता है कि एक प्रकाशक को वह बिलकुल पसंद नहीं आती, जबकि कोई दूसरा उसे पसंद कर लेता है। इसी प्रकार अगर आयोजन करने वाले लोगों का मापदंड ऊँचा होता है तो इससे साहित्य लेखन के स्तर में इजाफा होता है, लेकिन अगर आयोजन करने वाले निम्न स्तर पर उतर आते हैं तो इससे गिरावट आती है।

हिंदी साहित्य के पाठकों के बारे में आपकी क्या राय है?

मेरे विचार में आज का युवा पुस्तकालय और पुस्तकें खरीदकर पढ़ने की बजाय इंटरनेट के ज़रिए ज़्यादा किताबें पढ़ता है।

दक्षिण अफ्रीका में संपन्न विश्व हिंदी सम्मेलन के बारे में आप क्या कहेंगी?

सच पूछें तो उस सम्मेलन के बारे में मैं बहुत कुछ नहीं जानती। उस सम्मेलन के बारे में जब पता चला तो मैंने भाग लेने के लिए अनुरोध भेजा था, लेकिन जवाब नहीं पाया। मैंने इंटरनेट में कई समीक्षाएँ पढ़ीं, उनसे कुछ जानकारी और कई नाम भी पता चल गए।

दुनिया भर में फैले विदेशी मूल के हिंदी प्रेमियों के बारे में आप क्या कहेंगी?

पिछले कई सालों में मुझे कई सम्मेलनों और सेमिनारों में भाग लेने का मौका मिला। उनमें से अनेक हिंदी-प्रेमियों से परिचय हुआ और इस परिचय पर मुझे बहुत गर्व है। उन सभी लोगों से मैं बड़ी खुशी से संपर्क रखती हूँ। इसके अलावा, इंटरनेट में फ़ेसबुक और अन्य सामाजिक नेटवर्क के द्वारा भी मैं दुनिया भर में बहुत से हिंदी-प्रेमियों से संपर्क कर सकती हूँ।

साभार : गर्भनाल
वर्ष 3, अंक 5,
इंटरनेट संस्करण 80, जुलाई 2013
garbhanal@ymail.com

□

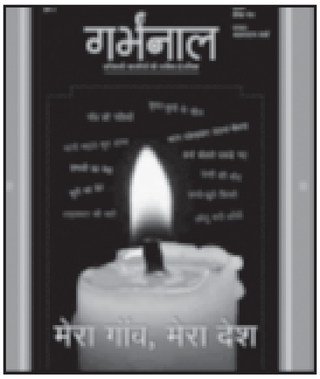

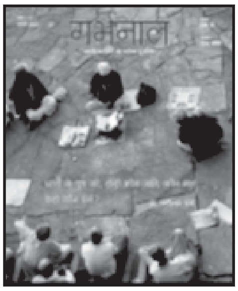

गर्भनाल

'गर्भनाल' प्रवासी भारतीयों की मासिक ई-पत्रिका है, जो हर महीने पी.डी.एफ. प्रारूप में निःशुल्क वितरित की जाती है। 'गर्भनाल' के संस्थापक हैं श्री आत्माराम शर्मा तथा संपादक श्रीमती सुषमा शर्मा। अपनी जमीन से दूर रहने वाले प्रवासी भारतीयों की आवाज के मंच के तौर पर गर्भनाल एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास है। दुनिया भर के हिंदी प्रेमियों ने इसे प्रोत्साहित किया और सराहा है। 'गर्भनाल' के अब तक 85 इंटरनेट संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसे लगभग 50 हजार इ-मेल पतों पर भेजा जाता है। यह प्रयास अनवरत जारी रहा है तथा पिछले कुछ वर्षों से पत्रिका का मुद्रित रूप भी उपलब्ध है।

गर्भनाल के पिछले सभी अंक www.garbhanal.com पर उपलब्ध हैं। अधिक जानकारी के लिए garbhanal@ymail.com पर संपर्क किया जा सकता है।

11

हिंदी-प्रेमी डॉ. हाईंत्स वर्नर वेसलर से आत्माराम शर्मा की बातचीत

आत्माराम शर्मा

आत्माराम : हिंदी-प्रेमी पाठकों को अपने बारे में बताना चाहेंगे?

डॉ. हाईंत्स : मेरी राष्ट्रीयता जर्मन है और इक्कीस साल की उम्र से मैंने जर्मनी में इंडोलॉजी, जिसे हिंदी में भारत-विद्या कहा जाता है, की पढ़ाई शुरू की। उस वक्त मेरी माताजी मेरे इस निर्णय से खुश नहीं थी क्योंकि वे चाहती थीं, कि मैं या तो डॉक्टर बनूँ या इंजीनीयर जैसा कि अक्सर ही माताएँ अपने बच्चों को बनाना चाहती हैं। लेकिन मैंने बहुत हठ के साथ भारतीय भाषाएँ सीखने की शुरुआत की। जर्मनी में इंडोलॉजी की जो परंपरा है, उसमें संस्कृत मुख्य विषय है, जबकि आधुनिक भाषाओं में ज़्यादातर हिंदी गौण विषय होता है। मैंने संस्कृत, हिंदी और पाली की पढ़ाई एक साथ शुरू की। बाद के वर्षों में एम.ए. एवं पी-एच.डी. तक मेरी मुख्य पढ़ाई संस्कृत में ही हुई है।

आपके परिवार में भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा के संदर्भ में कोई माहौल था?

परिवार में ऐसा कोई माहौल नहीं था। 15 वर्ष की उम्र में मैंने हेरमान हैस्से का उपन्यास 'सिद्धार्थ' पढ़ा था, जो काफ़ी प्रचलित है। दुनिया की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। उसको पढ़कर ही मुझे पता चला कि जर्मन विश्वविद्यालय में ही दीगर भारतीय भाषाएँ पढ़ी जा सकती हैं। हमारे परिवार में भारत को लेकर कोई खास रुचि नहीं थी। मेरे पिताजी सरकारी सेवा में काम करते थे और माताजी घरेलू महिला थीं। जब मेरे पिताजी का देहांत हो गया तो इसका असर मेरे ऊपर दूसरी तरह से पड़ा। मुझे अनेकों तरह की परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, इससे मेरे मन में जीवन के बारे में, दर्शन के बारे में अनेक तरह के सवाल उठने लगे और इससे मेरी जागरूकता पुष्ट हुई, एक तरह की समझ विकसित हुई। मेरे परिवार में हिंदी और भारत के बारे में जिज्ञासा की कोई पृष्ठभूमि नहीं थी।

आपका हिंदी प्रेम कैसे शुरू हुआ?

जब मैंने पढ़ाई शुरू की तो उस वक्त सोचा कि संस्कृत के साथ हिंदी भी सीखनी चाहिए। संस्कृत बहुत कठिन भाषा है और इसे सीखने में मैंने बहुत मेहनत की। लेकिन साथ ही हिंदी सीखते हुए बहुत मज़ा आया। हिंदी में लोगों से बात करना ज़्यादा अच्छा लगता था और यही कारण है कि हिंदी सीखने में रुचि लगातार बढ़ती चली गई।

मैंने बॉन में पढ़ाई की। उस वक्त कोलोन शहर में वॉयस ऑफ जर्मनी का मुख्यालय था। यह जर्मनी का हिंदी में प्रसारित होने वाला अंतरराष्ट्रीय रेडियो स्टेशन है। हिंदुस्तान से जब मैं हिंदी का एडवांस डिप्लोमा करने के बाद यहाँ पहुँचा तो कुछ हद तक हिंदी में बातचीत करने में सक्षम हो गया था। इसके अलावा जर्मनी में लोग पढ़ते हैं तो ज़्यादातर लिखित हिंदी पढ़ते हैं, तो रेडियो से लोगों से जब मेरी बातचीत के ज़रिए संपर्क बना तो धीरे-धीरे मैं हिंदी पर अधिकार प्राप्त करने की दिशा में बढ़ने लगा।

आप जिस अधिकार पूर्वक हिंदी में बात कर रहे हैं, उसे सुनकर सुखद आश्चर्य होता है, इस उपलब्धि के पीछे कौन सी प्रेरक शक्ति काम कर रही है?

इसके पीछे क्या है, यह कहना मेरे किए काफ़ी कठिन है, लेकिन बस यही कह सकता हूँ कि दुनिया की कोई भी ज़ुबान सीखी जा सकती है। चीनी हो, जापानी हो, रूसी, एस्किमो या अफ़्रीकी ज़ुबान हो उसे सीखा जा सकता है। मैं इस बात का जीवित प्रमाण हूँ कि चाहने पर हिंदी भाषा पर भी अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

मेरे खयाल से इसमें मेरी कोई खासियत नहीं है। मैं यह भी नहीं कहूँगा कि हिंदी सीखने के पीछे मेरे पिछले जन्म के कोई संस्कार

काम कर रहे हैं, बल्कि मैं यह कहना चाहता हूँ कि इन्सान को मेहनत करनी चाहिए और अगर वह कई सालों तक मेहनत करता है तो वह किसी भी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा मुझे एक बात यह भी कहनी है कि हिंदी सीखने के दौरान पढ़ाने से मुझे बहुत फायदा मिला है। जब मुझे अपने छात्रों को हिंदी पढ़ानी थी तो उस वक्त मैंने इस भाषा पर बहुत मेहनत की।

आप इन दिनों स्वीडन में अध्यापन कर रहे हैं?

बॉन यूनिवर्सिटी से मैंने डी.लिट. किया और वहीं नौकरी कर ली, लेकिन जर्मनी की वह नौकरी स्थायी नहीं थी, तो फिर स्वीडन में एक विजिटिंग प्रोफेसर बनने का प्रस्ताव मुझे मिला और मैंने फैसला किया कि मैं वहाँ जाऊँ। वैसे स्वीडन की जुबान हमारी जुबान से अलग है तो भी मैं स्वीडन की जुबान स्वीडिश सीख रहा हूँ। स्वीडन में 19वीं शताब्दी से ऐसी परंपरा चली आ रही थी कि ज़्यादातर पढ़ाई संस्कृत में ही होती थी, अब जो छात्र हमारे यहाँ आते हैं और जो फैकल्टी की ओर से माँग होती है, वो ज़्यादातर आधुनिक भाषाओं की ओर जाती है। मेरे अलावा इस वक्त वहाँ दूसरा कोई नहीं है। अभी मुझे बहुत पढ़ाना है। इससे मैं बहुत खुश हो जाता हूँ, पर मुझे उम्मीद है कि आने वाले दिनों में इस काम के लिए कुछ अन्य लोग भी मेरे साथ जुड़ेंगे, ताकि अकेले पढ़ाने का मेरा सिलसिला खत्म हो जाए।

यूरोप व अमरीकी युवाओं में भारतीय संस्कृति को लेकर क्या वैसा ही आकर्षण है, जैसा कि भारतीय उपमहाद्वीप के युवाओं में उनकी भाषा और रहन-सहन को लेकर बना हुआ है?

1960 के दशक के बाद जो धारा चली आ रही है, वह जो हिप्पी आंदोलन के साथ उभरी थी, यानी भारत के दर्शन में रुचि लेना आदि। वह आंदोलन अब पहले से कमज़ोर पड़ा है, खासकर हिंदुस्तान, नेपाल और श्रीलंका के संदर्भ में। श्रीलंका में पिछले दिनों वहाँ हुई दहशतगर्दी की वजह से, मैं सचमुच उसे दहशतगर्दी नहीं कहूँगा, वहाँ तमिल और सिंहली के बीच में जो लड़ाई शुरू हुई, उस कारण से, पर मैं यह नहीं कह सकता हूँ कि हमारे छात्रों में ज़्यादातर दर्शन में रुचि रखते हैं, ऐसे छात्र हैं जो ज़्यादातर फ़िल्मों में दिलचस्पी लेते हैं। हालाँकि आर्थिक जगत में ज़्यादातर अंग्रेज़ी ही चलती है, पर हिंदी के साथ जो अंतर-सांस्कृतिक संपर्क होता है, उसकी क्षमता भाषा के साथ आ जाती है। इस बात को पश्चिमी दुनिया में लोग समझते हैं। मुझे लगता है कि चीनी अध्ययन-अध्यापन को देखकर सांस्कृतिक जागरूकता और भाषा के स्तर पर जागरूकता बहुत ज़्यादा है, जबकि चीन में आम बोलचाल के स्तर पर अंग्रेज़ी नहीं चलती। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि चीनी भाषा चीन में ज़्यादा जीवित है, जबकि भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी की स्थिति भारत में वैसी नहीं है। भारत में आर्थिक जगत एवं रोज़गार के क्षेत्र में ज़्यादातर अंग्रेज़ी ही चलती है। इस मोर्चे पर हिंदी कमज़ोर पड़ जाती है।

दुनिया की अन्य भाषाओं की तुलना में हिंदी को आप किस नज़रिए से देखते हैं?

अपनी मातृभाषा के अलावा जब आप कोई दूसरी भाषा सीखते हैं तो आप स्वयं को अलग तरीके से अभिव्यक्त करते हैं। हरेक भाषा की अपनी ताकत और खूबसूरती होती है, जो उसे विशिष्ट बनाती है। जैसे हिंदी में 'तू', 'तुम' और 'आप' तीन तरीकों से लोगों को संबोधित करते हैं, अंग्रेज़ी में केवल एक है 'यू'। तो भाषा के स्तर पर जाकर यह पता चलता है कि हिंदुस्तान में आपस में संबोधित करने का कैसे अलग-अलग तरीका होता है। भाषा के तौर पर हिंदी की समृद्धि का यह केवल एक नमूना है, और भी कई उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अपने विश्वविद्यालय के भाषा विभाग और हिंदी आदि की स्थिति के बारे में बताएँ।

हमारे विश्वविद्यालय में भाषा वाङ्मय एवं भाषा विज्ञान का विभाग है। इसमें अलग-अलग 5-6 भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। लैटिन और ग्रीक भी उसके अंदर आती हैं। यहाँ दुनिया की तमाम भाषाओं के मुकाबले चीनी भाषा का हिस्सा सबसे बड़ा है। फ़ारसी, अरबी, टर्किश और हिंदी आदि इसके बाद आती हैं। इंडोलॉजी में संस्कृत और हिंदी आदि जुड़ी हुई हैं। तुलनात्मक भाषा विज्ञान भी है, जिसमें खासकर वैदिक संस्कृत भी आती है। इसके अलावा अलग-अलग कोर्स हैं अलग-अलग भाषाओं में। हमारा संस्थान बहुत बड़ा है। चीनी जुबान सीखने के लिए औसतन हर साल 60-70 छात्र आते हैं, जबकि हिंदी सीखने के लिए मुश्किल से 10-12 छात्र ही होते हैं। अब इससे ही आप अनुमान लगा लीजिए हिंदी की स्थिति के बारे में।

हिंदी से जर्मन एवं जर्मन से हिंदी में अनुवाद की क्या स्थिति है?

जर्मन मेरी मातृभाषा है और उसमें ही मैं सपने देखता हूँ। हालाँकि मैं स्वीडिश में अनुवाद कर सकता हूँ, उसी प्रकार अंग्रेज़ी भी मेरी मातृभाषा नहीं है तो उसमें जब मैं अनुवाद करता हूँ तो वह साहित्यिक नहीं बन पाता। मैंने दो साथियों के साथ हबीब तनवीर के नाटक 'आगरा बाज़ार' और उदयप्रकाश का उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की' का हिंदी से जर्मन में अनुवाद किया है। इन दोनों के अलावा अजय नावरिया की कहानी 'गोदना' का जर्मन में अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। अजय नावरिया जामिया मिल्लिया में प्रोफेसर हैं और दलित लेखकों में इनको मैं खास मानता हूँ। इनका

उपन्यास 'उधर के लोग' और कई कहानियाँ मुझे पसंद हैं। उनका कथानक नई दिशा की ओर इंगित करता है, उसमें सपने हैं, जादू है और खासकर तथाकथित जादू यथार्थवाद उनके लेखन में स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है।

हिंदी अखबारों की भाषा इन दिनों इंग्लिश होती जा रही है। अगर यही दौर जारी रहा तो आने वाले 20-30 सालों में हिंदी का स्वरूप कैसा होगा?

मुझे हिंदी की एक अलग ही तस्वीर दिखाई दे रही है। पिछले कुछ सालों में अहिंदी-भाषी प्रदेशों में हिंदी का जिस तरह से आम बोलचाल में इस्तेमाल बढ़ा है, उससे हिंदी की सफलता की कहानी के तौर पर देखना चाहिए। मज़ेदार बात यह है कि इसमें सरकारी तंत्र का कोई योगदान नहीं है, बल्कि मीडिया की दुनिया ने हिंदी को लोकप्रिय बनाने में अहम भूमिका अदा की है। फ़िल्मों के गाने, एफ.एम. रेडियो आदि की लोकप्रियता जिस तेज़ी से युवाओं में बढ़ी है, वह इसका जीवंत प्रमाण है।

इसके अलावा हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि आधुनिक दौर की शुद्ध हिंदी का स्वरूप आज़ादी के संघर्ष के दौरान और उसके बाद के दौर में विकसित हुआ है। अनेकों बार यह खड़ी हिंदी एक तरीके से कृत्रिम भाषा महसूस होती थी, क्योंकि उसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों का बहुतायत में इस्तेमाल किया गया, जबकि आज के दौर में संस्कृत का स्थान अंग्रेज़ी ने ले लिया है, यानी अब बोलचाल की हिंदी में अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। तो इसे मैं हिंदी के लिए अच्छा ही मानता हूँ, क्योंकि कोई भी भाषा अपने विकास-क्रम में दूसरी भाषा के शब्दों को अपने में समाहित करती जाती है। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में बोली जाने वाली हिंदी में अरबी, फ़ारसी, पुर्तगाली आदि भाषाओं के ऐसे अनेकों शब्द हैं, जो अब हिंदी के ही हो गए हैं।

तो हिंदी एक तरह से इंटर कल्चर लैंग्वेज, जिसे अंतर्संबंधी भाषा कहना ज़्यादा उपयुक्त होगा, के तौर पर आगे बढ़ रही है। हालाँकि यह भी कहना सही है कि हरेक भाषा का अपना एक मानक स्वरूप होता है, लेकिन हिंदी का संस्कृतनिष्ठ स्वरूप ही असली हिंदी है, मैं ऐसा नहीं मानता। इस संबंध में मैं जर्मन भाषा का उदाहरण देना चाहूँगा। डेढ़ सौ साल पहले उसका जो स्वरूप था, वह आज वैसा नहीं है। उसमें फ्रेंच के बहुतेरे शब्द शामिल हो गए हैं। इसी तरह अंग्रेज़ी में भी सैकड़ों फ्रेंच शब्द आ गए हैं। तो इस प्रकार मैं यह नहीं कहूँगा कि हिंदी का स्वरूप बिगड़ रहा है।

हिंदी के अखबार विज्ञापनों के लिए ऐसा कर रहे हैं या कुछ और दबाव है?

मैं जब हिंदी के अखबार पढ़ता हूँ तो मुझे नहीं लगता है कि केवल अंग्रेज़ी के लफ्ज़ ही इस्तेमाल किए जा रहे हैं। बहुतेरे ऐसे संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी हो रहा है, जो शायद पचास साल पहले इस्तमाल करना मामूली बात नहीं थी। मसलन, अधिकार, उग्रवाद, प्रदर्शन आदि शब्द अब धड़ल्ले से प्रयोग हो रहे हैं। तो एक तरह से संस्कृत शब्दों के हिंदी में इस्तेमाल को मैं स्वाभाविक प्रक्रिया के तौर पर देखता हूँ।

पुराने लोगों को स्मरण होगा कि आज़ादी से पहले सुनीति कुमार चटर्जी, जो हिंदुस्तान के बड़े भाषा वैज्ञानिक माने जाते थे, ने कहा था कि भारत की सभी भाषाओं की लिपि रोमन में होना चाहिए, जिस तरह से इंडोनेशियन, तुर्की आदि ज़ुबान रोमन में लिखी जाती हैं, लेकिन भारत में उस समय इस बात को कोई मानने को तैयार नहीं था, लेकिन आज देखिए, इंटरनेट पर इ-मेल और मोबाइल पर एस.एम.एस. लिखते समय हिंदी को रोमन लिपि में लिखने का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। तो समाज में भाषा का विकास अलग-अलग तरीके और विभिन्न स्तरों पर जारी रहता है, इसलिए हिंदी के विकास के संदर्भ में मुझे निराशा का कोई कारण दिखाई नहीं देता है।

यूनिकोड ने हिंदी के प्रयोग को सरल और प्रचलित कर दिया है?

पिछले चार-पाँच सालों में इंटरनेट पर हिंदी के उपयोग में तेज़ी आई है। हिंदी में ब्लॉग लेखन, फ़ेसबुक आदि पर भी इसके इस्तेमाल का चलन युवाओं में तेज़ी से देखने को मिल रहा है। इससे लोगों के बीच गहरा संपर्क बन रहा है। किसी भी भाषा को जीवंत बनाए रखने के लिए यह ज़रूरी भी है और यूनिकोड ने हिंदी के प्रयोग के माहौल को बढ़ावा दिया है। साहित्यिक हिंदी के अलावा भी हिंदी के और भी अलग-अलग रूप हैं, उनमें से मीडिया द्वारा उपयोग की जा रही हिंदी का स्वरूप एक है। जहाँ तक मेरा अनुभव है, विदेशों में मीडिया की हिंदी लोगों में ज़्यादा प्रचलन और प्रयोग में लाई जाती है और इसी को आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

हिंदी के प्रवासी लेखक या प्रवासी साहित्यकार संबंध के बारे में आप क्या कहेंगे?

यह अपनी पहचान की खोज करने के दौरान पैदा हुआ शब्द है। लोग हिंदी के अलावा पंजाबी, उर्दू, तमिल आदि में लिखते हैं, पर असली बात देखने लायक यह है कि उनके लिखे को पढ़ता कौन है? मेरा मानना है कि तथाकथित हिंदी के प्रवासी लेखकों की रचनाओं को पढ़नेवालों की संख्या बहुत ही सीमित है। हिंदी की नामी पत्रिकाओं में इन लेखकों की रचनाएँ कभी-कभार ही प्रकाशित हो पाती हैं। यहाँ रचना की गुणवत्ता का प्रश्न नहीं है, मुझे लगता है कि यहाँ संपर्क न हो पाने या उसका अभाव होना हानिकारक है। इसके अलावा मेरे

मन में कभी-कभी यह भी सवाल आता है कि हिंदुस्तान में चालीस से पैंतालीस करोड़ लोग मातृभाषा के तौर पर हिंदी बोलते हैं, पढ़ते हैं, लेकिन बड़े-से-बड़े और नामी प्रकाशन-गृह में जब कोई उपन्यास या कहानी संग्रह प्रकाशित होता है और उसका प्रिंट ऑर्डर अगर पाँच हज़ार प्रतियों का हो तो यह बहुत बड़ी बात मानी जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि हिंदी समाज में लोगों की साहित्य में दिलचस्पी बहुत कम है। उनके जीवन की प्राथमिकता में दीगर बातें पहले हैं और साहित्य के लिए समय ही नहीं है। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि अच्छे साहित्य की कोई कीमत नहीं है। हाँ, यह ज़रूर है कि अच्छे साहित्य को समकालीन दौर में स्वीकृति या प्रशंसा प्राप्त न हो, लेकिन पचास-सौ सालों के बाद भी अगर उसे स्वीकारा जाए तो साहित्य सृजन को सार्थक कहा जाएगा। मुक्तिबोध और अज्ञेय आज भी पढ़े जा रहे हैं।

हिंदी साहित्यकारों की दोहरी मानसिकता जगज़ाहिर है। आपका अनुभव क्या है?

मैं ऐसे अनेक लोगों को जानता हूँ, जो हिंदी के हक के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर बड़े जोर-शोर से काम करते हैं, लेकिन अपने घर में बच्चों से अंग्रेज़ी में बात करते हैं। उनका परिवार हर तरीके से अंग्रेज़ी मानसिकता में जीता है। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता दी जाए या नहीं, इससे ज़्यादा महत्वपूर्ण मैं यह मानता हूँ कि हिंदी में अच्छे साहित्य का सृजन हो, पत्रकारिता प्रतिबद्ध हो जाए, अच्छी और प्रेरक फ़िल्में बनें, जो लोगों को पसंद आएँ। तो इस तरह से हिंदी आगे बढ़ती जाएगी और फिर उसे उसका स्वाभाविक हक खुद-ब-खुद प्राप्त हो जाएगा।

हिंदी के बड़े साहित्यकार अज्ञेय ने लिखा है—''मैं अपनी जुबान से लड़ाई करता हूँ, मैं शब्दों की खोज में मेहनत करता हूँ, मैं कभी-कभी गाली भी देता हूँ अपनी जुबान को, पर मैं हमेशा अपनी जुबान के संपर्क में हूँ, मुझे लगता है कि ये मैं ही हूँ जो अपनी अस्मिता की खोज करता हूँ, जब मैं हिंदी में बात करता हूँ।'' तो अज्ञेय की यह बात गहरी है और हिंदी के संदर्भ में विचारणीय भी। हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल जाए, वह तो ठीक है, पर असली बात अपनी भाषा को लेकर हमारे मन में कितना सम्मान और कैसा बरताव कायम है, इससे ज़्यादा फर्क पड़ता है।

फादर कामिल बुल्के जैसे विदेशी मूल के अन्य हिंदी-प्रेमियों का उल्लेख करना चाहेंगे?

फादर कामिल बुल्के तो बहुत मशहूर हैं। उनके तैयार किए शब्दकोश का मैं इस्तेमाल करता हूँ। रामकथा पर उनके पी-एच.डी. शोधग्रंथ को भी मैं पढ़ता हूँ, लेकिन उन जैसी बड़ी शख्सियत का विदेशी मूल का हिंदी-प्रेमी विद्वान मुझे आज तक नहीं मिला है। हालाँकि मेरी खोज अब भी जारी है। यों पूरी दुनिया में बहुतेरे विदेशी मूल के हिंदी-प्रेमी विद्वान हैं। अभी हाल ही में स्पेन में एक सम्मेलन में बहुतेरे विदेशी हिंदी-प्रेमी विद्वान जुटे थे, पर हम लोग फादर की तुलना में बहुत छोटे हैं और उन्हें मैं हिंदी-प्रेमी ही कहूँगा। सम्मेलन में शिरकत करने पचास-साठ लोग आए थे, जिसमें आधे विदेशी और आधे हिंदुस्तानी थे। यह पूरी संगोष्ठी यूरोप में हिंदी भाषा और उसके अनुवाद विषय पर केंद्रित थी।

विदेशी मूल के हिंदी के विद्वानों को भारत सरकार पुरस्कृत करती है, आप क्या कहेंगे?

हिंदी का प्रचार-प्रसार करने, उसे बढ़ावा देने के लिए विदेशी मूल को हिंदी प्रेमियों के भारत सरकार द्वारा जो सम्मान दिया जाता है, वह तो अच्छी बात है, पर मेरे खयाल से उससे भी बड़ी बात यह होगी कि दुनिया भर के इन विदेशी हिंदी-प्रेमियों के लिए दिल्ली में एक संस्थान बनाया जाए। जिसका स्वरूप भारतीय भाषाएँ अनुवादक संस्थान जैसा कुछ हो सकता है। जहाँ साल में चार-पाँच बार हिंदी में अनुवाद सेमिनार आयोजित किए जा सकें। यानी हिंदी से विदेशी भाषा और विदेशी भाषा के श्रेष्ठ साहित्य का हिंदी में अनुवाद करवाया जाए तो यह बड़ी उपलब्धि होगी। इस संस्थान में लाइब्रेरी हो, विदेशियों के रहने के लिए सस्ते कमरे हों तो उससे बहुत फ़ायदा होगा। अभी जो विदेशी हिंदी प्रेमी आपस में मिल रहे हैं, वह महज़ इत्तेफाक होता है। इस तरह के संस्थान के ज़रिए दुनिया भर के विदेशी एक जगह इकट्ठा होंगे तो उससे बहुत फ़ायदा होगा और दुनिया भर में हिंदी के पक्ष में माहौल बनेगा और प्रचार भी होगा।

वर्धा का अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय इस दिशा में काम कर रहा है।

वर्धा का हिंदी विश्वविद्यालय कुछ हद तक मेहनत करता है, लेकिन विदेशियों की नज़र से वर्धा बहुत दूर है, जबकि दिल्ली हर लिहाज़ से ज़्यादा सुविधाजनक है। एक बात मैं यहाँ खास तौर पर उल्लेख करना चाहूँगा कि विदेशी मूल के जितने भी हिंदी-प्रेमी हैं, वे हिंदुस्तान के पूरी दुनिया में सांस्कृतिक राजदूत हैं। भारत सरकार के सम्मान का मतलब हमारे लिए यह नहीं है कि हमें पद्मश्री मिले या कुछ और मिले। हम तो बस यही उम्मीद करते हैं कि दिल्ली में अगर कोई ऐसा संस्थान बन सके, जहाँ हम आपस में मिल-जुलकर बात कर सकें, लेखकों और अनुवादकों के सेमिनार हो सकें तो इससे हिंदी का सही मायने में बड़ा फ़ायदा होगा।

साभार : गर्भनाल
वर्ष 3, अंक 2, इंटरनेट संस्करण 77,
अप्रैल 2013
garbhanal@ymail.com

□

12

हिंदी की वैश्विकता में फ्रेडरिक पिंकॉट का योगदान

डॉ. कृष्ण कुमार

भाषा, साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं संस्कार किसी देश का भविष्य एवं उसकी दिशा निर्धारित करते हैं। राष्ट्रभाषा-संपर्कभाषा के माध्यम से राष्ट्र संवाद करता है और लोग एक-दूसरे से भावनात्मक और राष्ट्रीय धरातल पर जुड़ते हैं। हिंदी भाषा, कर्णप्रिय (मौखिक) और इसकी सहगामिनी चक्षुप्रिय (लिपि) एक-दूसरे की पूरक, ने अपनी शोभायात्रा की शुरुआत सातवीं सदी के आस-पास एक सीमित क्षेत्र से कर अब वैश्विक हो गई है। इसका स्वरूप अमीर खुसरो (1253-1325) के बाद से बदलने लगा था, जब इसमें फ़ारसी के शब्दों का प्रवेश प्रारंभ हुआ था।

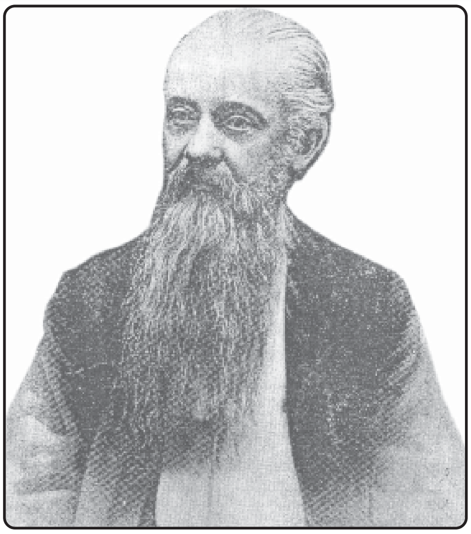

फ्रेडरिक पिंकॉट
23 मार्च, 1836 से 7 फरवरी, 1896

वैश्विकता की गति, त्वरण एवं प्रगति में गत कुछ सदियों में अद्‌भुत अकल्पनीय वृद्धि हुई है। बीसवीं-इक्कीसवीं सदी में वैश्विकता का स्वरूप एवं इसका माध्यम तीव्र गति से बदला है। तकनीकी एवं प्रौद्योगिकीय विस्फोटों से उपलब्ध उपकरणों, साधनों एवं संसाधनों ने दशकों की दूरी को पलों में बदल दिया है।

जिस राजभाषा हिंदी की वैश्विकता की चर्चा आज जगह-जगह हो रही है, उस हिंदी का स्वरूप क्या है या क्या होना चाहिए, जिससे वह जोड़ की भाषा बन सके, जैसा कि गांधीजी एवं बिनोवा कहते तथा चाहते थे, सबको संयुक्त रूप से निर्धारित करना होगा। निश्चय ही वह संस्कृतनिष्ठ हिंदी नहीं हो सकती है। वह जन-जन की सामान्य हिंदी ही होगी, जिसमें भारत की अन्य भाषाओं के शब्दों का भी समावेश होगा। यह वह हिंदुस्तानी भी नहीं हो सकती, जिसको उर्दू के नजदीक रखने का प्रयास 19वीं सदी में ही प्रारंभ हो गया था। राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा के अंतर को भी ठीक से समझना होगा, अन्यथा संप्रेषण में परेशानियाँ आ सकती हैं और आती भी हैं। 14 सितंबर, 1949 को भारतीय संविधान सभा में गोपालस्वामी आयंगर ने हिंदी को राष्ट्रभाषा, यानी समस्त सरकारी कामकाज की भाषा, बनाने का प्रस्ताव रखा था। प्रस्ताव पारित हो गया और 1965 तक हिंदी एवं अंग्रेज़ी को राजभाषा के रूप में मान्यता मिल गई और 1965 के बाद हिंदी ही राजभाषा रहेगी, ऐसी सबकी धारणाएँ थीं। भारत की अन्य भाषाओं को भी मान्यता मिले, इसके लिए संविधान की अष्टम अनुसूची में भारत की 14 भाषाओं को राष्ट्रभाषा का पद मिला, जो अब बढ़कर 22 हो गई हैं, और वे प्रांत अपना स्थानीय कामकाज इस भाषा में करने के लिए स्वतंत्र कर दिए गए। इस संबंध में भारतीय संविधान की भाषानीति के अनुच्छेद 351 के अनुसार, ''हिंदी भाषा की वृद्धि करना, उसका विकास करना, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यकता हो, उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: उक्त उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।''

वैश्विक स्तर पर हिंदी का स्वरूप

वैश्विक स्तर पर लोग हिंदी को प्रथम से लेकर तीसरे स्थान पर रखते रहे हैं। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन के समय सूरीनाम में भारत के प्रतिनिधि श्री केशरी नाथ त्रिपाठीजी ने कहा था, ''यह सम्मेलन इस बात पर खेद प्रकट करता है कि विश्व में बोली जानेवाली दूसरी

बड़ी भाषा हिंदी, जिसका प्रयोग लगभग 180 देशों में 80 करोड़ लोगों के द्वारा किया जाता है, अभी तक संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा नहीं बन सकी।[1]'' जयंती प्रसाद नौटियाल अपने आँकड़ों के आधार पर इसे पहले स्थान पर रखते हैं।[2] किसी भी विचार या उत्पाद के वैश्विक स्तर पर मान्य होने के लिए यह आवश्यक है कि वह भाषा-परिवेश एवं मत-मतांतरों की सीमा को पार कर सबको या लगभग सबको ग्राह्य हो। अनेकानेक उत्पाद ऐसे हुए हैं, जो अब विश्व स्तर पर लगभग हर जगह स्वीकार्य हैं, जैसे कोकाकोला, पीजा, समोसा या ढोकला आदि तथा इसी प्रकार अहिंसा एवं आतंक उन्मूलन। इस संबंध में यह निरीक्षण करना जरूरी है कि क्या हिंदी वैश्विकता के मापदंडों पर खरी उतरती है?

वैश्विकता के मापदंड

1. सुलभता,
2. ग्राह्यता,
3. सर्वजनीयता,
4. धर्म, जाति, आयु, देश एवं कालादि बंधनों से परे,
5. आस्था, विश्वास, भक्ति एवं तर्क परखता।

भाषा के संदर्भ में हिंदी क्यों और कैसे वैश्विक बन रही है, इसको समझने के लिए, भाषा को सीखने-समझने की सुगमता एवं ग्राह्यता तथा तंत्र का यथोचित उपयोग इसके मुख्य कारण बन जाते हैं। इसके लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयास आवश्यक हैं। ध्यान से यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा-रोमन लिपि आज क्यों लिंग्वाफ्रेंका के रूप में मानी जाती है। भाषाविद् एकमत हैं कि इसकी लिपि अवैज्ञानिक तथा भाषा में व्याकरणिक दोष हैं। यही कारण है कि जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने अपनी वसीयत में यह लिखा था कि रोमन लिपि की वैज्ञानिकता में सुधार लाते हुए इसको ध्वन्यात्मक बनाने वाले को मेरी जायदाद का एक हिस्सा मिलना चाहिए।[3] हिंदी की नागरी लिपि को सबसे अधिक वैज्ञानिक एवं ध्वन्यात्मक घोषित किया गया है। अर्थ यह है कि हिंदी में जो उच्चारित करते हैं, बोलते हैं, वही लिखते हैं। विश्व में फैला हुआ ब्रिटिश राज रोमन लिपि एवं अंग्रेज़ी भाषा के वैश्विक बनने का मुख्य कारण रहा है। कम-से-कम भारत के संदर्भ में यह तो स्थापित ही है कि शक्ति के आधार पर देशज भाषाओं को अंग्रेज़ी द्वारा विस्थापित किया गया था (हंटर कमीशन 1882)। हिंदी को वैश्विक बनाने में उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मॉरीशस, गयाना, फीजी, सूरीनाम, त्रिनीदाद, टोबैगो तथा दक्षिण अफ्रीका में लाए गए बँधुआ भारतीय प्रवासी मज़दूरों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। साथ में फ्रेडरिक पिंकॉट जैसे अनेक विदेशी मूल के विद्वानों ने भी हिंदी के लिए समय-समय पर वैचारिक लड़ाई लड़ी।

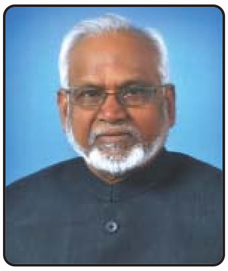

जन्म : 14 फरवरी, 1940, बहराइच (उत्तर प्रदेश)।

शिक्षा : आई.आई.टी. मद्रास : बी टेक (यू.के.): टेलीविजन सर्टिफिकेट, (यू.के.): एम.एस.सी., सर्रे विश्वविद्यालय (यू.के.): पी.एच.डी.।

कृतित्व : इंजीनियर, विभिन्न इलेक्ट्रानिक्स की कंपनियों में कार्य, यू.के. की विभिन्न संस्थाओं एवं कंपनियों में विजिटिंग प्राध्यापक, बर्मिघम विश्वविद्यालय में अध्यापन, नॉनयाँग तकनीकी विश्वविद्यालय, सिंगापुर, में वरिष्ठ प्राध्यापक, यूनीवर्सिटी ऑफ सेंट्रल इंग्लैंड बर्मिघम, यू.के. में वरिष्ठ प्राध्यापक पद पर कार्यरत।

प्रकाशन : ''मैं अभी मरा नहीं'', ''चिंतन बना लेखनी मेरी'', ''लेकिन पहले इंसान बनो'', ''अक्षर-अक्षर गीत बने'', ''एक त्रिवेणी ऐसी भी'', ''नर्तन करने शब्द'', ''गुनगुनाते शब्द'', ''क्यों, क्यों और आखिर क्यों'', ''और कथाएँ ऐसी भी'' *(काव्य संग्रह)* ''भाषा साहित्य और राष्ट्रीयता'' *(निबंध संग्रह)*। "The Theme For Today", "Poetry between Shores".

इक्कीसवीं सदी में शक्ति का अर्थ होता है—आर्थिक समृद्धता। भारत इस दिशा में गति से आगे बढ़ रहा है। सोलहवीं-सत्रहवीं सदी का समय बीत चुका है। हिंदी को वैश्विक बनाने में 30 करोड़ प्रवासी भारतीयों की अहम भूमिका हो सकती है। ऊपर दिए गए पाँचों तत्वों को विश्व स्तर पर फैलाने के साधन एवं माध्यम समय के साथ तीव्र गति से बदले हैं। बीसवीं सदी के अंत एवं इक्कीसवीं के प्रारंभ में उपलब्ध प्रोद्योगिकीय उपकरणों तथा संसाधनों में विस्फोट सा आया है, जिसके कारण सूचना का विस्तार पलक झपकते हो जाता है। ऐसी स्थिति में जिस कार्य में उन्नीसवीं शताब्दी के पहले महीनों-साल लग जाते थे, अब वही काम पलों में संभव हो रहा है। आज यही बात हिंदी की वैश्विकता के साथ भी हो रही है। जब पिंकॉट (23 मार्च, 1836-7 फरवरी, 1896) ने हिंदी को प्रचारित एवं स्थापित करने का काम लंदन में रहते हुए प्रारंभ किया था, तब एक मात्र साधन प्रकाशित प्रिंट मीडिया सामग्री एवं व्यक्तिगत पत्राचार ही थे। किस प्रकार पिंकॉट ने हिंदी को वैश्विक बनाने में अपना योगदान दिया, यह सब हम कुछ बाद में देखेंगे। इससे पहले यह देखना जरूरी है कि किस प्रकार हिंदी की वैश्विकता बढ़ रही है।

विगत दो-तीन सदियों में अपरिपक्व एवं अवैज्ञानिक रोमन लिपि में प्रस्तुत अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से विश्व अब संवाद करने लगा है और इसी के माध्यम से प्रारंभ में, सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में, हिंदी विश्व में लोगों तक पहुँची। अनुवाद भी निश्चय ही एक सुदृढ़ माध्यम रहा है।

चलते-चलते एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि जो हिंदी आज वैश्विक हो रही है, उसकी हालत भारत में बड़ी गंभीर है।

राष्ट्रीय पहचान के लिए न तो देश का मान्य नाम उभरकर आया और न ही राष्ट्रीय संवाद की एक भाषा। अपने संविधान में 22 राष्ट्रीय भाषाओं को स्वीकार किया गया है, किंतु किसी एक भारतीय भाषा को संपर्क भाषा के रूप में कोई स्थान नहीं मिला है। इसी प्रकार देश को कभी हम भारत कहते हैं तो कभी इंडिया। यह हमारी प्रदूषित मानसिकता का परिचायक है। फिर भी मुझे पूरा भरोसा है कि भारतवंशी इस समस्या का समाधान शीघ्र ही प्रेम-सद्भावना के आधार पर निकाल ही लेंगे।

हिंदी की वैश्विकता के मानक

1. बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अपने उत्पादों की बिक्री के लिए हिंदी का प्रयोग, क्योंकि भारत की जनसंख्या (लगभग एक अरब 25 करोड़) उनको आकर्षित कर रही है।
2. माइक्रोसॉफ्ट द्वारा रोमन लिपि की तरह हिंदी में भी सॉफ़्टवेयर का उपलब्ध कराया जाना तथा भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर का बाजार में आना।
3. भारत से बाहर लगभग 160 देशों में विश्वविद्यालयी स्तर पर हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। इनमें से अनेक जगहों पर हिंदी में शोध कार्य भी हो रहे हैं।
4. केवल अमेरिका में ही 100 से अधिक विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में हिंदी का शिक्षण-प्रशिक्षण हो रहा है। इनमें से अनेक स्थानों पर तो शोध कार्य भी हो रहे हैं। सबसे अहम बात यह है कि हिंदी-भारतीय संस्कृति की विश्व उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए पेनसिल्वानिया विश्वविद्यालय के लाउडर इंस्टीट्यूट के व्हार्टन विद्यालय में एम.बी.ए. के कार्यक्रम में हिंदी को सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रस्ताव की घोषणा 2008 में की गई थी और अब यह द्विवर्षीय कार्यक्रम 2011 से चल रहा है।[4]

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में लंदन के एक गरीब संभ्रांत परिवार में फ्रेडरिक पिंकॉट का जन्म उस समय हुआ था, जब भारत में अंग्रेज़ों का शासन था तथा तत्कालीन गवर्नर जनरल ने शिक्षा के माध्यम को अंग्रेज़ी बनानेवाले अध्यादेश पर हस्ताक्षर कर दिए थे। हिंदी भाषा के इस पक्षधर के विषय में चर्चा करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उनका हिंदी से क्या तात्पर्य था? पिंकॉट हिंदी के पक्षधर थे, न कि हिंदुस्तानी के। इस आलेख में पिंकॉट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से जुड़े कुछ ऐसे तथ्य बाहर आए हैं, जिनके बारे लोगों को संभवत: अल्पज्ञान ही था, विशेष रूप से उन्होंने हिंदी को वैश्विक बनाने में क्या भूमिका निभाई थी।

फ्रेडरिक पिंकॉट (23 मार्च, 1836-7 फरवरी, 1896)

वास्तव में यदि पिंकॉट की परिस्थितियों एवं परिवेश को ध्यान में रखकर उनके कृतित्व का आकलन किया जाए तो संभवत: वह गिलक्रिस्ट, ग्रियर्सन, विलियम जोन्स एवं जॉन विल्किंस आदि से बहुत आगे निकल जाएँगे। क्योंकि उनका बचपन गरीबी में बीता तथा जीवन के अंतिम समय के अलावा उन्हें भारत जाकर उसे जानने-समझने एवं भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर तक नहीं मिला था। हिंदी की सेवा उन्होंने कई स्तरों पर करते हुए इसे वैश्विक बनाने में अकल्पनीय काम तब किया था जब इक्कीसवीं सदी की तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं। भारत में हिंदी एवं अन्य भाषाओं को सम्मानपूर्वक आगे बढ़ाने के लिए नागरी लिपि के साथ अन्य लिपियों में भी प्रचुर मात्रा में मौलिक रचनाओं का सृजन करते हुए तत्कालीन भारतीय सहित्यकारों की कृतियों की आलोचना हिंदी एवं अंग्रेज़ी में की है। इस प्रकार अंग्रेज़ी शासकों एवं यू.के. के निवासियों में हिंदी के प्रति अनुराग बढ़ा।

पिंकॉट का जीवन-वृत्त एवं कार्यक्षेत्र

अब तक प्रकाशित रचनाओं में इस महान हिंदी-सेवी का जीवन-वृत्त अधूरा ही वर्णित होने के साथ-साथ कुछ त्रुटियाँ भी रही हैं। लंदन की जनगणना, चर्चों से प्राप्त सूत्रों एवं अन्य सूचनाओं के आधार पर जो आँकड़े एकत्रित किए गए, उन्हीं के आधार पर त्रुटियों को सुधारा गया है। फ्रेडरिक पिंकॉट के माता-पिता (थामस पिंकॉट एवं मारिया ऐन) इतने निर्धन थे कि उनके लिए यह भी संभव न था कि वे अपने पुत्र को समयानुकूल उचित शिक्षा भी दिला पाएँ। फ्रेडरिक का जन्म 23 मार्च, 1836 में हुआ तथा बचपन दो बड़े भाई जेम्स एडवर्ड पिंकॉट (1830), विलियम पिंकॉट (1832), और एक बड़ी बहन मारिया पिंकॉट (1834) तथा एक छोटे भाई थामस पिंकॉट (1838) के साथ बीता था। रोटी-रोज़ी के मसले को हल करने के लिए कम उम्र में ही पढ़ाई छोड़कर किसी छापेखाने में 'कंपोजिटरी' के कार्य में लगना पड़ा। कुछ समय बाद वे प्रूफरीडर भी बन गए। उपलब्ध सूत्रों से अब तक यह पता न लग सका कि उन्होंने किस वर्ष एवं किस आयु में विश्व विख्यात 'डब्ल्यू.एच. ऐलन ऐंड कंपनी' में प्रवेश किया, जहाँ उन्होंने 1890 तक काम किया। इस कंपनी में वे बाद में अपनी कर्मठता, लगन, मेहनत, स्वधर्मी प्रवृत्ति एवं विश्वसनीयता के कारण प्रेस मैनेजर नियुक्त हुए। छापाखाने से संबंध रहने के कारण स्व-अध्ययन में लगे रहते थे। स्वभाव से गंभीर एवं अध्यवसायी होने के कारण जीवन की कठोर से कठोर परीक्षाओं से वे विचलित न हुए और अपनी साहित्यिक अभिरुचि को शिथिल न होने दिया। 23 वर्ष की आयु में (1859) इनका विवाह एलिजाबेथ ऐन हेल से हुआ, जिनसे 5 संतानें फ्रेडरिक थामस (1861),

अमीलिया (1863), चार्ल्स (1865), नेली (1872) एवं एथल (1879) प्राप्त कीं। जब वे मात्र 52 वर्ष के ही थे, तब 29 साल तक दांपत्य जीवन बिताने के बाद सन् 1888 में पत्नी के देहांत ने उन्हें बहुत दुखी कर दिया था। 1890 के बाद उन्होंने 'गिलबर्ट एंड रिविंगटन' लंदन में पूर्वी क्षेत्रों के मंत्री के रूप में काम शुरू किया। पिंकॉट ने इस कंपनी से उर्दू में प्रकाशित एक व्यावसायिक पत्र 'आइने सौदागरी' में संपादक का कार्यभाल सँभाला। इस पत्र में मुख्यत: व्यापार संबंधी सूचनाएँ ही होती थीं। इस समय ब्रिटेन में हिंदी के बारे में लोगों में बड़ी भ्रांतियाँ थीं और उर्दू को भारत की भाषा समझी जाती थी। हिंदी प्रेम के कारण इस पत्र में पिंकॉटजी ने कुछ पेज सुरक्षित किए तथा स्वयं ही नागरी लिपि में लिखने लगे। भारत के हितैषी पिंकॉट चाहते थे कि निर्यात का सबसे अधिक लाभ उत्पादकों को हो, जिसके लिए वे बिचौलियों को हटाने के उद्यम में लग गए। उस समय भारत में उगनेवाली 'रोहा' घास के रेशों से अच्छे कपड़े बनते थे। पिंकॉट किसी-न-किसी प्रकार उस भूमि के दर्शन करना चाहते थे, जिससे उन्हें आध्यात्मिक स्नेह सा हो गया था। अपनी इस पीड़ा को उन्होंने ब्रज भाषा में एक पद लिखकर भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के सामने रखा भी था, जिसका उल्लेख श्री रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में किया है। कंपनी के लिए इस घास का निर्यात करने के लिए पिंकॉट नवंबर 1894 में भारत गए। इस घास की खेती के लिए अवध प्रांत सबसे अधिक उपयुक्त माना जाता था। कानपुर होते हुए वे लखनऊ पहुँचे। 'लंदन रोहा फाइबर ट्रीटमेंट कंपनी' के लिए उन्होंने एक सौदा भी कर लिया था। इसके अंतर्गत 15,000 टन रोहा की छाल सात पाउंड प्रति टन की दर से निर्यात होने के समझौते पर सबके हस्ताक्षर भी हो गए थे। नियति ने पिंकॉट के लिए कुछ और ही सोच रखा था। आध्यात्मिक तौर से भारत में बसनेवाले भारत के सच्चे हितैषी एवं शुभचिंतक फ्रेडरिक पिंकॉट का अचानक 7 फरवरी, 1896 को लखनऊ में देहांत हो गया और वे भारतमय हो गए। इस प्रकार लखनऊ में उनकी समाधि बन गई और उनका शरीर भारत की मिट्टी में विलीन हो गया।

पिंकॉट की साहित्यिक यात्रा की शुरुआत सन् 1860 के दशक में द्रुत गति से आगे बढ़ी, जो अंतिम समय तक चलती रही। वे भारत के साहित्य एवं वहाँ की अनेकानेक समस्याओं के बारे में भारतीय मनीषियों से पत्राचार किया करते थे। कभी नागरी लिपि में तो कभी रोमन में। भारत एवं यू.के. के तत्कालीन समाचार पत्रों में उनके विचार छपते रहते थे।

गांधीजी के साथ पिंकॉट

वकालत की पढ़ाई के लिए गांधीजी 29 सितंबर, 1888 को लंदन पहुँचे और एक सभा में दादाभाई नौरोजी से मिलने गए, एक पत्र देने के लिए जो वह भारत से लेकर आए थे। डर के मारे बात को आगे न चलाकर वापस आ गए। बाद में एक मित्र के कहने पर वे भारत के हिमायती फ्रेडरिक पिंकॉट, विधिवेत्ता एवं प्राच्यविद से मिले। यह सब गांधीजी की दैनिक डायरी में है, जिसको बाद में उनके पोते राजमोहन गांधी ने संपादित कर अमेरिका के कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, बर्कली से प्रकाशित कराया था।[5] गांधीजी ने सफेद लंबी-लंबी दाढ़ीवाले पिंकॉट को भारतीय विद्यार्थियों के प्रति शुद्ध और स्वार्थविहीन स्नेहसिक्त पाया था। गांधीजी अपनी बैरिस्टरी की प्रैक्टिस एवं भविष्य को लेकर निराश हो रहे थे। पिंकॉट ने गांधीजी की निराशा को हँसकर उड़ा दिया और कहा, ''सबको फिरोजशाह मेहता के समान प्राबल्य एवं चमक की ज़रूरत नहीं होती है, ईमानदारी और मेहनत से सब संभव हो सकता है।'' पिंकॉट का दमकता मुसकराता हुआ चेहरा गांधीजी की स्मृति में बैठ गया और वे आत्मविश्वास से परिपूरित वापस हुए। गांधीजी को जिस प्रोत्साहन की जरूरत थी, वह उन्हें पिंकॉट से मिला। गांधीजी के संभावित व्यवसाय को ध्यान में रखते हुए पिंकॉट ने उन्हे लैवेटर और शेमेल पेनिक की पुस्तकें पढ़ने की सलाह दी, जिससे लोगों के चेहरे और मस्तिष्क को पढ़ने में सहायता मिल सकती थी। गांधी स्वयं यह सब जानना भी चाहते थे। पिंकॉट ने भारत का इतिहास समझने के लिए और मैलेसन के 1857 की क्रांति की व्याख्या करनेवाली पुस्तकों को पढ़ने की सलाह दी। इस प्रकार गांधीजी के व्यक्तित्व को सही राह दिखाने एवं आत्म-विश्वास को बल देने में पिंकॉट का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

पिंकॉट का रचना-संसार

स्वाध्याय से पिंकॉट साहब ने अपने जीवन काल में बहुमूल्य साहित्य-सृजन किया। और यदि यह ध्यान में रखा जाए कि गरीबी के कारण इनको बचपन में पढ़ाई छोड़नी पड़ी और मृत्यु से पहले कभी भारत नहीं गए तो यह स्वीकार करना पड़ेगा, जो आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने कहा है, ''किस महानुभाव ने उसके हित के लिए सबसे अधिक व्यग्रता दिखाई, किसने उसके भंडार में अपने हाथों से कुछ रखने का कष्ट उठाया, कौन उसकी बढ़ती देखकर सबसे अधिक प्रफुल्लित हुआ और कौन उसके बोलनेवालों की ओर अधिक आकर्षित हुआ तो हमको फ्रेडरिक पिंकॉट ही का नाम लेना पड़ेगा। भारतवर्ष की भाषाएँ जानकर भी इनका हिंदी की ओर झुकाव और उसको हिंदुस्तान की सर्वप्रथम भाषा मानना निस्संदेह प्रशंसनीय था।''[6] पिंकॉट साहब वे विरले रचनाकार थे, जिन्होंने अपनी भाषा में तो लिखा ही, किंतु भारत की अनेक लिपियों में भी मौलिक रचनाओं को जन्म दिया

तथा हिंदी से अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करते हुए अनेकानेक पुस्तकों का संपादन भी किया और भारतीय रचनाकारों का ब्रिटेन के लोगों से परिचय भी कराया। जिस अंग्रेज़ भारत-प्रेमी ने महात्मा गांधी को राह दिखाई, सफलता की कुंजी दी, उसकी ओर हमारा ध्यान तक नहीं गया। तनिक संतोष तो तब हुआ था जब भारतीय उच्चायोग लंदन में उस समय हिंदी-संस्कृति अधिकारी श्री राकेश बी. दुबेजी ने विश्व हिंदी दिवस के अंतर्गत चार सम्मानों की घोषणा तत्कालीन उच्चायुक्त महोदय से करवाई। ध्यान देने योग्य है कि उनमें से एक सम्मान पिंकॉट को समर्पित किया गया था। प्रतिवर्ष यू.के. में हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न किसी एक संस्था को 'फ्रेडरिक पिंकॉट हिंदी प्रचार-प्रसार सम्मान' देना निश्चित किया गया था। हमारे देश में भी कुछ होना चाहिए। हिंदी एवं भारत-प्रेमियों को सोचना चाहिए।

मौलिक रचना-संसार

1. 'बालदीपक' (कैथी एवं नागरी लिपि में) : 4 भागों में, खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, कोलकाता द्वारा प्रकाशित, 1887; यह पुस्तक बिहार के स्कूलों के पाठ्यक्रम में लगी थी।
2. 'विक्टोरिया चरित्र' (नागरी लिपि में): खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, कोलकाता द्वारा प्रकाशित, 1889, 136 पृष्ठ की पुस्तक, जिसमें महारानी विक्टोरिया का जीवनवृत्तांत विस्तार से हिंदी में पिंकॉट साहब ने लिखा है।
3. 'हिंदी मैनुअल' (रोमन लिपि में) : हिंदी व्याकरण की पुस्तक, डब्ल्यू.एच. ऐलन ऐंड कंपनी, लंदन द्वारा प्रकाशित, जो ब्रिटेन से भारत जानेवालों के लिए सिविल सर्विस के पाठ्यक्रम में लगी थी तथा अप्रैल 1890 तक इसका तृतीय संस्करण छप चुका था।
4. 'एनालिटिकल इंडेक्स टु' सर जॉन डब्ल्यू.के. की, 'हिस्टरी ऑफ द सेपाय वार' और कर्नल जी.बी. मैलेसन की 'हिस्टरी ऑफ द इंडियन म्यूटिनी' (रोमन लिपि में), डब्ल्यू.एच. ऐलन ऐंड कंपनी, लंदन द्वारा प्रकाशित, 1880।
5. ब्रजभाषा में पदों एवं घनाक्षरियों की रचना।
6. 'शकुंतला' (नागरी लिपि में)।

हिंदी को वैश्विक बनाने में फ्रेडरिक पिंकॉट का योगदान

1. नागरी, कैथी एवं रोमन लिपि में की गई मौलिक रचनाओं ने विश्व में हिंदी का मान बढ़ाया।
2. अपने प्रयासों द्वारा हिंदी पुस्तकों को ब्रिटेन की रानी एवं सेक्रेटरी ऑफ स्टेट (टोरी पार्टी के मार्क्स सैल्सबरी) तक पहुँचाकर, जागरूकता बढ़ाई। 1890 में दोनों पुस्तकों को सुदर ढंग से बँधवाने की कीमत आठ रुपए आई थी। यह सूचना पं. श्रीधर पाठक को 4 मार्च, 1890 को भेजे गए पत्र में दी गई थी।[7]
3. यू.के. में हिंदी विद्वानों के माध्यम से हिंदी को प्रतिष्ठित कराया। पिंकॉटजी 12 फरवरी, 1890 के पत्र में पाठकजी को लिखते हैं—''आपकी कविता की कुछ अन्य प्रतियाँ मैं यहाँ सुविधापूर्वक वितरित कर सकता हूँ, उदाहरणतया एक प्रति डॉ. रोस्ट, डॉ. रीउ और प्रो. जी.एफ. निकल को दे दूँगा।'' ध्यान रहे कि जॉर्ज फ्रेडरिक निकल उस समय ऑक्सफॅर्ड विश्वविद्यालय एवं किंग्स कॉलेज लंदन में अरेबिक, संस्कृत एवं परसियन भाषा के आचार्य थे तथा भाषा संबंधी नीतियों के निर्धारण में उनकी अहम भूमिका रहती थी।
4. हिंदी के अध्ययन, अध्यापन एवं प्रशिक्षण को विश्वव्यापी बनाने में हिंदी मैनुअल (रोमन लिपि में) का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इसके माध्यम से उन्होंने हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट रचनाओं को उजागर करते हुए भारत जाने वाले सिविल सर्विस कर्मचारियों को हिंदी की ओर आकर्षित किया।
5. हिंदी एवं संस्कृत की अनेकानेक पुस्तकों, हितोपदेश (1880), ऐन इन्क्यायरी इनटु द ट्रुथ (1893), ऐन ओशन ऑफ लव (1897) का रोमन लिपि में अनुवाद कर हिंदी तथा भारतीय साहित्य को लिंग्वाफ्रेंका के माध्यम से वैश्विक बनाया।
6. ब्रिटेन में हिंदी भाषा के प्रति लोगों की अज्ञानता को दूर किया। उस समय हिंदी के बारे में लोगों की क्या सोच थी, पं. श्रीधर पाठक को 8 जनवरी, 1890 को लिखे एक पत्र के माध्यम से स्पष्ट होती है—''बीस वर्ष तक मैंने हिंदी के अधिकारों का सामान्य वर्ग के बीच ध्यान आकर्षित किया, और मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि मेरे लगातार परिश्रमों का कोई तो परिणाम निकला। मेरी शुरुआत करने पर इस देश के वासियों ने (अवकाशप्राप्त भारतीय पदाधिकारियों सहित) मुझसे पूछा, 'हिंदी भाषा क्या चीज है।' कुछ व्यक्तियों ने, जो कि वर्षों तक भारत में रहे, मुझे बतालाया कि नागरी में जो कुछ छपता है, वह उर्दू से निकालकर हिंदुओं के लिए एक भाषा निर्मित करने का पंडित वर्ग द्वारा किया गया प्रयास है। इस सारी वकालत का अब अंत हो चुका है, और हिंदी की यथार्थता को कोई अस्वीकार नहीं करता है (7, पृष्ठ 30)।''
7. हिंदी का मान स्थापित करने के लिए 1882 में प्राइमरी एवं

सेकेंडरी शिक्षा संबंधी 'हंटर कमीशन' द्वारा पारित विधेयक, जिसके माध्यम से स्थानीय भाषाओं को अंग्रेज़ी द्वारा विस्थापित करने का प्रस्ताव था, का खुलकर विरोध किया था (जर्नल ऑफ द नेशनल इंडियन ऑसोसिएशन, जून 1884, पृष्ठ 245–255)। इस विषय पर पिंकॉट साहब का 'द वर्नाक्युलर इन यूनिवर्सिटी एजुकेशन' शीर्षक का आलेख, जो 'द इंडियन मैगजीन ऐंड रिव्यू, जून 1888 के पृष्ठ 288–294 में प्रकाशित हुआ था, देखने एवं समझने योग्य है।

8. उन्नीसवीं सदी में विश्व व्यापार प्रसारण में अग्रणी 'गिलबर्ट एंड रिविंगटन' लंदन द्वारा उर्दू में प्रकाशित व्यावसायिक पत्र 'आईने सौदागरी' में हिंदी के लिए कुछ पेज सुरक्षित कर स्वयं ही नागरी लिपि में विभिन्न विषयों पर लिखना। इसके माध्यम से पिंकॉटजी ने विश्व में हिंदी–नागरी लिपि का मान बढ़ाते हुए सीधे व्यापार की वकालत की तथा भारतीय संस्कृति में फैलाए जा रहे प्रदूषण का पर्दाफाश किया था।
9. हिंदी और हिंदुस्तानी के बीच फैल रहे विवाद का स्पष्टीकरण करते हुए हिंदी को भारत की मुख्य भाषा के रूप में स्थापित किया। भारतीय विद्वानों ने भी इससे अधिक सुंदर विवेचना इस विषय पर नहीं की। कितना अच्छा होता कि 1930 के दशक में गांधीजी एवं राजर्षि टंडनजी के बीच पिंकॉट के इस कार्य की चर्चा हुई होती, क्योंकि गांधीजी पिंकॉट के विचारों एवं भारत प्रेम से भलीभाँति परिचित थे। हो सकता है, गांधीजी ने अपने विचार बदल दिए होते और हिंदी अधिक शक्तिशाली हो पाती। इस संबंध में 'एक पंजाबी एवं फ्रेडरिक पिंकॉट' के बीच हुए प्रकाशित संवाद पठनीय हैं (द इंडियन मैगजीन, दिसंबर 1887, फरवरी 1888 पृष्ठ 84–89, मार्च 1888, पृष्ठ 147–151, मई 1888, पृष्ठ 231–236 एवं जून 1888, पृष्ठ 325–327)।
10. पिंकॉट एक सफल एवं निर्भीक आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। यही कारण है कि उनकी आलोचनाओं का उस समय और आज भी बड़ा सम्मान होता है। पिंकॉट काव्य प्रेमी एवं स्वयं अंग्रेज़ी–हिंदी के कवि थे। वे अच्छी कविता के पारखी थे तथा भाव को भाषा से अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी अंग्रेज़ी की कविताओं से यह तथ्य साफ उभरकर सामने आता है। खड़ी बोली के अध्येता–प्रवर्तक–समर्थक अयोध्या प्रसाद खत्री (सन् 1857–4.1.1905) को 20 अक्टूबर, 1887 के पत्र में इस विषय को उठाते हुए उन्होंने लिखा था—''मैंने अपने पिछले पत्र में साधारण–सामान्य शब्दों में कविता लिखने के बारे में लिखा था, जो स्पष्टता एवं पूरे जोर से अपने भाव व्यक्त कर सके। इस बात को समझने में आपकी सहायता करने के लिए मैं आपको अपनी कुछ कविताएँ भेज रहा हूँ, जिनमें आसान से आसान रोजाना प्रयोग में आने वाले शब्दों का उपयोग किया गया है (मूल अंग्रेज़ी से अनूदित)।''[8] अपनी आलोचनाओं को पत्रिकाओं में रोमन लिपि में प्रकाशित कर हिंदी की अच्छी रचनाओं को प्रकाश में लाते हुए गद्य एवं पद्य की भाषा पर फैल रहे विवाद को निरस्त किया था।

भारत के अदम्य हितैषी, भारतीय भाषाओं के पोषक, हिंदी के पक्षधर, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य, ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारतीय समस्याओं को उजागर करनेवाले, भारत में फैल रही बुराइयों से लोगों को अवगत कराने वाले, भूत–प्रेतों के काल्पनिक स्वरूप को मिटाने का प्रयास करने वाले, ऋग्वेद की ऋचाओं के व्याख्याता, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य आदि–आदि के साथ हिंदी भाषा को राजकीय मान्यता दिलाने के सच्चे हिमायती के बारे सही न्याय करने के लिए एक ग्रंथ की आवश्यकता है। यहाँ पर केवल संक्षेप में ही उठाए गए विषय पर चर्चा की गई है। मैंने इस विषय पर सामग्री एकत्रित करने के लिए अनेकानेक स्रोतों का सहारा लिया है। सामूहिक रूप से मैं सबके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

संदर्भ

1. नारायण कुमार, 'संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ और हिंदी', गगनांचल, वर्ष 27, अंक 4, अक्तूबर–दिसंबर 2004, पृष्ठ 13–23
2. डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, 'भाषा शोध अध्ययन 2005 : विश्व में हिंदी पहले स्थान पर', प्रवासी संसार, अंक 3, सितंबर 2006, पृष्ठ 26–30
3. डॉ. कृष्ण कुमार, 'भाषा साहित्य और राष्टीयता', सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 77
4. http://lauder.wharton.upenn.edu/pages/academics/hindi_mba_ program.php
5. राजमोहन गांधी, 'मोहनदास : ट्रू स्टोरी ऑफ ए मैन, हिस प्यूपिल', कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस, बर्कले प्रकाशन, पृष्ठ 44
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'फ्रेडरिक पिंकॉट', सरस्वती पत्रिका प्रयाग, जनवरी 1908, पृष्ठ 8–17
7. पद्मधर पाठक, 'फ्रेडरिक पिंकॉट व्यक्तित्व और कृतित्व', नागरी प्रचारिणी ग्रंथमाला–77, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी द्वारा सं. 2027 (सन् 1950) में प्रकाशित, पृष्ठ 33
8. राम निरंजन परिमलेंदु द्वारा संपादित 'अयोध्या प्रसाद खत्री', साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा 1960 में प्रकाशित, पृष्ठ 93–102

21, बाइडफ़ोर्ड ड्राइव,
सेल्ली ओक,
बिरमिंघाम,
बी 296 क्यू.जी., यू.के.

□

13

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी

हितेश कुमार शर्मा

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धांत स्पष्ट है कि सारी धरती और उस पर रहने वाले प्राणी आपस में एक परिवार की तरह से रहें और यह तभी संभव हो सकता है, जब पूरे विश्व की संपर्क भाषा एक हो। मैं यह नहीं कहता कि समस्त देश अपनी-अपनी भाषा भूलकर केवल हिंदी को अपनाएँ, बल्कि मेरा मंतव्य है कि प्रत्येक देश का प्रत्येक प्राणी आपसी बातचीत में एक ही भाषा का प्रयोग करे और वह एक भाषा सर्वग्राह्य, सरल, सुबोध और स्पष्ट होनी चाहिए। हिंदी इस कसौटी पर सटीक बैठती है। हिंदी सर्वग्राह्य है, सरल है, सुबोध है और स्पष्ट है। हिंदी में किसी भी शब्द के दो मतलब नहीं निकलते। अन्य भाषाओं को मैं नहीं जानता, लेकिन अंग्रेज़ी के मुकाबले हिंदी ज़्यादा स्पष्ट है। हिंदी में अगर आप देखें तो प्रत्येक संबोधन के लिए अलग-अलग शब्द हैं, जैसे पिता के बड़े भाई को 'ताऊ' कहा जाता है, छोटे भाई को चाचा कहा जाता है। माँ के भाई को मामा कहा जाता है और इसी प्रकार ताई, चाची और मामी शब्दों का प्रयोग होता है, जबकि अंग्रेज़ी में सभी संबंधों के लिए केवल एक ही शब्द है 'अंकल' और स्त्रियों के संबंध में 'आंटी'। 'अंकल' कहने से यह स्पष्ट नहीं होता कि ये पिता के बड़े भाई हैं अथवा पिता के छोटे भाई अथवा माँ के भाई हैं। इसी प्रकार 'आंटी' शब्द से यह स्पष्ट नहीं होता कि आंटी किस रिश्ते के लिए संबोधित किया जा रहा है।

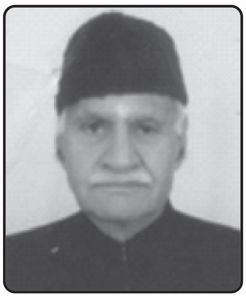

जन्म : 30 दिसंबर सन 1936

शिक्षा : बी.कॉम., एल.एल.बी. (एडवोकेट)

प्रकाशन : स्वरचित कविताओं के 13 संकलन प्रकाशित तथा सामूहिक 13 काव्य संकलन संपादित व्यंग्य पुस्तक हम आजाद हैं; समसामयिक लेख जनता जाग्रत हो तथा लघु पुस्तकाएँ महँगाई की मार व खामोश सरकार सो रहे हैं तथा हमारी न्यायिक व्यवस्था, भ्रष्टाचार कहाँ है, प्रजातंत्र कहाँ है, यह देश किसका है, यक्ष प्रश्न (प्रलय चार वर्ष बाद क्यों), हितहजारिका (दोहा-संग्रह), चिंतन, तीन शोध-पत्र स्वीकृत एवं प्रकाशित।

संपदन : 1. भ.वि.क. सहयोगी, 2. ब्राह्मण अंतरराष्ट्रीय समाचार, 3. कर एवं व्यापार, 4. हितैषी

व्यापार कर कानून पर 11 पुस्तकें लिखीं।

विशेष सम्मान : (अ) ए.बी.आई. यू.एस.ए द्वारा मैन ऑफ दी इयर 2000 की उपाधि, (आ) इंटरनेशनल नैचरोपैथी इंसटीट्यूट द्वारा डाक्टर की उपाधि, (इ) रोटरी अंतरराष्ट्रीय मंडल 3100 के गवर्नर (98-99)

साहित्यिक सम्मान : भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा अब तक 166 सम्मान प्राप्त हो चुके हैं।

आप देखेंगे और यह मेरा अनुभव है कि यदि हम विदेश में जाकर अपनी भाषा जानने वाला कोई व्यक्ति पा लेते हैं तो बातचीत में आसानी हो जाती है। वह विदेशी व्यक्ति भले ही अमरीकन, अंग्रेज़ या यूरोपियन हो, वह भारतीय से हिंदी में 'नमस्ते' करके प्रसन्न होता है। वह आपसे 'गुड मार्निंग' या 'गुड नून' की अपेक्षा नहीं करता। सच मानिए तो विदेशों में हिंदी के लोकप्रिय होने का यही एक कारण है कि हिंदी सरल है, स्पष्ट है और सर्वग्राह्य भी।

यदि संपूर्ण विश्व की संपर्क भाषा एक हो जाएगी तो दुभाषिए की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कभी-कभी दुभाषिया सही अर्थ नहीं बता पाता। विद्वान व्यक्ति तो इस बात को पकड़ लेते हैं, लेकिन जो विद्वान नहीं हैं, वे इस बात को नहीं पकड़ पाते और कभी-कभी अर्थ का अनर्थ हो जाता है। हिंदी की ग्राह्यता इतनी है कि जो भी विदेशी हिंदुस्तान में आते हैं, वे हिंदी तो अपनाते ही हैं, हिंदुस्तान और हिंदुस्तान के तीर्थस्थलों को भी अपना लेते हैं और यहीं के होकर रह जाते हैं।

आवश्यकता है अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करने की। मैं 1998-99 में रोटरी अंतरराष्ट्रीय का गवर्नर चयनित हुआ था और जिसके लिए मुझे प्रत्येक मास 'गवर्नर्स' मासिक पत्र प्रकाशित करके अपने अधीनस्थ क्लबों में वितरित करने होते थे। मैंने आरंभ से ही हिंदी में कार्य शुरू किया और अपने सभी मासिक पत्र हिंदी में प्रकाशित किए, जिनके नाम क्रमश: अवतरण, अभिषेक, अभियान, परिदर्शन, आह्वान, अभ्युदय, शंखनाद, अश्वमेध,

स्वप्नोदय, आत्मोदय, ग्रामोदय तथा आभार रखे गए और यह चलन तब से अब तक चला आ रहा है। प्रयास हो रहा है कि हिंदी को भी रोटरी अंतरराष्ट्रीय में मान्यता प्राप्त हो जाए। मैं प्रत्येक वर्ष रोटरी अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष के अंग्रेज़ी में दिए गए उद्‌बोधन का हिंदी में काव्यांतरण करता रहा हूँ। वर्ष 2013–14 में रोटरी अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष का उद्‌बोधन 'Engage Rotary—Change Lives' है। इसका काव्यांतरण मैंने किया और हिंदी में लिखी गई इस कविता को प्रत्येक क्लब को प्रेषित किया तथा रोटरी कार्यालय के दिल्ली कार्यालय को तथा अपने समकक्ष रोटरी गवर्नरों को प्रेषित किया। कविता की प्रारंभ की दो पंक्तियाँ निम्न हैं—

क्रियाशील होगी रोटरी जब, जीवन
शैली भी बदलेगी।
वांछित तभी प्राप्त होगा जब, प्रगति
को भी गति मिलेगी।

हिंदी को सर्वग्राह्य बनाने के लिए आपको सर्वप्रथम अपने पारिवारिक परिवेश को बदलना होगा। बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ाने के स्थान पर हिंदी कक्षाओं में पढ़ाना पड़ेगा और हिंदी के प्रति उनके अंदर प्रेम को जाग्रत करना होगा। जहाँ तक व्यवसाय का प्रश्न है, व्यावसायिक दृष्टि से भी हिंदी सहायक भाषा है। अंग्रेज़ी में आँकड़ों का आकलन इतना आसान नहीं है जितना हिंदी में है। अंग्रेज़ी में उतना सरल नहीं होता, क्योंकि अंग्रेज़ी में 'कलकत्ता' लिखा जाता था, जो 'सी' से शुरू होता था। और अब 'कोलकाता' लिखा जाता है, जो 'के' से शुरू होता है। ऐसे ही 'सी' से शुरू होनेवाला शब्द 'सेंटर' है और 'सी' से ही शुरू होनेवाला शब्द 'क्रोसिन' है। अक्षरों का यह हेर-फेर हिंदी में नहीं है, हिंदी में 'स' को 'स' ही कहते हैं और 'क' क की जगह में ही प्रयोग होता है। अंग्रेज़ी में 'ख' शब्द ही नहीं है, 'के' और 'एच' को मिलाकर बनाना पड़ता है। सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर पत्राचार सहज होता है। आवश्यकता प्रयास करने की है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मैंने जो भी पत्र अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष को लिखे, उसका उत्तर मुझे अंग्रेज़ी में प्राप्त हुआ, लेकिन मेरे हिंदी के पत्रों को वही महत्व प्राप्त हुआ, जो अंग्रेज़ी के पत्रों को मिलता।

भावाभिव्यक्ति की सहजता जो हिंदी में है, वह अन्य किसी भाषा में नहीं मिलती, इसका लिखना बहुत सरल है, जबकि अन्य भाषाओं को यदि आप देखेंगे तो वे इतनी सरल नहीं हैं। विद्वान प्रत्येक भाषाओं में हैं, प्रत्येक देश की भाषा का अपना महत्व है, सम्मान है। मैं यह नहीं कहता कि प्रत्येक देश अपनी मातृभाषा को भूलकर हिंदी को अपना ले; लेकिन जब दो राष्ट्राध्यक्ष बात करें तो उनके बीच में हिंदी की संपर्क भाषा होनी चाहिए, जिससे दोनों एक-दूसरे की भाषा को समझ सकें और अर्थ का अनर्थ न हो। मैं प्रत्येक भाषा का सम्मान करता हूँ, लेकिन विश्व को एक मंच पर लाने के लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को सार्थक करने के लिए यह अवश्य चाहता हूँ कि पूरे विश्व में एक संपर्क भाषा होनी चाहिए।

यह विडंबना है कि हम आपसी विवादों में पड़कर अपनी-अपनी प्रांतीयता का वर्चस्व बनाए रखने के लिए और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए हिंदी से दूर भाग रहे हैं। हिंदी को इतना क्लिष्ट बना रहे हैं कि जनसाधारण या तो उस पर हँसता है अथवा उससे बचता है। हम अपने बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ाना अपनी शान समझते हैं। सरकार भी इस ओर उदासीन है। प्रशासनिक सेवाओं में भी अंग्रेज़ी का बोलबाला है। जबकि प्रशासनिक सेवाओं में हिंदी अनिवार्य होनी चाहिए। विदेशों में हिंदी के प्रति प्रेम बढ़ रहा है, वहाँ विद्यालयों में हिंदी शिक्षक नियुक्त किए जा रहे हैं। अधिकांश विदेशी भारतीय को देखकर हिंदी में अभिवादन करते हैं। मेरे एक संबंधी कनाडा में हैं। उन्होंने सूचित किया कि यहाँ के पुस्तकालयों में हिंदी की भी पुस्तकों को उतना ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है, जितना अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषा की पुस्तकों को।

व्यवसाय में सत्यनिष्ठा, साख जैसे शब्दों का बहुत महत्व है, जो अपना प्रभाव डालते हैं। अंग्रेज़ी के शब्द इतने प्रभावशाली नहीं हो सकते। कानून की जो पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित होती हैं, उनका शीघ्र समझ में आना सरल होता है। अंग्रेज़ी भाषा की पुस्तकों में यदा-कदा शब्दकोश देखना पड़ता है। सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर भी हिंदी का प्रचलन निकटता और निजता उत्पन्न करता है, जो बात आप हिंदी में समझाकर पत्र के माध्यम से बता सकते हैं, वह

जहाँ तक प्रयास का प्रश्न है, मैं अपने बारे में इतना ही कह सकता हूँ कि आरंभ से ही हिंदी मेरी मातृभाषा रही है और मैं हिंदी को भी मातृभूमि की तरह माँ ही मानता हूँ। मेरी पुस्तक 'हितहजारिका' में दोहा संख्या 523 से 549 तक हिंदी के संदर्भ में लिखे गए कुछ दोहों में स्पष्ट रूप से लिखा है, जिसमें से दो दोहे निम्न प्रकार हैं—

हिंदी के उत्थान को, है कटिबद्ध हितेश।
चाहे कुछ करना पड़े, इसके लिए विशेष।।

सब भाषा में श्रेष्ठ है, हिंदी का विज्ञान।
अलग-अलग हर शब्द की, है अपनी पहिचान।।

हिंदी का है विश्व में, सबसे अधिक प्रचार।
सर्वाधिक उपयोग में, है हिंदी स्वीकार।।

हिंदी सबसे है सरल, सर्वश्रेष्ठ आसान।
क्लिष्ट बनाया गर इसे, खो देगी पहचान।।

आप भारतवर्ष के किसी भी तीर्थस्थान पर चले जाइए, वहाँ आपको विदेशी अवश्य मिलेंगे, जो हिंदी में आपसे संभाषण करेंगे, हिंदी में ही आपका अभिवादन करेंगे। इतना सबकुछ देखकर यदि हम थोड़ा सा भी प्रयास करें तो संपूर्ण विश्व की भाषा हिंदी हो सकती है।

मैंने सन् 1959 से न्यायिक कार्य आरंभ किया था और तब से आज तक समस्त कार्य हिंदी में करता आया हूँ। अपील, याचिकाएँ, लिखित तर्क तथा अन्य अभिलेख सभी हिंदी में प्रस्तुत करता हूँ और हिंदी में ही प्रार्थना-पत्र भी देता हूँ। मुझे आज तक कोई कष्ट नहीं हुआ, कोई व्यवधान नहीं पड़ा तथा किसी प्रकार की रुकावट नहीं आई, मेरे द्वारा व्यापार कर कानून पर 11 पुस्तकें लिखी गईं। मैं अब तक 52 पुस्तकें लिख चुका हूँ और सभी मूलत: हिंदी में हैं। हिंदी में जितनी सरलता से आप अपनी बात समझा सकते हैं, अन्य भाषा में नहीं। यही स्थिति रोटरी अंतरराष्ट्रीय में गवर्नर के पद पर रहते हुए हुई। अमेरिका में रोटरी गवर्नर की प्रशिक्षण अवधि के दौरान मैंने अपने समकक्ष विदेशी गवर्नरों को हिंदी के प्रति उत्सुक देखा और अधिकांश विदेशी समकक्ष गवर्नर हिंदी में ही अभिवादन करते थे, जिससे उनके मन पर संतोष की भावना मुझे परिलक्षित होती थी।

हिंदी जिसका उदय संस्कृत भाषा से हुआ, ऋषियों-मुनियों और संतों की भाषा है। जितने वेद-पुराण और ग्रंथ भारतवर्ष में लिखे गए हैं, वे मूलत: भले ही संस्कृत में हों, लेकिन उनका अनुवाद जनसाधारण के लिए हिंदी में हुआ। रामायण जैसा महाकाव्य हिंदी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में नहीं मिलता। गीता का महत्व तो भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी जाना जाने लगा है।

जिस प्रकार हमारे ऋषि-मुनियों ने वेद-पुराण और ग्रंथों की रचना हिंदी में की है, इसी प्रकार से ज्ञान-विज्ञान और कानून की सभी पुस्तकें हिंदी में लिखी जानी चाहिए। हमारे देश का संविधान हिंदी में हो और उसको प्रत्येक राष्ट्र को प्रेषित किया जाए। ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें भी विश्व स्तर पर प्रचारित और प्रकाशित की जाए, इसका अनूठा प्रभाव पड़ेगा। सरल भाषा में लिखी गई ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें प्रत्येक छात्र आसानी से समझ लेगा और नवीनतम आविष्कार करने में सुविधा रहेगी। हम प्रयास तो करें, संपूर्ण विश्व हिंदी अपनाने को तैयार है।

साहित्य की सेवा के क्षेत्र में मेरे द्वारा सदैव हिंदी का समर्थन और उपयोग किया गया है। मेरे द्वारा प्रत्येक मास एक 'काव्यमाल' प्रकाशित की जाती रही है, जिसमें हिंदी का वर्चस्व और उसकी उपादेयता तथा उसके समर्थन में सदैव लिखा जाता रहा है। काव्यमाला के कुछ प्रमुख अंश निम्न प्रकार हैं—

गांधी ने हिंदी गुन गाया।
नंद-विवेक ने दोहराया।
संत विनोबा ने अपनाया।
सरल सहज हिंदी को पाया।

× × ×

बच्चा पैदा भले कहीं हो, पहले वह ऊँ-आँ कहता है।
अगर गौर से सुनें रुदन को उसके तो वह माँ कहता है।
हिंदी भावों की माता है, हम इसमें मुखरित हो जाएँ
आओ हिंदी को अपनाएँ।

× × ×

हिंदी हृदय धारण करें।
बलिदान तन-मन-धन करें।

× × ×

तुम इसको अपनाओ, विश्व समूचा अपना लेगा।
भारत की भाषा के दर्पण में खुद को देखेगा।
कहो राष्ट्रभाषा हिंदी है, छोड़ो करना नाट्यम।
बोलो वंदे भारतम् मित्रो, बोलो वंदे भारतम्।

धीरे-धीरे हिंदी का अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व बढ़ रहा है। विश्व के लोग समझ रहे हैं कि हिंदी में संभाषण सरल, सुबोध और सर्वग्राह्य है। शिक्षा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, हिंदी ने धीरे-धीरे अपना स्थान बना लिया है, हिंदी माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थी प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्त हो रहे हैं तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी अपनी पहचान बना रहे हैं। बात केवल प्रयास की है और प्रयास हम सबको मिलकर करना है।

यह विडंबना है कि हम आपसी विवादों में पड़कर अपनी-अपनी प्रांतीयता का वर्चस्व बनाए रखने के लिए और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए हिंदी से दूर भाग रहे हैं। हिंदी को इतना क्लिष्ट बना रहे हैं कि जनसाधारण या तो उस पर हँसता है अथवा उससे बचता है। हम अपने बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ाना अपनी शान

समझते हैं। सरकार भी इस ओर उदासीन है। प्रशासनिक सेवाओं में भी अंग्रेज़ी का बोलबाला है। जबकि प्रशासनिक सेवाओं में हिंदी अनिवार्य होनी चाहिए। विदेशों में हिंदी के प्रति प्रेम बढ़ रहा है, वहाँ विद्यालयों में हिंदी शिक्षक नियुक्त किए जा रहे हैं। अधिकांश विदेशी भारतीय को देखकर हिंदी में अभिवादन करते हैं। मेरे एक संबंधी कनाडा में हैं। उन्होंने सूचित किया कि यहाँ के पुस्तकालयों में हिंदी की भी पुस्तकों को उतना ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है, जितना अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषा की पुस्तकों को।

जिस तरह किसी भी देश का अस्तित्व भाषा, भूषा, भेष पर निर्भर करता है, उसी प्रकार यदि हम संपूर्ण विश्व को एकसूत्र में बाँधना चाहते हैं तो उसके लिए एक संपर्क भाषा का होना आवश्यक है। भारतवर्ष जब परतंत्र हुआ तब सबसे पहले विद्यालयों में, सरकारी कार्यालयों में अंग्रेज़ी का प्रयोग आवश्यक हो गया और हिंदी को परदे के पीछे धकेल दिया गया। हालाँकि भारतवर्ष में हिंदी पखवारा मनाया जाता है, लेकिन कोई सार्थकता उसकी सिद्ध नहीं होती। यदि भारतवर्ष की संसद् और विधानसभाओं में केवल हिंदी में कामकाज तथा पत्राचार सुनिश्चित कर दिया जाता तो काफ़ी कुछ सार्थक सिद्ध हो सकता था। भारतवर्ष में आज़ादी का आंदोलन केवल इसीलिए सफल हो सका कि पूरा आंदोलन हिंदी भाषा के माध्यम से चलाया गया। हिंदी मूर्धन्य विद्वान भूतपूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष व धर्ममान कॉलेज, बिजनौर के डॉ. रामस्वरूप आर्य ने हिंदी के संबंध में जो जानकारी दी, उससे हिंदी के प्रति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रेम और सम्मान सिद्ध होता है।

1. पहला हिंदी साप्ताहिक कलकत्ता से श्री जुगल किशोर शुक्ल द्वारा प्रकाशित किया गया, जिसका नाम था 'उदंत मार्तंड'।
2. पहला दैनिक हिंदी समाचार-पत्र, उसको कालाकाँकर से राजा रामपाल सिंह ने प्रकाशित किया। इसका नाम था 'हिंदोस्तान', इसके प्रथम संपादक पंडित मदन मोहन मालवीयजी थे।
3. हिंदी का प्रथम व्याकरण अंग्रेज़ी में श्री केलॉग द्वारा लिखा गया।
4. भारतवर्ष में प्रकाशित होनेवाली पहली पुस्तक हिंदी में थी।
5. पहला मासिक पत्र हिंदी में प्रकाशित हुआ।
6. हिंदी का सबसे पहले एम.ए. कलकत्ता यूनिवर्सिटी में आरंभ हुआ और श्री नलिनी मोहन सान्याल एम.ए. हिंदी के प्रथम विद्यार्थी थे।
7. हिंदुस्तान के अंदर हिंदी साहित्य पर सर्वप्रथम डी.लिट्. डॉ. पितांबर दत्त वडथ्वाल ने की थी। इससे पूर्व विदेशों में तुलसीदास पर हिंदी डॉक्टरेट की उपाधि एल.पी. टेस्सीटोरी को प्रदान की गई थी।
8. ग्रियर्सन कृत मॉर्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान हिंदी साहित्य के इतिहास की प्रथम पुस्तक है।
9. भारत की संविधान सभा में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने का प्रस्ताव एक दक्षिण भारतीय अनंत शयनम आयंगर ने प्रस्तुत किया था।

विश्व हिंदी सचिवालय के माध्यम से मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि हम विश्व स्तर पर प्रयास करें तो हिंदी पूरे विश्व की संपर्क भाषा बन सकती है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की ज्योति प्रज्वलित कर सकती है। आवश्यकता है हमें एकजुट होकर प्रयास करने की। विश्व हिंदी सचिवालय के कार्यक्रम में हमें विदेशी विद्वानों को यह समझाने का प्रयास करना चाहिए कि हिंदी की सरलता को देखते हुए इसे विश्व की संपर्क भाषा बनाया जाए और मैं समझता हूँ, हमारा यह प्रयास अवश्य सफल होगा।

यह हिंदी की सर्वग्राह्यता है कि हिंदी फिल्में विदेशों में खूब लोकप्रिय होती हैं। राजकपूर की 'आवारा' और 'श्री चार सौ बीस' रूस तथा अन्य देशों में खूब लोकप्रिय हुईं। यदि उसी स्तर पर प्रयास किया जाए तो यह असंभव नहीं है कि हिंदी ही पूरे विश्व की संपर्क भाषा बनेगी और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपना स्थान बनाएगी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा तभी सार्थक हो सकता है, जब हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा का स्थान ग्रहण करे। केवल प्रयास करने की आवश्यकता है। यह कुछ भी असंभव नहीं है।

विश्व हिंदी सचिवालय ने बहुत अच्छे कार्यक्रम आयोजित किए हैं, यह मैं बहुत से लोगों से सुनता आया हूँ, मुझे तो पहली बार ही जुड़ने का अवसर मिला है, किंतु मैं समझता हूँ कि मेरे इस जुड़ाव से सचिवालय और मैं, दोनों एकात्म भाव से एक जैसी ज्योति प्रज्वलित करेंगे, जो समूचे विश्व को एकसूत्र में बाँध सकेगी और हिंदी ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा होगी। प्रत्येक राष्ट्र के विद्यालयों में हिंदी की अनिवार्यता घोषित कर दी जाएगी। प्रयास और प्रतीक्षा आवश्यक है।

गणपति भवन, सिविल लाइंस,
बिजनौर-246701 (उ.प्र)

□

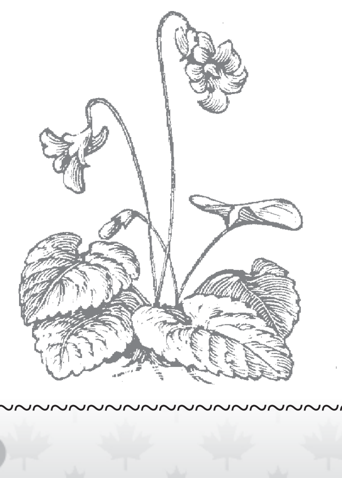

14

हिंदी का बढ़ता अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व और उससे संबंधित समस्याएँ

प्रो. हरिराज सिंह 'नूर'

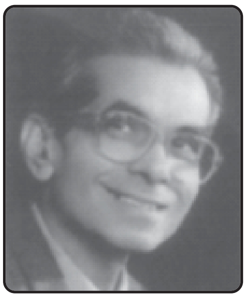

जन्म : 08 सितंबर, 1943, मुरादाबाद में। **शिक्षा :** एम.एस.सी. (1963), पी-एच.डी.। यूनिवर्सिटी प्रोफेसर/पूर्व कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

प्रकाशन : मेरे घोंसले का शिल्प (कविता-संग्रह, 1998), दूर उस पार (कविता-संग्रह, 2002), प्रश्न प्यास (कविता-संग्रह, 2004), आई हैव नो मिरर (अंग्रेज़ी कविता संग्रह 2005), नील गगन की ओर (गीत संग्रह 2010), तारों की अंजुमन (ग़ज़ल-संग्रह 2011), नभ के तारे (हाइकु कविताएँ, 2013)।

हिंदी के वैश्विक परिदृश्य के संदर्भ से निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि हिंदी का अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व लगातार बढ़ रहा है। विश्व में हिंदी भाषियों की संख्या एक अरब ग्यारह करोड़ से अधिक है, जबकि चीनी और अंग्रेज़ी भाषा दूसरे और तीसरे स्थान पर हैं। संप्रति 170 से अधिक विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में हिंदी पढ़ाई जाती है तथा हिंदी में शोधकार्य हो रहा है। मॉरीशस आदि अन्य कई देश हिंदी का प्रयोग करते हैं। अब तक नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन इस बात का प्रमाण है कि विभिन्न देशों की सरकारें हिंदी के उत्थान के लिए प्रयासरत हैं।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 1975 में नागपुर (भारत) में हुआ था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी तथा मॉरीशस के प्रधानमंत्री डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम ने की थी। श्रीमती इंदिरा गांधी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा था, ''हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से एक है। यह करोड़ों लोगों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं, जो इसे दूसरी भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं।'' इस समारोह में फादर कामिल बुल्के भी उपस्थित थे। डॉ. सर शिवसागर रामगुलाम ने मॉरीशस में विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना का प्रस्ताव भी रखा था। अब यह सचिवालय मूर्त रूप ले चुका है तथा यह भारत सरकार व मॉरीशस सरकार की द्विपक्षीय संस्था के रूप में कार्यरत है। दूसरे तथा चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन भी क्रमशः 1976 तथा 1993 में मॉरीशस में हुए थे। मॉरीशस में 2 मार्च, 2013 को हिंदी साहित्य शताब्दी समारोह का आयोजन भी किया जा चुका है। नौवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 2012 में जोहांसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में हुआ था, जिसमें अन्य बातों के अलावा हिंदी के विकास में अनुवाद की भूमिका पर भी चर्चा की गई थी। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ (यू.एन.ओ.) की आधिकारिक भाषा बनाने का आह्वान सर्व सम्मति से किया गया था।

आज भारत के बाहर अनेक देशों में हिंदी बोली और समझी जाती है। भारत के बाहर मॉरीशस, अमेरिका, ब्रिटेन, पाकिस्तान, नेपाल, इंडोनेशिया, इराक, बँगलादेश, इजरायल, ओमान, इक्वाडोर, फिजी, जर्मनी, म्याँमार (बर्मा), त्रिनीदाद, रूस आदि देशों में अनेक लोग हिंदी भाषी हैं। वर्तमान आँकड़ों के अनुसार विश्व के 70 देशों में हिंदी जानने वालों की संख्या लगभग 1022 मिलियन है। अतः हम कह सकते हैं कि विश्व के मानचित्र पर हिंदी का उदय विश्व भाषा के रूप में हो रहा है। भारतीय मूल के असंख्य प्रवासी अनेक देशों में हिंदी का ध्वज फहरा रहे हैं।

हिंदी का विश्वव्यापी होना तथा अनेक राष्ट्रों में हिंदी सीखने की पहल के पीछे हिंदी का आसान लिपि (देवनागरी) में लिखा जाना भी एक कारण हो सकता है। हिंदी/संस्कृत ऐसी भाषाएँ हैं, जिनमें जो बोला जाता है, वही लिखा भी जाता है। जबकि अंग्रेज़ी सहित विश्व की अनेक भाषाएँ इसका अपवाद हैं, उनमें बहुत से शब्दों का उच्चारण कुछ और होता है तथा लिखा कुछ और जाता है। हिंदी/संस्कृत में 13 स्वर (Vowels) तथा 35 व्यंजन (Consonants) होते हैं। अनेक विद्वान मानते हैं कि व्यक्ति का उच्चारण (Pronunciation) या तलफ्फुज तभी शुद्ध होता है जब उसने संस्कृत

या फारसी (Persian) पढ़ी हो। आपको ज्ञात होगा कि उर्दू के शायर प्रोफेसर रघुपति सहाय फिराक अच्छी संस्कृत जानते थे। उसी प्रकार अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि टी.एस. इलियट (1888–1965) ने भी संस्कृत तथा प्राच्य दर्शनशास्त्र पढ़े थे, जिन्होंने उनके काव्य को प्रभावित किया था। कहने का आशय यह है कि हिंदी में ऐसे अनेक गुण हैं, जो उसे विश्वभाषा बनाने में सक्षम हैं। यद्यपि अनुवाद का कार्य काफ़ी कठिन है, लेकिन यदि सही अनुवाद किया जाए तो विज्ञान और तकनीकी पढ़ाई भी हिंदी माध्यम से संभव है। कंप्यूटर शिक्षा भी हिंदी माध्यम से दी जा सकती है।

हिंदी का वर्चस्व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकारते हुए भी मैं यह कहना चाहूँगा कि भाषा के मामले में हमें उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपनी मातृभाषा हम सभी को अच्छी लगना नितांत स्वाभाविक है। भाषा के प्रति उदार दृष्टिकोण से मेरा तात्पर्य है कि जितनी भाषाएँ हम सीख सकें, उतना अच्छा है। जहाँ तक संभव हो सके, मनोग्रंथि या जटिलता का शिकार होने से बचना चाहिए। आप जितना सरल रहने का प्रयास करेंगे, उतना अच्छा है। आपके लिए भी अच्छा है तथा साहित्य समाज और राष्ट्र के लिए भी अच्छा है। कहना आवश्यक समझता हूँ, वह है कि साहित्य की जिस विधा (दोहा, कविता, गीत, गज़ल, कहानी, उपन्यास, मुक्तक आदि) में आप लिखते हैं, वे आपको सबसे अच्छी लगती हैं। लेकिन साहित्य की अन्य विधाओं का भी हमें समादर करना चाहिए। कोई व्यक्ति अधिक–से–अधिक दो या तीन विधाओं में पारंगत हो सकता है, सब में नहीं। नए लेखकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि जल्दी या उतावलेपन में आप न लिखें तो बेहतर होगा। यहाँ मैं कहना आवश्यक समझता हूँ कि आप चाहे जो भाषा प्रयोग करें, उसमें कठिन शब्दों का इस्तेमाल नहीं होना चाहिए। भाषा की सरलता और सहज प्रवाह उसके अनिवार्य गुण हैं, जिन्हें स्वीकार करना हमारा धर्म होना चाहिए। आप चाहे जिस विधा में लिखें, स्वाभाविक रूप से किसी भी भाषा के आसान शब्दों से कोई परहेज नहीं होना चाहिए। संसार में उसी भाषा ने आशातीत सफलता प्राप्त की है तथा पर्याप्त उन्नति भी की है, जिसने दूसरी भाषा के प्रचलित शब्दों या Loan Words को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है। अनेक भाषाओं के रोज़–ब–रोज मोटा होते हुए शब्दकोश इसके प्रमाण हैं। यों तो प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनके समानार्थी शब्द किसी दूसरी भाषा में मिलना कठिन

अब मैं कुछ समस्याओं की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा, जो हिंदी के बढ़ते हुए अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व के कारण अनायास पैदा हो गई हैं। इनमें सबसे बड़ी समस्या है अनुवाद की। सही अनुवाद करना तभी संभव है जब आपको कई भाषाएँ आती हों। अतः पुस्तकों, विशेषरूप से विज्ञान, मेडिकल और तकनीकी शिक्षा की पुस्तकों, के अनुवाद की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। भारत में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने इस दिशा में पर्याप्त कार्य किया है, परंतु उसे और अधिक सक्रिय बनाने की आवश्यकता है तथा अनुवाद कर्ताओं को और अधिक उदार होने तथा खुले दिमाग से कार्य करने की। हर शब्द के लिए यदि हम तत्सम शब्द ढूँढने का प्रयास करेंगे, तो मेरे विचार से अनुवाद-कार्य ठीक न होगा। अतः अनुवाद करते समय यह आवश्यक है कि दूसरी भाषा के प्रचलित शब्दों को वैसे ही ले लिया जाए।

नई पीढ़ी इस बात को लेकर काफ़ी जागरूक है कि भाषाई कट्टरपन कितना घातक हो सकता है। यही कारण है कि आज के नवयुवक तथा नवयुवतियाँ आवश्यकतानुसार फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, जापानी, चीनी आदि भाषाएँ भी सीख रहे हैं। यही दृष्टिकोण अन्य भारतीय भाषाओं—बँगला, मलयालम, तमिल, तेलुगु, कश्मीरी, पंजाबी आदि के प्रति भी होना चाहिए। तभी हमारा वास्तविक कल्याण संभव है और तभी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धांत को बल मिल सकता है।

कवि तो बुद्धि और ज्ञान में साधारण व्यक्ति से अधिक प्रबुद्ध और संवेदनशील होता है। अत: समस्याओं के अनुशीलन के साथ उनका समाधन भी ढूँढने का प्रयास करता है और सकारात्मक सोच के साथ अपनी बात कहता है। अत: दूसरी बात, जिसे मैं आपसे हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी में 'ठग', 'बँगला', 'महाराजा' इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं।

समकालीन समाज में पाठक को दिशा देने, समाज की दशा बदलने के लिए और सांप्रदायिक सद्भाव की सही अभिव्यक्ति के लिए लेखकों को अपनी भूमिका पर पुनर्विचार करना होगा। मेरा मत है कि लेखकों में विद्यमान सृजनात्मकता समाज को किस प्रकार दिशा दे सकती है, उसमें व्याप्त कुत्सा, हिंसा, ईर्ष्या, अंधप्रतिस्पर्धा और साहित्य तथा संस्कृति के प्रति उपेक्षा के भाव किस प्रकार समाप्त कर उसमें सामाजिकता और समरसता उत्पन्न की जा सकती है, यह चिंतन–मनन लेखकों द्वारा किया जाना चाहिए, तभी समाज सात्विकता और सकारात्मकता की ओर उन्मुख होता दिखाई देगा।

यहाँ मैं वह बात भी दुहराना चाहता हूँ, जो मैंने 'ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया' के बरेली में 2002 में आयोजित वार्षिक अधिवेशन में मुख्य अतिथि के रूप में कही थी। उस अधिवेशन में कादंबिनी के तत्कालीन संपादक स्वर्गीय डॉ. राजेंद्र अवस्थी स्वयं उपस्थित थे। मेरा विचार है कि बदलते समय के अनुरूप लेखकों को अपनी प्रतिबद्धता स्वयं निश्चित करनी होगी—What is their commitment towards self, other authors and towards society and nation? ऐसा करने में ही समाज तथा विश्व का कल्याण संभव है।

अब मैं कुछ समस्याओं की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा, जो हिंदी के बढ़ते हुए अंतरराष्ट्रीय वर्चस्व के कारण अनायास पैदा हो गई हैं। इनमें सबसे बड़ी समस्या है अनुवाद की। सही अनुवाद करना तभी संभव है जब आपको कई भाषाएँ आती हों। अत: पुस्तकों, विशेषरूप से विज्ञान, मेडिकल और तकनीकी शिक्षा की पुस्तकों, के अनुवाद की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। भारत में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने इस दिशा में पर्याप्त कार्य किया है, परंतु उसे और अधिक सक्रिय बनाने की आवश्यकता है तथा अनुवाद कर्ताओं को और अधिक उदार होने तथा खुले दिमाग से कार्य करने की। हर शब्द के लिए यदि हम तत्सम शब्द ढूँढने का प्रयास करेंगे, तो मेरे विचार से अनुवाद-कार्य ठीक न होगा। अत: अनुवाद करते समय यह आवश्यक है कि दूसरी भाषा के प्रचलित शब्दों को वैसे ही ले लिया जाए।

एक अन्य समस्या है भाषायी कट्टरपन, जिसकी ओर इस आलेख में मैं पहले भी इंगित कर चुका हूँ। भाषाई कट्टरपन से यथासंभव बचने का प्रयास किया जाना चाहिए। यह तभी संभव है जब हम दूसरी भाषाओं के प्रति उदार दृष्टिकोण रखें। कुछ समस्याएँ ऐसी हैं, जो और अधिक शोध से हल हो सकती हैं। यहाँ मैं केवल एक समस्या की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा। प्रोफेसर (स्वर्गीय) सत्यभूषण वर्मा (1932-2005) तथा प्रोफेसर भगवतशरण अग्रवाल (2009) का मत है कि 'हाइकु विधा' जापान से भारत में आई। यह विचार काफ़ी मान्य तथा प्रमाणित समझा जाता है, लेकिन इसके विपरीत एक और भी विचार है कि बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा भारत से अन्य देशों के रास्ते यह विधा जापान गई। दूसरे मत के माननेवाले अपने लिए यह तर्क देते हैं कि भारत के बहुत से हाइकु इसके प्रमाण हैं, जैसे नम: शिवाय, ओम नम: शिवाय, नम: शिवाय। ऐसे अनेक विषय हैं जिन पर शोध की नितांत आवश्यकता है। कबीर, अमीर खुसरो तथा अन्य सूफी कवियों के कार्यों पर शोध परमावश्यक है। अमीर खुसरो फारसी तथा हिंदवी के विद्वान थे। उन्होंने पहेलियाँ, मुकरियाँ, दोसुखने, गीत, कव्वालियाँ, गज़लें, दोहे आदि लिखे हैं, जो अद्वितीय हैं। अमीर खुसरो का स्वर्गवास हुए बहुत समय हो चुका है, अत: उनके द्वारा जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें भाषाई परिवर्तन होना स्वाभाविक है। आवश्यकता शोध की है, ताकि हम उनके लिखे को प्रामाणिक या विश्वसनीय मान सकें और हिंदी तथा खड़ी बोली की व्युत्पत्ति एवं विकास में उनके योगदान को समझ सकें।

इस आलेख में मैंने अपने कुछ निजी विचार भी आपके समक्ष रखे हैं। हिंदी तथा उससे जुड़ी हुई अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के प्रति आपको सुग्राही बनाने का प्रयास किया है। यह बिलकुल भी आवश्यक नहीं है कि आप मेरे विचारों से सहमत हों। विद्वानों में मतैक्य होना अनिवार्य नहीं है। यदि आप असहमत भी होते हैं तो मुझे न कोई आश्चर्य होगा और न ही किसी प्रकार की कोई निराशा; क्योंकि इस असहमति में ही हमारा मौलिक चिंतन निहित है और यह असहमति ही हमारे सृजन का मुख्य आधार है। श्री सुखलाल तथा अन्य विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे यह लेख लिखने की प्रेरणा दी। भवभूति के निम्नलिखित श्लोक को लिखकर अपनी बात समाप्त करता हूँ—

ये नाम केचिदिह न: प्रथयन्त्वज्ञां,
जानन्ति ते किमपि, तान प्रति नैष यत्न:।

उत्पत्स्यते अस्ति मम कोऽपि समानधर्म्मा,
कालोह्यमं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

3/33 श्रद्धापुरी, फेज-I
मेरठ-250001
(उ.प्र.) भारत
profsinghhr@yahoo.co.in

□

15

हिंदी में मानकीकरण की आवश्यकता

डॉ. श्याम नारायण शुक्ल

हिंदी भारत की एक प्रमुख राष्ट्रभाषा है। वह भारत के कई प्रांतों की राज्य-भाषा और कुछ दूर देशों की भी भाषा है, जहाँ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवंशी जा बसे थे। उनमें से कुछ प्रमुख देश हैं—दक्षिण-अफ्रीका, मॉरीशस, ट्रिनिडाड, गुयाना, सूरीनाम, फ़िजी आदि। पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध से कनाडा, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इंग्लैंड, हॉलैंड आदि देशों में भी बहुत से हिंदी-भाषी भारतीय जा बसे हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद से हिंदी की प्रगति हुई है और उसकी लोकप्रियता बढ़ी है। संसार में हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर आज हिंदी एक अग्रगण्य विश्व-भाषा है। संभव है कि एक दिन वह संयुक्त राष्ट्र संघ की भी भाषा बन जाए।

पिछले दशक के प्रारंभ से समाचार और प्रकाशन जगत में कंप्यूटर का उपयोग बहुत चढ़ा है और भविष्य में बढ़ता ही जाएगा। आज हम 'इंटरनेट' पर सभी हिंदी समाचार-पत्र पढ़ सकते हैं। चूँकि प्रत्येक समाचार-पत्र का अपना अलग ही फॉण्ट होता है। कोई दो-तीन वर्ष पहले उन्हें पढ़ने के लिए अपने कंप्यूटर में प्रत्येक समाचार-पत्र का फॉण्ट भी डाउनलोड करना पड़ता था। आज भी हिंदी के अनेक फॉण्ट उपलब्ध हैं और इसके कारण एक फॉण्ट से लिखी गई रचना हम किसी व्यक्ति को भेजते हैं, जिसके पास वह फॉण्ट नहीं है, तो वह उसे न तो खोल पाता है, न पढ़ पाता है। अब तो हिंदी में ई-मेल भेजने की सुविधा भी हो गई है। इसलिए आज के युग में हिंदी को कंप्यूटर-साध्य बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी का मानकीकरण (Standardization) हो और उसके बाद सभी लोग अविलंब मानकीकरण के नियमों का पालन करें। इस संबंध में कुछ चर्चा लंदन के विश्व हिंदी सम्मेलन में हुई थी। अधिक-से-अधिक लोग हिंदी में मानकीकरण की उपयोगिता और आवश्यकता को समझें, यहीं इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

हिंदी में मानकीकरण के लिए जिन विषयों पर विशेष ध्यान चाहिए, उनमें से कुछ हैं—

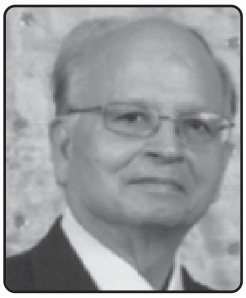

जन्म : छत्तीसगढ़ प्रांत के जाँजगीर ज़िला के अंतर्गत तुलसी नामक ग्राम, भारत में।

शिक्षा : सिविल-स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग में क्रमशः बी.ई. (ऑनर्स), एम.एस-सी. और पी-एच.डी. जबलपुर विश्वविद्यालय, यूनिवर्सिटी ऑफ न्यू ब्रंसविक (कैनेडा) और ओहायो स्टेट यूनिवर्सिटी (अमेरिका)।

संप्रति : सेवा-निवृत्त स्ट्रक्चरल इंजीनियर और प्राध्यापक। पिछले चार दशकों से अमेरिका में सैन फ्रैंसिस्को के पास स्थित फ्रीमांट नगर में सपरिवार रहते हैं।

रचनाएँ : विभिन्न विषयों में 7 पुस्तकें और विभिन्न हिंदी पत्रिकाओं में धार्मिक और सामाजिक विषयों पर अनेक लेख। स्मरणात्मक पुस्तक 'गंगा से मिसीसिपी तक', हिंदी पत्रिका 'विश्व विवेक' के संयुक्त संपादक रहे।

नवंबर 2012 में एक विशेष समारोह में उनके जन्म-स्थान के प्रांत छत्तीसगढ़ के शासन ने उनकी उपलब्धियों के लिए उन्हें सम्मानित किया, जिसमें उन्हें राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी के हाथों पुरस्कार दिया गया।

1. वर्णमाला

हिंदी एक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक (Phonetical) भाषा है। उसकी लिपि देवनागरी है, जो संस्कृत, मराठी और नेपाली भाषाओं की भी लिपि है। हिंदी की वर्णमाला में स्वर और व्यंजन को वाणी-विज्ञान के आधार पर बड़े सुनियोजित क्रम में रखा गया है। उसमें तेरह स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः और ग) हैं। फिर 25 नियमित व्यंजन हैं, जो पाँच समूहों में इस तरह बाँटे गए हैं कि मुँह के एक विशेष भाग में उच्चरित होनेवाले व्यंजन एक समूह में आते हैं। जैसे पहले पाँच व्यंजन (क, ख, ग, घ, ङ) कंठ से उच्चरित होते हैं, दूसरे पाँच (च, छ, ज, झ, ञ) जीभ द्वारा तालू के बीच भाग को छूने से, तीसरे पाँच (ट, ठ, ड, ढ, ण) जीभ द्वारा तालू के अग्र भाग को छूने से, चौथे पाँच (त, थ, द, ध, न) जीभ द्वारा दाँत को छूने से और अंतिम पाँच (प, फ, ब, भ, म) ऊपर और नीचे के होंठों के स्पर्श से उच्चरित होते हैं। इन प्रत्येक व्यंजन समूहों का पाँचवाँ व्यंजन

नासिक्य (Nasal) है। इनमें से किसी भी व्यंजन के पहले यदि अनुस्वार हो तो उस अनुस्वार के बदले उस व्यंजन-समूह का नासिक्य व्यंजन अगले व्यंजन के साथ संयुक्त अक्षर के रूप में लिखा जाता है। उदाहरण के लिए, शङ्ख को हम शंख तथा ताण्डव को तांडव भी लिखते हैं। इन 25 नियमित व्यंजनों के सिवाय 13 अनियमित व्यंजन (य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ, ड, और ढ) हैं। यदि हम ॐ को भी एक अक्षर मानें तो आधुनिक हिंदी में 42 अक्षर होते हैं। हिंदी में विशेषकर उत्तर प्रदेश की हिंदी में उर्दू का बहुत प्रभाव है। उर्दू के कुछ शब्दों (यथा—कागज़, अख़बार, फ़सल, आदि) का ठीक से उच्चारण दर्शाने के लिए कुछ लोग क, ख, ग, ज, फ आदि अक्षरों के नीचे मुक्ता लगाते हैं। कंप्यूटर की सहायता से वर्ड-प्रोसेसिंग करते समय मराठी के कुछ शब्दों को भी लिखा जा सके, अत: देवनागरी के फॉण्ट में 'ळ' अक्षर का भी समावेश किया जाता है। आज हिंदी की वर्णमाला में एकरूपता के लिए मानकीकरण आवश्यक हो गया है। इसमें नए सिरे से विचार की आवश्यकता है।

2. वर्णाकृति

हिंदी के कई अक्षरों, यथा—भ, ध, झ, ल आदि को एक से अधिक प्रकार से लिखा जाता है। 'भ' और 'ध' के दूसरे रूपांतर हैं उन्हें बायीं ओर शून्याकार से प्रारंभ करते हुए लिखना। वर्धा-लिपि में सभी स्वरों को 'अ' में मात्रा लगा कर लिखा जाता है, जैसे— अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ, अं, अः। इसका दुष्परिणाम यह होगा कि इस वर्णमाला से हिंदी पढ़े लोग संस्कृत नहीं पढ़ पाएँगे। इस अराजकता की स्थिति को समाप्त करने के लिए भी मानकीकरण आवश्यक है।

कंप्यूटर में हिंदी के लिए वर्ड-प्रोसेसिंग प्रोग्राम उपलब्ध न होने के कारण संप्रति हम अंग्रेज़ी के वर्ड-प्रोसेसिंग प्रोग्राम के फॉण्ट फाइल में हिंदी के फॉण्ट डालकर काम चलाते हैं। हिंदी के अनेक उपलब्ध फॉण्ट में से कुछ के अक्षर सुडौल और सुंदर हैं तो कुछ के बड़े असंतुलित और बेडौल हैं। आज के इस कंप्यूटर युग में वर्णाकृति की इस भिन्नता को मानकीकरण के द्वारा समाप्त करना होगा।

3. उच्चारण

कहते हैं, भारत में हर दस कोस (32 कि.मी.) में भाषा (बोली), शब्दों का उच्चारण (Pronunciation) और बोलने का लहज़ा (Accent) बदल जाते हैं। अत: स्वाभाविक है कि ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, बुंदेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, मालवी आदि क्षेत्रों में पले-बढ़े लोगों की हिंदी के उच्चारण अलग-अलग होंगे। उस दिशा में कुछ किया भी नहीं जा सकता। परंतु देवनागरी लिपि में कुछ ऐसे अक्षर हैं, जिनका उच्चारण अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग प्रकार से किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'ग' अक्षर को लीजिए। उसका उच्चारण हिंदी-भाषी प्रांतों में 'रि' के रूप में होता है तो महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिणी प्रांतों में 'रू' के रूप में। उसी तरह 'ज्ञ' को हिंदी-भाषी प्रांतों में 'ग्यॅ' जैसा उच्चारण करते हैं तो महाराष्ट्र और दक्षिण के प्रांतों में 'दन्य' जैसा तथा गुजरात में 'ग्न' के रूप में करते हैं। संस्कृत में उसका सही उच्चारण 'ज्यँ' है। हिंदी का फल शब्द संस्कृत से आया है, पर उर्दू-फारसी के प्रभाव के कारण उसका उच्चारण फ़ल करते हैं। कंप्यूटर के अब ऐसे प्रोग्राम आ गए हैं, जो आपकी ध्वनि सुनकर शब्द टंकित कर सकते हैं। अत: कंप्यूटर में मानकीकरण के लिए इन कुछ अक्षरों के उच्चारण निर्धारित करने होंगे।

4. वर्तनी

हम गर्व करते हैं कि हिंदी एक ध्वन्यात्मक (Phonetic) भाषा है, अत: हमें हिंदी के शब्दों की वर्तनी में कोई कठिनाई नहीं होती, जैसे कि अंग्रेज़ी या फ्रांसीसी में होती है। अर्थात् हम जो बोलते हैं, उसे सरलता से लिख सकते हैं। हमें किसी शब्द की वर्तनी याद नहीं रखनी पड़ती। फिर भी हिंदी में ऐसे कई शब्द हैं, जिन्हें एक से अधिक प्रकार से लिखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, हम 'हिंदी' को

ऐसे तो हिंदी का व्याकरण सरल है, फिर भी संज्ञा शब्दों के लिंग भेद में अहिंदी भाषियों को (और कुछ हिंदी भाषियों को भी) कठिनाई होती है, क्योंकि प्रत्येक संज्ञा शब्द या तो पुलिंग है या स्त्रीलिंग। एक साधारण नियम के अनुसार प्रायः सभी अकारांत संज्ञा-शब्द पुलिंग हैं और सभी ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग, परंतु इनमें कुछ अपवाद भी हैं। जैसे सभी आकारांत शब्द, जो संस्कृत मूल के हैं, स्त्रीलिंग हैं, क्योंकि वे संस्कृत में भी स्त्रीलिंग हैं—जैसे शाला, कविता आदि। परंतु आत्मा शब्द, जो मूल शब्द आत्मन् का कर्तावाचक है और संस्कृत में पुलिंग है, इस नियम के कारण हिंदी में स्त्रीलिंग है। इसीलिए संस्कृत के अनेक विद्वान् आत्मा को हिंदी में पुलिंग के रूप में ही उपयोग करते हैं। कुछ ईकारांत शब्दों में भी अपवाद हैं कि वे पुलिंग हैं, यथा—घी, दही, मोती आदि।

'हिन्दी', 'संसार' को 'सन्सार', 'गंगा' को 'गङ्गा' लिख सकते हैं। कुछ लोग 'संसार' को 'सम्सार' भी लिखते हैं और उसका वैसा ही उच्चारण भी करते हैं। अब कंप्यूटर के वर्ड-प्रोसेसिंग प्रोग्राम में यह सुविधा भी उपलब्ध है, जो आपके टंकित शब्दों की वर्तनी को जाँचकर उसे सुधार सकता है। अत: इस बात को ध्यान में रखते हुए वर्तनी में भी कुछ मानकीकरण करना होगा, ताकि कंप्यूटर द्वारा वर्तनी जाँच की सुविधा का लाभ उठाया जा सके।

5. व्याकरण

ऐसे तो हिंदी का व्याकरण सरल है, फिर भी संज्ञा शब्दों के लिंग भेद में अहिंदी भाषियों को (और कुछ हिंदी भाषियों को भी) कठिनाई होती है, क्योंकि प्रत्येक संज्ञा शब्द या तो पुलिंग है या स्त्रीलिंग। एक साधारण नियम के अनुसार प्राय: सभी अकारांत संज्ञा-शब्द पुलिंग हैं और सभी ईकारांत शब्द स्त्रीलिंग, परंतु इनमें कुछ अपवाद भी हैं। जैसे सभी आकारांत शब्द, जो संस्कृत मूल के हैं, स्त्रीलिंग हैं, क्योंकि वे संस्कृत में भी स्त्रीलिंग हैं—जैसे शाला, कविता आदि। परंतु आत्मा शब्द, जो मूल शब्द आत्मन् का कर्तावाचक है और संस्कृत में पुलिंग है, इस नियम के कारण हिंदी में स्त्रीलिंग है। इसीलिए संस्कृत के अनेक विद्वान् आत्मा को हिंदी में पुलिंग के रूप में ही उपयोग करते हैं। कुछ ईकारांत शब्दों में भी अपवाद हैं कि वे पुलिंग हैं, यथा—घी, दही, मोती आदि।

साधारणत: हिंदी में क्रिया का लिंग उसके कर्ता के लिंग के अनुसार होता है। जैसे इस वाक्य ''राम रोटी खाता है'' में 'राम' (कर्ता) और 'खाता है' (क्रिया), दोनों पुलिंग हैं। परंतु सकर्मक क्रिया का लिंग, यदि उसके कर्ता के साथ 'ने' लगा हो, तो कर्म के लिंग के समान चलता है। जैसे ''राम ने रोटी खाई।'' ''सीता ने हिरण देखा।'' हिंदी व्याकरण को सरल बनाने के लिए ''क्या राम रोटी खाया'' या ''राम ने रोटी खाया'' ठीक माना जाए? आजकल कुछ लोग बोलचाल की हिंदी में कहते हैं, ''मेरे को जाना है'' या ''मैंने जाना है।'' क्या इन्हें भी ठीक माना जाए? कई लोग ''हमें प्रगति करना है'' कहने के बदले ''हमें प्रगति करनी है'' कहते हैं। क्या यह भी व्याकरण की दृष्टि से ठीक समझा जाए?

6. कुंजी-पटल

रोमन लिपि वाली सभी भाषाओं के टाइपराइटरों में कुंजी-पटल (keyboard) एक से होते हैं, क्योंकि उनका मानकीकरण बहुत पहले हो चुका था। वही कुंजीपटल कंप्यूटर में भी है। उन कंप्यूटरों को हम आज अन्य कार्यों के सिवाय हिंदी में वर्ड-प्रोसेसिंग के लिए भी उपयोग में लाते हैं। इसीलिए हम वर्ड-प्रोसेसिंग के कई महत्वपूर्ण अंगों का, जैसे वर्तनी और व्याकरण जाँच में उपयोग नहीं कर पाते।

इस तरह हम देखते हैं कि ऊपर चर्चित विषयों पर हिंदी में शीघ्रातिशीघ्र मानकीकरण होना चाहिए। विलंब करने से हमें और हिंदी को भारी क्षति उठानी पड़ेगी। भारत के केंद्रीय शासन द्वारा मानकीकरण के लिए जो समिति नियुक्त हो, उसमें शासकीय अधिकारियों और हिंदी के विद्वानों के अतिरिक्त भाषाशास्त्री, वैज्ञानिक, कंप्यूटर-शास्त्री, समाचार जगत के लोग, सिनेमा जगत के लोग आदि होने चाहिए। इस अवधि में भारत में 'सेंटर फॉर डेवलपमेंट ऑफ एडवांस्ड कंप्यूटिंग' (पुणे) ने हिंदी में वर्ड-प्रोसेसिंग और इ-मेल की सुविधा बढ़ाने की दिशा में सराहनीय कार्य किया है। यह सुविधा केवल हिंदी में ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध है।

44949 कुगार सर्कल,
फीमांट, कैलिफोर्निया-94539
अमेरिका
shuklas@comcast.net

□

सभी भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक है तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

—श्री कृष्णस्वामी अय्यर

16

हिंदी में विज्ञान-लेखन की प्रगति एवं उसका स्वरूप

डॉ. राकेश कुमार दूबे

हिंदी में विज्ञान-लेखन का आरंभ आधुनिक भारत की एक अति महत्वपूर्ण घटना थी। हिंदी में विज्ञान-लेखन का आरंभ तो 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध से होता है, परंतु इसने तीव्रता 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ग्रहण की। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से संपर्क के क्रिया एवं प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीयों ने सब उन्नति के मूल विज्ञान को लोकभाषा हिंदी में लिखकर आम जनता तक पहुँचाने एवं उससे आम आदमी को लाभ पहुँचाने का उद्योग आरंभ किया।

भारत में विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका ईसाई मिशनरियों की थी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि मिशनरियों का उद्देश्य ईसाइयत का प्रचार और अधिकाधिक भारतीयों को ईसाई बनाना था, फिर भी उन्होंने भारतीय भाषाओं में लेखन और प्रकाशन का कार्य आरंभ किया। इस कार्य हेतु भारत के कई भागों में सोसाइटियों की स्थापना की गई, जिनमें कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी (1817 ई.), आगरा स्कूल बुक सोसाइटी (1833 ई.) और नॉर्दन टेक्स्ट बुक सोसाइटी इत्यादि प्रमुख थीं। इन संस्थाओं से ईसाइयत के अलावा पाठ्य-पुस्तकें, जिनमें विज्ञान विषयक पुस्तकें भी थीं, प्रकाशित हुईं।

जन्म : 15 अक्तूबर, 1982।

शिक्षा : बी.ए., एम.ए., प्रथम श्रेणी (इतिहास), पी-एच.डी. (इतिहास) काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नेट : विश्वविद्यालय, अनुदान आयोग, नई दिल्ली

प्रकाशन : 20 शोधपत्र/लेख राष्ट्रीय/अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 19 अंतरराष्ट्रीय/राष्ट्रीय संगोष्ठियों में सक्रिय सहभागिता एवं शोधपत्र प्रस्तुतीकरण।

1857 के प्रथम स्वातंत्र्य समर के कुछ समय पहले ही मिर्जापुर में ईसाई मिशनरियों ने आरफन प्रेस नामक मुद्रणालय स्थापित किया था, जहाँ से शिक्षा संबंधी कई महत्वपूर्ण हिंदी पुस्तकें, जिनमें विज्ञान विषयक पुस्तकें भी थीं, शेरिंग महोदय के संपादन में प्रकाशित हुईं। भूगोल विद्या, भूचरित्र-दर्पण, जंतु-प्रबंध, विद्वान संग्रह, मनोरंजक वृत्तांत और विद्यासागर सदृश महत्वपूर्ण विज्ञान विषयक पुस्तकें इस मुद्रणालय से आरंभिक दौर में प्रकाशित हुईं।

हिंदी में विज्ञान-लेखन का आरंभ तो ओंकार भट्ट जोशी के भूगोल सार संग्रह अथवा ज्योतिष चंद्रिका (1840 ई.), जो आगरे के छापेखाने से प्रकाशित हुई थी, से आरंभ होता है, परंतु 1843 ई. का वर्ष इस क्षेत्र में एक विभाजक रेखा माना जाता है। प्रथम, इस वर्ष पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) की शिक्षा संस्था का नियंत्रण बंगाल से निकलकर प्रांतीय सरकार के हाथ में आया और इसी वर्ष मातृभाषा के परम हितैषी जेम्स थॉमसन की नियुक्ति पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर के रूप में हुई। थॉमसन (1843-53 ई.) भी बंबई के गवर्नर एलफिंस्टन के समान भारतीय जनता के परम हितैषी थे। बंगाल में जहाँ सारा ज़ोर शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बनाने पर था, वहीं थॉमसन की शिक्षा योजना मातृभाषा पर आधारित थी। उनके समय की पश्चिमोत्तर प्रदेश की शिक्षा संबंधी एक रिपोर्ट में कहा गया कि इस भू-भाग में बंगाल की तरह अंग्रेज़ अधिक नहीं हैं। जो हैं भी, उनकी माली हालत अच्छी नहीं है। विदेश से भी यहाँ अंग्रेज़ कम ही आते हैं और विदेशी उपकरणों का भी यहाँ प्रचलन कम है। अतएव अंग्रेज़ी के अनुकूल वातावरण का यहाँ अभाव है। इस आधार पर थॉमसन ने देशी भाषाओं द्वारा ग्राम शिक्षा की एक विस्तृत योजना बनाई, ताकि भूमिकर और लोक निर्माण विभागों के लिए शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध कराए जा सकें। पश्चिमोत्तर प्रदेश में उन दिनों महाराष्ट्र की तरह जन-शिक्षा का कार्य हिंदी और उर्दू में चलता था तथा इन भाषाओं में विविध पुस्तकें भी प्रकाशित होती थीं। थॉमसन

महोदय ने तो सामान्य पुस्तकों के अलावा विज्ञान विषयक पुस्तकों के लोक भाषा में लेखन हेतु पुरस्कार तक देने की घोषणा कर रखी थी और बाद में दिया भी गया।

उन्नीसवीं सदी में हिंदी में विज्ञान-विषयक विविध विषयों की महत्वपूर्ण प्रारंभिक पुस्तकें तो अलग-अलग समयों पर लिखी गईं, जैसे ज्योतिष चंद्रिका (ओंकार भट्ट जोशी) 1840 ई. में; पदार्थ विद्यासागर 1846 ई. में; रसायन प्रकाश (बद्रीलाल शर्मा) 1847 ई. में; रेखामिति तत्व (कुंज बिहारी लाल) 1854 ई. में; कृषि कौमुदी (लालप्रताप सिंह) 1856 ई. में; सुलभ बीजगणित (कुंज बिहारी लाल) 1875 ई. में; सरल त्रिकोणमिति (पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र) 1873 ई. में; निर्माण विद्या (बाबू नवीनचंद्र राय) 1882 ई. में; गति विद्या (पं. लक्ष्मी शंकर मिश्र) 1885 ई. में; औद्योगिक विज्ञान 1886 ई. में और वनस्पति शास्त्र 1890 ई. में; इत्यादि पर 1843 ई. के बाद ही यह क्रम तेज़ी से चला, जिसका उद्देश्य स्कूल के विद्यार्थियों को पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध कराना और वैज्ञानिक ज्ञान को जनता की भाषा में जनता तक पहुँचाना था। 19वीं सदी के अंत तक विज्ञान में विविध विषयों के जो ग्रंथ लिखे गए, उनकी सूची इस प्रकार है—

ग्रंथ	**ग्रंथकर्ता**	**प्रकाशक**	**प्रकाशन वर्ष**
माप प्रबंध	वंशीधर	सिकंदर प्रेस, आगरा	1853 ई.
सुलभ रसायन संक्षिप्त	जे.आर. वेलेंटाइन	ग्रंथकार, जयपुर	1856 ई.
रेखागणित भाग-1	पं. मोहनलाल	मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस	1858 ई.
हिंदी बीजगणित भाग-2	पं. मोहनलाल	मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस	1859 ई.
वायुसागर	कालिन एस. वेलेंटाइन	जयपुर	1867 ई.
गणित कौमुदी	पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र	लाइट प्रेस, बनारस	1868 ई.
गणित प्रकाश भाग-1	वंशीधर	लखनऊ	1873 ई.
गणित प्रकाश भाग-1	श्रीलाल	लखनऊ	1873 ई.
वायुचक्र विज्ञान भाग-1, 2	पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र	बनारस कॉलेज	1874 ई.
पाटी गणित भाग-1	पालीराम पाठक	नॉर्मल स्कूल मेरठ	1874 ई.
बीजगणित	आदित्यराम भट्टाचार्य	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	1874 ई.
रेखागणित बुक-1	जीवानंद विद्यासागर	संस्कृत कालेज, कलकत्ता	1874 ई.
सुलभ बीजगणित	कुंज बिहारी लाल	गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग	1875 ई.
व्यक्त गणित	बापूदेव शास्त्री	मेडिकल हॉल प्रेस, बनारस	1875 ई.
रेखागणित सिद्धांत चंद्रोदय	उमरावसिंह	चिंतामणि यंत्रालय, फर्रूखाबाद	1876 ई.
छोटा वस्तु विचार	चंडीप्रसाद	खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर	1883 ई.
लोअर प्राइमरी अंकगणित	पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र	चंद्रप्रभा प्रेस, काशी	1883 ई.
संक्षिप्त पदार्थ विज्ञान विटप	विनायकराव	चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस	1884 ई.
क्षेत्र कौशल भाग-2	अंबिकादत्त व्यास	मानमंदिर, काशी	1884 ई.
गणित विनोद	उल्फत राय	हमीर	1885 ई.
गणित दर्पण	कन्हैया लाल दुबे	गयाप्रसाद मुदर्रिस, गोरखपुर	1885 ई.
गणित क्रिया तीनों भाग	कल्याणराय	नॉर्मल स्कूल, मेरठ	1886 ई.
गणित गुरु प्रथम भाग	वीरेश्वरचंद्र चक्रवर्ती	न्यू स्कूल बुक प्रेस, कलकत्ता	1886 ई.
प्रश्नोत्तर जड़ तत्व विज्ञान	मथुरादास	मिलिटरी वर्क्स फिरोज़पुर	1887 ई.
गणित भाग-1	काशीप्रसाद	कुतुब फरोश, जौनपुर	1887 ई.
गणित विज्ञान	मुन्नीलाल	मुदर्रिस, फर्रूखाबाद	1888 ई.
हिसाब मिडिल क्लास	उमराव सिंह	चिंतामणि बुकसेलर, फर्रुखाबाद	1888 ई.
गणित कौमुदी भाग-1, 2	पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र	चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस	1895 ई.
भुवनेशयंत्र प्रकाश	त्रिलोकी नाथ सिंह	लेखक फैजाबाद	1895 ई.

अंक गणित भाग-1	अयोध्यासिंह उपाध्याय	खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर	1896 ई.
रसायन संग्रह	विश्वंभर नाथ शर्मा	बड़ा बाज़ार, कलकत्ता	1896 ई.
किताब क्यूबिक फुट	अली अकबर ख़ाँ	लेखक मालगुजारी धनवाही	1897 ई.
व्यापार भंडागार	क्षेत्रपाल शर्मा	सुख संचारक कंपनी, मथुरा	1897 ई.
मसि सागर	वेणी माधव त्रिपाठी	वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	1897 ई.
विश्व कर्म भंडार-1, 2	मोहनलाल	सन प्रिंटिंग वर्क्स, लाहौर	1898 ई.

1857 ई. की क्रांति भारतीय इतिहास में एक विभाजक रेखा मानी जाती है। 1857 के बाद देश के विभिन्न भागों में सभा-संगठनों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण का एक व्यापक आंदोलन आरंभ हुआ। इन संस्थाओं, इनसे जुड़े व्यक्तियों एवं प्रकाशित पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं ने भी हिंदी में विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। इस क्षेत्र में सराहनीय प्रयास अलीगढ़ की साइंटिफिक सोसाइटी का था, जिसकी स्थापना सर सैयद अहमद ख़ाँ ने 1862 ई. में की थी। इस संस्था ने यूरोपीय भाषाओं से वैज्ञानिक साहित्य को उर्दू, हिंदी और फारसी में अनुवाद किया। इस संस्था ने अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट नामक साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया, जिसमें रेलवे, कृषि इत्यादि विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे।

1870 ई. का वर्ष इस दृष्टि से काफ़ी महत्वपूर्ण माना जाता है। इस वर्ष पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र (1849-1906 ई.) की नियुक्ति बनारस संस्कृत कॉलेज में गणित के प्रोफेसर पद पर हुई और बाद में वे भौतिक विज्ञान के भी प्रोफेसर नियुक्त हुए। उन्होंने गणित कौमुदी चार भागों में; पदार्थ विज्ञान विटप, प्राकृतिक भूगोल चंद्रिका, वायुचक्र विज्ञान, स्थिति विद्या गतिविद्या और सरल त्रिकोणमिति आदि कई पुस्तकें हिंदी में लिखकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की। मिश्रजी का हिंदी में लेखन कार्य कितना महत्वपूर्ण था, इस बात का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि 'सरल त्रिकोणमिति' नामक पुस्तक की महत्ता और उत्तमता पर प्रसन्न होकर पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट सर विलियम म्योर ने मिश्रजी को एक हज़ार रुपए का पारितोषिक दिया था। इतना ही नहीं, मिश्रजी ने 1882 ई. से प्रकाशित विख्यात पत्रिका 'काशी पत्रिका' का भी संपादन किया। इस पत्रिका में गणित, विज्ञान, साहित्य, नीति और शिक्षा आदि विषयों पर उपयोगी सामग्री का प्रकाशन होता था। इस के मुख पृष्ठ पर ही हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी में विशेष वाक्य छपा रहता था—''ए वीकली एजूकेशनल जर्नल ऑफ साइंस, लिटरेचर ऐंड न्यूज़ इन हिंदुस्तानी।'' इस पत्रिका में प्रभूत वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन होता था।

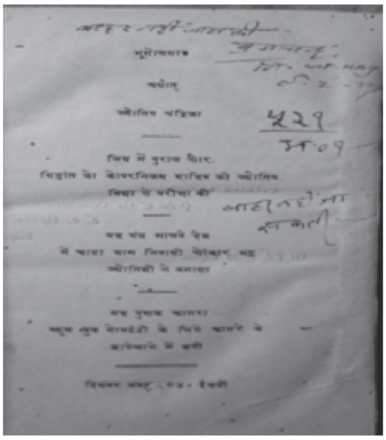

मेरठ के पं. गौरीदत्त का योगदान भी विज्ञान के क्षेत्र में स्मरणीय रहा। स्वयं पं. गौरीदत्त ने रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज से विज्ञान की अच्छी शिक्षा पाई थी, जिसमें बीजगणित, रेखागणित, सर्वेइंग, ड्राइंग शिल्प इत्यादि प्रमुख था। उन्होंने, 'दैवीरात घड़ी' सदृश अति महत्वपूर्ण पुस्तक तो लिखी ही, साथ ही 1882 ई. में मेरठ में देवनागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की और अपने भाषणों, पुस्तकों एवं सभा से प्रकाशित पत्रिकाओं-देवनागर, नागरी इत्यादि द्वारा उन्होंने हिंदी भाषा में विज्ञान के क्षेत्र में काफ़ी कार्य किया। इसी संस्था में सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में व्याख्यानमालाओं का आयोजन, जिसका आरंभ अलीगढ़ की वैज्ञानिक समिति ने किया था और जिसे बाद में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पूर्णता पर पहुँचाया, हुआ और साथ ही समूचे हिंदी-भाषी क्षेत्र में इसी संस्था ने मैजिक लालटेन और स्लाइड का प्रयोग विज्ञान विषयक व्याख्यानों को रोचक और सरल बनाने में सर्वप्रथम किया था।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक और 20वीं सदी के आरंभ में हिंदी में विज्ञान-लेखन में बाबू ठाकुरप्रसाद (1865-1917 ई.) का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने जनता जनार्दन में वैज्ञानिक ज्ञान एवं वैज्ञानिक शिक्षा के प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न करने एवं सर्वसाधारण में वैज्ञानिक और व्यावसायिक शिक्षा के प्रचार को बहुत अधिक महत्व दिया। सुघड़ दर्जिन, देशी करघा, सोनारी, रासायनिक कोष, पदार्थ विज्ञान कोष, हमारी प्राचीन ज्योतिष, भूगर्भ विद्या, सीने की कल जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें तो लिखी हीं, साथ ही हिंदी में 'व्यापारी और कारीगर' नामक पत्र का काशी से प्रकाशन कर हिंदी में सर्वप्रथम वाणिज्यिक पत्रकारिता को आरंभ कर इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया।

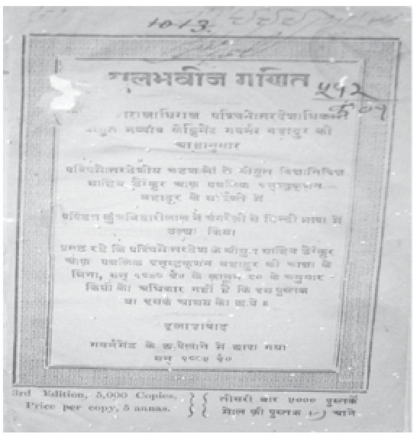

उन्नीसवीं सदी में

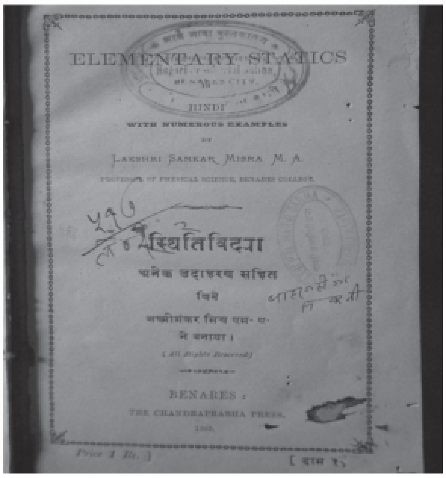

हिंदी में विज्ञान-लेखन का कार्य हो तो रहा था, परंतु वह बहुत संतोषप्रद न था। उस समय तक हिंदी में कोई वैज्ञानिक शब्दकोश भी नहीं था और हिंदी को गँवारू भाषा कहा जाता था। हिंदी में विज्ञान-लेखन की वास्तविक अवस्था का ज्ञान एलीमेंट्री प्लेन ट्रिगोनोमेट्री इन हिंदी (1873 ई.) एवं हिंदी साइंटिफिक ग्लॉसरी (1906 ई.) की भूमिकाओं के साथ ही हरिश्चंद्र मैगजीन (1873 ई.) और 1889, 1894 तथा 1899 ई. की पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध की प्रशासनिक रिपोर्टों से ज्ञात होती है। ऐसी शोचनीय अवस्था में भी हिंदी लेखकों ने विज्ञान-लेखन का महत्वपूर्ण कार्य आरंभ किया।

उन्नीसवीं सदी में जो विज्ञान-लेखन का कार्य आरंभ हुआ, उसका उद्देश्य अपने ज्ञान का प्रदर्शन न कर विज्ञान विषयक बातों को सीधे तौर पर समझाना होता था। लेखन की भाषा अत्यंत ही सरल होती थी और प्रत्येक लेखक यह कोशिश करता था कि यथासंभव ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करे, जो जनता की जबान पर चढ़े हों। भाषा के साथ ही शैली भी आसान ही रखी जाती थी और यथासंभव छोटे-छोटे वाक्यों का ही प्रयोग किया जाता था, परंतु संपूर्ण 19वीं सदी में विज्ञान-लेखन में जो सबसे बड़ी समस्या थी, वह थी तकनीकी शब्दों की समस्या और शब्दकोश का अभाव तथा सभी लेखकों को इस समस्या से दो-चार होना पड़ा। विज्ञान शास्त्र के विदेशी भाषा में होने के कारण और हिंदी में तकनीकी शब्दावलियों के न होने से हिंदी में जो लेखन कार्य हुआ, उसमें एकरूपता भी नहीं थी। तकनीकी शब्दकोश के अभाव का मुद्दा इतना ज्वलंत था कि स्वयं बड़ौदा नरेश सय्याजीराव गायकवाड़ ने इस कार्य में दिलचस्पी दिखाई और 1888 ई. में प्रो. टी.के. गज्जर के नेतृत्व में शब्दकोश निर्माण का उद्योग आरंभ किया, पर पाँच किताबें निकालने के बाद वे भी असफल रहे। बंगीय साहित्य परिषद् ने भी ऐसा ही उद्योग आरंभ किया, पर वह भी केवल तीन सूची-रसायन, भूगोल और खगोलशास्त्र की ही प्रकाशित कर सकी। अंत में, 1898 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा शब्दकोश का निर्माण आरंभ किया गया और 1906 ई. में सतत उद्योग के बाद हिंदी वैज्ञानिक कोश के रूप में शब्दकोश का निर्माण किया जा सका।

जनवरी 1900 ई. से इंडियन प्रेस, प्रयाग से काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और इस पत्रिका ने विज्ञान विषय को अतिशय प्रमुखता दी, जिसका फल यह हुआ कि 20वीं सदी के आरंभ में मर्यादा, विद्या विनोद, चाँद इत्यादि जितनी भी पत्रिकाएँ निकलीं, सभी ने कमोबेश विज्ञान को महत्व दिया। 1902 ई. में हरिद्वार में स्थापित गुरुकुल कागड़ी में हिंदी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने से वहाँ के कई अध्यापकों ने हिंदी में विज्ञान विषयक उपयोगी पुस्तकें लिखीं। 1910 ई. में स्थापित हिंदी साहित्य सम्मेलन और 1913 ई. में स्थापित विज्ञान परिषद्, प्रयाग ने हिंदी में विज्ञान लेखन एवं लोकप्रियकरण का हर संभव प्रयास किया, जिसमें 1916 ई. में स्थापित हिंदू विश्वविद्यालय ने भी यथासामर्थ्य योग दिया और हिंदी में विज्ञान-लेखन का एक ऐसा सशक्त आंदोलन आरंभ हुआ कि 1947 ई. तक हिंदी में विज्ञान विषयक लगभग चार हज़ार पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं।

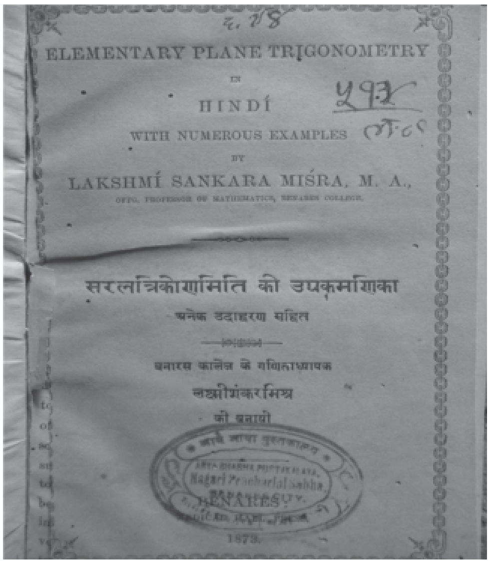

इस प्रकार हिंदी में विज्ञान-लेखन के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि इसका क्रम तो 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही आरंभ हुआ, पर इसने तीव्रता 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ग्रहण की। तत्कालीन हिंदी लेखकों ने पाश्चात्य जगत में हो रही विज्ञान की प्रगति को आम जन तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने का हर संभव प्रयास किया। 1857 ई. के बाद स्थापित हिंदी सेवी संस्थाओं ने हिंदी भाषा के साथ ही विज्ञान के लोकप्रियकरण एवं प्रचार का हर संभव प्रयास किया और हिंदी संस्थाओं ने ही सर्वाधिक विज्ञान विषयक पुस्तकें एवं शब्दकोशों का प्रकाशन किया। 20वीं सदी में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ ही हिंदी में विज्ञान-लेखन का आंदोलन भी सशक्त होता गया और स्वतंत्रता के बाद यदि पूरे मनोयोग से प्रयास किया गया होता तो विज्ञान की पूरी शिक्षा हिंदी में दी जा सकती थी।

निवास—म.नं. 68, नेहिया, वाराणसी
उ.प्र.-221202, भारत
rkdhistory@gmail.com

□

17

हिंदी तो बढ़ती ही चली जा रही है, पर उसके पैरों में जंजीरें पड़ी हैं

श्रवणकुमार गोस्वामी

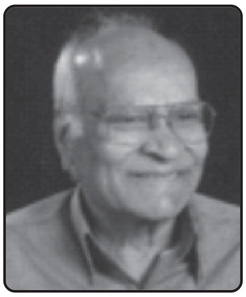

जन्म : 22 नवंबर, 1936, राँची (झारखंड)।
शिक्षा : एम.ए, पी-एच.डी.।
प्रकाशन : सेतु, भारत बनाम इंदिया, जंगलतंत्रम्, राहु केतु, मेरे मरने के बाद *(उपन्यास)* 'कल दिल्ली की बारी है', 'समय' *(नाटक)*, 'राँची तब और अब', 'लौहकपाट के पीछे' *(संस्मरण)*, 'अटलजी के नाम एक धारावाहिक पत्र' *(लेख)*, 'उड़नेवाला तालाब' *(हास्य व्यंग्य)*
संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों की पृष्ठभूमि और हिंदी की उपलब्धि

पहला विश्व हिंदी सम्मेलन 1975 में नागपुर में हुआ था और नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग में हुआ। यह सम्मेलन 22 सितंबर, 2012 को प्रारंभ हुआ, जो तीन दिनों तक चला।

यह कहा जा रहा है कि सन् 1975 के पहले विश्व हिंदी सम्मलेन से लेकर सन् 2012 के नौवें विश्व हिंदी सम्मेलन की इस अवधि में हिंदी की जो प्रगति हुई है, वह अत्यंत उत्साहवर्धक है। भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी की भी उल्लेखनीय उन्नति हुई है। अब हिंदी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में तेज़ी से उभरती चली जा रही है। यह कहीं पढ़ना या किसी से सुनने में बड़ा उत्साहवर्धक भी लगता है। मगर जब राजभाषा हिंदी की दुर्दशा की ओर ध्यान जाता है तो बड़ा क्षोभ होता है। आप अपने पूरे देश में घूम आइए और आपके सामने राजभाषा हिंदी का जो रूप आएगा, उसे देखकर कोई भी सच्चा राष्ट्रभाषा-प्रेमी चिंताग्रस्त हो जाएगा। अपने 'इंडिया' में जिस तेज़ी से अंग्रेज़ी का प्रभाव तथा दबदबा बढ़ता चला जा रहा है, उसके विषय में हिंदी के बड़े-बड़े चिंतक और हिंदी के महारथी भी न कुछ लिखते हैं और न कुछ बोलते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी भी एक आधिकारिक भाषा हो

जब से विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन प्रारंभ किया गया है, तब से इन आयोजनों में यह बात बराबर सुनने को मिलती रही है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में एक आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की जाए। स्पष्ट है कि यह काम तो भारत सरकार ही कर सकती है। लेकिन 37 वर्षों का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारत सरकार ने अपनी ओर से कभी भी कोई गंभीर प्रयत्न नहीं किया है। बीच-बीच में यह सुनने को मिलता है कि इस कार्य को संपन्न कराने में प्रचुर धन की आवश्यकता होगी। प्रश्न यह है कि हमारा राष्ट्र भारत क्या इतना विपन्न है कि हम हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में इसे आधिकारिक भाषा का दरजा दिलाने में भी असमर्थ हैं? सच यह है कि हमारे पूर्वकालीन तथा वर्तमान सरकारों की 'नीयत' में शुरू से ही खोट रहा है। मुझे तो इस बात में भी यह आशंका है कि यदि किसी दिन किसी संयोग से हिंदी संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बन भी गई, तो भारत के मंत्री तथा उसके अधिकारी संयुक्त राष्ट्र में हिंदी न बोलकर अंग्रेज़ी में ही बोलते रहेंगे। इस स्थिति को देखते हुए मुझे इस माँग के पूर्ण होने की कोई संभावना निकट भविष्य में भी नहीं दिखाई दे रही है।

अब तक इन नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों की उपलब्धि क्या रही है? इन सम्मेलनों से किन-किन दिशाओं में हिंदी को आगे बढ़ने में सहायता मिली है? अब इसका मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिए।

अंग्रेज़ी कैसे विश्वभाषा बन सकी है

इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि अंग्रेज़ी को अचानक एक अंतरराष्ट्रीय भाषा का दरजा प्राप्त नहीं हो गया

है। इसके पीछे ब्रिटिश साम्राज्य का कभी न डूबनेवाले सूरज की उल्लेखनीय भूमिका रही है। यहाँ के लेखक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, अभियंता, चिकित्सक, अर्थशास्त्री, विविध विषयों के विशेषज्ञ थे, जिन्होंने अपने राष्ट्र को ग्रेट ब्रिटेन बनाया। इसके साथ-साथ महाशक्ति अमेरिका का भी उसे भरपूर सहयोग मिला। दोनों के सम्मिलित प्रयास का परिणाम है—आज की अंग्रेज़ी भाषा। इन दोनों कारकों ने मिलकर ज्ञान के उस साम्राज्य का विस्तार किया है, जिसके कारण आज अंग्रेज़ी विश्वभाषा के सिंहासन पर आरूढ़ है।

अब हमें उन देशों की ओर भी देखना चाहिए कि उन्होंने अपने राष्ट्र को उन्नत कैसे बनाया है। क्या इस प्रश्न पर हमने कभी सोचने का भी कष्ट किया है?

पिछले नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों के हमारे जो संकल्प थे, वे क्यों नहीं पूरे हो सके? यदि इस लक्ष्य को अब तक प्राप्त करना संभव नहीं हो सका तो इसके कारण क्या हैं? इस प्रकार का विचार-विमर्श क्या आज कहीं हो रहा है? क्या पिछले 66 वर्षों में हिंदी को आज तक भारत की वास्तविक राजभाषा बनने का सौभाग्य नहीं मिल सका है तो इसका अपराधी कौन है?

विश्व के जो छोटे-छोटे देश हैं, जहाँ के लोग हिंदी को अपनी मातृभाषा के समान आदर देते हैं, उनके हृदय में इस हिंदी के लिए जो ममत्व है, क्या भारत में भी देखने को मिल रहा है? ये लोग भारतीय न होकर क्या तेज़ी से अब केवल इंडियन नहीं बनते चले जा रहे हैं?

सूरीनाम के सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन की एक घटना

मुझे सूरीनाम के सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मिलित होने का मौका मिला था। वहाँ भारत से आए कुछ सेकुलर किस्म के लेखकों ने एक नया बखेड़ा खड़ा कर दिया था। यहाँ विश्व हिंदी सम्मेलन हो रहा है कि विश्व हिंदू सम्मेलन? इस मामले को काफ़ी तूल दिया गया। दिल्ली के समाचार-पत्रों ने इसे काफ़ी उछाला भी। एक हॉल में एक आयोजन चल रहा था। इसी मुद्दे पर बहस चल रही थी। इतने में यह देखने को मिला कि वक्ता के हाथ से किसी ने माइक छीन लिया। अब एक-दूसरे के हाथ से माइक छीनने की प्रतियोगिता शुरू हो गई। अंत में एक मज़बूत व्यक्ति ने अपने हाथ में माइक हथिया लिया। उसने रामधुन चालू कर दी। पूरे हॉल में रामधुन गूँजने लगी। काश! जिन लोगों ने इस विवाद को वहाँ प्रारंभ किया था, यदि उन लोगों ने इस तथ्य को याद रखा होता कि भारत के भारतवंशियों ने किन प्रतिकूल स्थितियों में सूरीनाम में अपने को स्थापित किया था। जब उन्हें जबरन लाला रुख से यहाँ से सूरीनाम पहुँचाया गया था, तब उनके पास केवल अपनी भाषा हिंदी थी और हाथ में रामचरितमानस की एक प्रति। आज भी यहाँ के निवासी उसी मज़बूत बंधन से बँधे हुए हैं। न तो वे हिंदी का अपमान सह सकते हैं और न अपने गोस्वामी तुलसीदास का। सूरीनाम जैसे स्वाभिमानी छोटे-छोटे देश ही एक दिन हिंदी को उसका उचित स्थान अवश्य दिला सकेंगे। इन देशों में भारतवंशियों की एक बड़ी संख्या है। इनमें हिंदी के लिए जैसा प्रेम है, क्या वैसा प्रेम अपने भारत में भी अब देखने को मिल रहा है?

सूरीनाम के सम्मेलन (2003) में भारत के विदेश राज्य मंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने ज़ोरदार शब्दों में कहा था, भारत सरकार हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी कृतसंकल्प हैं। भारत सरकार इस कार्य के लिए 100 करोड़ रुपए खर्च करने के लिए तैयार है। तब यह आशा जगी थी कि भारत सरकार इस बार अपने संकल्प को अवश्य पूरा करेगी।

दो वर्षों के बाद भारत के "वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने दिनांक 2-9-2005 को आयोजित केंद्रीय हिंदी समिति की बैठक में यह घोषणा की थी कि भारत सरकार हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए कृतसंकल्प तथा प्रयत्नशील है।" (हिंदी जगत, जुलाई-सितंबर 2007, पृष्ठ 17)

"सभी प्रस्तावों, संकल्पों तथा आश्वासनों के बावजूद यदि भारत सरकार इस संबंध में कोई सार्थक कदम नहीं उठा सकी है। तो संभवत: उसका एक बड़ा कारण यह है कि इस संबंध में भारत में पूरा मतैक्य नहीं है। देश के अनेक अहिंदी-भाषी राज्य ऐसे हैं, जिनकी इस संबंध में न रुचि है, न इच्छा। सभी जानते हैं कि यह बड़ा व्ययसाध्य कार्य है। यह आर्थिक बोझ तो भारत सरकार ही उठाएगी, किंतु केंद्र सरकार में ऐसे अनेक मंत्री हैं, जो इस प्रकार के आयोजन के पक्ष में नहीं हैं। लगभग सभी मंत्रालयों में ऐसे अनेक उच्च पदाधिकारी बैठे हुए हैं, जिनका हिंदी से या अन्य किसी भारतीय भाषा से कोई मोह नहीं है।" *(नई धारा, दिसंबर-जनवरी, 2013, पृष्ठ 5)*

अब विश्व हिंदी सम्मेलन को नया रूप प्रदान करना आवश्यक

पिछले नौ विश्व हिंदी सम्मेलनों के अनुभवों का यह तकाज़ा है कि इसे अब एक बिलकुल नया रूप प्रदान किया जाए, ताकि इसे प्रासंगिक तथा उपयोगी बनाया जा सके। इसके लिए इस सम्मेलन में, वैसे उन सभी ऐसे लोगों को शामिल किया जाए, जो हिंदी को वास्तविक विश्वभाषा बनाने में अपना-अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान कर सकते हैं।

हिंदी को एक विश्वभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो, इस विषय

पर विश्व हिंदी न्यास (अमेरिका) के कार्यपालक निदेशक प्रो राम चौधरी एक लंबी अवधि से कार्य करते चले आ रहे हैं। वे 'हिंदी जगत' के मुख्य संपादक भी हैं। उन्होंने अपनी पत्रिका (जुलाई-सितंबर 2007) के संपादकीय 'हिंदी का विश्व मंच' पर अपने जो विचार प्रकट किए हैं, उसके प्रमुख अंश अत्यंत प्रेरक तथा अनुकरणीय हैं—

''सामान्यत: पिछले सभी सम्मेलनों में मैंने पाया है कि उनमें भाग लेने अधिकांश व्यक्ति हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार, प्राध्यापक एवं पत्रकार थे। मेरा विचार है कि इन सम्मेलनों के साथ वैज्ञानिकों, कलाकारों तथा शिल्पियों को भी जोड़ा जाना चाहिए। क्योंकि जब तक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला तथा शिल्प की सभी विधाओं में हिंदी का प्रयोग नहीं होगा, उसे महत्व नहीं मिलेगा और तब तक हिंदी रोज़ी-रोटी की, अच्छी कमाई की भाषा भी नहीं बन पाएगी। हमें हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के विकास के लिए इस दृष्टिकोण को सामने रखना होगा और इसके लिए समुचित निवेश भी करना पड़ेगा। विज्ञान से जुड़े होने के कारण मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य सृजन भारत की प्रगति के लिए नितांत आवश्यक है। क्योंकि हमने यह देख लिया है कि अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षित वैज्ञानिकों, विद्वानों तथा शासकीय नौकरशाही का विशाल जत्था होते भी अपनी भाषाओं के माध्यम से शिक्षित चीन, जापान और कोरिया हमसे हर विभाग में आगे निकल गए हैं।

''आज भारत की स्थिति दो नगरों की कहानी है, एक सुंदर, दूसरा बदसूरत। उनके रहन-सहन, सोच-विचार में ज़मीन-आसमान का अंतर है। पहले नगर के निवासी, 5 प्रतिशत भारतीय अंग्रेज़ी में दक्ष हैं, अंग्रेज़ी उनके लिए वरदान है। वे आधुनिक ज्ञान में नए कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। दूसरे नगर के 70 प्रतिशत लोग कुपोषित, कुपढ़ तथा कुंठित अवस्था में जी रहे हैं। यह भारत का उपेक्षित तथा शोषित वर्ग है। उसे अंग्रेज़ी नहीं आती है, भारतीय भाषाएँ सुन-समझ लेता है।

''नगरों की विभाजन रेखा का आधार उनकी शिक्षा है, शिक्षा द्वारा इस विभाजन को समाप्त किया जा सकता है। यह सोचना कि आधुनिक ज्ञान उन तक अंग्रेज़ी माध्यम से पहुँचाया जा सकता है, एक क्रूर मज़ाक होगा। हिंदी में विज्ञान लेखन कठिन है, परंतु इसका कोई विकल्प नहीं है। चीन, जापान की भाँति भारत में भी उच्चतम शिक्षा तथा अनुसंधान का माध्यम स्वभाषाएँ होनी चाहिए।

''हमें अब हिंदी के उन्नयन के लिए प्रवासी तथा अनिवासी भारतीयों का एक मंच बनाकर एकजुट होकर काम करना होगा। मेरा निवेदन है कि भारत तथा विदेशों में दो कामों को प्राथमिकता दी जाए—भारत में भारतीय भाषाओं को ज्ञान-विज्ञान की संपूर्ण भाषा के रूप में विकसित किया जाए तथा भारतीय संस्कृति के संवर्धन के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी पीठों की स्थापना की जाए। मुझे विश्वास है कि यदि इन कामों में भारत सरकार समुचित पूँजी निवेश करे, तो प्रवासी भारतीय भी इस पुण्य कार्य में पीछे नहीं रहेंगे।''

प्रो. राम चौधरी ने 'हिंदी जगत' (जनवरी-मार्च 2007) में यह भी लिखा है—''आज यक्ष प्रश्न यही है कि क्या भारत एक पिछलग्गू देश ही बना रहना चाहता है या वास्तव में एक महाशक्ति के रूप में अपने आपको ढालना चाहता है? यदि भारत सचमुच एक महाशक्ति बनना चाहता है तो यह उपलब्धि 90 प्रतिशत लोगों की उपेक्षा कर कभी भी प्राप्त नहीं की जा सकती। इस सपने को साकार करने का हमारे सामने एक ही मार्ग है कि हिंदी की शक्ति को हम पहचानें और इसका दोहन करें। भारत का भविष्य हिंदी के साथ संलग्न है। इस सत्य को अब सारी दुनिया मान रही है। हिंदी के समक्ष जो चुनौतियाँ हैं, उन पर हिंदी की विजय प्राप्त होकर रहेगी।''

प्रो. राम चौधरी ने चंद शब्दों में ही हिंदी की वास्तविक प्रगति की पूरी योजना हमारे सामने प्रस्तुत कर दी है। आज भारत में हिंदी के सामने नई-नई चुनौतियाँ आ रही हैं—

1. भारत की राजभाषा हिंदी

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार भारत की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी है। 25 जनवरी, 1965 को भारत से अंग्रेज़ी को विदा कर देना था। परंतु राजभाषा अधिनियम, 1963 के पारित होने के बाद अंग्रेज़ी भी भारत की राजभाषा पहले की ही तरह बनी हुई है। इसके बाद हिंदी को वास्तविक राजभाषा बनाने के लिए अनेक उपायों की घोषणा की गई, इसके बावजूद अंग्रेज़ी ही भारत की महारानी बनी हुई है और हिंदी दासी बनी हुई है। भारतीय रिज़र्व बैंक के द्वारा जारी नोटों से ही यह पता चलता है कि भारत की दो राजभाषाएँ हैं—पहली राजभाषा हिंदी और दूसरी राजभाषा अंग्रेज़ी है।

इसी कारण हिंदी को पहली पंक्ति में स्थान दिया जाता है और दूसरी पंक्ति में अंग्रेज़ी को। बाकी सभी क्षेत्रों में केवल अंग्रेज़ी का ही वर्चस्व देखने को मिलता है। विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका, सभी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का प्रचलन पूर्ववत् ही बना हुआ है। रेल, डाकघर, बैंक, बीमा आदि सभी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का प्रयोग पहले की तरह ही चल रहा है। रेल के टिकट, डाकघर की सारी रसीदें, बैंक के पास-बुक तथा बीमा की रसीदें केवल अंग्रेज़ी में दी जाती हैं। अब तो डाकघर से मनी ऑर्डर के फॉर्म भी केवल अंग्रेज़ी में ही मिलते हैं। इन विभागों में अधिकारी तथा कर्मचारी हिंदी या अपने राज्य की भाषा में सारी बातचीत करते हैं, मगर जब लिखने की बारी आती है, तो वे अंग्रेज़ी का प्रयोग शुरू कर देते हैं।

2. हिंदी सलाहकार समितियों का हाल

केंद्र के सभी मंत्रालयों में हिंदी सलाहकार समितियाँ कार्यरत हैं। इनका कार्य-काल तीन वर्षों का होता है। नियमत: प्रत्येक तिमाही में समिति की बैठक होनी चाहिए, पर ऐसा कभी नहीं होता। मुझे गृह मंत्रालय तथा इस्पात मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समितियों में सदस्य के रूप में शामिल होने का अवसर मिला। तीन वर्षों में इस्पात मंत्रालय की पाँच बैठकें हुईं और गृह मंत्रालय ने केवल दो बैठकों का ही आयोजन किया। इन बैठकों में हिंदी की प्रगति के बारे में जो रिपोर्ट पेश की जाती हैं, वे झूठ का पुलिंदा होती हैं। प्राय: प्रत्येक सदस्य संबद्ध मंत्री की प्रशंसा में लगा रहता है और जब हिंदी की प्रगति के बारे में कुछ बोलने की ज़रूरत पड़ती है, तब अधिकांश सदस्य मौनी बाबा बन जाते हैं। एक बार मैंने इस्पात मंत्रीजी को यह सुझाव दिया—''समिति की बैठक प्राय: 11 बजे शुरू होती है, जो प्राय: डेढ़ घंटे में समाप्त हो जाती है। यदि हम सदस्यों को मंत्रालय की कार्य-प्रणाली को भी समझने का अवसर प्रदान किया जाए तो हम सभी सदस्य मंत्रालय के लिए अधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं।'' मंत्री महोदय ने मेरे सुझाव को पसंद किया। लेकिन अगली बैठक का समय चार बजे निर्धारित कर दिया। ऐसा जान-बूझकर किया गया, ताकि हमें मंत्रालय की कार्य-प्रणाली में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर न मिल सके। हिंदी की प्रगति के बारे में कोई भी बात सुनने के लिए कोई भी नौकरशाह यों भी तैयार नहीं होता है।

3. हिंदी राष्ट्रभाषा नहीं है

गुजरात उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में 13-1-2010 को कहा है कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत एक राष्ट्रभाषा विहीन राष्ट्र है?

4. मदुरै में हिंदी का विरोध

दैनिक जागरण (राँची) के 7 फरवरी, 2013 के अंक में एक समाचार प्रकाशित हुआ है—''मदुरै जिला प्रशासन को तमिल और अंग्रेज़ी के साथ हिंदी में साइन बोर्ड लगाने के फैसले से विरोध प्रदर्शन के चलते पीछे हटना पड़ा है।

ऐसा करके मदुरै के कुछ लोगों ने वहाँ के ज़िलाधिकारी अंशुल मिश्रा को भारत की राजभाषा हिंदी की अवहेलना करने और असंवैधानिक कार्य करने के लिए विवश कर दिया। इससे सिद्ध होता है कि अपने देश में भारत की राजभाषा की अवमानना करनेवाले लोगों के लिए दंड का कोई प्रावधान है ही नहीं।

5. कौन हैं श्यामरुद्र पाठक

25-7-2013 को दैनिक जागरण (राँची) में एक समाचार प्रकाशित हुआ कि श्यामरुद्र पाठक को 24-7-2013 को तिहाड़ (दिल्ली) से छोड़ा गया। यहाँ मैं यह बताना चाहता हूँ कि श्यामरुद्र पाठक कौन हैं और वह अपने छात्र-जीवन से ही हिंदी के लिए आज भी कैसा संघर्ष कर रहे हैं। झारखंड में एक हिंदी माध्यम का पब्लिक स्कूल नेतरहाट विद्यालय है। यहाँ के छात्र बड़े कुशाग्र होते हैं और उनकी हिंदी तथा अंग्रेज़ी, दोनों भाषाओं पर समान अधिकार होता है। पाठकजी इसी विद्यालय के 1974 में छात्र थे। आगे चलकर उन्होंने इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (दिल्ली) में पी-एच.डी. के लिए हिंदी में शोधग्रंथ प्रस्तुत किया, जिसे अस्वीकार कर दिया गया था। अंतत: संस्थान को झुकना पड़ा और पाठकजी को उपाधि देनी पड़ी।

उल्लेखनीय है कि सुप्रीम तथा हाई कोर्ट की काररवाई हिंदी या क्षेत्रीय भाषाओं में किए जाने की माँग को लेकर पाठक पिछले साल चार सितंबर से कांग्रेस मुख्यालय के सामने धरना दे रहे थे। उन्हें रोज़ शाम को पुलिस गिरफ्तार कर थाने ले जाती थी, वहाँ से रिहा होने के बाद सुबह फिर वहाँ आकर वह धरने पर बैठ जाते थे। उनका संघर्ष अब भी जारी है।

6. संघ लोक सेवा आयोग की सिविल परीक्षा में अंग्रेज़ी को महत्व देने का प्रयास

सिविल सेवा परीक्षाओं में अंग्रेज़ी को अधिक महत्व देने संबंधी संघ लोक सेवा आयोग के नए नियमों की सूचना पर सरकार ने रोक लगा दी है। लोकसभा में शुक्रवार (12-7-2013) को लगभग सभी दलों ने इसका कड़ा विरोध किया, तो सरकार ने कदम खींच लिये। इससे पहले सदन की बैठक शुरू होते ही इस मुद्दे पर विपक्ष और सत्ता पक्ष की ओर से सदस्यों ने अधिसूचना को वापस लिये जाने की माँग की। इस मुद्दे पर जमकर हंगामा हुआ। इसके बाद कार्मिक राज्य मंत्री वी. नारायणसामी ने सदस्यों को आश्वासन दिया कि सरकार यू.पी.एस.सी. के अधिकारियों की बैठक बुलाकर इसका समाधान निकालने का प्रयास करेगी, तब तक अधिसूचना पर रोक रहेगी। *(प्रभात खबर, राँची, 16 मार्च, 2013)*

7. अंग्रेज़ी की अनिवार्यता समाप्त करने की तैयारी

अब केंद्र सरकार सिविल सर्विसेस की मुख्य परीक्षा (मेंस) के पैटर्न में बदलाव कर अंग्रेज़ी परीक्षा की अनिवार्यता खत्म करने पर विचार कर रही है। *(दैनिक जागरण, राँची, 18-3-2013)*।

8. संविधान के अनुसार प्रत्येक कार्य में हिंदी तथा अंग्रेज़ी का उपयोग अनिवार्य

संविधान के अनुसार लेखन तथा प्रकाशन सामग्री में हिंदी तथा अंग्रेज़ी, दोनों भाषाओं का उपयोग अनिवार्य है। लेकिन केंद्र के सभी कार्यालयों में इस नियम का पालन नहीं किया जाता है। विशेषत: हिंदी (पहली राजभाषा) की उपेक्षा की जाती है। इस नियम के उल्लंघन करनेवालों में भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, सांसद तथा प्रशासक आदि सभी शामिल पाए जाते हैं।

हिंदी शरणं गच्छामि

जब टेलीविजन के विदेशी चैनलों का भारत में आगमन हुआ, तब सभी कार्यक्रमों का प्रसारण केवल अंग्रेज़ी में शुरू कर दिया गया था। कुछ ही दिनों में उनके होश ठिकाने पर आ गए। उन्हें मालूम हो गया कि अंग्रेज़ी के सहारे वे भारत में कभी भी व्यापारिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। उन्हें हारकर हिंदी की शरण में आना पड़ा और अब ऐसे सभी विदेशी चैनल हिंदी के सहारे मालामाल हो रहे हैं।

हिंदी की खाओ और अंग्रेज़ी के गुण गाओ

यह एक प्रमाणित तथ्य है कि हिंदी फ़िल्मों ने विश्व में हिंदी को प्रसारित तथा लोकप्रिय बनाने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की है। इस वर्ष हिंदी फ़िल्मों की शताब्दी मनाई जा रही है। हिंदी फ़िल्मों का बाज़ार निरंतर बढ़ता-फैलता जा रहा है। मगर दुखद यह है कि हिंदी फ़िल्मों के निर्माताओं, निर्देशकों, अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों का ध्यान केवल धन और लोकप्रियता प्राप्त करने में ही लगा रहता है। यह सब उन्हें हिंदी से ही प्राप्त होता है, लेकिन वे अपने देश की अपनी भाषा के बारे में तनिक भी चिंता नहीं करते। कहना तो यह चाहिए कि उनके हृदय में हिंदी के सम्मान का कोई भाव भी नहीं होता। एक शताब्दी बीत जाने के बावजूद हिंदी फ़िल्मों की नामावली आज भी केवल अंग्रेज़ी में ही दी जाती है, जबकि इसे हिंदी में ही होना चाहिए। विश्व बाज़ार की माँग के अनुसार कम-से-कम इतना यह स्वीकार किया जा सकता है कि हिंदी फ़िल्मों की नामावली हिंदी और अंग्रेजी में दी जाए और पहले हिंदी को बड़े अक्षरों में स्थान दिया जाए। शांताराम आजीवन अपनी फ़िल्मों की नामावली हिंदी में ही दिया करते थे। इसी दृष्टि से वे पराधीनता-काल से ही हिंदी फ़िल्म संसार के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते रहे थे।

हिंदी के फ़िल्मकारों को जब भी कहीं कुछ बोलना होता है, तो वे अंग्रेज़ी में ही बोलना शुरू कर देते हैं। वे इस सत्य तथा तथ्य को पूरी तरह भूल जाते हैं कि उनका पूरा अस्तित्व केवल हिंदी पर आश्रित है।

एक सराहनीय पहल

मैं वर्ष भूल रहा हूँ। केवल एक बार राजकपूर ने किसी अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म महोत्सव में अपना भाषण पहली बार हिंदी में दिया था। मेरे जानते ऐसा करनेवाले वे पहले फ़िल्मकार थे।

''गुरुवार 16 मई, 2013 को अमिताभ बच्चन ने हॉलीवुड अभिनेता लियोनार्डो डी कैपरियो के साथ 66वें कांस इंटरनेशनल फ़िल्म फेस्टिवल का उद्घाटन किया। उन्होंने समारोह को हिंदी में संबोधित किया। उन्होंने अपने ट्वीट में इस क्षण को इमोशनल एक्सपीरियंस करार दिया। उन्होंने कहा कि कांस भारतीय सिनेमा की 100वीं सालगिरह मना रहा है। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि वे अपनी मातृभाषा में बोले।'' 6 (राँची एक्सप्रेस, 17-5-2013)

अनेक बाधाओं के बावजूद हिंदी अपने आत्मबल पर आगे बढ़ती जा रही है

सारे संसार के समक्ष यह स्पष्ट होता जा रहा है कि हिंदी का प्रसार एक विश्वभाषा के रूप में होता जा रहा है। यदि भारत सरकार ने भारतीय संविधान के लागू होने के दिन (26 नवंबर, 1949) से ही राजभाषा हिंदी को अपना सहयोग दिया होता तो आज हिंदी विश्व की सशक्त भाषा बन गई होती। कंप्यूटर के बेताज बादशाह बिल गेट्स ने स्वयं हिंदी को कंप्यूटर के लिए सर्वश्रेष्ठ भाषा माना है; क्योंकि हिंदी की लिपि देवनागरी सर्वाधिक वैज्ञानिक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है—जैसा बोलते हैं वैसे लिखते हैं। अपनी इसी विशेषता के कारण स्पीच टू टेक्स्ट तथा टेक्स्ट टू स्पीच जैसे सॉफ़्टवेयर के लिए हिंदी अंग्रेज़ी की तुलना में कहीं अधिक उपयोगी है।

इस तथ्य को केवल भारत सरकार तथा हमारी जितना संसद शीघ्र इस सच्चाई को समझ ले तो बेहतर होगा। यह कहते हुए लज्जा आती है कि भारत सरकार भाषण देने में सबसे आगे होती है, किंतु राजभाषा के उन्नयन के लिए उसके पास आज भी कोई दृष्टि नहीं है। इस अंधकार के बावजूद हिंदी एक जलती हुई मशाल की तरह अपने प्रकाश से सारे संसार को आलोकित करने में संलग्न है।

'आश्रय', नई नगड़ा टोली
चौथी गली (पूरब)
राँची-834 001
भारत

□

18

बारहवीं सदी में प्रशासन की भाषा थी हिंदी

उमेश चतुर्वेदी

• टेलीविजन पत्रकार

• जी न्यूज, महुआ न्यूज, दैनिक भास्कर आदि में महत्वपूर्ण पदों पर कार्य।

शिक्षाः हिंदी में एम.ए., पत्रकारिता में एम.एस.सी.।

प्रकाशन : अब तक तीन हज़ार से अधिक आलेख प्रकाशित, प्रसिद्ध पत्रिका दिनमान पर मोनोग्राफ प्रकाशित।

सम्मान : 'वागीश्वरी प्रसाद छात्र कहानी पुरस्कार' और 'महामना मालवीय पत्रकारिता पुरस्कार' से दो बार सम्मानित।

• संप्रति लाइव इंडिया टेलीविजन चैनल में कार्य

आजादी के तत्काल बाद ही संविधान सभा ने हिंदी को संवैधानिक दर्जा दिया था। संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को संघ की भाषा और देवनागरी को उसकी लिपि का दर्जा दिया था। लेकिन असलियत में हिंदी इस देश की कभी भी राजभाषा नहीं बन पाई। तब से उसका काम महज प्रशासनिक तौर पर उपयोग में लाए जानेवाली अंग्रेज़ी के अनुवाद का कर्मकांड ही रह गया। हर साल हिंदी दिवस पर इसी कर्मकांड के पाखंड का दुहराव होता है। मजे की बात है कि हर बार इस दुरूह शैलीगत विशेषताओं को ही दुहराया जाता है। इस दुरूहता को विभागीय और अनुभाग स्तर पर सम्मानित और पुरस्कृत करने का फायदेमंद कार्यक्रम भी होता है। इससे कुछ लोगों की कुछ वक्त के लिए माली हालत सुधर भी जाती है। लेकिन यह भी सच है कि राजभाषा को याद करने की इस माखौली रस्म से असलियत में हिंदी का कोई विकास नहीं होता। लेकिन जो लोग इस खेल के माहिर और आदी हैं, उन्हें शायद यह पता न हो कि हिंदी को इसके पहले भले ही बतौर राजभाषा संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था, लेकिन वास्तविकता के धरातल पर वह अपने उस कालरूप में ही प्रशासन की भाषा थी।

हिंदी का प्रशासन की भाषा का रूप पहली बार बारहवीं सदी में दिखता है। इस दौर में दिल्ली पर पृथ्वीराज चौहान का शासन था। तब के कतिपय दूसरे नरेशों के प्रशासन की भाषा भी हिंदी ही थी। चूँकि अरब देशों से व्यापार और हमलावरों के रूप में भारतीयों का संपर्क ज़्यादा था, इसलिए उस दौर में अरबी शब्दों का कम-से-कम प्रशासनिक हिंदी पर ज़्यादा असर दिखता है। तब तत्सम शब्दों का बहुतायत से प्रयोग होता था। लेकिन एक कमी अवश्य प्रमुखता से दिखती है—तब आज की तरह वर्तनी की एकरूपता नहीं दिखती है। इसके लिए पृथ्वीराज चौहान और तत्कालीन चित्तौड़ नरेश राम समर सिंह के बीच पत्र-व्यवहार को देखा जा सकता है। एक चिट्ठी राम समर सिंह ने चौहान को लिखी थी। उसका मजमून कुछ इस प्रकार है—

"ओर थारा चाकर घोड़ा का नामो कोठार सूँ चला जाएगा और यूँ जमाखातरी रीजो मोई में राजस्थान बाद अणी पवानरी कोई अलंगणा करेगा, जी ने श्री एंवली गंजी की आण है, दूबे जानकी दास संबत 1139 काती बदी तीन।"

इस राजकीय चिट्ठी को समझने में आज के हिंदीभाषी को भले ही परेशानी होती हो, लेकिन तत्कालीन समय में प्रारंभिक हिंदी राजकाज में किस तरह स्थान बना रही थी, इसका बेहतरीन नमूना है यह पत्र।

कौटिल्य ने अपने मशहूर ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में राजभाषा के बारे में लिखा है कि शासन की भाषा में अर्थ, क्रम, संबंध, माधुर्य और औदार्य के साथ-साथ स्पष्टता होनी चाहिए। आज़ादी के पहले तक की राजभाषा हिंदी में लगभग ये सारी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। लेकिन बाद की हिंदी इससे सर्वथा भिन्न और दुरूह है। यही कारण है कि आज की प्रशासनिक हिंदी का मतलब इतर लोक की भाषा के रूप में रूढ़ हो गया है। पता नहीं, अरब देशों से आए लोगों ने जिस सल्तनत शासन परंपरा की नींव डाली, उन्होंने आचार्य कौटिल्य की इन स्थापनाओं को पढ़ा था या नहीं, लेकिन राजकाज की भाषा के रूप में तत्कालीन हिंदी को तात्कालिक विशेषताओं

सहित स्वीकार किया था। सुल्तानों ने पृथ्वीराज की हार के बाद देश में सल्तनत कायम करने के बाद जन-विश्वास अर्जित करने व जनसंपर्क के लिए राजकाज में हिंदी व लिपि के रूप में देवनागरी को ही अपनाया।

> **अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में अंग्रेज़ों ने इस देश की शासन व्यवस्था हथिया ली। उन्हीं के एक अधिकारी मैकाले को आज तक देश में अंग्रेज़ी थोपने का दोषी माना जाता है। लेकिन यह भी सच है कि भारत में तैनाती चाहने वाले अंग्रेज़ अधिकारियों के लिए हिंदी जानना ज़रूरी था। कलकत्ता के मशहूर फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना सन् 1800 में ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेज़ सिविल अधिकारियों को हिंदी सिखाने के लिए की थी। सदल मिश्र और लल्लू लाल जैसे विद्वान् अध्यापक इस कॉलेज में सिविल सेवा के अधिकारियों को हिंदी सिखाने के लिए ही तैनात किए गए थे। इन्हीं सदल मिश्र ने बाद में 'सुखसागर' और लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' की रचना की। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि आज हिंदुओं के घरों में बतौर धार्मिक ग्रंथ पढ़े जाते हैं।**

शहाबुद्दीन ने अपने शासन काल में सिक्कों पर हिंदू देवी-देवताओं के चित्त अंकित कराए, इनके चारों ओर श्री हम्मीर और श्री महमूद साम और दूसरी ओर नंदी की मूर्ति भी अंकित कराई थी। इल्तुतमिश ने कन्नौज के विजय स्मारक पर देवनागरी में ही सूचना व संदेश अंकित कराए थे। हालाँकि आज ये संदेश अस्पष्ट हो चले हैं। अलाउद्दीन खिलजी संभवत: पहला शासक था, जिसने हिंदी को सुदूर दक्षिण में फैलाने की कोशिश की। उसने राजकीय नियमों-उपनियमों को हिंदी में लिखकर उसकी हज़ारों प्रतियाँ दक्षिणी राज्यों में बँटवाई। बाद में उसके सेनापति मलिक काफ़ूर ने आंध्र, महाराष्ट्र और कर्नाटक को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। इसके बाद इन क्षेत्रों में राजकाज के लिए उसने दक्खिनी हिंदी को अपनाया। मोहम्मद तुगलक के साथ-साथ बहमनी वंश के शासकों ने उत्तर में तो हिंदी के तात्कालिक रूप को राजकाज की भाषा के रूप में अपनाया ही था—दक्षिणी राज्यों में हिंदी के दक्खनी रूप के माध्यम से ही प्रशासन चलाया। इसमें इन्हें कोई परेशानी नहीं हुई। बाद में बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर तक के शासकों ने हिंदी में ही प्रशासन चलाया। इसके लिए राष्ट्रीय अभिलेखागार में मौजूद दस्तावेजों को देखा जा सकता है। लेकिन आज़ाद भारत में अब इन क्षेत्रों में भी राजभाषा हिंदी में काम करने में परेशानियाँ पेश आ रही हैं।

भक्तिकाल को हिंदी का स्वर्णकाल माना जाता है। मध्यकाल यानी भक्तिकाल में हिंदी का जितना विकास हुआ है, उतनी ही प्रतिष्ठा उसकी राजभाषा के रूप में भी हुई। यह ऐतिहासिक दृष्टि से मुगल सल्तनत काल था। इस दौर में देसी रियासतों और दिल्ली सल्तनत के बीच संपर्क के लिए आज के राजदूतों की भाँति व्यवस्था थी। मुगल साम्राज्य ने हर मित्र रियासत में अपना प्रतिनिधि रखा था। ठीक इसी तरह देसी रियासतों ने भी मुगल दरबार में अपना प्रतिनिधि रख छोड़ा था। इन प्रतिनिधियों को वकील कहा जाता था। इन वकीलों और राज्यों के बीच आपसी पत्र-व्यवहार हिंदी में ही होता था। इन पत्रों को तहरीर, खाते, मिसिल, नक्शा, खतूत रोज़नामा, अमलदस्तूर आदि नामों से पुकारा जाता था। इन पत्रों में फारसी के वर्चस्व के दर्शन तो होते हैं, लेकिन अवधी, ब्रज और राजस्थानी के शब्दों का भी भरपूर उपयोग दिखता है। इन पत्रों को देवनागरी लिपि में ही लिखा जाता था। लेकिन इन पत्रों में भी सल्तनतकालीन पत्रों की तरह वर्तनी में एकरूपता नहीं है। ऐसे ढेरों पत्र बीकानेर के अभिलेखागार में रखे गए हैं। मुगलकाल की राजभाषा को समझने के लिए दो आदेशों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है—''जमीं शेती लाइक होई सा एक बिस्वो भी पड़े रही नहीं'' अर्थात खेती योग्य एक बिस्वा ज़मीन भी खाली नहीं रहनी चाहिए।

''नाज रैत्य पास लेके व्यापारी बहूत परीदि करि भंडसाल न करने पावे'' अर्थात अधिकारियों को स्पष्ट आदेश है कि व्यापारी अनाज खरीदकर भंडारों में जमा न करने पाएँ।

मुगल साम्राज्य के बीच बारह सालों तक शेरशाह सूरी का भी शासन काल रहा। सासाराम में जनमे शेरशाह ने भी अपने सिक्कों पर देवनागरी में श्रीसीताराम, श्रीनाथ संवत और ॐ लिखवाए थे।

औरंगजेब के शासन के दौरान संस्कृत शब्दों का राजकाज की हिंदी में प्रयोग बढ़ा। बाद में मुगल सम्राटों के राजकाज की भाषा में ब्रज और खड़ी का प्रयोग अधिक होने लगा। मुगल सल्तनत के बाद और अंग्रेज़ों की सत्ता आने से पहले तक इस देश के अधिकांश भूभाग पर मराठों का शासन रहा। मराठों ने भी दिल्ली की गद्दी पर कब्जा जमाने के बाद दैनिक राजकाज में हिंदी को ही बढ़ावा दिया था। राजकाज की भाषा के लिए प्रशासनिक शब्दावली और अधिकारियों के पदनामों का एक तरह से मानकीकरण इसी काल में हुआ। मराठों ने राजनीति, वित्त, कृषि, कर, सेना, कंपनी आदि के बारे में सैकड़ों पत्र लिखे हैं। ऐसे सैकड़ों पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली के अलावा राज्य अभिलेखागार बीकानेर और पुणे के पेशवा

दफ्तर में संकलित हैं। इन पत्रों की भाषा पर हालाँकि मराठी प्रभाव ज़्यादा है, लेकिन राजस्थानी, प्राकृत, अरबी, फारसी व बुंदेलखंडी शब्दों की बहुलता है। मराठी से कई पत्रों के हिंदी अनुवाद भी उन दिनों कराए गए थे। ये पत्र भी इन अभिलेखागारों के पास बतौर अमोल धरोहर सुरक्षित हैं।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में अंग्रेज़ों ने इस देश की शासन व्यवस्था हथिया ली। उन्हीं के एक अधिकारी मैकाले को आज तक देश में अंग्रेज़ी थोपने का दोषी माना जाता है। लेकिन यह भी सच है कि भारत में तैनाती चाहने वाले अंग्रेज़ अधिकारियों के लिए हिंदी जानना ज़रूरी था। कलकत्ता के मशहूर फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना सन् 1800 में ब्रिटिश सरकार ने अंग्रेज़ सिविल अधिकारियों को हिंदी सिखाने के लिए की थी। सदल मिश्र और लल्लू लाल जैसे विद्वान अध्यापक इस कॉलेज में सिविल सेवा के अधिकारियों को हिंदी सिखाने के लिए ही तैनात किए गए थे। इन्हीं सदल मिश्र ने बाद में 'सुखसागर' और लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' की रचना की। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि आज हिंदुओं के घरों में बतौर धार्मिक ग्रंथ पढ़े जाते हैं।

अंग्रेज़ी सरकार ने देसी रियासतों की राजधानियों और दरबारों में पोलिटिकल एजेंट, पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट और रेजिडेंट नियुक्त किए थे। पोलिटिकल एजेंट और पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट गवर्नर जनरल द्वारा देसी रियासतों और रियासतों की ओर से अंग्रेज़ सरकार को अंग्रेज़ी में लिखे पत्रों का हिंदी में अनुवाद करते थे। सही मायने में तभी से हिंदी की राजभाषा के साथ ही अनुवाद की भाषा बनने की शुरुआत हुई और आज़ाद भारत में तो यह केवल अनुवादी राजभाषा ही बनकर रह गई। गृह विभाग के तहत अंग्रेज़ शासकों ने इसी काम के लिए बाद में तरजुमा महकमा की स्थापना की, जिसे आज केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो कहा जाता है। कहना न होगा कि यह ब्यूरो आज भी केंद्रीय गृह मंत्रालय के ही अधीन काम करता है।

उन्नीसवीं सदी की कचहरियों के दस्तावेजों से स्पष्ट है कि अंग्रेज़ सरकार ने शुरुआती दौर में हिंदी के माध्यम से ही न्याय व्यवस्था चलाई थी। बाद में फारसी पर जोर दिया जाने लगा। 1857 की क्रांति के बाद यह इसलिए शुरू हुआ, ताकि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दरार बढ़ाई जा सके और ब्रिटिश सरकार की अहमियत और ज़रूरत इस देश में बनी रहे। आज के शासकों का नेपाल जैसे देवनागरी लिपि का प्रयोग करने वाले देश से भी अंग्रेज़ी में ही पत्र-व्यवहार होता है। आज के शासकों को यह जानकर शायद आश्चर्य हो कि अंग्रेज़ सरकार भी नेपाल से हिंदी में ही राजकीय पत्र-व्यवहार करती थी। इसे विडंबना भले ही मानें, सत्य तो यही है। एक जानकारी और···देश में तो हिंदी को राजभाषा का दर्जा भले ही आज़ादी आने के बाद मिला हो, लेकिन उत्तर प्रदेश में बलरामपुर रियासत ने 1864 में ही हिंदी को दरबार की राजभाषा के रूप में स्थापित कर दिया था।

उत्तर प्रदेश के अवधी इलाके में बेहतरीन शिक्षा के लिए विख्यात रहे बलरामपुर के महारानी लाल कुँवरि स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिंदी के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. जगदेव सिंह की एक शोधपरक पुस्तक हैं—'गोंडा-अतीत और वर्तमान'। उत्तर प्रदेश के गोंडा ज़िले का इतिहास इसमें तथ्यात्मक ढंग से पेश किया गया है। इसी किताब में जगदेव सिंह ने लिखा है कि उन्नीसवीं सदी में जब सरकारी कामकाज में अंग्रेज़ी के साथ उर्दू का आधिपत्य था, बलरामपुर के तत्कालीन महाराजा दिग्विजय सिंह ने वर्ष 1864 में हिंदी को अपने दरबार की राजभाषा घोषित करके रियासत का सारा काम हिंदी में किए जाने के आदेश जारी कर दिए थे। डॉ. सिंह के अनुसार तत्कालीन गोंडा जनपद का हिस्सा रही बलरामपुर रियासत के महाराजा दिग्विजय सिंह खुद भी 'भूप विजय' नाम से कविताएँ लिखते थे, बल्कि हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए देश के विभिन्न भागों से हिंदी कवियों को अपने दरबार में आमंत्रित करके उन्हें सम्मानित भी करते थे।

तत्कालीन बलरामपुर रियासत के राजकवि लालकवि लिखित 'अवध विलास' ग्रंथ के हवाले से डॉ. सिंह ने लिखा है कि बलरामपुर पहली रियासत थी, जिसने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित किया और हिंदी के विकास को हर तरह से प्रोत्साहित किया। महाराजा दिग्विजय सिंह ने हिंदी भाषा और उसकी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए काशी विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और पुरी संस्कृत कॉलेज (ओड़ीशा) को हर साल लाखों रुपए का अनुदान देते थे। इसी पुस्तक के अनुसार 1882 में महाराजा दिग्विजय सिंह के निधन के बाद भी उनकी धर्मपत्नी महारानी इंद्र कुँवरि और उनके वंशजों ने हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए रियासत का योगदान जारी रखा और बलरामपुर रियासत में पंडित रामलाल शंभू, जगदीश प्रसाद और रामआसरे जैसे कवियों ने हिंदी को समृद्धि किया। बलरामपुर रियासत के मौजूदा महाराज धर्मेंद्र प्रताप सिंह के अनुसार, हिंदी शिक्षा के विकास और उन्नति के लिए उनके पुरखों ने जो सिलसिला शुरू किया था, वह आज भी जारी है और अब भी रियासत के न्यास से कई विश्वविद्यालयों को धनराशि दी जाती है।

दूसरा तल, एफ-23 ए,
कटवारिया सराय, निकट शिवमंदिर,
नई दिल्ली-110016
uchaturvedi@gmail.com

□

19

हिंदी भाषा के संबंध में कुछ विचार

प्रो. महावीर सरन जैन

जब से विश्व के प्रामाणिक संदर्भ ग्रंथों ने यह स्वीकार किया है कि चीनी भाषा के बाद हिंदी के मातृभाषियों की संख्या सर्वाधिक है, कुछ ताकतें हिंदी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का कुचक्र एवं षड्यंत्र रच रही हैं। यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि हिंदी का मतलब केवल खड़ी बोली है। सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिंदी के तथाकथित विद्वान भी हिंदी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिंदी साहित्य को ज़िंदगी भर पढ़ाने वाले, हिंदी की रोज़ी-रोटी खाने वाले, हिंदी की कक्षाओं में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे हिंदी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि हिंदी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है। भाषा-विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली-विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य देते हैं, जैसे वे भाषा-विज्ञान के भी पंडित हैं।

क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिंदी की संश्लिष्ट परंपरा को छिन्न-भिन्न करने का पाप कर रहे हैं। तुर्रा यह कि हम तो हिंदी के विद्वान हैं।

जब मैं जबलपुर के विश्वविद्यालय में हिंदी-भाषाविज्ञान का प्रोफेसर था, मेरे पास विभिन्न विश्वविद्यालयों से हिंदी की उपभाषाओं एवं बोलियों पर संपन्न पी-एच.डी. उपाधि के लिए जमा किए गए शोध-प्रबंध जाँचने के लिए आते थे। मैंने ऐसे अनेक शोध-प्रबंध, जाँचे जिनमें एक ही पृष्ठ पर एक पैरे में विवेच्य बोली को उपबोली का दर्जा दिया गया, दूसरे पैरे में उसको हिंदी की बोली निरूपित किया गया तथा तीसरे पैरे में उसे भारत की प्रमुख भाषा के अभिधान से महिमामंडित कर दिया गया। इससे यह स्पष्ट है कि शोध-छात्र या शोध-छात्रा को तो जाने ही दीजिए, उनके निर्देशक महोदय भी भाषा-विज्ञान के भाषा-भूगोल एवं बोली-विज्ञान के सिद्धांतों से अनभिज्ञ थे।

जन्म : 17 जनवरी, 1941, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश (भारत)।

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), डी.फिल. (हिंदी-भाषा विज्ञान), डी.लिट. (हिंदी-भाषा विज्ञान)।

प्रकाशन : 26 ग्रंथ एवं पुस्तक, 120 शोध निबंध, 90 चयनित लेख, 60 समीक्षा/भूमिका/आमुख। विचार, दृष्टिकोण एवं संकेत (निबंधों का संकलन); अन्य भाषा शिक्षण, बुलंदशहर एवं खुर्जा तहसीलों की बोलियों का संकालिक अध्ययन; परिनिष्ठित हिंदी का ध्वनिग्रामिक अध्ययन; परिनिष्ठित हिंदी का रूपग्रामिक अध्ययन; आवरण के परे; भाषा एवं भाषा विज्ञान; विश्व शांति एवं अहिंसा इत्यादि।

सम्मान : राज्य साहित्यिक पुरस्कार, साहित्य वाचस्पति उपाधि, 'International Cultural diploma of Honor', ब्रज विभूति सम्मान, स्वर्ण-पदक से अलंकृत इत्यादि अनेक संस्थाओं द्वारा भी सम्मानित।

कार्य : भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान के निदेशक, रोमानिया के बुकारेस्त विश्वविद्यालय के हिंदी के विजिटिंग प्रोफेसर तथा जबलपुर के विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी एवं भाषा विज्ञान विभाग के लैक्चरर, रीडर, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा कला संकाय के डीन। हिंदी के अध्ययन, अध्यापन एवं अनुसंधान तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार-विकास के क्षेत्रों में भारत एवं विश्व स्तर पर कार्य किया।

जब छत्तीसगढ़ को अलग राज्य बनाने का आंदोलन ज़ोरों से चल रहा था, उसी समय मैंने यह आकलन कर लिया था कि छत्तीसगढ़ के अलग राज्य बनने के बाद कुछ लोग छत्तीसगढ़ी को हिंदी से अलग भाषा बनवाने के लिए ज़ोर देने लगेंगे। मैंने छत्तीसगढ़ के प्रबुद्ध जनों का ध्यान इस खतरे की ओर दिलाया था। उनके आग्रह पर मैंने भाषावैज्ञानिक आधार पर भाषा और बोलियों के अंतर्संबंधों पर प्रकाश डाला था। मेरा लेख छत्तीसगढ़ के रायपुर के दैनिक समाचार-पत्रों एवं साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ था।

सन् 2009 में मैंने नामवर सिंह का यह वक्तव्य पढ़ा—

हिंदी समूचे देश की भाषा नहीं है वरन वह तो अब एक प्रदेश की भाषा भी नहीं है। उत्तर प्रदेश, बिहार जैसे राज्यों की भाषा भी हिंदी नहीं है। वहाँ की क्षेत्रीय भाषाएँ, यथा अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि हैं।

इसको पढ़कर मैंने नामवर के इस वक्तव्य पर असहमति के तीव्र स्वर दर्ज़ कराने तथा हिंदी के विद्वानों को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लेख लिखा। आप चाहें तो उस लेख को पढ़ सकते हैं, जिसका लिंक है—

रचनाकार : महावीर सरन जैन का आलेख : क्या उत्तर प्रदेश···

8 सितंबर, 2009··· महावीर सरन जैन का आलेख : क्या उत्तर प्रदेश एवं बिहार हिंदी भाषी राज्य नहीं हैं ?··· नामवर के इस वक्तव्य पर असहमति के तीव्र स्वर दर्ज़ कर रहे हैं केंद्रीय हिंदी संस्थान के पूर्व निर्देशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन.

www.rachanakar.org/2009/09/blog-post_08.html

जो हिंदी प्रेमी हिंदी भाषा के क्षेत्र तथा उसके अंतर्गत आने वाले समस्त भाषिक रूपों के अंतर्संबंधों को भाषा विज्ञान के भाषा-भूगोल तथा बोली-विज्ञान के सिद्धांतों के आलोक में समझना चाहते हैं, उनसे मेरा निवेदन है कि वे निम्न लिंकों पर जाकर अध्ययन कर सकते हैं—

http://www.scribd.com/doc/105229692/Hindi-Bhasha
http://www.scribd.com/doc/105906549/Hindi-Divas-Ke-Avasa
www.rachanakar.org/2012/09/blog-post_3077.html

हिंदी प्रेमियों से मेरा यह अनुरोध है कि इन लेखों का अध्ययन करने की अनुकंपा करें, जिससे जो ताकतें हिंदी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का षड्यंत्र कर रही हैं, वे बेनकाब हो सकें।

मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें सन् 1998 के पूर्व हिंदी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1991 के सेन्सस ऑफ इंडिया का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ जुलाई 1997 में प्रकाशित हुआ। यूनेस्को की टेक्नीकल कमेटी फॉर द वॅर्ल्ड लैंग्वेजिज़ रिपोर्ट ने अपने दिनांक 13 जुलाई, 1998 के पत्र के द्वारा यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर हिंदी की रिपोर्ट भेजने के लिए भारत सरकार से निवेदन किया। भारत सरकार ने उक्त दायित्व के निर्वाह के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन को पत्र लिखा।

भारत के स्वाधीनता संग्राम के आंदोलन ने जब ज़ोर पकड़ा, तब-तब हिंदी की प्रगति का रथ भी उतनी ही तेज़ गति से आगे बढ़ी। हिंदी राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक बन गई। स्वाधीनता संग्राम के भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने यह आत्मसात कर लिया था कि विगत 600-700 वर्षों से हिंदी संपूर्ण भारत की एकता का कारक रही है; यह संतों, फ़कीरों, व्यापारियों, तीर्थयात्रियों, सैनिकों द्वारा देश के एक भाग से दूसरे भाग तक प्रयुक्त होती रही है।

मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि हिंदी को राष्ट्रभाषा की मान्यता उन नेताओं के कारण प्राप्त हुई, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। बंगाल के केशवचंद्र सेन, राजा राममोहन राय, रवींद्रनाथ ठाकुर, नेताजी सुभाष चंद्र बोस; पंजाब के बिपिनचंद्र पाल, लाला लाजपत राय; गुजरात के स्वामी दयानंद, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी; महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक तथा दक्षिण भारत के सुब्रह्मण्यम भारती, मोटूरि सत्यनारायण आदि नेताओं के राष्ट्रभाषा हिंदी के संबंध में व्यक्त विचारों से मेरे मत की संपुष्टि होती है। हिंदी भारतीय स्वाभिमान और स्वातंत्र्य चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। हिंदी राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक हो गई। इसके प्रचार-प्रसार में सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय नेताओं ने सार्थक भूमिका का निर्वाह किया।

मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें सन् 1998 के पूर्व हिंदी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1991 के सेन्सस ऑफ इंडिया का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ जुलाई 1997 में प्रकाशित हुआ। यूनेस्को की टेक्नीकल कमेटी फॉर द वॅर्ल्ड लैंग्वेजिज़ रिपोर्ट ने अपने दिनांक 13 जुलाई, 1998 के पत्र के द्वारा यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर हिंदी की रिपोर्ट भेजने के लिए भारत सरकार से निवेदन किया। भारत सरकार ने उक्त दायित्व के निर्वाह के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन को पत्र लिखा।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने सन् 1999 में यूनेस्को को विस्तृत रिपोर्ट भेजी

प्रोफेसर जैन ने विभिन्न भाषाओं के प्रामाणिक आँकड़ों एवं तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया कि प्रयोक्ताओं की दृष्टि से विश्व में चीनी भाषा के बाद दूसरा स्थान हिंदी भाषा का है। रिपोर्ट

तैयार करते समय ब्रिटिश काउंसिल ऑफ इंडिया से अंग्रेज़ी मातृभाषियों की पूरे विश्व की जनसंख्या के बारे में तथ्यात्मक रिपोर्ट भेजने के लिए निवेदन किया गया। ब्रिटिश काउंसिल ऑफ इंडिया ने इसके उत्तर में गिनीज बुक ऑफ नॉलेज (1997 संस्करण) का पृष्ठ 57 फैक्स द्वारा भेजा। ब्रिटिश काउंसिल ने अपनी सूचना में पूरे विश्व में अंग्रेज़ी मातृभाषियों की संख्या 33,70,00,000 (33 करोड़, 70 लाख) प्रतिपादित की। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की पूरी आबादी 83,85,83,988 है। मातृभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार करने वालों की संख्या 33,72,72,114 है तथा उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करनेवालों की संख्या 04,34,06,932 है। हिंदी एवं उर्दू को मातृभाषा के रूप में स्वीकार करनेवालों की संख्या का योग 38,06,79,046 है, जो भारत की पूरी आबादी का 44.98 प्रतिशत है। प्रोफेसर जैन ने अपनी रिपोर्ट में यह भी सिद्ध किया कि भाषिक दृष्टि से हिंदी और उर्दू में कोई अंतर नहीं है।

जो विद्वान हिंदी, उर्दू की एकता के संबंध में मेरे विचारों से अवगत होना चाहते हैं, वे निम्न लिंक पर जाकर अध्ययन कर सकते हैं—

http://www.scribd.com/doc/22142436/Hindi-Urdu)

इस प्रकार ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आयरलैंड, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि सभी देशों के अंग्रेज़ी मातृभाषियों की संख्या के योग से अधिक जनसंख्या केवल भारत में हिंदी एवं उर्दू भाषियों की है। रिपोर्ट में यह भी प्रतिपादित किया गया कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारणों से संपूर्ण भारत में मानक हिंदी के व्यावहारिक रूप का प्रसार बहुत अधिक है। हिंदीतर भाषी राज्यों में बहुसंख्यक द्विभाषिक समुदाय द्वितीय भाषा के रूप में अन्य किसी भाषा की अपेक्षा हिंदी का अधिक प्रयोग करता है।

हिंदी की अंतर-क्षेत्रीय, अंतर्देशीय एवं अंतरराष्ट्रीय भूमिका को स्पष्ट करने के लिए मैंने सन् 2002 में विस्तृत लेख लिखा। उक्त लेख सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका में प्रकाशित हुआ (पृष्ठ 13-23) उसको इंटरनेट पर भी देखा जा सकता है। लिंक्स हैं—

- http://www.rachanakar.org/2010/07/blog-post_886.html#ixzz2 WNsOK2lT
- http://www.scribd.com/doc/22573933/Hindi-kee-antarraashtreeya-bhoomikaa

(सेवानिवृत्त निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान)

123, हरि एन्क्लेव,
चाँदपुर रोड
बुलंदशहर-203001
mahavirsaranjain@gmail.com

□

साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है।

—प्रेमचंद

अध्ययन उल्लास का और योग्यता का कारण बनता है।

—बेकन

आत्मविश्वास सरीखा दूसरा मित्र नहीं है। यह भावी उन्नति की प्रथम सीढ़ी है।

—स्वामी विवेकानंद

हिंदी और सूचना-संचार प्रौद्योगिकी

चुनौती तो आगे है…

हिंदी और तकनीक पर बात करना आज उतना असहज महसूस नहीं होता, जितना लगभग पंद्रह वर्ष पहले होता था। पारंपरिक पर्सनल कंप्यूटर से आगे बढ़कर वह टैबलेट और स्मार्टफोन जैसे दूसरे गैजेट्स में भी प्रबल उपस्थिति दर्ज़ करा चुकी है और विश्व व्यापी वेब के पर्यावरण का अनुपेक्षणीय हिस्सा बन चुकी है। बाज़ारवाद के दौर में हिंदी की इस तरक्की के पीछे हिंदी-भाषियों का संख्याबल तो है ही, यूनिकोड स्टैंडर्ड जैसे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर घटित अनुकूल घटनाक्रमों का भी योगदान है। आज जिस आसानी से लोग इ-मेल, ब्लॉग, सोशल नेटवर्किंग, माइक्रोब्लॉगिंग और कार्यालयीन कामकाज में हिंदी का प्रयोग कर पा रहे हैं, वह प्रभावित करता है। हालाँकि इससे संतुष्ट हो जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे हिंदी और देवनागरी की एक चुनौती ही हल हुई है। सटीक इनपुट प्रणालियों के अभाव का बहाना लेकर प्रायः हम अपनी भाषा और लिपि में पर्याप्त तकनीकी कार्य न होने के अपराध-बोध से मुक्त होते आए हैं। किंतु अब ऐसा कोई बहाना मौजूद नहीं रह गया है। तकनीकी माध्यमों में हिंदी की बुनियादी समस्या यूनिकोड, इनस्क्रिप्ट तथा अन्य सहायक कीबोर्ड प्रणालियों और उनका समर्थन करने वाले सॉफ्टवेयरों ने हल कर दी है। वास्तव में यह छोटी चुनौती थी। बड़ी चुनौती तो अब हमारे सामने है, और वह है—कनीकी माध्यमों में अपनी भाषा और लिपि का प्रयोग करने, उसमें ज़रूरी अनुप्रयोगों का विकास करने, उसे इंटरनेट पर विश्व की शीर्ष भाषाओं की श्रेणी में लाने, तकनीकी साहित्य का प्रकाशन करने और आम लोगों के बीच जागरूकता फैलाने की चुनौती।

इंटरनेट पर सर्वाधिक लोगों द्वारा प्रयुक्त शीर्ष पाँच भाषाएँ हैं—अंग्रेज़ी, चीनी (मंदारिन आदि), स्पैनिश, जापानी और पुर्तगाली। हिंदी की गणना पहली दस भाषाओं में भी नहीं होती। जापान और पुर्तगाल जैसे राष्ट्र, जिनकी जनसंख्या भारत की तुलना में एक अंशमात्र ही है, कैसे इंटरनेट पर अपनी भाषा के प्रयोग में इतने आगे हैं? चीन, जो कि भारत की ही तरह एक विकासमान अर्थव्यवस्था है, अपनी एशियाई पृष्ठभूमि तथा लगभग हमारे जैसी ही भाषायी समस्याओं के बावजूद कैसे तकनीकी माध्यमों में इतना सफल है? हम हिंदी भाषियों को इस विषय पर गहराई से मंथन करने की ज़रूरत है। आज जबकि भारत में लगभग 20 करोड़ लोग किसी-न-किसी रूप में इंटरनेट से जुड़े हैं और भारत से दूर रहने वाले लाखों हिंदी भाषी तकनीकी माध्यमों के प्रयोग में सक्षम हैं, तब हिंदी की स्थिति इतनी कृशकाय क्यों होनी चाहिए? बात पुनः अपनी भाषा के प्रति गौरव-भाव की प्रतिष्ठा, उसके प्रयोग को प्रोत्साहित करने के यक्ष-प्रश्न पर आ जाती है। आइए, तकनीक द्वारा मुहैया कराई गई सुविधाओं का प्रयोग हम अपनी भाषा, संस्कृति, लिपि और संस्कारों के विस्तार में करें। दूसरों तक न सही, कम से कम अपने दैनिक जीवन में ही सही।

विश्व हिंदी पत्रिका के इस विशिष्ट अंक के तकनीकी खंड में प्रस्तुत विद्वान् लेखकों के आलेख हिंदी की तकनीकी सामर्थ्य के प्रति उपस्थित शंकाओं का समाधान ही नहीं करते, बल्कि व्यावहारिक तथ्यान्वेषण करते हुए उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त भी करते हैं। हिंदी पाठक को एक नए नज़रिए से सोचने के लिए प्रेरित करने वाले सभी लेखक साधुवाद के पात्र हैं। विश्व हिंदी पत्रिका के तकनीकी खंड से संबद्ध होने का अविस्मरणीय अनुभव तथा गौरव पाकर मैं अभिभूत हूँ और विश्व हिंदी सचिवालय का हृदय से आभारी हूँ।

—बालेंदु शर्मा दाधीच

संपादक व तकनीकविद्

20

सूचना प्रौद्योगिकी में नागरी लिपि

डॉ. ओम विकास

जन्म : 1 अगस्त, 1947 को उत्तर प्रदेश के ब्रह्मपुरी ग्राम में।

शिक्षा : इलेक्ट्रिकल-इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियरिंग में बी.टेक., एम.टेक., आई.आई.टी. कानपुर। कम्प्यूटर साइंस एवं इंजीनियरिंग में पी-एच.डी.।

प्रकाशन : हिंदी में विज्ञान विषयक कई लेख प्रकाशित हुए हैं। इन्फ़ोर्मेशन टेक्नोलॉजी की प्रथम शब्दावली बनाई, कंप्यूटर पर हिंदी में प्रथम पुस्तक कंप्यूटर से बातचीत लिखी। अंतरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय जर्नल/शोध पत्रिकाओं और संगोष्ठियों में शोधपत्र, टेक्नोलोजी एनालिसिस रिपोर्ट और लोक भाषा में भी तकनीकी लेख प्रकाशित।

सम्मान-पुरस्कार : आत्माराम पुरस्कार, विशिष्ट पदक, इंदिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार, विज्ञान भूषण, वास्विक इंडस्ट्रियल रिसर्च पुरस्कार, विज्ञान शिरोमणि, हिंदी सेवी सम्मान, विश्व हिंदी सम्मान (न्यूयॉर्क) आदि।

संप्रति : अंतरराष्ट्रीय पत्रिका विज्ञान प्रकाश भारत में संपादक।

सन् 1983 में विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में हुआ था। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने इसका उद्‌घाटन किया था। हिंदी कंप्यूटर के प्रयोग की संभावनाएँ दिखाने के लिए कार्य का समन्वय दायित्व भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक विभाग को मिला। श्री मधुकर राव चौधरी और प्रो. रवींद्र श्रीवास्तव का प्रोत्साहन मिला। भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिक विभाग ने सम्मेलन में प्रतिभागियों के रजिस्ट्रेशन की शोध परियोजना BITS पिलानी को दी। वैज्ञानिक ने उस समय सारा रजिस्ट्रेशन कार्य हिंदी में कर दिखाया। संभावना को सकारात्मक अभिव्यक्ति दी। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में पिछले दो दशक में बहुत तेज़ी से विकास हुआ है—कई नए समर्थ ऑपरेटिंग सिस्टम, विश्व भाषायी यूनीकोड, ओपेन टाइप फोंट, ऑफ़िस सूट, विश्व व्यापी वेब, मानव भाषा संसाधन की प्रगत प्रविधियाँ, मशीनी अनुवाद, ओ.सी.आर., टेक्स्ट टू स्पीच, इत्यादि।

छह दशक पहले स्वराज में अपनी भाषा और संस्कृति को समृद्ध और व्यापक बनाने का लक्ष्य था। अतीत पर गर्व था और जनशक्ति पर भरोसा था। गूढ़ ज्ञान को खोजते हैं तो संस्कृत वाङ्मय में चले जाते हैं, देवनागरी लिपि में प्रचुर साहित्य भी मिल जाता है। 21वीं सदी को एक दशक बीत रहा है, लेकिन पहले जैसा सकारात्मक संकल्प संशय में बदलता जा रहा है। 'सूचना प्रौद्योगिकी और देवनागरी लिपी' चर्चा और मंथन का विषय बन गया है। अभीष्ट लक्ष्य पाने में संशय और विलंब से प्रबुद्ध वर्ग चर्चा करता है, जिससे लोक कल्याणकारी लक्ष्य को भुला न दिया जाए।

संकल्पनाओं और विचारों के आदान-प्रदान के लिए भाषा जन्म लेती है। भाषिक आदन-प्रदान तत्काल मौखिक संभव है। कालांतर में इस लिपि के माध्यम से भाषा को सुरक्षित रखा जा सकता है। अतीत में लोग दूर-दूर बसे थे, सो उनकी भाषाएँ अलग-अलग थी। सभ्यता के विकास और आवागमन के बढ़ने से भाषाएँ और लिपियाँ एक-दूसरे से प्रभावित हुईं। पाणिनि जैसे मनीषियों ने ध्वनि एवं लेखन में ऐक्य पर बल देते हुए ध्वनियों का स्वर एवं व्यंजन में वर्गीकरण किया, उच्चारण स्थान और विधि के आधार पर लिपि संरचना सारणी बनाई। लिपि-व्याकरण भी दिया। अन्य सभी लिपियों की अपेक्षा इसका ध्वन्यात्मक, वैज्ञानिक आधार है। इसे देवनागरी कहा गया। आजकल संक्षेप में इसे 'नागरी लिपि' कहते हैं। ध्वन्यात्मक लिपि से तात्पर्य है कि लिपि संयोजन क्रम ध्वनि उच्चारण के स्थान और विधि अथवा तरीके के आधार पर है। स्वर और व्यंजन ध्वनि के 2 मुख्य भेद हैं। 5 मुख्य स्वर हैं। इन्हें ह्रस्व कहते हैं। इनकी दीर्घ ध्वनियाँ भी हैं। इनसे व्युत्पन्न स्वर और व्यंजन-स्वर भी हैं। व्यंजन ध्वनि के 5 मुख्य स्थान और 5 विविध प्रकार हैं। 'क' 'च' 'ट' 'त' 'प' वर्ग से जाने जाते हैं। अलिजिह्वा ध्वनि प्रकार से स्थान भेद के अनुसार 'ह' 'श' 'ष' 'स' की ध्वनियाँ हैं। स्थान और प्रकार भेद से एक सैल बना। सैल में भी स्थान और प्रकार के सूक्ष्म परिवर्तन से कई और ध्वनियाँ संभव हैं। ध्यान दें कि व्यंजन का उच्चारण बिना किसी स्वर ध्वनि के साथ संभव नहीं हैं। इसीलिए स्वर को 'आत्मा' और व्यंजन को 'शरीर' कहा गया है। इसकी मूल आधार संरचना 'पाणिनि-सारणी' है।

पाणिनि-सारणी (Panini Table)

P = (P1,P2,P3,P4,P5), M = (M1,M2,M3,M4,M5,M6)

		व्यंजन						स्वर					स्वरांत
		अप्र-अघ	मप्र-अघ	अप्र-घ	मप्र-घ	नासिक्य	अलि जिह्वा	व्युत्पन्न	व्युत्पन्न	व्युत्पन्न	मूल	मूल	
		M1	M2	M3	M4	M5	M6	व्यंजन स्वर	दीर्घ	ह्रस्व	ह्रस्व	दीर्घ	मात्रा
कंठ	P1	क	ख	ग	घ	ङ	ह	-	-	-	अ	आ	- ा
तालु	P2	च	छ	ज	झ	ञ	श	य (इ+अ)	ऐ	ए (अ+इ)	इ	ई	ि ी
मूर्ध	P3	ट	ठ	ड	ढ	ण	ष	र (ऋ+अ)	-	-	ऋ	ॠ	ृ ॄ
दंत	P4	त	थ	द	ध	न	स	ल (ऌ+अ)	-	-	ऌ	ॡ	- -
ओष्ठ	P5	प	फ	ब	भ	म	-	व (उ+अ)	औ	ओ (अ+उ)	उ	ऊ	ु ू ो ौ

P = उच्चारण स्थान M = उच्चारण विधि

प्रौद्योगिकी में बहुत अधिक शक्तिशाली मशीनें बनीं। मशीनों से जोखिम भरे खतरनाक काम, भारी भरकम काम और सूक्ष्मतर कामों को नियमित रूप से बिना थके, बिना रुके किया जाना संभव हुआ। बुद्धिपरक कामों को करने के लिए कंप्यूटर विकसित हुए। पहले संख्याओं पर गणना के लिए, बाद में मानव भाषाओं को समझकर विविध संसाधन कार्यों के लिए। कंप्यूटर पर कार्य करने की मूल प्रक्रिया 0-1 के कोड समूहों पर होती है। भाषा के स्वर-व्यंजन, अक्षरों, संख्याओं, विशेष चिह्नों, संचार चिह्नों आदि को 0-1 के बाइटों में कोडित करते हैं। कंप्यूटर को प्रथम आविष्कार और तदनंतर विकास रोमन लिपि पर आधारित अंग्रेज़ी भाषी देशों में हुआ। कंप्यूटर और कम्युनिकेशन प्रौद्योगिकियों के संयोग से सूचना का संसाधन और संचार व्यापक हुआ। विश्वव्यापी वेब ने, वसुधैव समीपं को, साकार किया। दूरियाँ कम हुईं। सूचना की खोज, संक्षेपण, भाषांतरण संभव होने लगे हैं।

विकास की यात्रा का निष्कर्ष है कि सूचना प्रौद्योगिकी का विकास सैद्धांतिक रूप से लिपि या भाषापरक नहीं है। जो रोमन लिपि में अंग्रेज़ी आदि में संभव है, वह नागरी लिपि में भी संभव है।

इंटरनेट पर प्रयोग सर्वेक्षण

Miniwatts Marketing Group के लिए किए गए सर्वेक्षण के अनुसार 31 मई, 2011 तक कुल इंटरनेट यूज़र (प्रयोक्त) 2,099,926,965 थे। इनमें प्रयोक्त (Millions) के अनुसार दस प्रमुखतम भाषाएँ क्रमश: इस प्रकार हैं—इंग्लिश (55 Mn), चाइनीज़ (510 Mn), स्पैनिश (165 Mn), जापानी (99.2 Mn), पुर्तगीज (82.4 Mn), अन्य भाषाएँ (350.6 Mn) रहती हैं। Mn (Million) यानी मिलियन जो दस लाख के बराबर हैं।

सन् 2000 में हमारा अनुमान था कि 2010 तक इंटरनेट पर भारतीय भाषाएँ तीसरे स्थान पर होंगी। इस पर चर्चा करने की और नए टार्गेट लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता है। चीन में इंटरनेट प्रयोग 37.2 प्रतिशत है, प्रयोक्ता 510 मिलियन हैं, विश्व में प्रथम इंग्लिश प्रयोक्ता संख्या (556 मिलियन) के बहुत करीब है। (संदर्भ : http:/www.internetworldstats.com/stats7.htm)

भारत में दिसंबर 2011 में इंटरनेट प्रयोक्ता 121 मिलियन हो गए; सैलफ़ोन प्रयोक्ता 881 मिलियन हैं। आशा है कि टेलीडेंसिटी 2012 तक जनसंख्या के अनुपात में 84 प्रतिशत हो जाएगा। 2015 तक इंटरनेट प्रयोक्त लक्ष्य 35 प्रतिशत भारतीय भाषाओं के लिए और 20 प्रतिशत (300 मिलियन) नागरी लिपि प्रयोग के लिए निर्धारित कर सकते हैं।

इंटरनेट पर नागरी और अन्य भारतीय लिपियों का स्थान बहुत नीचे होने के कारण हैं—साक्षरता की कमी, कंप्यूटर प्रयोग कम, साधन संपन्न भारतीयों को अपनी भाषा पर गर्व नहीं, शिक्षा में भारतीय भाषायों का प्रयोग नगण्य, इत्यादि।

नागरी लिपि के संदर्भ में प्रौद्योगिकी विकास तो किए गए हैं। (www.ildc.in) लेकिन उनका प्रयोग व्यापक नहीं हो पा रहा है। क्या है, क्या नहीं है?

फ़ोंट

पहले टू टाइप फोंट विकसित किए गए। तदनंतर ओपेन टाइप फोंट प्रचलन में आए। प्राइवेट स्तर पर और सरकारी अनुदान से बनाए गए। कई फोंट मुफ़्त में डाउनलोड किए जा सकते हैं।

अड़चन कहाँ है? फोंट के संरचना आधार अलग-अलग होने से फाइल खोलने के लिए वह फोंट लोड किए जाने की आवश्यकता पड़ती है। माइक्रोसॉफ्ट विंदोज़, एप्पिल का मेक ओएस, लाइनेक्स आदि ऑपरेटिंग सिस्टम प्रचलन में है। लेकिन उन पर एक-दो फोंट ही मिलते हैं। और उनमें भी पारस्परिक समानता नहीं। इन ऑपरेटिंग सिस्टमों के आधार पर ऑफ़िस सूट में कम-से-कम 10 (ओपेन टाइप फोंट) उपलब्ध कराए जाएँ। एक प्रकार के फोंट सभी को उपलब्ध होने पर फ़ाइल की सूचना का आदान-प्रदान आसान होगा।

भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिक विभाग ने हिंदी सी.डी. में मुफ़्त प्रयोग के लिए कई फोंट दिए हैं, लेकिन उनके व्यावसायिक प्रयोग पर रोक लगी है। इनमें से कम-से-कम 10 सुंदर फोंट व्यावसायिक प्रयोग के लिए भी मुफ़्त मुक्त किए जाएँ। यह जनता के हित में होगा, इससे नागरी लिपि का प्रयोग संवर्धन होगा, भारतीय भाषाएँ समृद्ध होंगी। सकल भारती फोंट को भी देने से सभी भारतीय भाषाओं को लाभ होगा।

फ़ोंट कन्वर्जन यूटिलिटी

फ़ोंट विविध हैं। इन्हें आपस में बदलने के लिए और उन्हें यूनीकोड में परिवर्तन करने के लिए फोंट कन्वर्जन यूटिलिटी प्रोग्राम बनाए गए हैं। डांगी सॉफ़्ट देवनागरी फोंट परिवर्तन जैसे कई सॉफ़्टवयर ओपेन दोमेन में मिलने लगे हैं। लेकिन भारत सरकार द्वारा तकनीकी विकास के अंतर्गत फोंट कन्वर्जन यूटिलिटीज़ भी व्यावसायिक प्रयोग के लिए मुफ़्त उपलब्ध हों। जनहित में भारत सरकार पहल करें।

इनपुट

इनपुट के लिए की-बोर्ड ड्राइवर सॉफ़्टवेयर सिस्टम का अभिन्न अंग है। रोमन के लिए QWERTY की-बोर्ड सर्वाधिक प्रयोग में है। नागरी लिपि में इनपुट के लिए कई प्रकार के की-बोर्ड बनाए गए हैं—इंस्क्रिप्ट, फोनेटिक, रेमिंग्टन इत्यादि। इन्हें अलग से लोड करना पड़ता है। भारत की राजभाषा नागरी लिपि में हिंदी है। विडंबना है, शासकीय मान्यता, जनसंख्या की बहुलता होते हुए भी सरकारी विभागों, उपक्रमों और सरकारी वित्त पोषित परियोजनाओं में नागरी की-बोर्ड ड्राइवर के पूर्व लोडित होने की अनिवार्यता नहीं है। शायद एक प्रतिशत से भी कम, संभवत: नगण्य, कंप्यूटरों पर ऐसी सुविधा होगी। नागरी की-बोर्ड INSCRIT मानक के अनुसार TVS ने बनाया। विडंबना है कि सरकारी विभागों में भी खरीददार नहीं मिले। इसलिए TVS ने इनको बनाना बंद कर दिया।

स्टाफ़ सलेक्शन कमीशन (SSC) की टंकण परीक्षा में INSCRIPT नागरी की-बोर्ड पर टेस्ट की अनिवार्यता अथवा वरीयता नहीं है। स्कूलों और आई.टी.आई. में कंप्यूटर और टंकण प्रशिक्षण कोर्सों में INSCRIPT नागरी की-बोर्ड पर टेस्ट अनिवार्य हो।

कोडिंग

1980 के दशक में ISCII कोड भारतीय भाषाओं की लिपियों के लिए बनाया गया। परिवर्धित देवनागरी को अन्य भारतीय लिपियों के लिए आधार बनाया गया। कुछ प्रचलन में आया था। दशक के अंत तक UNICODE का प्रचार-प्रसार बढ़ा। वैश्विक स्तर पर वेब पर बने रहने के लिए UNICODE का प्रयोग सर्वमान्य हो गया है।

नागरी लिपि ध्वन्यात्मक है। इसका लिपि व्याकरण भी है। व्यंजनों के अंत में स्वर के साथ स्वतंत्र ध्वनि को अक्षर (Syllable) कहते हैं। व्यंजन का तात्पर्य स्वर विहीन शुद्ध व्यंजन से है। देवनागरी कोड हिंदी, संस्कृत, नेपाली, कोंकणी, कश्मीरी, डोंगरी आदि के लिए और वैदिक संस्कृत के लिए भी प्रयुक्त होता है। यूनिकोड में कुछ विसंगतियाँ आने से लिप्यंतरण सही नहीं हो पाता। फिर भी इसके प्रयोग संवर्धन के लिए नीति स्तर पर प्रयास करने की आवश्यकता है।

स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में भारतीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। कंप्यूटर पर भारतीय भाषा प्रतियोगिताएँ आयोजित की जा सकती हैं।

फ़ोनीकोड

अब तक कोडिंग का आधार रेखीय रूप से पृथक् रूप (0...9 संख्या, a...z, A...Z वर्ण रूपिम;... ?) पंक्च्येशन चिह्न आदि हैं।

पाणिनि सारणी से ध्वनि लिपि का परस्पर प्रभाव समझा जा

सकता है। स्वतंत्र स्वर रूपिम है, व्यंजन के अंत में स्वर का रूप बदलकर मात्रा बन जाता है, जो ध्वन्यात्मक इकाई अक्षर (Syllable) है। V (स्वर), CV (व्यंजन-स्वर) CCV (व्यंजन-व्यंजन-स्वर) आदि अक्षर हैं। मूल अक्षर (Syllable) को कोड करके फोनीकोड सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त होगा। भाषा के अनुसार इनके इनपुट-आउटपुट निश्चित किए जा सकते हैं। 'फोनीकोड' भारत का विशिष्ट योगदान होगा।

लिप्यंतरण

परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला में विश्व भाषाओं की अधिकांश ध्वनियों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। जैसा लिखो वैसा बोलो। यह स्वनिम-रूपिम कर समानता अन्य किसी लिपि में नहीं है। INSROT लिप्यंतरण मानक बनाया गया था। (संदर्भ : www.tdil.mit.gov.in)

लेकिन प्रयोग में विविध प्रकार की लिप्यंतरण तालिकाएँ मिलती है। एक रूपता का अभाव साहित्य-सृजन और विनिमय में बाधक है। इस संबंध में नीति-निर्देश निकाले जाने और तदनुसार अनुपालन की आवश्यकता है।

वेब पर आधारित नागरी लिपि

वेब पर सूचना का आदाप-प्रदान तीव्रतर और सुगमता से हो रहा है। लेकिन अधिकांश रोमन में नागरी लिपि में सुगमता के लिए कतिपय सुंदर मानक फोंट व्यावसायिक दृष्टि से सभी IT उद्योगों को मुफ़्त और मुक्त उपलब्ध हैं।

डोमेन नेम URL, e-mail ID नागरी लिपि में अभी तक नहीं है। औपचारिक चर्चाएँ एक दशक से हो रही हैं। अरबी लिपि में डोमेन नेम हैं, यह बहुत जटिल लिपि है। विश्व स्तर की यह पहल सरकार ही कर सकती है। हाँ, इस दिशा में NIXI ने पहल की है। जुलाई 2011 में C-DAC पुणे में ICANN के प्रतिनिधियों और भाषा विज्ञानियों की बैठक में कुछ निर्णायक सिफ़ारिशें निकली हैं। इसे तेज़ी से कार्य रूप देने की आवश्यकता है।

नागरी OCR

ओ.सी.आर. पर शोध कार्य दो दशकों से चल रहा है। लेकिन किसी सरकारी विभाग में भी नागरी ओ.सी.आर. नहीं मिलता। सभी ओ.सी.आर. द्विलिपिक—रोमन एवं नागरी में—और अन्य भारतीय भाषा लिपियों के विकल्प के साथ भी उपलब्ध कराए जाएँ।

W3C

W3C (World Wide Web Consortium) वेब पर सूचना के सुगम आदान-प्रदान, रख-रखाव के लिए विविध प्रकार के मानक बनाता है, जिन्हें IT कंपनियाँ स्वीकार कर तदनुसार सुविधा प्रदान करती हैं। W3C का मुख्य उद्देश्य है कि टेक्नोलॉजी का विकास इस प्रकार हो कि उनका पारस्परिक प्रयोग संभव हो, इसके लिए सर्वप्रयोग्य (ओपन) मानक बनाए जाते हैं। वेब डिजायन के लिए HTML, SVG, Ajax, WOFF, CSS इत्यादि मानक। XML (Extensible Markup Language) से संबंधित मानक XML Namespace, XML Schema, XSLT, EXI (विनिमय हेतु) ITS (वैश्विक टैग सेट)। मूक, बधिक, विकलांगों के लिए वेब सरल, सुगम बनाने के लिए WAI (Web accessibility Initiative) मानक। कल्पायन (Semantic Web) के बारे में भी मानक बनाए गए हैं।

विश्व की विविध भाषाओं, लिपियों और संस्कृतियों में वेब को सर्वमान्य और वर्स प्रयोज्य बनाने की दिशा में W3C Internationalization (I18N) ग्रुप कार्यरत है। (संदर्भ : http://www.w3.org/)

नागरी में यूटिलिटी सॉफ़्टवेयर

लाइब्रेरी, एकाउंटिंग, स्कूल-कॉलेज, प्रबंधन, ट्रांसपोर्टेशन, पाठ-लेखन, ऑर्थरिंग आदि सॉफ़्टवेयर नागरी लिपि में मुफ़्त, मुक्त सर्वसुगम हों। 'जनकल्याण सॉफ़्टवेयर' के अंतर्गत सरकार उन्हें उपलब्ध कराए। सरकार की 'वन लेपटॉप पर वाइल्ड' (OLPC) परियोजना में भी प्रत्येक लेपटॉप पर नागरी का भी प्रावधान हो। अब 'आकाश' को सभी स्कूलों में देने की योजना है। सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि इस पर नागरी में काम करना संभव होगा कि नहीं। इसका की-बोर्ड नागरी का प्रावधान होगा कि नहीं, अभी तक इस में नागरी अथवा अन्य

20वीं सदी में आर्थिक विकास का आधार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी रहा। नवाचार एवं आविष्कारोन्मुखी प्रवृत्ति से समाज विकसित और अविकसित वर्गों में बँटने लगे। 21वीं सदी में संज्ञानिक (ICT) का प्रबल प्रभाव है। लोक संस्कृति की संरक्षा की चिंता बढ़ने लगी है। प्रति वर्ष 2 प्रतिशत विश्व भाषाओं का लोप होता जा रहा है। प्रति वर्ष लगभग 60 लाख पृष्ठ विज्ञान शोध पत्रिकाओं में ओर लगभग 165 लाख पृष्ठ विज्ञान पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। आधुनिक विज्ञान नागरी में नगण्य है।

भारतीय लिपि में इनपुट और संसाधन की सुविधा नहीं हैं।

नागरी लिपि में शब्द संग्रह

नागरी लिपि में टेगकृत कॉर्पस, शब्दकोश, विषयक शब्दावलियाँ, समांतर कोश प्रयोग और शोध हेतु ओपेन डोमेन में उपलब्ध हों। राजभाषा की इ-महाकोश और अरविंद लैक्सकॉन ओपेन डोमेन में उपलब्धता प्रशंसनीय पहल है।

नागरी लिपि और भाषा

नागरी लिपि का प्रयोग भाषायी जनसंख्या के हिसाब से बहुत कम है, नगण्य है। अंग्रेज़ी के मोह में भारतीय भाषाओं को राजाश्रय के बजाय राज-उपेक्षा मिलने से नागरी लिपि का प्रयोग शिक्षा, व्यापार मीडिया में घटता जा रहा है।

कुछ लोग ब्लॉग आदि बना लेने से अपनी-अपनी पीठ ठोंक लेते हैं, लेकिन वस्तुस्थिति है कि समाज में नागरी लिपि का प्रयोग हेयकर बनता जा रहा है। इंडेन गैस के बिल, रेल आरक्षण, CGHS के डिटेल आदि जन सेवाओं में देवनागरी में कोई सुविधा नहीं है। ई-गवर्नेंस में छुट-पुट हिंदी का दिखावा है। क्यों न हो? आम आदमी की आवाज़ सुनने का कोई प्रावधान नहीं है। विकास नीति बनाने और कार्यान्वयन की प्रक्रिया में आम आदमी की भागेदारी नहीं है।

संक्षेप में—समस्या टेक्नोलॉजी की नहीं, प्रत्युत राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। नीति का प्रभावी अनुपालन हो। नीति है, पर अनुपालन नहीं होता है। यदाकदा मात्र श‍ृगाल-विलाप होता है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में नागरी प्रयोग

20वीं सदी में आर्थिक विकास का आधार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी रहा। नवाचार एवं आविष्कारोन्मुखी प्रवृत्ति से समाज विकसित और अविकसित वर्गों में बँटने लगे। 21वीं सदी में संज्ञानिक (ICT) का प्रबल प्रभाव है। लोक संस्कृति की संरक्षा की चिंता बढ़ने लगी है। प्रति वर्ष 2 प्रतिशत विश्व भाषाओं का लोप होता जा रहा है। प्रति वर्ष लगभग 60 लाख पृष्ठ विज्ञान शोध पत्रिकाओं में ओर लगभग 165 लाख पृष्ठ विज्ञान पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। आधुनिक विज्ञान नागरी में नगण्य है।

परिणाम—लोक व्यवहार में नव वैज्ञानिक सोच और प्रौद्योगिक का अभाव और परमुखापेक्षी समाज का सात्य। इसलिए प्राथमिकता हो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में नागरी प्रयोग का संवर्धन। संक्रमण काल में भारत के न्यूनतम लक्ष्य विश्व लक्ष्यों में लगभग 0.5 प्रतिशत हो सकते हैं।

कतिपय सुझाव इस प्रकार हैं—

शिक्षा

1. उच्च तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रथम वर्ष की पढ़ाई हिंदी, लोकभाषा, इंग्लिश में मिश्रित हो। लैब में सभी उपकरणों में नाम नागरी में भी लिखे जाएँ। IT पाठ्यक्रम में Multi-Lingual Computing अनिवार्य हो। एक मिनी प्रोजेक्ट रिपोर्ट हिंदी/लोक भाषा में भी हो। {उच्च तकनीकी शिक्षा संस्थानों, जैसे AIIMS, IITK, IITD, IITB आदि के प्रथम वर्ष में ही आत्महत्या कर लेनेवाली मेधावी किशोरी को भावपूर्ण श्रद्धांजलि। अपनी भाषा में उच्च शिक्षा से वंचित विवश हुए आत्महत्या की घटनाओं पर असंवेदनशील हैं शिक्षा प्रशासक और योजनाकार।}
2. मैथ्स/आई.टी. ओलंपियाड की भाँति नागरी ओलंपियाड आयोजित किए जाएँ, प्रतियोगिताएँ स्कूल, कॉलेज स्तर की और व्यावसायिक प्रयोग स्तर की हो सकती हैं। कैलीग्राफ़ी, लिपि व्याकरण, मानक वर्तनी, लिप्यंतरण आदि पर प्रश्न हों।
3. नागरी लिपि ध्वन्यात्मक लिपि है। विज्ञान-सम्मत सर्वध्वनि-लिप्यंकण पाणिनि-सारणी का आधार है। वर्तनी मानकीकरण में पाणिनि-सारणी को ध्यान में रखा जाए।
4. हिंदी/अन्य भारतीय भाषा में ऑथरिंग टूल्स, शब्दकोश, थेसॉरस, श्रेष्ठ पाठ, अनुवाद सहायक सॉफ़्टवेयर आदि डाउनलोडेबिल मुफ़्त उपलब्ध हों।

प्रौद्योगिकी

5. नागरी लिपि पर आधारित फोनीकोड का विकास किया जाए। यूनीकोड ग्राफ़िम (रूपिम) आधारित है, फोनीकोड फोनिम (स्वनिम) आधारित है। अक्षर (सिलेबल) ध्वनि को कोडित करते हैं। भारत की विशिष्ट देन होगा।
6. नागरी लिपि के कम-से-कम दस सुंदर मानक ऑपेन टाइप फोंट व्यावसायिक प्रयोग के लिए भी मुफ्त, मुक्त ओपेन डोमेन में सर्वसुलभ कराए जाएँ। यह जनहित में दूरगामी कदम होगा।
7. स्कूलों-कॉलेजों में नागरी OCR, Open, Office, Library Info System, Accounting Software, School Management Software आदि उपलब्ध कराए जाएँ। भारतीय भाषा कंप्यूटर सुविधा अनिवार्य हो। कंप्यूटर की खरीद में नागरी की-बोर्ड और लोडित भारतीय भाषा सॉफ़्टवेयर अनिवार्य हो।

8. नागरी टंकण के लिए INSCRIPT नामक और लिप्यंतरण के लिए नागरी-रोतन मानक INSROT के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए।
9. वेब पर डोमेन नेम नागरी में भी स्वीकार्य हों। इनकी उपलब्धता को ICANN से स्वीकृति तो मिली है, लेकिन इसके प्रयोग-प्रसार को भारत सरकार सुनिश्चित करें।
10. नागरी में कंटेट क्रियेशन और वेब सर्विस इंटीग्रेशन और XML आदि मानकों पर भी काम किया जाए। सभी सरकारी विभागों और इसके सभी प्रतिष्ठानों में हिंदी में वेबसाइट पर कंटेंट अद्यतन किए जाने की समय-समय पर समीक्षा हो।

प्रयोग

11. राज्य स्तर की पर्यटन सूचनाएँ नागरी लिपि में भी हों, क्योंकि धर्म स्थलों और पुरातत्व अवशेषों को देखने जन सामान्य पर्यटक पूरे देश से आते हैं।
12. शिक्षा में भारतीय भाषाओं और लिपि के प्रयोग संवर्धन की दिशा में विशेष प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। सभी सरकारी विभागों और इनके सभी प्रतिष्ठानों में हिंदी में वेबसाइड पर कंटेंट अद्यतन किए जाने की समय-समय पर समीक्षा हो।
13. ज्ञान पूर्ति के लिए अनुवाद आवश्यक है, लेकिन सरकारी कार्यालयों में वर्तमान अनुवाद विधा ने हास्यापद स्थिति में ला खड़ा किया है। प्रस्तावित है अनुसृजन विधा जो पाठक-केंद्रित है, सुबोध और नवाचार प्रेरक है।
14. निगरानी के लिए एक स्वतंत्र समीक्षा संस्था बनाई जाए, जो लक्ष्य और दायित्व निर्धारित करे, और समय-समय पर नागरी प्रयोग स्थिति, प्रसार कार्यक्रमों के प्रभाव (इम्पेक्ट), और प्रयोग-प्रसार की समस्याओं पर सर्वे कर परिणाम प्रकाशित करे तथा केंद्रीय एवं राज्य सरकार में नीति अनुपालन के लिए दबाव डाले।

सी-15, तरंग अपार्टमेंट्स
19, आई.पी. Extn
दिल्ली-110092
dr.omvikas@gmail.com

□

जननी का हृदय शिशु की पाठशाला है।

— एच.डब्ल्यू. बीचर

शिशु का भाग्य सदैव उसकी जननी द्वारा निर्मित होता है।

— नेपोलियन

जिज्ञासा के बिना ज्ञान नहीं होता।

— महात्मा गांधी

आश्चर्य की बात है कि लोग जीवन को बढ़ाना चाहते हैं, सुधारना नहीं।

— सुकरात

21

तकनीकी दुनिया में हिंदी को सक्षम बनाया यूनिकोड ने

भूपेंद्र कुमार

जन्म : 28 जून, 1962 को मथुरा (उत्तर प्रदेश) में

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), पत्रकारिता में डिप्लोमा, भारतीय बीमा संस्थान से एसोसिएटशिप। हिंदी कंप्यूटरीकरण व हिंदी ब्लॉग पर विशेष कार्य व विभिन्न कार्यशालाओं व सम्मेलनों में तत्संबंधी व्याख्यान। कविता, गीत, गज़ल लेखन, बाँसुरी वादन।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, कविता इत्यादि प्रकाशित व आकाशवाणी व दूरदर्शन से समय-समय पर प्रसारित।

संप्रति : दि न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मुरादाबाद मंडल कार्यालय-2 में उप प्रबंधक के पद पर कार्यरत।

कंप्यूटर पर हिंदी के सर्वव्यापी समाधान के रूप में यूनिकोड का भारत में आगमन विंडोज़ 2000 के साथ हुआ। आश्चर्य होता है कि आज 14 साल बाद भी अनेक लोग इससे अनभिज्ञ हैं और अनेक लोग कई तरह की भ्रांतियों के शिकार हैं। मसलन कुछ लोग कहते हैं कि हमारे पास यूनिकोड है ही नहीं या यह सॉफ़्टवेयर कितने का आता है या हमने तो यूनिकोड में काम करने का प्रशिक्षण ही नहीं लिया, इत्यादि। इससे पहले कि हम यूनिकोड में काम करने की बात करें, हमें कंप्यूटर की कोड व्यवस्था को समझना पड़ेगा।

जैसा कि सब जानते हैं, कंप्यूटर एक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है और वह न अंग्रेज़ी समझता है न हिंदी और न ही वह कोई अन्य इनसानी भाषा। कंप्यूटर तो बस एक ही भाषा समझता है, वह है ऑन-ऑफ की भाषा। इसी को हम गणितीय अंकों में 0 (शून्य) और 1 (एक) के रूप में अभिव्यक्त करते हैं। गणित में इसे ही द्विआधारी प्रणाली अथवा बाइनरी सिस्टम कहा जाता है। कंप्यूटर की दुनिया में इसी बाइनरी डिजिट को बिट के नाम से जाना जाता है। इसी बिट की संख्या के आधार पर कोड का निर्माण किया जाता है, जिसके माध्यम से हम मानव निर्मित लिपि संकेतों इत्यादि को अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम दो स्थानों अर्थात दो बिट का एक कोड बनाते हैं तो हम केवल 4 संकेतों को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं 00,01,10,11। यदि हमें अधिक संकेतों को अभिव्यक्त करना हो तो बिट बढ़ाने पड़ेंगे। शुरू में 7 बिट का कोड बनाया गया, जिसमें 128 संकेतों को अभिव्यक्त किया जा सकता था। बाद में 8 बिट का कोड बनाया गया, जिसमें 256 अक्षरों, अंकों, स्वरूपों व संयोजनाओं को अभिव्यक्त किया जा सकता था। 8 बिट के समूह को बाइट (BYTE) कहा गया। यही बाइट कंप्यूटर स्मृति की इकाई है। अर्थात कंप्यूटर में सूचनाएँ 8 बिट के इन समूहों में संचित (स्टोर) की जाती थीं। इसके प्रथम 128 स्थान अंग्रेज़ी अक्षरों व अंकों इत्यादि के लिए प्रयुक्त होते हैं। कोडिंग की इस व्यवस्था को एक्सटेंडेड एस्की (ASCII) अर्थात अमेरिकन स्टैंडर्ड कोड फॉर इंफॉरमेशन इंटरचेंज नाम दिया गया।

सबसे पहले इसका प्रयोग आईबीएम ने 1981 में पी.सी. के पहले मॉडल के साथ किया। शीघ्र ही यह कोड पीसी की दुनिया का मानक बन गया। भारत सहित पूरी दुनिया में प्रत्येक अंग्रेज़ी सॉफ़्टवेयर निर्माता इस कोड को अपनाने लगा। यदि वे ऐसा नहीं करते तो कंप्यूटर पर अंग्रेज़ी में भी वही अराजक स्थिति व्याप्त हो जाती जो हिंदी की लंबे समय तक रही। उदाहरण के लिए, यदि एक सॉफ़्टवेयर में 32वाँ स्थान A के लिए निर्धारित किया जाए और दूसरे सॉफ़्टवेयर में B के लिए, तो पहले सॉफ़्टवेयर में तैयार दस्तावेज़ जब दूसरे में खोलेंगे तो वहाँ A के स्थान पर हर जगह B दिखाई देगा और एक अराजक स्थिति व्याप्त हो जाएगी। दुर्भाग्यवश हिंदी को लेकर यह अराजक स्थिति लंबे समय तक चलती रही।

इस अराजकता से बचने के लिए सीडैक ने भारतीय भाषाओं के लिए एक मानक कोड तैयार किया, जिसे इस्की (आई.एस.सी.आई.आई.) अर्थात इंडियन स्टैंडर्ड कोड फॉर इंफ़ॉर्मेशन इंटरचेंज नाम दिया गया। मगर हिंदी सॉफ़्टवेयर निर्माताओं ने अपने व्यावसायिक हितों के चलते इस मानक का प्रयोग नहीं किया और अराजकता बनी रही। एक सॉफ़्टवेयर में तैयार दस्तावेज़ को दूसरे हिंदी सॉफ़्टवेयर युक्त कंप्यूटर पर पढ़ना असंभव होता था। भला हो इंटरनेट की दुनिया का, जिसके कारण पूरे विश्व में विभिन्न भाषाओं में सूचनाओं का आदान-

प्रदान बढ़ा और एक नया अंतरराष्ट्रीय मानक बनकर सामने आया, जिसे आज हम यूनिकोड के नाम से जानते हैं।

इस उद्‌देश्य के लिए एक कंसॉर्टियम बनाया गया, जिसमें सभी देशों की सरकारों के प्रतिनिधि शामिल हैं। भारत का सूचना प्रौद्योगिकी विभाग इस कंसॉर्टियम का सदस्य है। इस कंसॉर्टियम ने सभी देशों की भाषाओं के मानक कोडों को शामिल किया है। यूनिकोड में हिंदी एवं अन्य भाषाओं को भी शामिल किया गया।

यूनिकोड में इतनी सारी भाषाओं की लिपियों के मानक कोडों को शामिल करना इसलिए संभव हो पाया, क्योंकि यूनिकोड के लिए 8 बिट के स्थान पर 16 बिट के कोड का प्रयोग किया जाता है। 8 बिट के कोड में जहाँ केवल 256 संकेत अथवा करेक्टर स्टोर किए जा सकते थे, वहीं 16 बिट के कोड में 65536 संकेत अथवा करेक्टर स्टोर किए जा सकते हैं। विभिन्न संयोजनों के माध्यम से यह संख्या और भी बढ़ाई जा सकती है।

ऑपरेटिंग सिस्टम एवं एप्लिकेशन सॉफ्टवेयर

जो लोग कंप्यूटर की कार्य प्रणाली से अधिक परिचित नहीं हैं, वे अकसर ऑपरेटिंग सिस्टम और एप्लिकेशन सॉफ़्टवेयर में फ़र्क नहीं कर पाते। दरअसल, ऑपरेटिंग सिस्टम हमारी भाषा और कंप्यूटर की मशीनी भाषा के बीच पुल का काम करता है, इसलिए कंप्यूटर पर कोई भी काम करने के लिए उसमें किसी ऑपरेटिंग सिस्टम का होना आवश्यक है। माइक्रोसॉफ्ट का विंडोज़ एक्सपी, लिनक्स का उबंतू, एपल का मैक ओएस इत्यादि इसके उदाहरण हैं। इसके बाद हमें एप्लिकेशन सॉफ़्टवेयर की ज़रूरत पड़ती है, जिस पर हम मन–माफ़िक काम कर सकते हैं, जैसे पत्र तैयार करना, टेबल बनाना, प्रेज़ेंटेशन बनाना इत्यादि। माइक्रोसॉफ़्ट के एम.एस. ऑफ़िस के विभिन्न संस्करण जैसे एम.एस. ऑफ़िस 2003 या ऑफ़िस 2007, ओपन ऑफ़िस के विभिन्न संस्करण इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

यदि हमारा ऑपरेटिंग सिस्टम यूनिकोड समर्थित हो और उस पर हिंदी फॉण्ट सक्रिय किया हुआ हो तो उस पर चलने वाले किसी भी यूनिकोड समर्थित एप्लीकेशन सॉफ़्टवेयर पर हिंदी समर्थन स्वत: ही आ जाता है, इसके लिए हमें किसी अन्य हिंदी सॉफ़्टवेयर की ज़रूरत नहीं होती। माइक्रोसॉफ़्ट ने यूनिकोड आधारित डिफ़ॉल्ट रूप में जो फॉण्ट पेश किया, उसका नाम मंगल है। यद्यपि यूनिकोड आधारित अनेक अन्य फ़ॉण्ट भी उपलब्ध हैं, पर भारत में क्योंकि माइक्रोसॉफ़्ट का बोलबाला है, अत: मंगल फ़ॉण्ट सर्वसुलभ है और इस नाते बहुप्रयुक्त भी। यदि आप यूनिकोड आधारित फ़ॉण्ट का प्रयोग करते हैं, मसलन आप फ़ाइलों के नाम भी हिंदी में दे सकते हैं, इंटरनेट पर हिंदी में सर्च कर सकते हैं इत्यादि।

विंडोज़ ऑपरेटिंग सिस्टम में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं को सक्रिय करने का तरीका :

विंडोज एक्सपी में–

1. स्टार्ट अथवा माई कंप्यूटर में जाकर कंट्रोल पैनल को क्लिक करें।
2. कंट्रोल पैनल में रीजनल ऐंड लैंग्वेज ऑप्शंस को क्लिक करें।
3. रीजनल ऐंड लैंग्वेज ऑप्शंस में लैंग्वेजस टैब पर क्लिक करें।
4. लैंग्वेजस टैब के अंतर्गत इंस्टॉल फाइल्स फॉर क्रॉम्प्लेक्स स्क्रिप्ट ऐंड राइट टू लिफ्ट लेंग्वेजस (इन्क्ल्यूडिंग थाई) को चुनें (अर्थात खाली खाने में कर्सर ले जा कर क्लिक करें)
5. एक डायलॉग बॉक्स खुलेगा, उसके OK पर क्लिक करें एवं रीजनल एंड लैंग्वेज ऑप्शंस के एप्लाई को क्लिक करें। यदि कंप्यूटर पर सीडी डालने का कोई निर्देश न आए तो OK पर क्लिक करें।
6. यदि विंडोज़ की कुछ फाइलें (i386) आपके सिस्टम में उपलब्ध नहीं होंगी तो सिस्टम आपको विंडोज़ एक्सपी के संबंधित संस्करण की सीडी डालने का निर्देश देगा। सीडी ड्राइव में सीडी डालकर OK पर क्लिक करें।
7. सिस्टम रीस्टार्ट करने का निर्देश देगा, यदि आप रीस्टार्ट करते हैं तो कंप्यूटर पुन: खुलने पर पुन: कंट्रोल पैनल में जाकर रीजनल एंड लैंग्वेज ऑप्शंस को क्लिक करें। इसके बाद रीजनल ऑप्शंस टैब पर क्लिक करें और ड्रापडाउन मेन्यू बॉक्स के तीर के निशान पर क्लिक करके सूची में हिंदी अथवा अपनी पसंद की कोई भी भारतीय भाषा चुनकर क्रमश: एप्लाई व ओके पर क्लिक करें।
8. दूसरा तरीका है कि आप कंप्यूटर रीस्टार्ट न करके नो पर क्लिक करें एवं इसके बाद डिटेल्स टैब पर कर्सर ले जाकर क्लिक करें।
9. टेक्स्ट (text) सर्विसेज़ ऐंड इनपुट लैंग्वेज नामक डायलॉग बॉक्स खुलेगा, इसके दाएँ कोने में दिए एड (ADD) बटन पर क्लिक करें।
10. अब एड इनपुट लैंग्वेज नामक डायलॉग बॉक्स खुलेगा, जिसमें इनपुट लैंग्वेज में तीर के निशान पर क्लिक करके भाषाओं की सूची से हिंदी अथवा अपनी मनपसंद भारतीय भाषा चुनें और कीबॉर्ड के अंतर्गत देवनागरी–इंस्क्रिप्ट या हिंदी ट्रेडिशनल चुनकर ओके पर क्लिक करें।
11. अब कंप्यूटर को रीस्टार्ट करें। दुबारा खुलने पर अपनी पसंद का एप्लीकेशन खोलें, जैसे एमएस वर्ड। विंडोज़ डेस्कटॉप की स्टेटस बार के एक कोने में EN दिखाई देगा। उस पर कर्सर ले जाकर क्लिक करें तो EN English और Hi Hindi

के विकल्प दिखाई देंगे। हिंदी को चुनें। अब आप हिंदी में टाइप करना शुरू कर सकते हैं।

विंडोज 7 में–

1. स्टार्ट मेन्यू में जाकर कंट्रोल पैनल को क्लिक करें।
2. कंट्रोल पैनल में क्लिक, लैंग्वेज एंड रीजन के अंतर्गत चेंज कीबॉर्ड ऐंड लैंग्वेज ऑप्शंस मैथड को क्लिक करें।
3. चेंज कीबॉर्ड और अदर इनपुट मैथड्स के अंतर्गत चेंज कीबॉर्ड लैंग्वेजस ऑप्शन को क्लिक करें।
4. कीबॉर्ड ऐंड लैंग्वेज ऑप्शंस के अंतर्गत बोर्ड्स पर क्लिक करें।
5. अब टेक्स्ट सर्विसेज़ एंड इनपुट लैंग्वेजज़ नाम की विंडोज़ खुलेगी, इसकी जनरल टैब के अंतर्गत एड (ADD) बटन पर क्लिक करें।
6. यहाँ से हिंदी अथवा अपनी मनपसंद भाषा एवं उससे संबंधित कीबॉर्ड को चुनें।
7. क्रमश: एप्लाई और ओके बटनों पर क्लिक करें।
8. यदि कंप्यूटर रीस्टार्ट करने का निर्देश दे तो कंप्यूटर को रीस्टार्ट करें।

अब आप अपने कंप्यूटर पर हिंदी में काम कर सकते हैं। आपको बस इतना करना है कि अपनी मनपसंद एप्लीकेशन खोलने के बाद स्टेटस बार या टास्कबार के एक कोने में दिखाई दे रहे EN पर क्लिक करके हिंदी (HI) को चुन ले।

मगर समस्या यहाँ समाप्त नहीं होती। असली समस्या तो अब शुरू होती है, वह है—

हिंदी में टाइप कैसे करें

हिंदी में टाइप करने की पद्धतियों के तीन विकल्प उपलब्ध हैं :

एक है पुराने रैमिंग्टन टाइपराइटर की पद्धति। इसे सीखना न केवल श्रमसाध्य व मुश्किल है अपितु अपनी संरचना व प्रक्रिया के कई मामलों में यह जटिल व अवैज्ञानिक भी है। इसलिए जो लोग इस पद्धति से टाइप करना नहीं जानते, उनके लिए यही अच्छा है कि वे यह कीबॉर्ड सीखने की कोशिश न करें।

दूसरा तरीका है अंग्रेज़ी फोनेटिक्स का। इस पद्धति में हिंदी शब्दों को रोमन स्क्रिप्ट में हिंदी उच्चारण के अनुरूप टाइप करना होता है और अपनी कृत्रिम मेधा (Artificial Intelligence) से कंप्यूटर उन शब्दों को देवनागरी में तबदील कर देता है। उदाहरण के लिए, हमें टाइप करना है, '**लिखना**' तो हम टाइप करेंगे 'Likhnaa' और स्क्रीन पर कंप्यूटर इसे लिखना के रूप में प्रदर्शित कर देगा। यह देखने-सुनने में जितना आसान लगता है, उतना है नहीं। टाइप करते समय इसमें कई व्यावहारिक दिक्कतें आती हैं। उदाहरण के लिए, यदि आपको '**ट**' टाइप करना है तो 'T' टाइप करेंगे, फिर '**त**' किससे टाइप करेंगे? यदि आपको '**थ**' टाइप करना है तो 'Th' से करेंगे, फिर '**ठ**' किससे टाइप करेंगे। '**ड**' के लिए 'D' टाइप करेंगे तो '**द**' किससे टाइप करेंगे, '**ध**' के लिए 'dh' लिखेंगे तो '**ढ**' के लिए क्या लिखेंगे, '**ण**' के लिए क्या टाइप करेंगे, चंद्र बिंदु व अनुस्वार के लिए क्या टाइप करेंगे, '**व**' 'W' से टाइप करेंगे या 'V' से। इत्यादि अनेक दिक्कतें हैं। इंटरनेट पर इसका भी समाधान उपलब्ध है। उस विकल्प को डाउनलोड करने के उपरांत जैसे ही आप कुछ गलत टाइप करेंगे, तुरंत कुछ विकल्प सामने आ जाएँगे, जिससे आप सही विकल्प चुन सकें। मगर इससे गति बाधित होती है और हर हालत में अंग्रेज़ी पर निर्भरता बनी रहती है। यह विकल्प उनके लिए तो ठीक है, जिन्हें दिन भर में कुछ गिने-चुने शब्द ही टाइप करने हैं या दिन भर में एकाध पृष्ठ, मगर जिन्हें अधिक मात्रा में टाइप करना हो, उनके लिए यह पद्धति कोई बहुत अच्छा विकल्प नहीं है।

तीसरा है, कंप्यूटर पर टाइप करने का सबसे अच्छा विकल्प है इंस्क्रिप्ट कीबॉर्ड के माध्यम से टाइप करना। इंस्क्रिप्ट कीबॉर्ड न केवल भारत सरकार का मानक है अपितु एक वैज्ञानिक कीबॉर्ड है, जिससे बहुत जल्दी सीखा जा सकता है और आसानी से इस माध्यम से द्रुत गति से टाइप किया जा सकता है। यही नहीं, इस एक कीबॉर्ड को सीखकर किसी भी भारतीय भाषा में बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के टाइप किया जा सकता है। यही कारण है कि माइक्रोसॉफ्ट व गूगल इत्यादि कंपनियों ने अपने यूनिकोड आधारित फॉण्ट के साथ डिफॉल्ट रूप में केवल इंस्क्रिप्ट कीबॉर्ड लेआउट को ही शामिल किया है।

जिन्हें रेमिंग्टन अथवा अंग्रेज़ी फोनेटिक में देवनागरी लिपि में टाइप करना हो, वे www.bhashaindia.com पर जाएँ और डाउनलोड पर क्लिक करें। जिनके कंप्यूटर में विंडोज़ एक्सपी है, वे इंडीक इनपुट-1 से हिंदी या अपनी पसंद की भारतीय भाषा के डाउनलोड पर क्लिक करें। जिनके कंप्यूटर में विंडोज़ विस्टा या विंडोज़ 7 है, वे इंडिक इनपुट-2 के 32 बिट वाले कॉलम से हिंदी या वांछित भारतीय भाषा के डाउनलोड पर क्लिक करें एवं आगे वाले निर्देशों का पालन करें। आपके कंप्यूटर पर सभी इनपुट टूल्स इंस्टॉल हो जाएँगे। कंप्यूटर स्क्रीन के टास्क बार में जहाँ टाइपराइटर का चिह्न बना हो, वहाँ क्लिक करके वांछित इनपुट टूल चुनें और हिंदी या किसी अन्य भारतीय भाषा में टाइप करना आरंभ करें।

साभार : 'अर्जन' अप्रैल-दिसंबर 2011 अंक

दि न्यू इंडिया इंश्योरंस कं.लि.
दि न्यू इंडिया इंश्योरंस बिल्डिंग,
87, महात्मा गांधी मार्ग, फोर्ट,
मुंबई-400001
भारत

□

22

हिंदी भाषा शिक्षण में मल्टीमीडिया की भूमिका

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

शिक्षा : एम.ए., एम.लिट., पी-एच.डी.।

विशेषज्ञता : भाषाविज्ञान, अनुवाद सिद्धांत व अनुप्रयोग, शैलीविज्ञान, कोशकारिता, भाषा प्रौद्योगिकी, समाजभाषाविज्ञान, आधिकारिक हिंदी-राजभाषा, भाषा शिक्षण, हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य।

प्रकाशन : Pedagogical Grammar (1981), Poetics (1971), प्रयोजनमूलक भाषा और कार्यालयी हिंदी (1992 & 1995), व्यावहारिक हिंदी और रचना (1992), Sociolinguistics (Code Switching) (1994), Stylistics and Language of Acharya ramchandra Shukla (1996), अनुप्रायोगिक हिंदी (2001), हिंदी के विविध रूप और अनुवाद (2005), आधुनिक हिंदी : विविध आयाम (2007), अनुवाद विज्ञान की भूमिका (2008), हिंदी का भाषिक और सामाजिक परिदृश्य (2009) तथा अनेक पुस्तकों का संपादन, सह-संपादन किया है। कई कोशों का संकल-संपादन भी किया है। विभिन्न अनुवाद कार्य भी किए हैं।

सम्मान : विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के विकास के लिए मानस संगम, कानपुर द्वारा सम्मानित, दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के प्रचार व विकास के लिए आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी द्वारा सम्मानित, अमेरिकन बायोग्राफिकल इंस्टीट्यूट द्वारा 'मेन ऑफ द यर 1997' सम्मान, सेंट्रल वर्ल्ड हिंदी कॉन्वेंशन; फीजी हिंदी साहित्य समिति, सुवा; हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद इत्यादि संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

संप्रति : प्रोफेसर व सलाहकार, सीडैक [Centre for development of Advanced Computing (C-DAC)], नोएडा

भाषा शिक्षण का संबंध भाषा के साथ ही जुड़ा है, किंतु इसमें मानव मन और मानव व्यवहार की भी अपेक्षा रहती है। वास्तव में मनुष्य भाषा सीखता और सिखाता है, किंतु सीखने-सिखाने की इस प्रक्रिया में भाषेतर विषयों का भी प्रशिक्षण होता है और इसमें अन्य उपकरणों की सहायता ली जाती है। दूसरी बात, भाषा किसी-न-किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के लिए सीखी-सिखाई जाती है। जब तक भाषा शिक्षण के उद्देश्य और प्रयोजन निर्धारित नहीं होते, उसकी सार्थकता और संप्राप्ति को आँका नहीं जा सकता। भाषा शिक्षण की अपनी सिद्धि निर्धारित प्रयोजन की सिद्धि है, जो शिक्षार्थी सापेक्ष होती है। हिंदी भाषा शिक्षण के संदर्भ में देखा जाए तो उसके एक ओर एक ऐसा भाषा-भाषी समुदाय है, जिसे न तो हिंदी भाषा का ज्ञान है और न ही व्यक्तिपरक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जानना आवश्यक समझता है और दूसरी ओर एक समुदाय है, जो न केवल हिंदी का सामान्य ज्ञान रखता है बल्कि उसके मानक रूप से भी परिचित है। भाषा शिक्षण का संबंध मातृभाषा और अन्य भाषा शिक्षण दोनों से है। इन दोनों के संदर्भ में हिंदी शिक्षण की प्रकृति और प्रणाली शिक्षार्थी की आवश्यकता, प्रयोजन और अभिप्रेरणा के कारण अलग-अलग हो जाती है। वस्तुत: मातृभाषा एक सामाजिक यथार्थ है, जो व्यक्ति को अपने भाषाई समाज के व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़ती है और उसकी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण करती है। इसी के आधार पर व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति के साथ जुड़ा रहता है। इसी से उसके बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसकी संवेदनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उसकी बौद्धिक चेतना में वृद्धि करने के लिए मातृभाषा के पढ़ने और लिखने के कौशल सिखाए जाते हैं और वह साक्षर हो कर अपने रोज़मर्रा के कार्य सुचारू रूप से करने में सक्षम होता है।

अन्य भाषा शिक्षण से अभिप्राय द्वितीय भाषा शिक्षण से है और विदेशी भाषा शिक्षण दोनों से है। वास्तव में मातृभाषा से अलग भाषा द्वितीय भाषा मानी जाती है, जो अधिकतर सामाजिक दृष्टि से प्रकार्यात्मक अथवा व्यावहारिक कारणों से सीखी जाती है क्योंकि अपने देश के नागरिक के रूप में वक्ता इसके प्रत्यक्ष मूल्यों से जुड़ा रहता है। कुछ देशों में अपनी भौगोलिक सीमा के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय जीवन के कुशल संचालन के लिए एक से अधिक भाषाएँ समायोजित होती हैं। इसी कारण द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा में अंतर रखा गया। विदेशी भाषा के प्रति प्रशिक्षार्थी का रुख अपेक्षाकृत निष्क्रिय और संग्राहक होता है जबकि द्वितीय भाषा में वह प्राय: सक्रिय और

सर्जनात्मक होता है। द्वितीय भाषा देश की भौगोलिक सीमा के अंतर्गत और संस्कृति एवं परंपरा के संदर्भ में परिभाषित होती है, जबकि विदेशी भाषा देश की भौगोलिक सीमा तथा संस्कृति एवं परंपरा दोनों संदर्भों से अलग मानी जाती है। विदेशी भाषा का शिक्षण अन्य देश की संस्कृति को जानने अथवा ग्रहण करने के प्रयोजन से होता है, जबकि द्वितीय भाषा का शिक्षण अपने देश की संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए विकल्प के प्रयोजन से होता है। इस दृष्टि से यह विचारणीय है कि भारत में हिंदी–भाषी क्षेत्र के संदर्भ में उर्दू शिक्षण न तो प्रथम भाषा के रूप में होगा और न ही द्वितीय भाषा के रूप में। यह सहमातृ भाषा अथवा प्रथम भाषा का कार्य करेगी, क्योंकि बोली से हिंदी में जो भाषाई परिवर्तन होगा, वह उस प्रकार का होगा जिस प्रकार एक भाषा–भाषी अनौपचारिक शैली से औपचारिक शैली में बात करने लगता है। यह प्रथम भाषा शिक्षण का विस्तारण होगा? वास्तव में बच्चा स्कूल में बोली के स्थान पर भाषा को अपनाता है। यहीं आकर उसकी साहित्यिक परंपरा और सामाजिक अस्मिता की बात उठती है। यहाँ हिंदी या उर्दू 'सहमातृ भाषा' के रूप में उभारती है। नेपाली भाषा भारत के सिक्किम राज्य और पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग क्षेत्र में प्रमुख रूप से बोली जाती है और नेपाल की यह मातृभाषा तथा राजभाषा के रूप में व्यवहृत है। भारत की सीमा से बाहर होते हुए भी यह हिंदी भाषा के संदर्भ में द्वितीय भाषा है, क्योंकि हिंदी संस्कृति और परंपरा तथा नेपाली संस्कृति और परंपरा में काफ़ी समानता पाई जाती है। इसी परिप्रेक्ष्य में भारत में अंग्रेज़ी विदेशी भाषा के साथ–साथ द्वितीय भाषा का कार्य भी कर रही है। भारतीय सीमा और संस्कृति परंपरा से अलगाव के संदर्भ में यह वस्तुत: विदेशी भाषा है, किंतु प्रकार्यात्मक दृष्टि से यह द्वितीय भाषा की भूमिका निभा रही है। भारत में इसका अधिकतर प्रयोग शिक्षा और प्रशासन के क्षेत्रों में होता है। भारतीय जीवन, परंपरा तथा अभिव्यक्तियों से थोड़ा–बहुत जुड़ जाने के कारण यह 'इंडियन इंग्लिश' के रूप में उभर रही है। अंग्रेज़ी प्रकार्यात्मक उपयोगिता के कारण पूर्वांचल की खासी, गारो, मणिपुरी, मिजो आदि भाषाओं की भाँति द्वितीय भाषा के अधिक निकट जा पड़ती है, क्योंकि पूर्वांचल की भाषाएँ भी मुख्य धारा के अंतर्गत न आ पाने के बावजूद भारत की भाषाएँ हैं।

अन्य भाषा शिक्षण में बोधन (श्रवण), पठन, लेखन और भाषण चार कौशलों के शिक्षण की प्रक्रिया चलती है, जबकि मातृभाषा शिक्षण अथवा (प्रथम भाषा शिक्षण) में पठन और लेखन दो कौशलों का शिक्षण होता है। इस आधार पर भी मातृभाषा शिक्षण, द्वितीय भाषा शिक्षण और विदेशी भाषा शिक्षण में भिन्नता मिलती है। इन तीनों के परिप्रेक्ष्य में इन कौशलों के अध्ययन के लिए अलग–अलग विधियाँ और प्रविधियाँ भी हैं। इसलिए भाषा शिक्षण कार्यक्रम के संदर्भ में भाषिक लक्ष्यों को ध्यान में रखना होगा और विशेष भाषा वर्ग के लिए शिक्षण की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा। निम्नलिखित सारणी से शिक्षण स्थिति का विवेचन किया जा सकता है—

शिक्षण की स्थितियाँ

शिक्षण संदर्भ	प्रथम भाषा	द्वितीय भाषा	विदेशी भाषा
पूर्व ज्ञान	(1) भाषिक क्षमता (2) संप्रत्यय निर्माण (3) प्रारंभिक स्तर पर सांस्कृतिक विशिष्टताएँ	(1) कुछ वर्गों में कुछ सीमा तक संग्रहण क्षमता (2) प्रगत संप्रत्यय निर्माण (3) क्षेत्रीय शब्दावली (यदि कोई है) (4) एकसमान सांस्कृतिक विशिष्टताएँ (5) लेखन पद्धति और समान वर्ग	अंतर्निहित अधिगम प्रक्रिया और कुछ मामलों में संप्रत्ययीकरण की क्षमता
सिखाए जाने वाले कौशल	(1) लेखन पद्धति (2) संरचनाओं का विस्तार (3) संस्कृति–संक्रमणीकरण तथा प्रयोजनपरक शब्दावली	(1) संरचना (2) लेखन पद्धति (3) सांस्कृतिक स्थिति और शब्दावली का संवर्धन	(1) संरचना (2) लेखन पद्धति (3) सांस्कृतिक स्थितियाँ (4) शब्दावली और प्रयोग

		(4) ध्वनि-प्रक्रिया, व्याकरणिक संरचना, शब्दावली आदि के व्यतिरेक बिंदु (5) हाव-भाव और भाव-भंगिमाओं से अभिव्यक्ति आदि (6) मातृभाषा के प्रभाव से और अन्य किसी दोषपूर्ण अधिगम प्रक्रिया से त्रुटियाँ (यदि कोई हों)।	(5) उन क्षेत्रों में मातृभाषा के कारण त्रुटियाँ, जहाँ भाषाओं के बीच भाषा व्यवस्था में कोई अंतर हो।

इस प्रकार मातृभाषा, प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा की संकल्पना को समझे बिना हिंदी भाषा शिक्षण की प्रक्रिया और प्रणाली को स्पष्ट करना संभव नहीं है।

अब हम हिंदी शिक्षण के संदर्भ में चर्चा करते हैं और देखते हैं कि अन्य भाषा के रूप में हिंदी के सीखने-सिखाने की परंपरा काफ़ी पुरानी रही है। तेरहवीं शताब्दी से ही विदेशियों ने इसे सीखा और अपने सैनिक अभियानों तथा राज्य-विस्तार की गतिविधियों में इसे छोटे से भूभाग की बोली के संदर्भ से ऊपर उठाकर अंतरक्षेत्रीय भाषा बना दिया, जिससे इसके क्षेत्रीय अंचल के बोलीपन की विशेषताएँ लुप्त हो गईं। इसी क्रम में इसने अपनी सहबोलियों के साथ-साथ अन्य भाषाओं के तत्व भी गृहीत किए और यह सामान्यत: क्षेत्र-निरपेक्ष हो गई।

हिंदी की जनपदीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भूमिकाओं में वृद्धि हुई है, किंतु हिंदी भाषी क्षेत्र में हिंदी शिक्षण के लिए एक बहुत बड़ी समस्या शिक्षा में अंग्रेज़ी के विशिष्ट स्थान के कारण है। सरकारी कामकाज में हिंदी की औपचारिक स्थिति के बावजूद उच्च कार्यों में अंग्रेज़ी को अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक दर्जा मिला हुआ है और इसी कारण उच्च शिक्षा में हिंदी से उसकी प्रतिष्ठा अधिक है। हिंदी शिक्षण पर इसका प्रभाव पड़ता है। अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के शिक्षण की समस्याएँ विश्व के विभिन्न देशों में एक समान नहीं है, क्योंकि हर देश की भाषाई संरचना और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में विविधता पाई जाती है। एशिया में चीनी, जापानी, कोरियाई आदि भाषाएँ अपनी अलग संरचनाएँ लिये हुए हैं। यूरोप में अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन, बल्गेरियाई, हंगेरियाई, पोलिश, रूसी आदि भाषाएँ आती हैं। इसी के अंतर्गत अमेरिकी अंग्रेज़ी भी ली जा सकती है। खाड़ी देशों में अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं का प्रयोग होता है। ये सभी विजातीय भाषाएँ हैं, जिनका संबंध हिंदी से बहुत दूर जा पड़ता है।

इन सभी महाद्वीपों के भाषा-भाषियों को हिंदी पढ़ाने में भी अलग-अलग कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए हिंदी शिक्षण के स्वरूप, उसकी शिक्षण सामग्री, रीति और प्रविधि आदि का निर्धारण सजातीय और विजातीय भाषाओं के साथ हिंदी के परस्पर संबंध के आधार पर किया जाएगा, क्योंकि विदेशी भाषा शिक्षण की समस्या शिक्षार्थी की भाषा पर निर्भर करती है। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी-शिक्षण के लक्ष्यों और उद्देश्यों के साथ-साथ इसके शिक्षार्थी हैं। इस संदर्भ में शिक्षण के स्वरूप, उसकी सामग्री, प्रविधि और तकनीक निर्धारित करने में विचार करना होगा, ताकि भाषा और उसकी शिक्षण-सामग्री प्रयोजनमूलक हो सके और हिंदी अपने जनपदीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ को विकसित कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति साहित्य-शिक्षण से ही हो सकती है और साहित्य-शिक्षण की सामग्री के चयन में सतर्कता बरतनी होगी। इससे हिंदी के उच्च अध्ययन के लिए शिक्षार्थियों को प्रवृत्त किया जा सकता है। हिंदी शिक्षण का अंतिम लक्ष्य यही होगा कि वह अन्य भाषा के रूप में द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा का स्थान ले सके। वास्तव में, विदेशियों के लिए हिंदी प्राय: अपरिचित और कठिन होती है। मगर विचित्र संयोग है कि अन्य भाषा के रूप में हिंदी का प्रथम परिचय विदेशियों को हुआ था। आधुनिक काल में भी यूरोपीय विदेशियों ने उसे देश की सामान्य अंतर क्षेत्रीय भाषा के रूप में पहचाना था। उन्होंने ही सबसे पहले उसके वैज्ञानिक अध्ययन की परंपरा डाली, जिसके फलस्वरूप उसके विश्लेषण हुए, व्याकरण लिखे गए और वह औपचारिक शिक्षण के रूप में विकसित हुई। फिर भी विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण में अनेक कठिनाइयाँ हैं, क्योंकि विदेशी भाषा के शिक्षण में लक्ष्य भाषा से स्रोत भाषा के भाषिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक संबंधों से शिक्षण प्रविधि तथा तकनीक में अंतर आ जाना स्वाभाविक है। विदेशी भाषा

के शिक्षण का लक्ष्य सामान्यतः सीमित होता है। इसके साथ ही इसके पाठ्यचर्चा, पाठ्यक्रम निर्माण और तदनुरूप शिक्षण की नीति, विधि-प्रविधि निर्धारित करने की भी आवश्यकता रहती है। विदेश में लगभग 150 विश्वविद्यालयों और शैक्षिक संस्थाओं में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन होता है।

हिंदी अध्ययन-अध्यापन को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक, सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा के रूप में जो फीजी, गुयाना, मॉरीशस, सूरीनाम, टोबेगो, त्रिनिदाद आदि देशों में भारतीय मूल के विदेशियों अथवा प्रवासियों के लिए सिखाई जाती है और दूसरा, प्रयोजनपरक भाषा के रूप में यूरोप, अमेरिका आदि महाद्वीपों में रोज़गार, पर्यटन अनुसंधान आदि के प्रयोजनों के लिए सिखाई जाती है। सामान्य रूप से प्रथम भाषा शिक्षण के पीछे और उससे भी अधिक अन्य भाषा शिक्षण के पीछे भाषा की पूरी पृष्ठभूमि होती है। हर भाषा-भाषी को अपनी भाषा की जानकारी चेतन-अवचेतन दोनों रूपों में होता है, किंतु भाषा शिक्षण की पृष्ठभूमि तभी बनती है जब उसका संपूर्ण विश्लेषण, उसके नियमों और उसकी सूक्ष्मताओं, शब्द नियोजन और वाक्य-विन्यास प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हों और उसका विवेचन हुआ हो।

भाषाविज्ञान का अनुप्रयोग भाषा शिक्षण है, जिससे भाषा के बारे में वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ अंतर्दृष्टि प्राप्त होती हैं। यह अंतर्दृष्टि भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और शिक्षा सिद्धांतों की सहायता से अर्जित की जा सकती है। समाज में भाषा में अनेक प्रकार की विविधता मिलती है, बहुत से स्तर-भेद, वर्ग-भेद और संस्कार-भेद पाए जाते हैं। इन बातों को ध्यान में रखकर भाषाविज्ञान भाषा का विवेचन करता है।

भाषा शिक्षण के संदर्भ में दृश्य-श्रव्य सामग्री का आज विशेष महत्व है। ब्लैक बोर्ड, चार्ट, फ्लैश कार्ड, स्लाइड आदि कई उपकरण प्रयुक्त होते हैं, किंतु भाषा शिक्षण में भाषा-प्रयोगशाला की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इसीलिए कई उपकरणों का विकास हुआ है। आज सूचना प्रौद्योगिकी के विकास से भाषा शिक्षण अधिक प्रभावशाली हो रहा है। आज सूचना प्रौद्योगिकी की उपयोगिता समझी जा रही है। भाषा के चारों कौशलों के प्रभावी शिक्षण में आज कंप्यूटर, इंटरनेट, वेबसाइट, वीडियो आदि मल्टीमीडिया की उपयोगिता काफ़ी बढ़ गई है। इसमें जो उच्चारण-शिक्षण, शब्द-रचना शिक्षण, व्याकरण-शिक्षण, वाक्य-निर्माण शिक्षण होता है, उसमें मल्टीमिडिया अपनी विशेष भूमिका निभाता है। मल्टीमीडिया के उपकरणों के विकास में तीन मुख्य आयामों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये आयाम निम्नलिखित हैं—

1. **अंतर्वस्तु सृजन (Content Creation)**—इसमें अन्य भाषा शिक्षण में अध्यापन-सामग्री या विषयवस्तु का चयन किया जाता है कि शिक्षार्थी को कौन सी पाठ्य-सामग्री पढ़ाई जानी है।
2. **प्रभावी साधन (Effects of means)**—इसमें उन साधनों का अध्ययन किया जाता है, जिसके माध्यम से अध्यापक को संप्रेषण करना होता है। इसी में यह भी देखा जाता है कि भाषा शिक्षण में पाठ, भाषण (ध्वनि प्रक्रिया) और आरेख की क्या-क्या भूमिका रहती है।
3. **मल्टीमीडिया उपकरणों का प्रयोग (Technical Multi-media tools)**—कौन से ऐसे मल्टीमीडिया उपकरण हैं, जिनकी सहायता से मल्टीमीडिया उपकरणों का प्रयोग किया जा सकता है। इनके मुख्य रूप से पावर-प्वांइट, फ्लैश और डायरेक्टर तीन उपकरण हैं, जो बहुत ही उपयोगी हैं। (क) पावर-प्वाइंट (Power point) भाषा के व्याकरणिक रूपों के शिक्षण में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। (ख) फ्लैश (Flash) से ध्वनि, चित्र और आरेखन के समक्रमणीकरण (Synchronization) होता है। इससे भाषा की ध्वनि-प्रक्रिया अर्थात उच्चारण के प्रभावी शिक्षण में काफ़ी सहायता मिलती है। (ग) डायरेक्टर (Director) एक गत्यात्मक उपकरण है, जिसमें प्राणीकरण (एनीमेशन), मूवी, वीडियो, ऑडियो आदि का प्रयोग होता है। इस में कविता, नाटक, कथात्मक साहित्य और भाषा के अनुतानपरक रूपों का शिक्षण करने में सहायता मिलती है। अंतर्वस्तु के प्रवाह में ध्वनि, पाठ, आरेख और वास्तविक विषयवस्तु का एक संकलन होगा, जो मूवी या वीडियो के साथ जुड़ा होगा और उससे पाठ पढ़ने में एकाग्रता बढ़ती है।

इन उपकरणों के लिए माड्यूल बनाए जाते हैं, जिनमें फाइलों के एक सेट का विकास किया जाता है। इन फाइलों में विभिन्न विषयों की एक श्रृंखला होगी, जो विभिन्न पाठ्य-बिंदुओं के आधार पर बनाई जाएगी।

अध्यापन सामग्री को पाँच पैरामीटरों में प्रस्तुत किया जाएगा—

1. **अनुस्तरण (Gradation)**—इसमें जो पाठ पढ़ाए जाएँगे, उनके स्तर के आधार पर पाठों का निर्माण होगा। इसमें पाठ को सरल से कठिन और मूर्त से अमूर्त अंशों के आधार पर पाठों का संयोजन होगा।
2. **ग्राहक अनुप्रयोग (Clientate)**—शिक्षार्थी के स्तर और उसकी आवश्यकता के अनुसार कैसे शिक्षण कराया जाए, इसी संदर्भ में पाठों का निर्माण किया जाएगा।
3. **अवधि (Duration)**—इसमें पाठयक्रम की अवधि के आधार पर अथवा शिक्षार्थी की आवश्यकता पर आधारित

अवधि के अनुसार पाठ्य-सामग्री का निर्माण होगा।

4. **शिक्षण तकनीक (Teaching Techniques)**—इसमें शिक्षण कैसे कराया जाए, इस बात की ओर ध्यान दिया जाएगा।

5. **वातावरण (Environment)**—इसमें कुंजीपटल, ध्वनि-संचालन, स्क्रीन, पृष्ठभूमि आदि पर ध्यान दिया जाएगा, क्योंकि जीवित वस्तुएँ जीवित वस्तुओं पर विश्वास करती हैं, न कि मृत वस्तुओं पर। पुस्तक पाठन में सरसता कम होती है।

इसके अतिरिक्त पाठों के परिचालन के लिए पाठ खनन की (Text Mining) आवश्यकता है, जिसमें डाटा का विश्लेषण होता है और उससे निष्कर्ष की ओर जाना होता है। भाषा शिक्षण के लिए पाठ खनन से सशक्त सर्च इंजिन की प्रायः आवश्यकता पड़ती है। विशिष्ट कार्यक्षेत्र (डोमेन) अर्थात् नियम आधारित अथवा ज्ञान आधारित सर्च इंजिन का निर्माण होगा और तदनुसार शिक्षण माड्यूलों का विकास होगा।

इस समय भाषा शिक्षण संबंधी जो सॉफ्टवेयर विकसित हुए हैं, वे नगण्य हैं और वे भाषा शिक्षण की माँग की पूर्ति नहीं कर पा रहे। यही उचित समय है कि मल्टीमीडिया आधारित ऐसी सामग्री का विकास किया जाए, जो भाषा शिक्षण में प्रभावी, सफल और स्थायी सिद्ध हो सके। इसी संदर्भ में भाषा शिक्षण की दिशा में राजभाषा के सहयोग से सी-डैक पुणे ने हिंदी प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ पाठ्यक्रमों के लिए 'लीला' सॉफ्टवेयरों (Learn Indian Language Through Artificial Intelligence) का निर्माण किया है। पाठ में आए वाक्यों, शब्दों, वर्णों के मानक उच्चारण का सुनना और उनका अभ्यास करना सिखाया जाता है। देवनागरी के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं को सीखने की सुविधा भी उपलब्ध है। यह सॉफ्टवेयर द्वितीय भाषा शिक्षण के लिए थोड़ा-बहुत उपयोगी हो सकता है, किंतु विदेशी भाषा शिक्षण में इसकी भूमिका संदिग्ध ही है।

हिंदी शिक्षण की दृष्टि से मैजिक सॉफ्टवेयर प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली द्वारा निर्मित मल्टीमीडिया सी-डी-रोम 'गुरु' भी महत्वपूर्ण है। 'गुरु' जीवंत और वास्तविक जीवन स्थितियों को लेकर मार्गदर्शन करता है। इसमें संवादात्मक माध्यम से विदेशी संकल्पनाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इसमें देवनागरी लिपि का शिक्षण और अभ्यास कराया गया है। इसमें व्याकरण, कोश, चित्रकोश, लोककथा, सचित्र विश्वकोश, वर्ग-पहेली, शिशु गीत आदि से हिंदी शिक्षण कराने का एक अच्छा प्रयास है। इसी संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि आमीन इंफोटैक दिल्ली द्वारा विकसित 'स्टैंडर्ड फॉर हिंदी-उर्दू रिप्रेसेंटेशन' (शूर) में देवनागरी लिपि से अरबी फारसी लिपि अर्थात् उर्दू की नास्तालिक लिपि और उसे देवनागरी में पुनः परिवर्तित करने की व्यवस्था है। इसके विकास में सैयद मोहम्मद अहमद के साथ आर.एम.के. सिन्हा, कृष्ण कुमार गोस्वामी और वी.एन. शुक्ल का भी योगदान है। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय इस ओर सार्थक प्रयास कर रहा है। इस प्रकार अन्य भाषा शिक्षण में मल्टीमीडिया की भूमिका काफ़ी कारगर और उपयोगी है।

आज हिंदी शिक्षण के विकास के लिए शिक्षा नियोजकों, शिक्षाविदों, भाषा-विज्ञानियों, समाजशास्त्रियों, भाषा-प्रशिक्षकों, मनोविज्ञानियों, कंप्यूटर-विज्ञानियों आदि को एक साथ जुटकर कार्य करना होगा। शिक्षण सामग्री का अनवरत निर्माण तथा संशोधन करना होगा। शिक्षकों के नए-नए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आधुनिक आयाम देना होगा, तभी हिंदी अपनी जनपदीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भूमिका निभाने में समर्थ होगी।

1764, औट्रम लाइंस,
डॉ. मुखर्जी नगर (किंग्जवे कैंप),
दिल्ली-110009
kkgoswami1942@gmail.com

महान व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनंद देनेवाली, उत्कृष्ट पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं।

— योगवासिष्ठ

23

सूचना प्रौद्योगिकी और कोशकारिता...
मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि : भाषा

अरविंद कुमार

जन्म : 17 जनवरी, 1930

चौरासी-वर्षीय अरविंद कुमार ने 1996 में समांतर कोश के प्रकाशन से हिंदी ही नहीं पूरे भारत को आधुनिक थिसारसों से परिचित कराया।

प्रकाशन : उन के कुछ अन्य कोश हैं : देवीदेवताओं के नामों का थिसारस शब्देश्वरी, अकारादि क्रम से आयोजित पहला भारतीय थिसारस अरविंद सहज समांतर कोश, तीन खंडोंवाला और संसार का विशालतम द्विभाषी द पेंगुइन इंग्लिश-हिंदी/हिंदी-इंग्लिश थिसारस ऐंड डिक्शनरी और अब समांतर कोश का परिवर्धित परिष्कृत संस्करण बृहत् समांतर कोश। इंटरनैट पर उपलब्ध द्विभाषी शब्दकोश और थिसारस अरविंद लैक्सिकन।

ये सभी कोश उन के ग्यारह लाख अभिव्यक्तियों के द्विभाषी डाटा बेस में से संकलित हैं। इस डाटा में संसार की सभी भाषाओं को समाने की क्षमता है।

भाषा के आविष्कार को हम संप्रेषण के क्षेत्र में और सूचना प्रौद्योगिकी की ओर मानव का पहला तथा क्रांतिकारी चरण कह सकते हैं। भाषा न होती तो मनुष्य आज भी प्रस्तर युग में रह रहा होता। निस्संदेह शब्दों से बनी भाषा मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है, प्रगति का साधन और ज्ञान-विज्ञान का भंडार है। भाषा एक निरंतर विकासशील और परिवर्तनशील प्रक्रिया है। भाषा ने ही मनुष्य को गूढ़ विचार की क्षमता प्रदान की।

संसार के पहले कोश निघंटु और निरुक्त

भारत को और संस्कृत भाषा को संसार के सब से पहले दार्शनिक ग्रंथ वेदों का रचयिता होने का गौरव प्राप्त हुआ। आरंभ में वेद मौखिक थे। वेदों के एक एक शब्द का सही उच्चारण और हर शब्द का सही अर्थ पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखने के लिए एक नितांत अनोखी प्रणाली विकसित की गई—समाज का एक पूरा वर्ग इस महा उद्यम के लिए मनोनीत कर दिया गया! इस वर्ग को सूचना प्रौद्योगिकी की पहली जैव मशीन और 'स्मृति चिप' कहना अनुचित न होगा।

तभी से शब्दों के संकलन और कोश निर्माण की आवश्यकता का महत्व सर्वमान्य हो गया था। संसार के पहले कोश निघंटु की रचना वैदिक काल में ही हुई। इस में अठारह सौ वैदिक शब्दों को विषय क्रम से संकलित किया गया था। इस की रचना का श्रेय प्रजापति कश्यप को दिया जाता है। महर्षि यास्क ने निरुक्त में वैदिक शब्दों की विशद व्याख्या की। यह संसार का पहला शब्दार्थ कोश और तत्कालीन समाज का विश्वकोश यानी, एनसाइक्लोपीडिया है।

लिपि का अन्वेषण

लिपि का अन्वेषण भाषाओं के विकास का युगांतरकारी चरण था। मिस्री जन और धर्म लिपियाँ तथा चीन और जापान की चित्र लिपियाँ प्रतीकों पर आधारित थीं। यूरोप और मध्य एशिया की ग्रीक, सिरिलिक, रोमन और हिब्रू लिपियाँ अक्षरों पर आधारित थीं। उनकी ही तरह की अक्षर लिपि खरोष्ठी का प्रादुर्भाव गांधार में हुआ। यह दाहिने से बाएँ लिखी जाती थी। अरबी, फ़ारसी और उर्दू लिपियाँ इसी लिपि परिवार से संबंधित हैं। इन लिपियों में प्रत्येक वर्ण किसी ध्वनि का प्रतीक होता है। इन में से अधिकांश लिपियों के वर्णों का उच्चारण शब्द में अपनी स्थिति के अनुरूप परिवर्तनशील होता है, जैसे रोमन के 'सी' या 'जी' अक्षर। इन लिपियों की वर्णमालाओं में वर्णों का कोई सुनिश्चित वैज्ञानिक पारस्परिक क्रम नहीं है।

ब्राह्मी लिपि का प्रादुर्भाव भारत की महान देन था। इसमें हर वर्ण का एक विशिष्ट उच्चारण सुनिश्चित था। पाणिनि ने ब्राह्मी लिपि के सभी व्यंजनों को कवर्ग, चवर्ग आदि कचटप वर्गों में और

उनके बाद यरलव और शषसह संकलित करके लिपि वर्णमाला को वाचा तंत्र में उच्चारणानुसार सुनिश्चित आधार प्रदान किया। इससे निकली देवनागरी आदि बृहत् भारतीय लिपियाँ संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपियों में मानी जाती हैं।

अमरकोश की रचना

लिपि काल में बने कोशों में शिरोमणि ग्रंथ के तौर पर आया— अमरसिंह कृत 'नामलिंगानुशासन या त्रिकांड'। अपनी विलक्षणता के कारण आरंभ से ही यह अपने रचयिता के नाम पर अमरकोश ही कहा जाता है, ठीक वैसे ही जैसे आजकल अंग्रेज़ी का थिसारस अपने तमाम संस्करणों और प्रकारांतरों के बावजूद रोजेट्स थिसारस ही कहा जाता है। उस काल में हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ आसानी से नहीं मिलती थीं। अत: तब ग्रंथों को कंठस्थ करना होता था, स्मरण में सुविधा के लिए ऐसे कोश छंदबद्ध होते थे। कंठस्थ कोश के किसी श्लोक का एक पद या शब्द याद आते ही तत्संबंधी पूरा प्रकरण जबान पर आ जाता है। अत: याददाश्त ही अनुक्रम खंड का काम करती थी।

अमरकोश में 8000 (आठ हज़ार) शब्दों को 1502 (एक हज़ार पाँच सौ दो) श्लोकों में पद्यबद्ध किया गया है। ये श्लोक तीन कांडों में विभाजित हैं, जिनमें कुल मिलाकर 25 वर्ग हैं। इनमें से चार वर्ग मानव समाज से संबंधित हैं और उनका क्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के क्रम से रखा गया है। हर विषय अपने से संबद्ध या विपरीत विषय की ओर ले जाता है।

अमरकोश की शैली से प्रभावित होकर ही अमीर खुसरो ने फ़ारसी में द्विभाषी कोश (फ़ारसी-हिंदी) खालिकबारी की रचना की। यह संसार का पहला द्विभाषी थिसारस माना जा सकता है। इसमें हिंदी के साथ-साथ अरबी फ़ारसी के शब्द समूह विषय क्रम से आते थे।

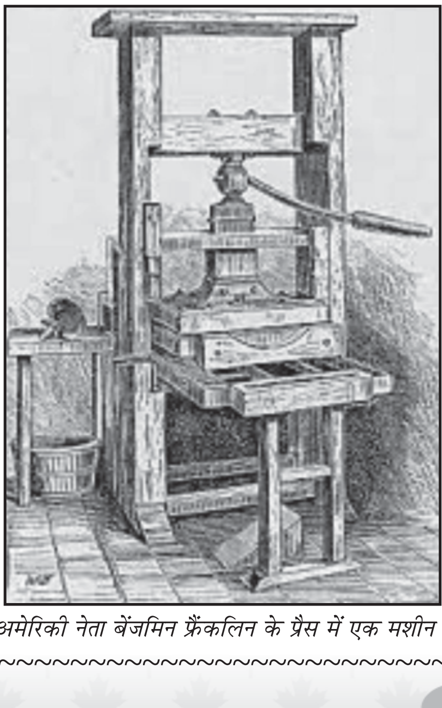
अमेरिकी नेता बेंजमिन फ्रैंकलिन के प्रैस में एक मशीन

मुद्रण तकनीक का आविर्भाव

हाथ से बनी प्रतिलिपियों में अशुद्धियाँ रहने की संभावना भी रहती थी। बहुत महँगी होने के कारण वे सर्वसुलभ भी नहीं थीं। लिपि के अन्वेषण के बाद जो सबसे बड़ा पड़ाव हुआ, वह था जर्मनी में जोहानिस गुटेनबर्ग द्वारा 1450 में मुद्रण तकनीक का आरंभ। तब और आजकल भी कई छापेखानों में छपने वाली सामग्री नीचे एक सपाट धरातल पर रखी जाती थी, उस पर स्याही लगाकर ऊपर कागज रखा जाता था। एक सपाट फलक को ऊपर से नीचे लाकर कागज पर छाप डाली जाती थी। यह काम दाब या प्रेस से होता था, इसलिए छापेखाने का नाम प्रिंटिग प्रेस पड़ा। हिंदी में भी छाप डालने के कारण यह छापाखाना कहलाता है।

छापेखाने ने परिस्थिति बदल दी। अब किताबों के माध्यम से जानकारी आसानी से मिलने लगी। छापेखाने में होने वाले सुधारों के साथ विविध विषयों पर तरह-तरह की किताबें आम आदमी तक पहुँचना धीरे-धीरे आसान होता गया। पहली किताबें धार्मिक थीं, जैसे बाइबिल। बाद में कुछ दंतकथाएँ और रहस्य गाथाएँ छपनी शुरू हुईं। साहित्य का नंबर बाद में आया। धीरे-धीरे कोश छपने लगे। इंग्लैंड में सन् 1755 में सैमुअल जानसन का पहला अंग्रेज़ी कोश 'ए डिक्शनरी ऑफ द इंग्लिश लैंग्वेज' छपा। सन् 1828 में इस से कहीं आगे बढ़कर और बड़ा नोहा वैब्स्टर का 'ऐन अमेरीकन डिक्शनरी ऑफ द इंग्लिश लैंग्वेज' छपा।

शब्द कल्पद्रुम तथा अन्य कोश

भारत में भी आरंभ में छपी पुस्तकें बाइबिल के अनुवाद थे। बात न तो यहाँ रुक सकती थी, न रुक पाई। भारतीय अस्मिता ने शीघ्र ही अपनी संस्कृति को छापेखाने तक लाना शुरू कर दिया। मैं बात कोशों तक ही सीमित रखूँगा। भारतीय भाषाओं के कुछ बहुत महत्वपूर्ण मुद्रित संस्कृत तथा हिंदी और अंग्रेज़ी उल्लेखनीय कोश इस प्रकार हैं—

- 'शब्द कल्पद्रुम' (संस्कृत कोश-आठ खंड), राजा राधाकांत देव, पहला भाग 1822-आठवाँ अंतिम 1856।
- 'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी', सर मोनिअर मोनिअर-विलियम्स, 1872।
- 'ए प्रैक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी', वामन शिवराम आप्टे, 1889।
- 'संस्कृत-हिंदी कोश', वामन शिवराम आप्टे।
- 'हिंदी शब्द सागर' (ग्यारह खंड), श्याम सुंदर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
- 'बृहत् हिंदी कोश', ज्ञानमंडल वाराणसी, पहला संस्करण 1954-55। तब से इसके कई संस्करण होते रहे हैं। अनेक

प्रधान संपादक। मेरी राय में हिंदी वर्तनी के लिए यह मानक कोश है। अरबी फारसी शब्दों के नुकते इस के मुखशब्द में बोल्ड टाइप के कारण नहीं छपे हैं, लेकिन

उच्चारण पर आधारित हिंदी का फोनेटिक कीबोर्ड—इस में आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ आदि और उन की मात्राओं के लिए स्वतंत्र कुंजी है। मतलब कि ये मात्र ग्राफिक नहीं हैं, बल्कि स्वतंत्र उच्चारण है। टाइपराइटर में आ, ओ और औ तथा अन्य सभी मात्राएँ व्यंजनों के बाएँ, दाएँ या ऊपर और नीचे टंकित की जाती थीं। कंप्यूटर में इन में से हर एक को अलग से टंकित करना होता है।

लाइट टाइप में हैं। नुकतेवाले शब्दों के लिए प्रामाणिक कोश है—

- 'उर्दू-हिंदी शब्द कोश', मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह', हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।
- 'हिंदी विश्वकोश', कमलापति त्रिपाठी तथा सुधाकर पांडेय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
- 'Comprehensive English-Hindi Dictionary', डॉक्टर रघुवीर।
- केंद्रीय हिंदी निदेशालय के बीसियों तकनीकी शब्दकोश।
- 'अंग्रेज़ी-हिंदी कोश', फ़ादर कामिल बुल्के।
- 'इंग्लिश-हिंदी कोश', डॉक्टर हरदेव बाहरी।
- 'मीनाक्षी हिंदी-अंग्रेज़ी कोश', डॉ. ब्रजमोहन—डॉ. बदरीनाथ कपूर।
- 'Oxford Hindi-English Dictionary', आर.एस. मैकग्रेगर।

कोश और थिसारस के क्षेत्र अलग-अलग हैं। कोश शब्द को अर्थ देता है, थिसारस अर्थ को, विचार को, एक नहीं अनेक शब्द

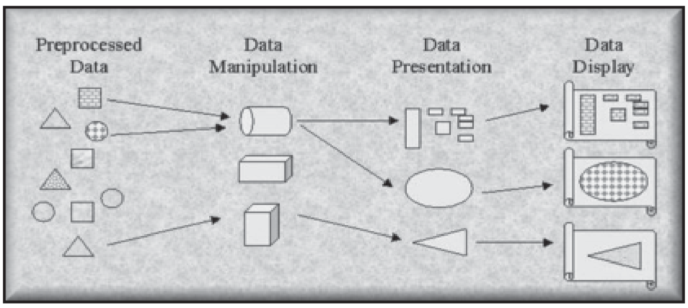

प्रसंस्कृत डाटा-डाटा मैनिपुलेशन-डाटा प्रस्तुति डाटा प्रदर्शन

देता है। कोश में हर शब्द **अकारादि क्रम** में छपा होता, जैसे—कक्ष, कक्षा, कगार।

थिसारस में शब्दों का संकलन अकारादि क्रम से न होकर **कोटि क्रम** से होता है, जैसे—इंद्रिय के बाद ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय या फिर कड़वा स्वाद के बाद कसैला स्वाद, खट्टा स्वाद, चरपरा स्वाद, नमकीन स्वाद और मीठा स्वाद। यह शब्दों के अर्थ तो नहीं देता, लेकिन किसी एक शब्द के अनेक पर्यायवाचियों से शब्द का अर्थ समझ में आ जाता है।

समांतर कोश बनाने की प्रेरणा मुझे रोजेट के थिसारस से मिली थी। तो 1973 में प्राथमिक अभ्यास या रिहर्सल के तौर पर मैंने उसी के क्रम को अपनाने का फैसला किया। सौभाग्य से अच्छी बात यह हुई कि मैंने शब्दों के पर्याय याददाश्त के आधार पर न लिखकर, ज्ञानमंडल के बृहत् हिंदी कोश के पहले पन्ने से अंत तक एक-एक

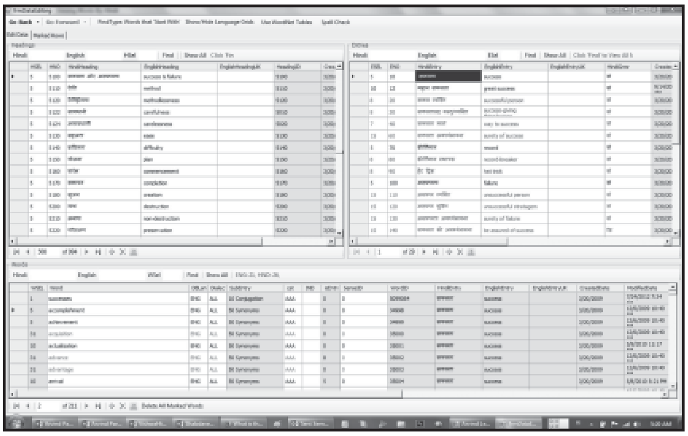

एमएस ऐक्सेस में डाटा आप देख रहे हैं सफलता विषयक डाटा। इस में भिन्न रंग चयनक विधि दिखाते हैं

शब्द पढ़कर रोजेट की आर्थी कोटियों में फ़िट करने की नीति बनाई। इसके दो कारण थे—1. मैं अपनी याददाश्त मात्र के भरोसे नहीं रहना चाहता था। 2. मैं अपने थिसारस को पूरी तरह प्रामाणिक बनाना चाहता था। मैंने इस कोश के अतिरिक्त कई विषयों के कोशों और पुस्तकों को भी अपने शब्दों के स्रोत के तौर पर इस्तेमाल किया।

जल्दी ही पता चल गया कि रोजेट का मॉडल मेरे काम का नहीं है। हिंदी की बहुत सारी कोटियों के लिए उस में जगह ही नहीं थी। अब हमें अपना कोटि क्रम या संदर्भ क्रम बनाना था। करते-करते सीखने के अलावा हमारे पास कोई उपाय नहीं था। कम-से-कम पाँच बार हमें नए रास्ते अपनाने पड़े। सन् 1973 से 1992 तक पूरे बीस साल बीतते-बीतते हमें लगा हम किसी कामचलाऊ क्रम तक पहुँच रहे हैं। तब तक साठ हज़ार कार्डों पर हम लगभग दो लाख साठ हज़ार शब्द या अभिव्यक्तियाँ या रिकॉर्ड दर्ज़ कर चुके

सफल *वि* उद्देश्यपूर्त, कामयाब, कामरान, कार्यसिद्धिप्राप्त, कृतकर्मा, कृतकार्य, कृतकृत्य, धन्यभाग्य, पूर्णकाम, पूर्णमनोरथ, पूर्णाभिलाष, *पूर्णेच्छ* प्राप्तकाम, प्राप्तमनोरथ, फलीभूत, भाग्यशाली, लक्ष्यगत, लक्ष्यप्राप्त, लक्ष्यसिद्ध, लब्धकाम, लब्धलक्ष, लब्धलक्ष्य, लब्धसिद्धि, *विजयी*, संपूर्णकाम, सफलकाम, सफलताप्राप्त, सफलमनोरथ, सफलीभूत, सर्वार्थसिद्ध, सिद्धकार्य, सिद्धार्थ, सिद्धिप्राप्त, *सौभाग्यशाली*, ⊠ असफल.

successful *adj* ahead of the game, at the top of the ladder, blessed, *fortunate*, *going*, going great guns, jubilant, made, on top, on top of the world, triumphant, ⊠ unsuccessful.

सफलकाम = पूर्णेच्छ (requited), सफल (successful).

सफलता *सं* अभीष्ट सिद्धि, अर्थसिद्धि, आलब्धि, इच्छापूर्ति, इष्टलाभ, उद्देश्यपूर्ति, कामयाबी, कृतकार्यता, कृतार्थता, प्रयोजन सिद्धि, फलप्राप्ति, फलसिद्धि, मनोरथपूर्ति, लक्ष्यपूर्ति, लक्ष्यसिद्धि, लब्धि, विजय सिद्धि, शिखर प्राप्ति, संकल्पपूर्ति, संकल्प सिद्धि, सर्वसिद्धि, सिद्धकार्यता, *सिद्धि*, ⊙ परिश्रम, ⊙ विजय, ⊠ असफलता.

success *n* accomplishment, achievement, attainment, capstone, *crowning achievement*, favourable outcome, fruition, fulfilment, hit, successfulness, ⊙ hard work, ⊙ victory, ⊠ failure.

सफलता = सुदशा (happy circumstances).
सफलताप्राप्त = सफल (successful).
सफलप्रयोजन = पूर्णेच्छ (requited).

सफलता का अकारादि क्रम से हिंदी-इंग्लिश कोश के लिए आउटपुट

थे। एक शब्द या अभिव्यक्तियाँ या रिकॉर्ड का मतलब एक शब्द नहीं, एक पूरा वाक्यांश या मुहावरा भी है।

इस तरह से काम करते-करते कई समस्याएँ खड़ी हो जाती थीं। पहली थी कि कई बार हम पहले किया काम फिर से दोहराने

सफलता का संदर्भ क्रम से आउटपुट यह बृहत् समांतर कोश का एक पेज है

लगते थे, क्योंकि सारा काम याद रख पाना आसान नहीं था। पहले यही काम कर चुके हैं, यह जाँचने का कोई तरीका नहीं था।

इस से भी बड़ी समस्या छपाई की थी, जो मेरे सामने हर दिन सुरसा की तरह मुँह बाए खड़ी रहती थी। मैं छापेखाने में काम कर चुका था। छापेखाने में जो समस्याएँ आती हैं, उनका ध्यान आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते।

पहले हमारे कार्ड टाइपिस्टों को दिए जाएँगे। उनसे कई कार्ड खो भी सकते हैं, और उनका क्रम भी बिगड़ सकता है। टाइपिस्ट बीच-बीच में से कई शब्द गलत टाइप कर जाते हैं, कई शब्द टाइप करना भूल जाते हैं और कई पंक्तियाँ दोबारा टाइप कर जाते हैं। मैं टाइप किए दो लाख साठ हज़ार शब्दों को पढ़ूँगा, उनकी गलतियाँ

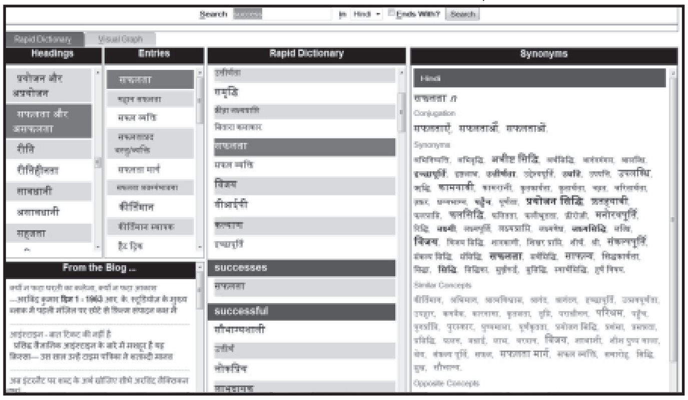

इंटरनैट पर सफलता का आउटपुट

ठीक कराऊँगा। कई पेज कई बार टाइप कराने पड़ सकते हैं। हर बार नई गलतियाँ होने की संभावना रहेगी। फिर टाइप शीट छापेखाने में कंपोज़िंग के लिए जाएँगी। वहाँ बार-बार उनकी प्रूफ रीडिंग करानी होगी। हज़ारों पेजों का कंपोज़्ड मैटर प्रेसवाला रखेगा कहाँ! मशीन पर छपाई के लिए जाने से पहले कई बार पेज टूट जाते थे। तब क्या होगा। वे पेज फिर से कंपोज़ करवाने और प्रूफ पढ़ने होंगे। हर शीर्षक और उपशीर्षक की एकोत्तर संख्या मैनुअली लिखते समय सही क्रम का अनुपालन हो पाएगा या नहीं—यह समस्या भी रहेगी।

अनुक्रम बनाने की समस्या तो और भी जटिल थी। पूरा संदर्भ खंड छप जाने के बाद उसके एक-एक शब्द को अकारादि क्रम से लिखने और उनके शीर्षक तथा उपशीर्षक संख्या लिखना—तौबा! यह मेरे बस का काम नहीं था। दूसरों से बनवाएँ तो उन्हें देने का पैसा कहाँ से आएगा, और वे सब संख्याएँ सही लिखेंगे भी या नहीं, फिर प्रेस में कंपोजिंग में कितनी ज़्यादा गलतियाँ होंगी, यह कौन जाँचेगा। यही सब सोच-सोचकर मुझे दिन-रात बुखार सा चढ़ा रहता था।

सन् 1992 में मेरे बेटे डॉक्टर सुमीत कुमार ने कहा—इन सभी

समस्याओं का एकमात्र हल है कंप्यूटर, यानी सूचना प्रौद्योगिकी।

सूचना प्रौद्योगिकी और कोशकारिता

सूचना प्रौद्योगिकी से तात्पर्य है कंप्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ़्टवेअर के अनुप्रयोग से आँकड़ों के संकलन, प्रबंधन, संपादन, सुरक्षण, परिवर्तन, पुनर्प्राप्ति और मैनिपुलेशन द्वारा वांछित रूप में आउटपुट अथवा उसके द्वारा प्रदत्त आदेशों के द्वारा काररवाई या फिर दूर संचार माध्यमों (जैसे ईमेल, इंटरनेट आदि) से विश्व स्तर पर सूचना का आदान-प्रदान।

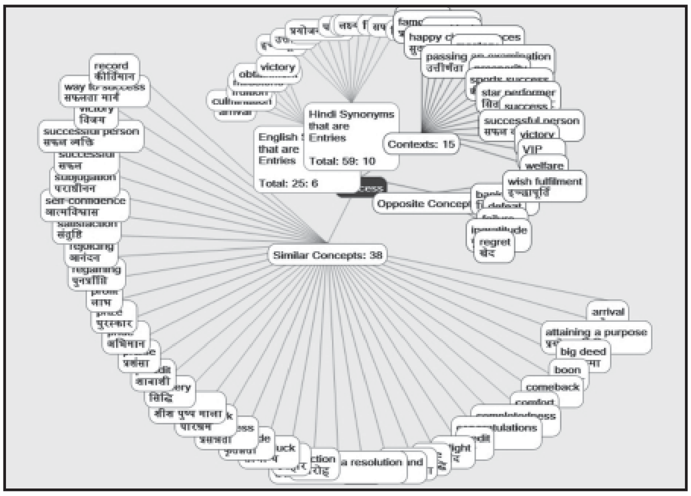

और एक कमांड दे कर कंप्यूटर दिखा रहा है हमारे डाटा के आधार पर सफलता के भाषाई संपर्क

डाटा का मैनिपुलेशन क्या होता है, किसी एक डाटा से किस तरह के आउटपुट लिये जा सकते हैं, यह दर्शाने के लिए ग्राफिक दिखाए बिना बात समझाई नहीं जा सकती। मैं ने सभी ग्राफिक अपने कोश के एमएस ऐक्सैसवाले डाटा से लिये हैं। हर चित्र के लिए एक शब्दकोटि सफलता को चुना है, ताकि बात आसानी से समझ में आ जाए।

कंप्यूटर को हिंदी में संगणक कहा जाता है। गणना करने की यह मशीन कोई भाषा नहीं, केवल दो संख्याएँ जानती है 1 और 0। हर डाटा, चाहे वह बैंक का खाता हो, सरकारी रिकॉर्ड हो, किताब हो या चित्र हो या फ़िल्म या फिर ध्वनि हो—कंप्यूटर के लिए बस इन दो संख्याओं से बनी श्रृंखला मात्र हैं। उन दिनों (1992) कंप्यूटिंग कुल छह-सात बिट तक सीमित थी। कुछ ही महीनों में आठ बिट तक जानेवाली थी। आजकल की सोलह, बत्तीस, चौंसठ और एक सौ अट्ठाईस बिटवाली कंप्यूटिंग का कहीं अता-पता नहीं था।

अरविंद कुमार और कुसुम कुमार से समांतर कोश स्वीकार करते राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा। 13 दिसंबर, 1996

सुमीत ने तय किया कि थिसारस बनाने के लिए डाटाबेस बनाना होगा। तब हिंदी में डाटाबेस बनाने की परिकल्पना तक किसी ने नहीं की थी। उन दिनों कंप्यूटर के लिए आरंभिक किस्म के हिंदी फ़ॉण्टों से टाइपसैटिंग तो होती थी, लेकिन डाटाबेस नहीं बन सकते थे। पता चला कि कुछ महीने पहले पुणे स्थित सी-डैक की ओर से जिस्ट कार्ड (GIST card) नाम का उपकरण बनाया है। इस की सहायता से ब्राह्मी आधारित सभी लिपियों में डाटाबेस बन सकता है। इसे कहते हैं तकनीक और विचार का संगम और सुसंयोग! सही समय पर सही कर्मियों के हाथ सही तकनीक लग जाना!

काफ़ी बड़े लिखित डाटा के साथ हम तैयार थे। तकनीक भी बन गई थी। देरी किए बगैर उस ने जिस्ट कार्ड खरीद लिया और फाक्स-प्रो (Fox-Pro) में हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप प्रविधि स्वयं लिखनी शुरू कर दी। अब तलाश थी दक्ष कंप्यूटर टाइपिस्ट की, जो हमारे विशाल शब्द भंडार को डाटाबेस में डाल सके। वह भी मिल गया—दलीप। वह दिन भर शब्द डालता, रात में कुसुम प्रिंट आउटों पर प्रूफ़ रीडिंग करके अगली सुबह सुधार कराती रहतीं, मैं अगले दिन के काम के कार्ड छाँटकर दलीप के लिए तैयार रखता। ग्यारह महीनों में यह पड़ाव पूरा हो गया।

अब मेरी बारी थी और शब्द डालने की। सन् 1973 से '93 तक जितने शब्द हमने संकलित किए और डाटा में डलवाए थे, लगभग उतने ही मैंने सन् '94 से '96 तक डाल लिये। यह था तकनीक का कमाल। अब हमारे पास 5,50,000 शब्दोंवाला डाटाबेस था।

चौबीस साल का काम चौपट—अब क्या होगा!

मेरे काम में कई बाधाएँ पहले भी आ चुकी थीं, जैसे

दिल का दौरा, पीलिया का आक्रमण आदि। पर इस बार का तकनीकी संकट सब से भारी था।

कंप्यूटर पर जो कई खतरे होते हैं, उन में से सब से बड़ा है डाटा की हार्ड डिस्क भ्रष्ट हो जाना। इस से बचने के लिए बैकअप करते रहना चाहिए। मेरा डाटा इतना बड़ा था कि सवा पाँच इंची वाली 19 फ्लौपियों पर बैकअप हो पाता था। इस लिए मैं हर रोज बैकअप करने से कतराता रहता था। अब हुआ यह कि काम पूरा होते-होते हमारी हार्डडिस्क फेल हो गई! कई कंप्यूटर विशेषज्ञों की शरण में गए। डाटा के पुनरुद्धार की कोई संभावना नहीं बची थी। मेरी जान ही निकल गई। ऊपर का दम ऊपर, नीचे का दम नीचे। चौबीस साल का काम चौपट! फिर से यह सब करने की हिम्मत नहीं थी। अब तलाश हुई पुराने बैकअपों की। दो-तीन दिन पहले का एक बैकअप मिल गया। नई हार्डडिस्क पर वह डाला गया। पिछले कुछ दिन जो किया था, वह सब मैं भूल गया था। जो भी हो। जो बचा था, वही काफी था। मेरी जान में जान आई।

आदेश देने पर कंप्यूटर ने डाटा में से चयनित 1,68,000 शब्दों का आउटपुट कर के समांतर कोश के संदर्भ खंड और अनुक्रम खंड तैयार कर दिए। कुल मिलाकर अठारह सौ पेज। प्रकाशक के सामने न कंपोजिंग की इल्लत, न प्रूफ़ रीडिंग का झंझट! कैमरा वर्क कराओ।'''और छाप दो। 24-25 सितंबर, 1996 को दोनों खंडों के प्रिंटआउट नेशनल बुक ट्रस्ट के हवाले किए थे। 13 दिसंबर, 1996 की पूर्वाह्न हमने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉक्टर शंकरदयाल शर्मा के करकमलों में दोनों खंड प्रस्तुत कर दिए।

सितारों से आगे जहाँ और भी हैं

बात यहाँ समाप्त नहीं हो गई। अब हम अपने डाटा को द्विभाषी बनाने में जुट गए। अकेली हिंदी के लिए लिखी गई फाक्स-प्रो ऐप्लीकेशन में अंग्रेज़ी शब्द जोड़ने के लिए मूल प्रविधि में 1997 में परिवर्तन किया गया। आधार बना हमारा हिंदीवाला डाटाबेस। जिस तरह हिंदी थिसारस बनाने के लिए रोजेट में अनेक शब्दकोटियाँ नहीं थीं, उसी तरह हमारे डाटा में अनेक अंग्रेज़ी शब्दकोटियाँ नहीं थीं। वे किस प्रकार कहाँ जोड़ी जाएँ, इसके लिए भी काफ़ी सोच-

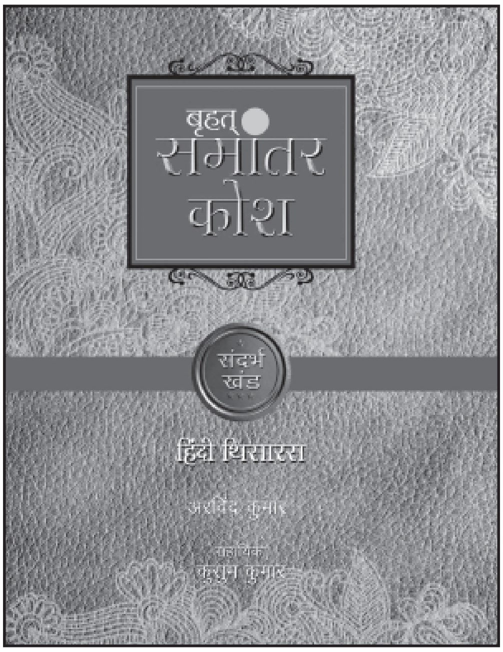

हमारे नवीनतम कोश के संदर्भ खंड का मुखपृष्ठ, प्रकाशक हैं नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2013

विचार किया गया। इंग्लिश शब्दों के स्रोत के लिए ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी और वैब्सटर के कोश चुने गए। उनका एक-एक शब्द परखकर हमारे पुराने डाटा में उपयुक्त जगह शामिल करने के लिए प्रावधान किया गया। सन् 2007 में यह काम पूरा हुआ। उसी साल पेंगुइन इंडिया की ओर से द पेंगुइन इंग्लिश-हिंदी/हिंदी-इंग्लिश थिसारस ऐंड डिक्शनरी नाम से तीन विशाल खंडों में प्रकाशित हुई। (एक सूचना अब हमारी अपनी कंपनी अरविंद लिंग्विस्टिक्स ने इस के सर्वाधिकार और वितरण अधिकार अपने पास ले लिए हैं और कम कीमत पर बेच रही है।)

इस बीच हमारे दो और हिंदी कोश आ चुके थे—1. अरविंद सहज समांतर कोश अकारादि क्रम से संयोजित थिसारस, और 2. शब्देश्वरी भारतीय पौराणिक नामों का थिसारस।

और अभी सितंबर 2013 में आया है समांतर कोश का परिवर्धित और परिष्कृत संस्करण 'बृहत् समांतर कोश' (प्रकाशक वही नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया। यह कोश हमारी कंपनी से भी मँगाया जा सकता है)।

सफ़र की पाँचवीं मंज़िल की ओर हमारा प्रयाण था—इंटरनेट पर अरविंद लैक्सिकन पहुँचाने की तैयारी। सन् 2008 में सुमीत ने तय कि डाटा को फ़ाक्स-प्रो से निकालकर विजुअल बेसिक की सहायता से माइक्रोसाफ़्ट नैट प्लेटफ़ार्म में लाना चाहिए। अत: डाटाबेस को एमएस ऐक्सेस (MS Access) में इस तरह परिवर्तित किया गया कि वह एसक्यू लाइट (SQLite) में ढाला जा सके। यह डाटा एमएस विंडोज़ और लाइनक्स (Linux) ही नहीं हर प्लेटफॉर्म पर चलता है।

जून 2011 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की हिंदी अकादेमी ने मुझे शलाका सम्मान प्रदान किया। उसी दिन सुमीत ने अरविंद लैक्सिकन www.arvindlexicon.com लिंक पर लॉञ्च कर दिया।

तो बहुत थोड़े शब्दों में यह थी भाषा के उद्भव से सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से हिंदी कोश निर्माण की गाथा।

अरविंद लिंग्विस्टिक्स प्रा.लि., ई-28 प्रथम तल,
कालिंदी कॉलोनी,
नई दिल्ली 110025
arvind@arvindlexicon.com

24

हिंदी के वैश्विक परिदृश्य के निर्माण में इंटरनेट की भूमिका

स्नेहसुधा

जन्म : 1 जनवरी 1984,

शिक्षा : एम.फिल. (हिंदी), ज.ने.वि., न.दि., 67, नेट-जे.आर.एफ.(हिंदी) उत्तीर्ण।

प्रकाशन : प्रमुख हिंदी कवि और काव्य : रीतिकाल पुस्तक (डॉ. ओमप्रकाश सिंह के साथ-शीघ्र प्रकाश्य), लोक संवेदना में लिपटी रेणु की कहानियाँ, महादेवी वर्मा के रेखाचित्र और संस्मरणों में व्यक्त सामाजिक सरोकार और स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश में स्त्री (शोध पत्र) शोध पत्रिका में, जख्म हमारे और नगरवधुएँ अगबार नहीं पढ़तीं (पुस्तक समीक्षाएँ), मतांतर स्तंभ में समन्वय के बजाय (लेख) जनसत्ता में, कलंक (कविता) वाक् त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका में, फर्क नहीं पड़ता और हार-जीत (कविताएँ) वर्तमान साहित्य साहित्यिक पत्रिका में। राष्ट्रीय सेमिनारों में शोध-पत्र प्रस्तुती और प्रकाशन।

संप्रति : पी-एच.डी. (हिंदी), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शोधरत।

हिंदी भारत की घोषित संवैधानिक राजभाषा है। यह ज़रूर है कि अब भी प्रशासनिक कार्यों में अंग्रेज़ी का प्रयोग अधिक होता है। इसके बावजूद हिंदी की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता है। यह भारत की बड़ी जनसंख्या द्वारा समझी और संपर्क भाषा के रूप में अपनाई गई भाषा है। किसी देश के सांस्कृतिक विकास के लिए उसकी अपनी समृद्ध भाषा होनी आवश्यक है। समय के साथ कंप्यूटर की उपयोगिता बढ़ती जा रही है। इंटरनेट पर विविध विषयों से संबंधित बहुत सी जानकारियाँ होती हैं। इससे युवा वर्ग तो जुड़ ही रहा है, स्थापित हस्तियाँ भी अपनी पहचान को वृहत्तर आयाम दे रही हैं। अब तो यह माना जाने लगा है कि कंप्यूटर और इंटरनेट की जानकारी के बिना शिक्षा अधूरी है। ऐसे में हिंदी को सही तरह से स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। अंग्रेज़ी की समृद्धि के आगे भारतीय गुलामी की हद तक नतमस्तक हैं। ऐसे में हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए बहुत प्रयास की आवश्यकता है। इसके बाद ही विद्वान भारतीयों का वर्ग हिंदी को प्रयोग के लायक समझेगा। हिंदी की संपदा को बढ़ाते हुए ही इस वर्ग की आँखों पर बँधी पट्टी को खोला जा सकता है। इन्हें यह बताना आवश्यक है कि कंप्यूटर और इंटरनेट का कोई ऐसा काम नहीं है, जो अब हिंदी में करना संभव नहीं है।

एक समय ऐसा था जब अंग्रेज़ी-ज्ञान के बिना कंप्यूटर और इंटरनेट का प्रयोग संभव नहीं था। अब समय बदल गया है। वर्तमान समय में अंग्रेज़ी के बिना ही इंटरनेट की अथाह ज्ञान संपदा से लाभ उठाया जा सकता है। यह काम हिंदी के माध्यम से संभव हुआ है। भारतीयों की एक बड़ी संख्या शिक्षा की बुनियाद ग्रामीण परिवेश में रखती है। धनाभाव या साधनाभाव में अंग्रेज़ी स्कूलों की महँगी शिक्षा से वंचित इस वर्ग में ज्ञान का अभाव नहीं होता। उनमें अभाव होता है तो केवल अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति की क्षमता का और अंग्रेज़ी में उपलब्ध ज्ञान संपदा से लाभ उठाने का। भारत के लिए यह समझना आवश्यक है कि भाषा को विकास के मार्ग की बाधा बनाना गलत है। जिन देशों ने अपनी भाषा को माध्यम बनाया, उन्होंने विकास के नए आयाम तय किए। ऐसे देशों में शिक्षा और प्रशासनिक कार्यों के लिए अपनी भाषा को माध्यम बनाया गया है। ऐसे देशों में दूसरी भाषा से ज्ञान विज्ञान की सामग्री का अनुवाद द्वारा विद्यार्थियों को उपलब्ध कराया जाता है। इस तरह शिक्षा में भाषा ज्ञान समस्या बनकर नहीं आती। अंग्रेज़ी या अन्य विदेशी भाषाओं का अध्ययन साहित्य और भाषिक ज्ञान के लिए किया जाता है।

भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त एक बड़ा वर्ग अंग्रेज़ी की बौद्धिक गुलामी छोड़ने को तैयार नहीं है। उन्हें अंग्रेज़ी में काम करने में सुविधा होती है और वे इस सुविधा को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने में एक बाधा अहिंदी भाषियों की यह मान्यता है कि इससे हिंदी भाषियों के लिए रोज़गार के अवसर में वृद्धि होगी। उनका ऐसा मानना है

कि हिंदी भाषियों को हिंदी सीखने के लिए उनकी तरह अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। ऐसे में अहिंदी भाषी रोज़गार का आश्वासन और उसके बाद हिंदी सीखने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। निश्चित रूप से तब हिंदी प्रेमियों की संख्या में वृद्धि होगी और हिंदी की उन्नति में प्रयासरत लोगों की संख्या में भी वृद्धि होगी। वर्तमान समय में एक नया वर्ग तैयार हो रहा है, जो हिंदी को समृद्ध बनाने की मुहिम में जुटा हुआ है। इस वर्ग का मानना है कि अंग्रेज़ी का अध्ययन भाषा और साहित्य के रूप में किया जाना गलत नहीं है, किंतु उसे अपनी कमज़ोरी बनाना सही नहीं है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय कितनी भी अच्छी अंग्रेज़ी सीख लें, उनकी अंग्रेज़ी अंग्रेज़ों से बेहतर नहीं हो सकती है। इस संबंध में रामविलास शर्मा का व्यंग्यात्मक कथन द्रष्टव्य है—''हम काले आदमी चाहे जितनी अंग्रेज़ी सीखें, अंग्रेज़ों की बराबरी तो नहीं कर सकते। तब समृद्धतम भाषा को विशुद्धतम ढंग से बोलने वाले अंग्रेज़ों को ही अपने ऊपर शासन करने के लिए फिर से क्यों न बुला लिया जाए?''[1]

इंटरनेट पर हिंदी की भागीदारी बढ़ रही है। 'न्यू मीडिया' के रूप में जाने-माने वाले इंटरनेट के ब्लॉग, ट्विटर, फ़ेसबुक आदि में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। मीडिया या जनसंचार माध्यम के द्वारा बड़ा काम किया जाता है। जनसंचार माध्यम को परिभाषित करते हुए सामाजिक संचारशास्त्री जे. कार्नर ने लिखा है—''जनसंचार संदेश के बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा वृहद् स्तर पर विषम जातीय जनसमूहों में द्रुतगामी वितरण करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जिन उपकरणों अथवा तकनीक का उपयोग किया जाता है, उन्हें जनसंचार माध्यम कहा जाता है।'' इंटरनेट पर वेब की बड़ी भूमिका होती है। इंटरनेट जहाँ कंप्यूटरों को जोड़ने और सूचनाओं के प्रसार का काम करता है, वहीं वेब उन जानकारियों को उपयोगकर्ता को उपलब्ध कराता है। वेब का पूरा नाम वर्ल्ड वाइड वेब है। वेब की शुरुआत 1989 ई. में हुई थी। वेब की सहायता से वेब पन्नों को देखा जा सकता है। वेब पन्नों पर उपलब्ध जानकारियों, कड़ियों या लिंक्स के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं, इस तरह सिलसिलेवार तरीके से कई जानकारियाँ मिल जाती हैं। पेजमेकर का प्रयोग कर किताब के रूप में प्रिंट आउट निकालने के लिए सामग्री तैयार की जा सकती है। पहले ये सुविधाएँ केवल अंग्रेज़ी टाइपिंग के साथ उपलब्ध थीं। हिंदी में हमारे पास कम विकल्प उपलब्ध थे। इंटरनेट की ज़रूरत ने हिंदी के लिए तकनीकी विकास के द्वारा इन्हें उपलब्ध कराया। DTP और Database के द्वारा इन सुविधाओं का उपयोग हिंदी भाषा में किया जाना संभव हो पाया है।

वेब ने समाज को जोड़ने का काम किया है। इसकी शुरुआत सैनिक रणनीति के रूप में हुई थी। धीरे-धीरे इसका आयाम विस्तृत होता चला गया। वेब की सहायता से नई तकनीकों को जानना आसान हो जाता है। वेब की सुविधा का उपयोग करने के लिए इंटरनेट आवश्यक होता है। कंप्यूटर तकनीकों में दिनोंदिन सुधार होता जा रहा है। इंटरनेट और कंप्यूटर में हिंदी के प्रयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व में होनेवाली नई खबरों को जानने-समझने में हिंदी काफ़ी सहायक हो रही है। वेब पर हिंदी में जनसत्ता, राष्ट्रीय सहारा, हिंदुस्तान, नई दुनिया, दैनिक जागरण, दैनिक भाष्कर आदि समाचार-पत्र, हंस, तद्भव, आजकल, मालती आदि पत्रिकाएँ तथा शब्दकोश आदि की उपलब्धता ने हिंदी-प्रेमियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

इंटरनेट पर हिंदी साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। तुलसीदास की रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली आदि रचनाएँ, कबीर और रहीम के दोहे, प्रेमचंद की कहानियाँ और कुछ उपन्यास, अज्ञेय की रचनाएँ, हास्य-व्यंग्य के अपूर्व रचनाकार हरिशंकर परसाई की रचनाएँ और हरिवंशराय बच्चन की रचनाएँ आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। यह दीगर बात है कि अभी बहुत सा हिंदी साहित्य बचा है, जिसे वेब पन्ने के रूप में तैयार किया जाना बाकी है। इस दिशा में निरंतर काम हो रहा है, जिसके सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं। यह सही

कई बार लोग फ़ेसबुक पर अपने ब्लॉग या पसंदीदा ब्लॉग और वेब पन्नों के लिंक दे देते हैं। इससे फ़ेसबुक मित्र उन वेब पन्नों पर जाकर उनका लाभ उठा सकते हैं। ब्लॉग, फ़ेसबुक, ट्विटर आदि परिचर्चाओं का नए मंच बनते जा रहे हैं। ऐसे मंच जहाँ सभी लोग वक्ता और श्रोता या लेखक और पाठक दोनों हैं। इनके माध्यम से कोई रचनाकार अपनी रचना और विचार जनता तक आसानी से पहुँचा सकता है। इससे एक बड़ा लाभ यह है कि उसे पाठक वर्ग के साथ कभी-कभी प्रकाशक भी मिल जाता है। वेब मीडिया द्वारा सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक विषयों पर अपने विचार रखना आसान हो जाता है। सीधी सी बात है कि इसके लिए पत्र-पत्रिकाओं के संपादक का मुँह नहीं देखना पड़ता है। संपादक की सहमति असहमति, इच्छा-अनिच्छा के बिना ही रचनाकार अभिव्यक्ति और विचारों के संप्रेषण का सुख पा जाता है।

है कि हिंदी की सामग्री में वर्तनी की अशुद्धि देखी जाती है। इस संबंध में यह कहना उपयुक्त है कि प्रारंभिक प्रयास में गलतियाँ रह जाना विकास को अनिवार्य बनाता है। कहा भी गया है कि इनसान गलती करने पर ही सीखता है, क्योंकि गलती तभी होती है जब इनसान कोई काम करता है। खाली बैठे रहने से गलतियाँ नहीं होती हैं। बहुत से वेब पन्नों पर संपादन व सुधार का विकल्प होता है। साहित्य के जानकार उस विकल्प का उपयोग कर सामग्री में सुधार कर सकते हैं। इसी तरह सुझाव का विकल्प होने पर अपना अमूल्य सुझाव दे सकते हैं। कमियाँ निकालना आसान होता है, काम करना मुश्किल। हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किए जाने के लिए आवश्यक है कि हर जानकार भारतीय इस दिशा में अपना बेहतर योगदान दे। केवल नुक्ताचीनी करने से कोई लाभ नहीं है।

इंटरनेट पर हिंदी साहित्य की उपलब्धता ने इसे विदेशों तक पहुँचा दिया है। वेब मीडिया (जो कि इंटरनेट का महत्वपूर्ण अंग है) के कारण हिंदी साहित्य भारत के साथ विदेशों में भी अध्ययन, सेमिनार और गोष्ठियों का विषय बन रहा है। वेब मीडिया के अंतर्गत ब्लॉग, फ़ेसबुक, ट्विटर आदि आते हैं। हिंदी में कई लोग खासतौर पर युवा, ब्लॉग बनाकर उसमें अपनी विचार लिख रहे हैं। हमारी भागदौड़ की ज़िंदगी में मोबाइल के SMS Text के द्वारा कम में अधिक कहने की प्रवृत्ति में नए आयाम जोड़े और भाषिक संरचना को नया और संक्षिप्त रूप प्रदान किया। ऐसा ही कुछ ब्लॉग लेखन के साथ है। ब्लॉग पर लिखने वाले केवल स्थापित रचनाकार या नामी हस्तियाँ ही नहीं हैं। ब्लॉग जनसामान्य की अभिव्यक्ति का बड़ा माध्यम बनता जा रहा है। स्वाभाविक रूप से ब्लॉग में प्रयुक्त शब्दावली जनता के बीच प्रचलित शब्दावली है। इसमें हिंदी की शब्द संपदा बढ़ रही है। जहाँ तक शब्दों के मानक रूप का प्रश्न है तो प्रयोग के साथ धीरे-धीरे यह काम भी संपन्न हो जाएगा। फ़ेसबुक और ट्विटर तो वर्तमान समय की ज़रूरत बन गए हैं। बहुत कम लोग ऐसे होंगे, जो इंटरनेट का प्रयोग करते हुए इनके नशे से बच सके हों। यह अलग बात है कि नशे की मात्रा उन्होंने खुद तय की है। अपनी रोज़मर्रा की बातों को ट्विटर पर लिखना या ट्विट करना और अपने पसंदीदा कलाकारों को फॉलो करना यह बहुतों के जीवन का एक अंग बन गया है। इसी तरह फ़ेसबुक पर अपनी नई गतिविधियों, प्रकाशनों, ब्लॉग आदि सूचना देना आवश्यक सा हो गया है। फ़ेसबुक पर आने वाले पसंद (like), टिप्पणी (comment) आदि को कभी गंभीरता से लेना और कभी हँसते हुए टाल जाना आदि जीवन में नए उमंग भरने का माध्यम बनता जा रहा है।[2]

कई बार लोग फ़ेसबुक पर अपने ब्लॉग या पसंदीदा ब्लॉग और वेब पन्नों के लिंक दे देते हैं। इससे फ़ेसबुक मित्र उन वेब पन्नों पर जाकर उनका लाभ उठा सकते हैं। ब्लॉग, फ़ेसबुक, ट्विटर आदि परिचर्चाओं का नए मंच बनते जा रहे हैं। ऐसे मंच जहाँ सभी लोग वक्ता और श्रोता या लेखक और पाठक दोनों हैं। इनके माध्यम से कोई रचनाकार अपनी रचना और विचार जनता तक आसानी से पहुँचा सकता है। इससे एक बड़ा लाभ यह है कि उसे पाठक वर्ग के साथ कभी-कभी प्रकाशक भी मिल जाता है। वेब मीडिया द्वारा सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक विषयों पर अपने विचार रखना आसान हो जाता है। सीधी सी बात है कि इसके लिए पत्र-पत्रिकाओं के संपादक का मुँह नहीं देखना पड़ता है। संपादक की सहमति असहमति, इच्छा-अनिच्छा के बिना ही रचनाकार अभिव्यक्ति और विचारों के संप्रेषण का सुख पा जाता है। जनसंचार के सभी माध्यमों, खासतौर पर इंटरनेट द्वारा दुनिया सिमटकर बहुत छोटी हो गई है। हम विश्व के किसी कोने के लोगों के विचार घर बैठे जान सकते हैं, बशर्ते वह खुद को अभिव्यक्त करता हो। इस संबंध में सामाजिक संचारशास्त्री मार्शल मेकलुहान ने कहा है, ''दुनिया बहुत छोटी हो गई है, एक गाँव बन गई है, जहाँ सब कोई लगभग सबकुछ जान सकते हैं।''[3]

बी.बी.सी. हिंदी ने हिंदी को रेडियो और इंटरनेट के माध्यम से लोकप्रिय बनाने का काम बहुत पहले शुरू कर दिया था। बी.बी.सी. हिंदी के कार्यक्रमों ने लोकप्रियता को नए आयाम दिए। इसमें समाचार के साथ साहित्य और उसकी परिचर्चाओं को विशिष्ट स्थान दिया गया। बी.बी.सी. हिंदी डॉट कॉम पूर्व संपादक सलमा ज़ैदी ने अगस्त 2012 तक के बी.बी.सी. ऑनलाइन के सफ़र के बारे में प्रकाश डालते हुए कहा, ''वेब पत्रकारिता करने वालों का दायरा बहुत बड़ा हो जाता है। उनकी खबर एक पल में सारी दुनिया में पहुँच जाती है जो कि अन्य समाचार माध्यमों से संभव नहीं है।''

वेब मीडिया से जुड़ने के बाद हिंदी की माँग बढ़ गई है। हिंदी में नौकरी की संभावना में वृद्धि हुई है। ज़रूरत है तो समाज के हिसाब से स्वयं को अद्यतन या अपडेट बनाए रखने की। कॉल सेंटर, अनुवादक, विदेशों में हिंदी शिक्षक कुछ ऐसे ही विकल्प हैं। ब्लॉग लेखन ने हिंदी की लोकप्रियता को नए आयाम प्रदान किए हैं। एक समय ऐसा था जब हिंदी को कंप्यूटर व इंटरनेट के उपयुक्त नहीं माना जाता था। अब सर्वसम्मति से इसे कंप्यूटर मित्र-भाषा मान लिया गया है। ब्लॉग सिर्फ़ बड़ी हस्तियों द्वारा नहीं, जनसामान्य द्वारा भी लिखा जा रहा है। ब्लॉग बनाने व लिखने की जानकारी इंटरनेट पर हिंदी में उपलब्ध है। हिंदी का प्रयोग बढ़ने के साथ बैंक, रेलवे आदि के बहुत से काम इस भाषा में किए जाने संभव हो गए हैं।

हिंदी की एक खासियत उसकी देवनागरी लिपि है। यह एक वैज्ञानिक लिपि है। उच्चारण के अनुरूप ही इसका लेखन होता है। रोमन लिपि की तरह एक अक्षर के लिए कई ध्वनियाँ नहीं होती हैं।

रोमन में 'ब' किसी शब्द में 'च' है तो किसी में 'क'। पहले देवनागरी लिपि में इंटरनेट पर लिखना कठिन था, जबकि ऑफ़लाइन कंप्यूटर प्रयोग के लिए कुछ देवनागरी फॉन्ट उपलब्ध थे। इंटरनेट पर हिंदी प्रयोग के विकास-क्रम में यूनिकोड (Arial Unicode MS) के आगमन से एक नया अध्याय खुला है। यूनिकोड स्टैंडर्ड को सभी संस्थाओं और जनता ने अपनाया है। यह एक सर्वमान्य फॉण्ट है। इस फॉण्ट में लिखी गई फाइल दुनिया के किसी भी कोने और किसी भी कंप्यूटर पर खोली जा सकती है। इसके प्रयोग से हिंदी और अंग्रेज़ी के साथ अन्य कई भाषाओं में लिखा जा सकता है।

हिंदी में लिखने के लिए ऑनलाइन सॉफ़्टवेयर भी उपलब्ध हैं। उनकी सहायता से ऑनलाइन स्क्रीन पर बने नोटपैड पर कंप्यूटर के की-बोर्ड या ऑनलाइन की-बोर्ड और माउस की सहायता से हिंदी में लिखा जा सकता है। फिर उसे नोटपैड से कट कर उपयुक्त स्थान जैसे ब्लॉग, फ़ेसबुक आदि पर पेस्ट किया जा सकता है। यह सुविधा गूगल मेल पर भी उपलब्ध है। मेल पर टाइप करने के बाद भी कट पेस्ट कर प्रयोग कर लिखित सामग्री को उपयुक्त स्थान पेस्ट किया जा सकता है। हिंदी में ऑफ़लाइन लिखने और फिर उसे ऑनलाइन प्रयोग में लाने के लिए कंप्यूटर में यूनिकोड फॉण्ट और की-बोर्ड इंस्टाल करना पड़ता है।

हिंदी में लिखने के लिए ऑनलाइन सॉफ़्टवेयर भी उपलब्ध हैं। उनकी सहायता से ऑनलाइन स्क्रीन पर बने नोटपैड पर कंप्यूटर के की-बोर्ड या ऑनलाइन की-बोर्ड और माउस की सहायता से हिंदी में लिखा जा सकता है। फिर उसे नोटपैड से कट कर उपयुक्त स्थान जैसे ब्लॉग, फ़ेसबुक आदि पर पेस्ट किया जा सकता है। यह सुविधा गूगल मेल पर भी उपलब्ध है। मेल पर टाइप करने के बाद भी कट पेस्ट कर प्रयोग कर लिखित सामग्री को उपयुक्त स्थान पेस्ट किया जा सकता है। हिंदी में ऑफ़लाइन लिखने और फिर उसे ऑनलाइन प्रयोग में लाने के लिए कंप्यूटर में यूनिकोड फॉण्ट और की-बोर्ड इंस्टाल करना पड़ता है।

किसी भाषा की भाषिक संरचना की बात करते हुए शब्द पर बात करना आवश्यक है। इंटरनेट के कारण जनसामान्य द्वारा कुछ नए शब्द प्रयोग में लाए जाने लगे हैं, जैसे-गूगल करना, इंटरनेट सर्फ करना, फॉलो करना, ट्विट करना, पोस्ट करना आदि। इंटरनेट ने हिंदी को कई नए शब्द दिए हैं। एक भाषा जब दूसरी भाषा के संपर्क में आती है तो दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करती है, उनके बीच शब्दों का आदान-प्रदान होता है। लेन-देन की सहज प्रवृत्ति से भाषा समृद्ध होती चलती है। इंटरनेट में हिंदी का प्रयोग बढ़ने से उसके वैश्विक परिदृश्य के निर्माण में मदद मिली है। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति में सामासिकता की प्रवृत्ति है, उसी तरह हिंदी भाषा में दूसरी भाषा के शब्दों को अपना बनाकर प्रयोग में लाने की अद्‌भुत क्षमता है। इंटरनेट ने हिंदी की इस क्षमता को और अधिक बढ़ाया है।

इंटरनेट पर पहले से स्थापित अंग्रेज़ी से हिंदी ने सहज ही कई शब्द लिये और अपनी भाषिक प्रवृत्ति के अनुरूप उन्हें ढाल लिया। वर्तमान समय में इंटरनेट पर कई भारतीय और विदेशी भाषाओं का प्रयोग संभव है। ऐसे में निकट भविष्य में शब्दों का आदान प्रदान और तेज़ी से हो तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। इस तरह हिंदी की शब्द-संपदा में वृद्धि होगी। इसके बाद शब्दकोशों की संख्या और गुणवत्ता में वृद्धि की आवश्यकता महसूस की जाएगी। इंटरनेट पर कठिन शब्दावलियों का अर्थ जानने के लिए हिंदी-शब्दकोश, थिसॉरस आदि उपलब्ध हैं। कुछ शब्दकोश ऐसे हैं, जिन्हें नि:शुल्क डाउनलोड किया जा सकता है और कुछ का प्रयोग ऑनलाइन किया जाता है। ऑनलाइन शब्दकोशों में 'शब्दकोश.कॉम' बहुत लोकप्रिय है। इसमें हिंदी या अंग्रेज़ी शब्द टाइप कर उसका अर्थ पर्यायवाची प्रयोगों के साथ प्राप्त किया जा सकता है। ऑनलाइन और ऑफलाइन कंप्यूटर शब्दकोशों की सहायता से अंग्रेज़ी से हिंदी और हिंदी से अंग्रेज़ी शब्दों का अर्थ आसानी से खोजा जा सकता है। निकट भविष्य में शब्दकोशों, थिसॉरसों की संख्या और गुणवत्ता में और अधिक वृद्धि की संभावना है, क्योंकि आवश्यकता इस बात का संकेत कर रही है।

इंटरनेट प्रयोग के लिए हिंदी के कुछ शब्द प्रचलित हैं। इनकी जानकारी इंटरनेट पर हिंदी में अध्ययन और लेखन के लिए आवश्यक हो जाती है।

- अंतर्जाल-इंटरनेट
- सजाल-वेबसाइट
- अभिलिपि-फॉण्ट
- चिट्‌ठा-ब्लॉग

आदि ऐसे ही कुछ शब्द हैं।

हिंदी की जानकारी के लिए कुछ सजाल (वेबसाइट) उपलब्ध हैं। उन्हें क्लिक कर हिंदी प्रयोग की अपनी परेशानियों को दूर कर आसानी से काम किया जा सकता है। ये सजाल निम्नलिखित हैं—

- यूनिनागरी—http://uninagri.kaulonline.com/
- हगटूल—http://hindini. com/tool/huge2.html

- नारद (हिंदी चिट्ठों का एग्रीगेटर)—http://narad.akshargram.com
- सर्वज्ञ (कंप्यूटर व अंतर्जाल पर हिंदी लिखने के लिए प्रमुख सजाल)—http:// akshargram.com/sarvagya
- परिचर्चा (कंप्यूटर पर हिंदी से संबंधित किसी भी जानकारी का प्रश्न मंच)—http:// akshargram.com/paricharcha

इंटरनेट पर हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए 'हिंदीगाथा' नाम से एक हिंदी टूलबार उपलब्ध है। प्रगति, प्रशांत और प्रतीक ने इसकी शुरुआत की। इसमें डाउनलोड लिंक है, जिसके द्वारा थोड़े से प्रयास से इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी जगत की सारी हलचलों और सामग्रियों से अवगत हुआ जा सकता है। हिंदी के लिए रफ्तार.कॉम (www.raftaar.in) नामक सर्च इंजन शुरू किया गया है। जिससे आसानी से हिंदी की किसी भी वेबसाइट पर जाया जा सकता है। इस टूल बार और सर्च इंजन में हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं, साहित्य, संदर्भ पुस्तकों, मौसम की जानकारी, अन्य समाचार और कुछ कंप्यूटर खेलों के संकेत दिए गए हैं। इन्हें क्लिक करने पर उनके वेब पन्ने खुल जाते हैं। उसके बाद आसानी से उन्हें उपयोग में लाया जा सकता है।

इंटरनेट पर हिंदी में लिखने-पढ़ने को बढ़ावा देने के लिए कई लोग प्रयासरत हैं। पंकज नरूला और रविशंकर ऐसे ही कुछ नाम हैं। इन लोगों ने हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कई वेब पन्ने बनाए हैं, जिनमें उपलब्ध कड़ियाँ पाठक की जिज्ञासाओं को पूरा करने के लिए जानकारियाँ देती चलती हैं। इनमें हिंदी फॉण्ट डाउनलोड करने व प्रयोग करने के लिए कड़ियाँ या लिंक्स दिए गए हैं। उनकी सहायता से बड़ी आसानी से हिंदी का जानने-समझने और उसकी उन्नति में योगदान दिया जा सकता है।

इंटरनेट पर हिंदी के कई समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। इस संबंध में हिंदी की मासिक पत्रिका हंस के संपादक राजेंद्र यादव का मानना है कि पाठकों की प्रतिक्रिया के अभाव में उन्हें विश्वास नहीं होता कि ये पत्रिकाएँ पढ़ी जाती हैं। वेब साहित्य या हिंदी साहित्य को वेब पर डाल दिया जाता है, पर वर्तनी और पाठ की शुद्धता का ध्यान नहीं रखा जाता है। इस तरह पाठ्य-सामग्री की विश्वसनीयता और स्तरीयता बाधित होती है। राजेंद्र यादव के शब्दों में—''जो गंभीरता या एकाग्रता किताब पढ़ने में होती है, वह मुझे लगता है कि इंटरनेट पर नहीं होती, उस तरह की ग्रहणशीलता भी इंटरनेट पर नहीं बन पाती, वहाँ सूचनात्मकता ज़्यादा है।''

आजकल हिंदी को रोमन में लिखने और देवनागरी लिपि को पूरी तरह समाप्त करने की बात हो रही है। समर्थकों का मानना है कि रोमन लिपि द्वारा हिंदी को विश्वव्यापी बनाया जा सकता है। उन्हें नहीं पता कि अपनी लिपि के बिना भाषा की आत्मा मर जाती है। वे इंटरनेट पर प्रयोग की सुविधा का हवाला देते हैं, मगर यह धीरे-धीरे हिंदी के अस्तित्व को मिटाने की साज़िश है। अब जबकि इंटरनेट पर देवनागरी का प्रयोग करना सरल हो गया है तो हिंदी लिखने के लिए रोमन लिपि की हिमायत करना अनुचित है।

वैश्वीकरण के इस दौड़ में सतत विकास की आवश्यकता है। उसके बिना अन्य लोगों व देशों के साथ कदम से कदम मिलाना मुश्किल हो जाएगा। इंटरनेट की मदद से हिंदी की पहुँच विदेशों तक हो गई है। भारत के साथ विदेशों में भी हिंदी बोली, समझी व प्रयोग में लाई जा रही है। वैश्वीकरण के कारण दुनिया सिमट गई है। इसमें इंटरनेट का बहुत बड़ा योगदान है। हिंदी के विकास और विदेशों तक उसे पहुँचाने में इंटरनेट ने बड़ी भूमिका निभाई है। विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोग इंटरनेट पर हिंदी साहित्य को देख-पढ़कर बहुत खुश होते हैं। अपनी भाषा और उसमें व्यक्त विचारों में देश की मिट्टी की सोंधी-सोंधी खुशबू मिलती है। हिंदी के प्रयोग से जुड़कर भारतीय मूल के लोग विदेशों में उसका प्रचार करते हैं। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिंदी ने अपना स्थान सुनिश्चित किया है। यह स्थान निश्चित रूप से उपेक्षणीय नहीं है, वरन नोटिस करने योग्य है। इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बेहतर होता जा रहा है। कंप्यूटर मित्र भाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग में निरंतर सुधार लाए जा रहे हैं। हिंदी के माध्यम से जनसामान्य के लिए हिंदी की जानकारी प्राप्त करना आसान हो गया है। अब हिंदी इतनी समृद्ध हो चुकी है कि अंग्रेज़ी की कम जानकारी होने के बावजूद इंटरनेट से आसानी से सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं और कंप्यूटर को बेहतर तरीके से प्रयोग में लाया जा सकता है। हिंदी और इंटरनेट के बीच एक तरह से अन्योन्याश्रय संबंध स्थापित हो गया है। दोनों एक-दूसरे के विकास में सहायक बन रहे हैं।

संदर्भ—

1. रामविलास शर्मा, 'भाषा और समाज', पृ. 397
2. लक्ष्मेंद्र चोपड़ा, 'जनसंचार का समाजशास्त्र', पृ. 82
3. दिल्ली बी.बी.सी. के संवाददाता पाणिनी आनंद, बी.बी.सी. से आभार लेकर नेट पर लेख रूप में उपलब्ध।

शोध छात्रा 'हिंदी'
भारतीय भाषा केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-67
sneh.sudha84@gmail.com

□

25

हिंदी के विकास में संचार माध्यमों का योगदान

शिखा द्विवेदी

जन्म : 13 अक्तूबर, 1984, मीडिया प्रोफेशनल।

शिक्षा : भारतीय जनसंचार संस्थान नई दिल्ली से हिंदी पत्रकारिता में डिप्लोमा। स्नातक में बहुमुखी प्रतिभा के लिए स्वर्ण पदक, पत्रकारिता में डिप्लोमा के साथ राजस्थान पत्रिका पुरस्कार, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर कई निबंध लेखन, वाद-विवाद और प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता में विजेता।

अनुभव : नई दिल्ली में 2010 में हुए कॉमनवेल्थ खेलों में बतौर असिस्टेंट मीडिया मैनेजर कार्य किया। हिंदी समाचार चैनल एन.डी.टी.वी. इंडिया में आउटपुट एडिटर के रूप में (2007 से 2009) तक कार्य किया। हिंदी समाचार चैनेल S1 न्यूज में प्रशिक्षु के रूप में (2005 से 2007) तक काम किया। मेरी पोटली ब्लॉग की लेखिका।

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में साहित्य और सिनेमा का जितना योगदान है, उतना ही या कहें उससे भी बढ़कर योगदान हिंदी संचार माध्यमों (मीडिया) का है, क्योंकि साहित्य और सिनेमा भी इन्हीं संसाधनों पर निर्भर हैं। टेलीविजन चैनल्स, रेडियो और इंटरनेट सभी ने हिंदी को एक नया आयाम और नया रूप प्रदान किया है। कई विद्वानों और साहित्यकारों ने संचार माध्यमों द्वारा प्रयोग की जा रही हिंदी पर सवाल भी उठाए हैं, उनका मानना है कि ये माध्यम भाषा को विकृत कर रहे हैं, उसमें दूसरे भाषा के शब्दों को जबरन घुसेड़ा जा रहा है, हिंदी का मौलिक रूप नष्ट हो रहा है। पर अगर हम विचार करें तो हिंदी भाषा तो हमेशा से उदार रही है, इसकी उदारता ही है जो दूसरी भाषा के शब्दों को सरलता से आत्मसात कर लेती है, और रहा प्रश्न भाषा को विकृत करने का, तो हिंदी का विस्तार क्षेत्र इतना है कि पग-पग पर उसका रूप स्वयं ही बदलता रहता है और हर रूप में उसकी एक नई पहचान बनती है, फिर कोई उसे विकृत कैसे कर सकता है? संभव है कि हिंदी की इसी विविधता को देखते हुए उसे बोलियों में विभाजित किया गया है। अपने विविध स्वरूपों के साथ ही हिंदी विश्व भर में लोकप्रिय हो रही है और संचार माध्यम इसमें प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

संचार माध्यमों में पत्र-पत्रिकाओं का स्थान पहले पायदान पर आता है, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। समाचार-पत्र और पत्रिकाओं ने ही स्वातंत्र्य माँग की अलख पूरे देश में जगाई और पूरे देश की आवाज बने। समाचार-पत्र और पत्रिकाओं ने हिंदी को एक नया जीवन व नई सोच दी। हिंदी को जनमानस की बोली से उठाकर सामाजिक समस्याओं और गंभीर मुद्दों पर लेखन का हथियार बनाया। कई पत्रिकाएँ, जैसे—'हिंदी प्रदीप' (बालकृष्ण भट्ट), 'सरस्वती' (महावीर प्रसाद द्विवेदी), 'माधुरी', 'जागरण', 'हंस' (प्रेमचंद), 'आज' (बाबूराव विष्णुराव पराड़कर), 'कर्मवीर', 'प्रभा', 'प्रताप' (माखनलाल चतुर्वेदी), 'अभ्युदय', 'प्रताप' (गणेश शंकर विद्यार्थी), 'प्रतीक', 'नया प्रतीक', 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स' (अज्ञेय), 'धर्मयुग' (धर्मवीर भारती) आदि पत्र-पत्रिकाओं के जरिए इनके लेखकों और संपादकों ने एक नए युग का आरंभ किया, जो हिंदी भाषा के लिए एक नया सवेरा लेकर आया। इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी के माध्यम से देश को जागरूक और विचारशील बनाने का प्रयास किया और उसमें काफी हद तक सफलता भी प्राप्त की। परोक्ष रूप से हिंदी में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आज भी यह काम जारी है। भारत के समाचार पंजीयक कार्यालय के मार्च 2012 तक उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार भारत में हिंदी के 34,651 पत्र प्रकाशित होते हैं, जिन्हें करोड़ों पाठक पढ़ते हैं और इनकी संख्या लगातार बढ़ ही रही है। हिंदी में उपलब्ध बाल साहित्य ने बच्चों को हिंदी से जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। श्री के. शंकर पिल्लई द्वारा बाल साहित्य के संदर्भ में 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट' की स्थापना 1957 में की गई थी। इस ट्रस्ट का मुख्य उद्देश्य

बच्चों के लिए उचित डिजाइनिंग व सामग्री उपलब्ध कराना है। इसमें 5-16 वर्ष तक के बच्चों के लिए बेहतर बाल साहित्य उपलब्ध है। इसमें हिंदी में पौराणिक कथाएँ—कृष्ण सुदामा, पंचतंत्र की कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, प्रह्लाद; ज्ञानवर्धक—उपयोगी आविष्कार, पर्वत की पुकार, रंगों की महिमा, विज्ञान के मनोरंजक खेल; रहस्य रोमांच—अनोखा उपहार, जासूसों का जासूस, ननिहाल में गुजरे दिन, पाँच जासूस; उपन्यास/कहानियाँ—24 कहानियाँ, इन्सान का बेटा, गुड्डी, मास्टर साहब; महान् व्यक्तित्व—महान व्यक्तित्व पार्ट एक से दस तक; वन्य जीवन/अम्माँ का परिवार, कुछ भारतीय पक्षी, छोटा शेर बड़ा शेर; पर्यावरण—अनोखे रिश्ते; क्या और कैसे—कंप्यूटर, घड़ी, टेलीफोन, रेलगाड़ी आदि।

नंदन-चंपक और दूसरी कई पत्रिकाएँ अपनी कहानियों और लेखों के माध्यम से बच्चों में नैतिक मूल्यों के बीज बोने में परोक्ष भूमिका निभा रही हैं। इतना ही नहीं, आज जब निजी शिक्षण संस्थानों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बनता जा रहा है और कई जगह स्कूल परिसर में हिंदी बोलने पर जुर्माना या दंड भी भुगतना पड़ता है, ऐसे में बच्चों के लिए हिंदी बाल साहित्य उन्हें अपनी जड़ों से जोड़े रखने का काम करता है। पत्रिकाओं में छपी कहानियों के माध्यम से बच्चे हिंदी के कई नए शब्दों के प्रयोग और उनके अर्थों के बारे में जान पाते हैं, जिनका प्रयोग वे अपने दैनिक जीवन में अपने परिवार या दोस्तों के बीच बोली जानेवाली आम बोलचाल की हिंदी में नहीं करते। कई पौराणिक कथाओं को जिस सजीवता के साथ हिंदी भाषा के माध्यम से बच्चों के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है, उतनी आत्मीयता उनके अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ नहीं बन पाती है। इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से बच्चे बिना हिंदी से दूर हुए अंग्रेज़ी या फिर किसी भी दूसरी भाषा से दोस्ती बना सकेंगे। और हिंदी के विकास के लिए जरूरी है कि देश के भविष्य माने जानेवाले बच्चों के विकास के साथ उसका विकास जोड़ा जाए, इसके लिए बच्चों को वीडियो गेम्स और कंप्यूटर्स की दुनिया से थोड़े समय के लिए निकालकर किस्से-कहानियों की किताबों की दुनिया में ले जाना होगा और यह दायित्व अभिभावकों और शिक्षकों दोनों का है। इस तरह हिंदी की कई पत्र-पत्रिकाएँ अपने अंदर हिंदी के मूल स्वरूप को सँजोकर रखे हुए हैं और उसी रूप में उसके विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं।

मौजूदा दौर ब्रॉडकास्ट मीडिया का है। लोगों के घरों में मौजूद टेलीविजन भाषा और संस्कृति पर गहरा असर डाल रहा है। दरअसल, टेलीविजन की शुरुआत ही भारत में एक नई क्रांति लेकर आई थी, अपने जैसे लोगों को एक छोटे से डिब्बे में चलते-फिरते देख लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ, पर जिस बात ने दर्शकों को टेलीविजन से जोड़ा, वह थी हिंदी, उनकी अपनी भाषा, जिसे वे प्रतिदिन एक-दूसरे से बोलते थे, जिस भाषा में वो जीते थे, जिसमें सोचते थे, उसी भाषा में बातचीत करते टेलीविजन के किरदार उन्हें अपने लगने लगे। फिर जब पूजाघर में रखी 'रामायण' और 'महाभारत' के पात्र साक्षात टेलीविजन पर दिखने लगे तो सुबह के वक्त ही सड़कों पर सन्नाटा छाने लगा। लोग टेलीविजन के सामने घंटों हाथ जोड़कर बैठे रहते। कारण सिर्फ धार्मिक नहीं था, बल्कि भाषा और शिक्षा से भी जुड़ा हुआ था। जिस 'रामायण' को सुनने के लिए बूढ़ी दादी को अपने पढ़े-लिखे पोते-पोती या घर के दूसरे सदस्य से मान मनौव्वल करनी पड़ती थी, क्योंकि उन्हें पढ़ना नहीं आता था, अब वही 'रामायण' उन्हें अपनी मातृभाषा हिंदी में न सिर्फ सुनने को मिल रही थी बल्कि किरदारों के माध्यम से उनके प्रिय राम और कृष्ण की सारी लीलाएँ वे अपनी आँखों से देख भी रही थीं। अगर रामानंद सागर और बी.आर. चोपड़ा ने सबसे पहले हिंदी भाषा को दरकिनार कर पंजाबी, गुजराती या किसी और क्षेत्रीय भाषा में इन पौराणिक धारावाहिकों का निर्माण किया होता तो शायद उन्हें इतनी ख्याति नहीं मिलती। इस तरह एक और तथ्य यह भी है कि संचार माध्यमों ने हिंदी के प्रसार-प्रचार में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, हिंदी ने उन माध्यमों और उन से जुड़े लोगों को उतना ही लाभान्वित किया है।

अस्सी के दशक से प्रारंभ हुआ संचार माध्यमों और हिंदी का रिश्ता अटूट होता चला गया और नित अनोखे रुप में सामने आ रहा है। मुझे याद है कि बचपन में हमारे माता-पिता हमें हिंदी समाचार सुनने को कहते थे। सिर्फ सामान्य ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि शुद्ध हिंदी के शब्दों को सुनकर अपने हिंदी शब्दकोश को बढ़ाने के

अस्सी के दशक से प्रारंभ हुआ संचार माध्यमों और हिंदी का रिश्ता अटूट होता चला गया और नित अनोखे रुप में सामने आ रहा है। मुझे याद हैं कि बचपच में हमारे माता-पिता हमें हिंदी समाचार सुनने को कहते थे। सिर्फ सामान्य ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि शुद्ध हिंदी के शब्दों को सुनकर अपने हिंदी शब्दकोश को बढ़ाने के लिए भी। हिंदी के विस्तार में संचार माध्यम किस तरह काम कर रहे हैं इसका एक बहुत ही छोटा और ताजा उदाहरण मुझे अपने घर के सामने रह रहे तमिल भाषी परिवार में देखने को मिला।

लिए भी। हिंदी के विस्तार में संचार माध्यम किस तरह काम कर रहे हैं, इसका एक बहुत ही छोटा और ताजा उदाहरण मुझे अपने घर के सामने रह रहे तमिल भाषी परिवार में देखने को मिला। उस परिवार के सदस्य आपस में तमिल में बात करते हैं और मुझसे या आस-पड़ोस के दूसरे लोगों से टूटी-फूटी हिंदी में, पर आश्चर्य मुझे तब होता है जब उनके घर के टीवी से ज्यादातर मुझे हिंदी धारावाहिकों की आवाज आती सुनाई देती है और घर की महिला सदस्य नियमित तौर पर बहुत से हिंदी धारावाहिक देखती हैं। साफ है कि अगर उस घर में टीवी न होता तो हिंदी शायद उनके परिवार का एक अभिन्न हिस्सा न बनती। यह तो बस एक छोटा सा उदाहरण है, ऐसे न जाने कितने ही परिवार देश-विदेश में होंगे, जहाँ टेलीविजन हिंदी की उपस्थिति दर्ज़ कराने और बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मनोरंजन का छोटा परदा (धारावाहिक) और बड़ा परदा (फ़िल्म) दोनों ही संचार माध्यमों की अंगुली थामे अपनी टीआरपी के साथ-साथ हिंदी को भी आगे बढ़ा रहे हैं। भारत में टेलीविजन की शुरुआत से लेकर अब तक मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक, धार्मिक, साहित्य, कला और खेल से जुड़े कार्यक्रमों का प्रसारण अलग-अलग चैनल्स पर होता आ रहा है और ज्यादातर कार्यक्रमों की भाषा हिंदी ही है।

न्यूयॉर्क टाइम्स ने 11 फरवरी, 2007 को एक लेख प्रसारित किया, यह भारत में टेलीविजन का स्वर्णकाल है। उस लेख के अनुसार 2007 के आँकड़ों में भारत में करीब 10.5 करोड़ घरों में टेलीविजन है। जितनी गति से टेलीविजन घर-घर तक पहुँचा, उतनी ही रफ्तार से हिंदी ने भी अपने पैर गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों में जमाए। भारत में अनुकूल बाजार और उदार अर्थव्यवस्था के चलते कई विदेशी प्रसारणकर्ताओं ने यहाँ अपनी जगह बनाई, जिनमें स्टार टी.वी., एम टी.वी., डिजनी, डिस्कवरी आदि प्रमुख हैं और सभी ने हिंदी को अपनी प्रमुख भाषा का दर्जा दिया है। टेलीविजन की बात हो और विज्ञापनों का जिक्र न हो तो बात अधूरी रह जाएगी। हर आधे घंटे के कार्यक्रम में छह या आठ मिनट के विज्ञापन दिखाए जाते हैं। कार से लेकर अचार तक के विज्ञापन आते हैं और नब्बे फीसदी की भाषा हिंदी ही होती है। विज्ञापनों में समाज के उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक के लोगों को हिंदी बोलते दिखाया जाता है। विज्ञापन के किरदारों को अपनी भाषा में उत्पाद की तारीफ करते देख दर्शक भी उस उत्पाद की तरफ आकर्षित होते हैं, उत्पाद पर भरोसा करते हैं और फिर बाजार से खरीद उसे अपने घर ले आते हैं। इस तरह विज्ञापन हिंदी के माध्यम से घर-घर को अपने उत्पाद से जोड़ते हैं और हिंदी विज्ञापन के कंधे पर चढ़कर नई दुनिया देखती है।

सिर्फ टेलीविजन ही क्यों, रेडियो को हम किसी भी रूप में दरकिनार नहीं कर सकते। आवाजों का यह छोटा सा पिटारा हम कभी भी किसी भी स्थान पर अपने साथ ले जा सकते हैं। हिंदी गानों, हिंदी समाचार, हिंदी नाटक, ज्ञान विज्ञान और न जाने कितने ही मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक कार्यक्रमों की पोटली है यह। ऑल इंडिया रेडियो यानी कि आकाशवाणी और रेडियो तो हिंदुस्तान में एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं। सन् 1930 यानी कि दूरदर्शन से पहले आकाशवाणी का रिश्ता जुड़ा है भारतीयों से, और हिंदी तो आत्मा है आकाशवाणी की। सीमा पर तैनात जवान हो या खेतों में काम करता किसान, किताबों में खोया विद्यार्थी हो, सड़क पर रेहड़ी लगानेवाला हो या फिर घर पर फुरसत के चंद पल बिता रही कोई गृहिणी, आकाशवाणी की हिंदी सेवा हर जगह हर वक्त उनके साथ है, किसी के मनोरंजन का साधन है तो किसी के भविष्य का पथप्रदर्शक। दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं में भी आकाशवाणी की सेवाएँ उपलब्ध हैं, लेकिन सबसे ज्यादा लोकप्रियता और विस्तार हिंदी सेवा का है। इस विस्तार का ही परिणाम है कि भारत के पूर्वोत्तर हिस्से से लेकर दक्षिण तक हिंदी ने सभी को जोड़ने का काम किया है। रेडियो की पहुँच और लोकप्रियता में एफ.एम. रेडियो स्टेशनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और साथ ही हिंदी को भी युवाओं का युवा साथी बना दिया है। (रेडियो बंगलौर भारत का पहला प्राइवेट रेडियो स्टेशन है, जिसका प्रसारण 3 जुलाई, 2001 को शुरू हुआ)। भारत के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग एफ.एम. रेडियो स्टेशन हैं, जो सुबह से लेकर रात तक अपने-अपने स्तर पर मनोरंजक कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं। इनकी हिंदी वो हिंदी या कहें कि हिंग्लिश है, जो आज के अधिकांश महानगरों के युवाओं की भाषा है। इनकी व्याकरण, वर्तनी या प्रवाह चाहे जैसा हो, पर आधार एक मजबूत हिंदी ही है और यहीं वजह है कि ये करोड़ों युवाओं के करीबी साथी बनते जा रहे हैं। साफ है, अगर हिंदी के अतिरिक्त किसी और भाषा को प्रमुखता दी जाती तो भारत में इनका इतना लोकप्रिय होना कठिन था। भविष्य में एफ.एम. रेडियो स्टेशनों पर समाचार प्रसारण के साथ ही हिंदी को भी नई ऊँचाई मिलेगी। कई देशों के रेडियो स्टेशनों ने भी हिंदी की लोकप्रियता को देखते हुए अपने देश में रह रहे हिंदी भाषी लोगों के लिए अपनी सेवाएँ शुरू कीं, हालाँकि इसके पीछे उनका प्रचार का एजेंडा था। इसमें ब्रिटिश प्रसारणकर्ता बी.बी.सी., जर्मनी का डॉयचे वेले और संयुक्त राज्य अमरीका का वॉयस ऑफ अमेरिका प्रमुख हैं। हिंदी भाषा सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संचार की प्रमुख भाषा बनती जा रही है और संचार के सभी प्रमुख साधन हिंदी के विकास में अपना प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान दे रहे हैं।

सबसे आधुनिक संचार माध्यम कंप्यूटर और इंटरनेट भी हिंदी

की लोकप्रियता से अछूते नहीं है। आज मैं यह लेख अपने लैपटॉप पर हिंदी में लिख रही हूँ, इस तरह संचार के इस नए माध्यम ने मुझे अपनी भाषा में सोचने के साथ-साथ लिखने की भी आज़ादी दी है, इतना ही नहीं, हिंदी लेखन को बहुत ही आसान भी बना दिया है, कागज, स्याही की बचत भी इसकी एक और उपलब्धि गिनाई जा सकती है। इंटरनेट की दुनिया में हिंदी भाषी भी अपनी भाषा में तमाम पठन सामग्री ढूँढ़ सकते हैं और अपना ज्ञान बढ़ा सकते हैं, तमाम जानकारियों से भरे गूगल, विकीपीडिया सभी ने हिंदी की लोकप्रियता और सहजता सुगमता को देखते हुए इसे अपनी एक प्रमुख भाषा बना लिया है। दुनिया के तमाम जाने अनजाने लोगों को जोड़ने और एक-दूसरे के करीब लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले फ़ेसबुक पर भी लाखों की संख्या में लोग अपने विचार व्यक्त करने को हिंदी का सहारा ले रहे हैं या यों कहें कि हिंदी के माध्यम से लोग अपने विचार और राय ज़्यादा प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त कर पा रहे हैं। कहते हैं, आज के ज़्यादातर आंदोलन सड़कों पर नहीं बल्कि सोशल मीडिया के मंच पर लड़े जा रहे हैं और हिंदी इनकी अगुवाई में पीछे नहीं है। पहले कलम का सिपाही सिर्फ एक पत्रकार या लेखक हो सकता था, पर आज इंटरनेट की दुनिया हर इन्सान के लिए एक स्याही का काम कर रही है और ब्लॉग कलम बनते जा रहे हैं। कोई लेखक हो या न हो, इंजीनियर, डॉक्टर, समाजसुधारक या फिर छात्र-छात्राएँ कोई भी अपना ब्लॉग बनाकर अपने विचार व्यक्त कर सकता है और दूसरों की राय बदलने में अहम भूमिका निभा सकता है। भारतीय संविधान से नागरिकों को जो अभिव्यक्ति की आज़ादी का अधिकार मिला है उसका वास्तविक प्रयोग तो आज सोशल मीडिया और ब्लॉग्स पर देखने को मिलता है। इन सब के बीच हिंदी भी अपने नए रूप में देखने को मिलती है। कई लेखकों ने अपने ब्लॉग के जरिए हिंदी लेखन को एक नया मंच दिया है कही चाहे मतभेद हो, नए विचारों पर बहस हो, समस्याओं के समाधान ढूँढ़े जा रहे हो या फिर सामाजिक नवचेतना पर चर्चा की जा रही हो, हिंदी वहाँ सदैव मंचासीन है और सबकुछ उसे केंद्र में रखकर होता है। आशा की जा सकती है कि आने वाले समय में जनसंचार के दूसरे माध्यमों की तरह ही यह भी एक महत्वपूर्ण व्यक्तिगत माध्यम बनकर उभरेगा।

संचार माध्यमों का स्वरूप, पहुँच, उद्देश्य और काम करने का ढंग चाहे जैसा भी हो, हिंदी के वर्तमान स्वरूप के विकास में सभी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। संचार माध्यमों की ही देन है, जो हम हिंदी को धरा के एक छोटे से हिस्से से निकालकर विश्व पटल पर विराजमान करने का स्वप्न देख रहे हैं। याद होगा कि भारत दौरे के वक्त अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपने देश के व्यापार जगत् के लोगों को हिंदी पर भी जोर देने को कहा था। हालाँकि कई विद्वानों और हिंदी साहित्यकारों का मानना है कि ये संचार माध्यम हिंदी के मूल स्वरूप को विकृत कर रहे हैं, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इस पर एक विस्तृत बहस हो सकती है, कई जगह इस मुद्दे पर मतभेद जारी भी हैं। संचार माध्यमों को सुनने, समझने और ग्रहण करने वाले लोग एक सामान्य रिक्शाचालक से लेकर साहित्य के बड़े विद्वान दोनों होते हैं, ऐसे में सामान्य बोलचाल की भाषा ही उपयुक्त होती है संचार के लिए, अगर क्लिष्ट हिंदी का प्रयोग संचार माध्यम करने लगें तो एक बहुत बड़ा समुदाय ज्ञान और जागरूकता से वंचित रह जाएगा। मैं हिंदी की कोई प्रकांड विद्वान नहीं हूँ, न हिंदी की उत्पत्ति और उसके इतिहास को बार-बार खँगालने की कोशिश की है, पर मेरा मानना है कि किसी भी भाषा पर किसी का एकाधिकार नहीं हो सकता, दुनिया में जल और वायु एक ही है, पर हर पग पर उसके स्वरूप और तेवर में अंतर देखने को मिलता है फिर भाषा को कोई कैसे कैद कर सकता है। किसी भी भाषा को उसकी सजहता और सुगमता ही लोकप्रिय बनाती है और हिंदी भी अपने अंदर इन भावों को समेटे हुए है, रहा सवाल उसके मूल स्वरूप का, तो जब तक हिंदी सजीव है, उसके मूल स्वरूप को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। और जब हम बात हिंदी के विश्व स्वरूप की कर रहे हैं तो हमें कुछ परिवर्तन तो स्वीकार करने ही होंगे। अंत में बस कुछ पंक्तियों के माध्यम से अपनी भावना व्यक्त करना चाहूँगी।

मैं हिंदी हूँ सिर्फ भाषा नहीं एक जीवन हूँ जीवनशैली हूँ
पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक फैली हूँ
हर जाति, धर्म और भाषा के लोगों के साथ हो ली हूँ
किसी की सखा, किसी की सहेली हूँ।
मैं हर परिवेश, और समय में घुलमिल जाती हूँ
परिवर्तन सृष्टि का नियम है इसे मैं भी मानती हूँ और बदलाव को खुले दिल से मैं भी स्वीकारती हूँ।
मैं हर माँ की लोरी में, उसके बेटे का दुलार हूँ
मैं मंदिर में प्रार्थना, मस्जिद में नमाज और गुरुद्वारे की अरदास हूँ।
मैं हिंदी हूँ...मैं हिंदी हूँ...मैं हिंदी हूँ।

स्त्रोत—http://www.importanceoflanguages.com/LearnHindi/
http://www.nytimes.com/2007/02/11/business/yourmoney/11india.html?pagewanted=all
http://en.wikipedia.org/wiki/Hindi_media

133/एम/202 किदवई नगर, कानपुर
(उ.प्र.) 208011, भारत
shikh.pib@gmail.com

□

26

हिंदी वेब साहित्य-हर विमर्श की झलक है हिंदी वेब साहित्य में

डॉ. सुनीलकुमार लवटे

विश्व की उन्नत भाषाएँ तथा उनमें लिखा जानेवाला साहित्य इन दोनों के अद्यतन रूप का लेखा-जोखा जब भी आज हम लिखते हैं, तो उसका आधार होता है उस भाषा और साहित्य का वर्तमान वेब रूप। जहाँ तक हिंदी भाषा और साहित्य का सवाल है, हिंदी वेब विश्व की उन्नत एवं प्रगत भाषा और साहित्य की बरक्स कतई कम नहीं है। इतना ही नहीं, वेब पर उसकी उपस्थिति अंग्रेज़ी, स्पैनिश, जापानी, मंडरीन (चीनी), फ्रेंच जैसी भाषाओं से होड़ लेती नज़र आती है। आवश्यकता है हिंदी वेब के प्रति हिंदी साहित्यकारों, अनुसंधानकर्ताओं, प्राध्यापकों, पत्रकारों एवं आम प्रयोगकर्ताओं की अनुप्रयुक्त प्रतिबद्धता (Applied Commitment) की, रोज़ाना वेब प्रयोग की।

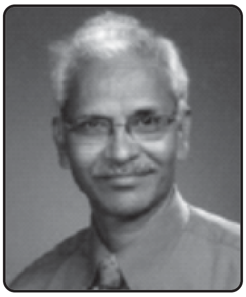

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.। मराठी तथा हिंदी साहित्यिक समीक्षक, अनुवादक एवं संपादक।

कृतित्व : महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र) के भूतपूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष एवं प्राचार्य। भारत के लिए अनेक पाठ्यपुस्तकों का संपादन। वि.स. खांडेकर के उपन्यास, कहानी तथा रूपक कथाओं के अनुवाद प्रकाशित।

पुरस्कार : केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली द्वारा दो बार पुरस्कृत। 'पद्मश्री अनंत गोपाल शेवडे हिंदी सेवा पुरस्कार' से सम्मानित। आपके निर्देशन में अनेक विषयों पर एम.फिल. तथा पी-एच.डी. के लिए अनुसंधान कार्य हो चुके हैं।

वर्तमान शतक सूचना-संचार प्रौद्योगिकी का माना जाता है। यही कारण है कि हिंदी भाषा और साहित्य पर इसका वर्चस्व बढ़ रहा है। संगणक का प्रारंभ दूसरे विश्वयुद्ध से हुआ। सन् 1939 में पहला संगणक बना। तब उसका प्रयोग मात्र अंकीय प्रक्रिया से गणितीय समस्याएँ हल करने के लिए किया जाता था। आज जब संगणक की दसवीं पीढ़ी कार्यरत है, तब उसका प्रयोग अंकीय प्रक्रिया के साथ-साथ अक्षरीय क्रियाकलापों के लिए समानांतर हो रहा है। संगणक का जितना प्रयोग विज्ञान, तंत्रज्ञान, रसायन, रक्षा, अभियांत्रिकी के लिए होता है, उतना ही भाषा, साहित्य, संस्कृति, संपर्क, संवाद, संदर्भ, प्रकाशन, ज्ञान के प्रचार-प्रसार शिक्षा, अनुसंधान के आदान-प्रदान में भी होता है। संगणक के व्यापक प्रचार-प्रसार, प्रयोग का आधार उसका अंतर्जालीय महाजाल है। उसने एक और नए ज्ञान समाज की निर्मिति की है, वहीं दूसरी ओर संपर्क संस्कृति को जन्म दिया है। फ़ेसबुक, ब्लॉग, ट्विटर, इ-मेल से वे नई सभ्यता, संस्कृति बनी है, वैसे वेब पोर्टल, वेबसाइट्स से भी। उसने मनुष्य की पहचान, क्रियाकलाप, गतिविधियाँ बदल दीं। भूस्थित नागरिक कभी 'सिटीजन' कहलाया जाता था, अब वह आभासी दुनिया के सर्वव्यापी होने से 'नेटीज़न' माना जाने लगा। स्थानिक जन बिना पोर्ट, पासपोर्ट, वीज़ा के विश्वसंचारी मानव बने हैं मात्र वेब दुनिया से। हिंदी वेब साहित्य को जन्म देनेवाली पहली वेबसाइट का नाम भी इत्तेफाक से 'वेब दुनिया' ही था, जो सन् 1999 में क्रियान्वित हुई थी।

इसे देखते हुए हिंदी वेब भाषा और साहित्य का इतिहास मात्र एक तप (बारह वर्ष) का होकर भी उसका जो विस्तार और विकास है, वह हज़ार वर्ष के लिखित साहित्य इतिहास की तुलना में गतिशील और बहुआयामी निश्चित है। उसने 'मसि कागज छुओ नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ' वाली कबीर की उक्ति को आभासी (वर्च्युअल) रूप में अलग तरह से मूर्त बनाया है। आज हिंदी में पचास पोर्टल्स कार्यरत हैं। लगभग दस हज़ार वेबसाइट हैं। हिंदी ब्लॉग चार हज़ार हैं। उन पर हिंदी भाषा और साहित्य संबंधी संसाधन, सामग्री जो आए दिन प्रकाशित हो रही है, उसने वर्तमान हिंदी भाषा विज्ञान, साहित्य, इतिहास के प्रचलित स्वरूप को बदला है। विशेषकर अंतर्जाल पर उपलब्ध भाषा और साहित्य की वेब सामग्री के ऑफलाइन एवं ऑनलाइन रूपों ने पारंपरिक मुद्रित भाषा और साहित्य

में प्रक्रिया, गतिविधियाँ, साहित्य रूप, शैली आदि में मौलिक योगदान देकर उसके प्रयोजनमूलक स्वरूप के जरिए स्थिर से गतिशील बना दिया है।

हिंदी भाषा और लिपि के संसाधनों का विकास

हिंदी भाषा संबंधी जो विभिन्न वेबसाइट हैं तथा विविध संसाधन अंतर्जाल पर आज उपलब्ध हैं, उनसे हिंदी भाषा और लिपि के लेखन, वर्णमाला, वर्तनी, व्याकरण, शब्दार्थ, वाक्य-रचना आदि के निर्देशन, अध्ययन, अध्यापन का व्यापक क्षितिज खोलकर हर जिज्ञासु हिंदी अध्येता के लिए विश्वव्यापक कैनवास मुहैया कराया है। अफ्रीका खंड के जंगलों की दूरदराज़ बस्ती हों या मॉरीशस जैसी चारों ओर से समुंदर से घिरी बस्ती, ज़मीन हो, जहाँ अध्येता है वहाँ अध्ययन का साधन सूचना और संपर्क क्रांति के उपग्रहीय विस्तार से प्राप्त हुआ है, जो मुद्रित सामग्री के अभाव में कभी अटका, लटका था। संसाधनों के सर्वव्यापी होने से हिंदी भाषा और लिपि का प्रयोग एवं उसकी विधि विश्वव्यापक बनी। यह कार्य भारतवर्ष और विदेश में भी शैक्षिक संस्थानों के अहातों में बरसों से आबद्ध था, तब तक प्रयोगकर्ता मर्यादित थे। अब ऑनलाइन, ऑफलाइन साधनों से हिंदी प्रयोगकर्ताओं की तादाद अप्रत्याशित रूप से बढ़ी। अब हिंदी जनसंख्या जनगणना की मोहताज नहीं है। वह हर क्लिक और लाइक से दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। हिंदी अनुवाद, संपादन, लिप्यंतरण, पाठ्यक्रम, टंकन, संक्षेप, विस्तार, मुद्रित सामग्री का पठन, वाक् सामग्री का लेखन सारी भाषा प्रक्रियाएँ करनेवाले साधनों के ऑफलाइन, ऑनलाइन रूपों ने हिंदी भाषा-भाषी की सैद्धांतिक मर्यादा को अनुप्रयुक्त बना डाला है। मोबाइल्स, आइपॉडस्, एंड्राइड्स से यह अनुप्रयुक्तता गतिशील होकर आम आदमी की मुट्ठी में आई है। वह गूगल, शब्दज्ञान, वर्डनेट जैसे पोर्टल्स के ज़रिए शब्दार्थ, विलोम, मुहावरे, कहावतें आदि संबंधी अपनी जिज्ञासाएँ उँगलियाँ नचाकर स्वयं अध्ययन से हल करने लगा है। उसकी इस सक्रियता से 'बाएँ हाथ का खेल' मुहावरा ही खारिज हो गया है।

आज हिंदी शब्द संपादन प्रक्रिया टंकन और मुद्रण में आसान हुई मात्र वर्ड प्रोसेसर्स से। टंकन के साथ सजावट भी आज सहज बना है। टंकित सामग्री को पंक्तिबद्ध करना, जोड़ना, घटाना, बढ़ाना, क्रियाएँ स्वयंचलित या आदेशानुसारी बनने से भाषिक क्रियाओं का सुलभीकरण संभव हुआ है। इससे मेहनत, पैसा, समय की जो बचत हुई, उससे अब भाषिक प्रयोग और प्रक्रिया की गति की गुनावट गिनना असंभव हुआ है। भाषिक प्रक्रिया के स्वयंचलित वर्तनी संशोधक, स्वयंचलित संरचना और सज्जा, स्वयंचलित शब्दपूर्ति, स्वयंचलित सारलेखन की जो सुविधाएँ सॉफ़्टवेयरों ने हिंदी संस्करणों के रूप ने उपलब्ध कराई हैं। उससे सारी भाषिक क्रियाएँ स्वयंचलित बनी हैं। आज अनुवाद, संपादन एक क्लिक मात्र से तथा लिप्यंतरण पलक झपकते होता है। यह देखना हो तो हिंदी भाषा का चयन कर गूगल, विकिपीडिया की एक बार सैर करो। हाथ कंगन को आरसी क्या? अनुभूति ही हकीकत बनते आप अनुभव करेंगे। भाषा के ऑनलाइन पाठ्यक्रम अब किताब, अध्यापक, ग्रंथालय की छुट्टी करने के कगार पर खड़े हैं। विकिपीडिया ने एन्साइक्लोपीडिया को हाशिए पर कब का ढकेल दिया है। माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस 2010 के संस्करण ने मुद्राक्षर, हाशिया, दो शब्दों और पंक्तियों में अंतर, पंक्तिबद्धता, बुलेट्स, नंबर्स, संशोधन, संपादन, अनुवाद, स्थानांतरण, लिप्यंतरण, चयन, प्रेषण, मुद्रण सब को हर मर्ज़ की एक ही दवा करार दिया है।

हिंदी प्रयोगकर्ता को टंकन, संपादन, अनुवाद, लेखन में शब्दों की वर्तनी को लेकर आशंका होती है। ऐसे समय अंतर्जाल पर उपलब्ध वर्तनी जाँचक/संशोधक टंकक, लेखक, अनुवादक के लिए अध्यापक, सहायक, निर्देशक का कार्य कर शब्दों के शुद्ध उच्चारण, शब्दों के संदर्भानुवर्ती विभिन्न पर्याय (जैसे 'Bharat' के लिए भरत, भारत, भरता, भर्ता आदि) स्वयंचलितता से उपलब्ध कराकर शब्द प्रयोग में सुगमता, सुविधा, सहजता लाई है। यह पर्याय मुद्रित शब्दकोश की सुविधा में उपलब्ध नहीं था।

हिंदी वेब साहित्य प्रकाशन की अपनी विशेषताएँ हैं। वह लिखते ही (टंकित करने की देरी) दुनिया के कोने-कोने में पल भर में पहुँच जाता है। कभी-कभी तो लिखते-लिखते (जैसे चैटिंग में) पाठकों की प्रतिक्रियाएँ (पसंद, नापसंद, प्रतिसाद, निषेध, अभिनंदन।) मिलती हैं। पाठक लिखित, प्रकाशित सामग्री का ओपन फोरम में संशोधन, समीक्षा, सुझाव से साझीदारी करता है। यह सुविधा मुद्रित साहित्य के संदर्भ में बड़ी देरी और प्रतीक्षा से ही संभव होती है। वेब साहित्य की अपनी प्रकृति है। वह संक्षिप्त होता है और प्रतिक्रियात्मक भी। वेब साहित्य के लेखक और पाठक दुनिया भर फैले होते हैं। यह देखा गया है कि, वे काव्य, कहानी, व्यंग्य लिखना, पढना अधिक पसंद करते हैं।

मुद्राक्षर चयन, मुद्राक्षर परिवर्तन, लिप्यंतरण की आंतर्जालीय या वेब सुविधा से हम क्षणार्ध में देवनागरी लिपि की सामग्री ब्रेल, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, जापानी, उर्दू किसी भी लिपि में और उस लिपि के विभिन्न मुद्राक्षरों में परिवर्तित कर सकते हैं। हिंदी लेखन को वरदान साबित हुए इन सॉफ़्टवेयरों से लेखन, टंकन, अनुवाद, लिप्यंतरण व्यवहार कितना सरल, श्रममुक्त हुआ है, यह वे ही लोग जान पाएँगे, जिन्होंने टाइपराइटर पर काम किया है और मुद्रण की ट्रेडल मशीन पर मुद्रण प्रक्रिया को गैली प्रूफों से कभी सहेजा है। यह भाषा और लिपि के वेब रूप के कारण ही संभव हुआ है।

वही बात ऑनलाइन शब्दकोशों की। एक भाषा के किसी शब्द को दुनिया की किसी अन्य भाषा में क्या कहा जाता है, यह देखना हो तो अलमारियों से बोझिल शब्दकोशों के ढेर उठाने, पलटने की आज आवश्यकता नहीं रही। शब्द टंकित करते ही मनचाही भाषा में शब्दांतर, अर्थ पाने का चमत्कार अलाउद्दीन के जादुई चिराग से कम आश्चर्यकारक नहीं है।

पाठ विश्लेषण, पाठ प्रक्रिया, शब्दानुक्रमणिका की सुविधाओं ने मनोविज्ञान, अपराध खोज, पुलिस, रक्षा, जासूसी आदि क्षेत्रों में नई क्रांति सी ला रखी है। हस्ताक्षर जाँच, मन:स्थिति का परीक्षण और परिष्करण, भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन आदि अब मनुष्य के श्रम की बात नहीं रही है। शब्द वर्गीकरण, शब्दों की छँटाई, संग्रहण, आवृत्ति की गणना एक आदेश भर में अब संभव है।

उपर्युक्त सारी सुविधाओं, संसाधनों को देखकर कोई भी कल्पना कर पाएगा कि वेब रूप से हिंदी भाषा और लिपि का दायरा कितना व्यापक और बहुआयामी बना है। इंटरनेट की इस सुविधा ने हिंदी को अपने संसाधनों के विकास के बलबूते पर विश्व की उन्नत भाषाओं की श्रेणी में लाकर उसे विश्व भाषा बनाया है। आज अंग्रेज़ी के वाचिक, लिखित, टंकित, संपादित, भाषांतरित सारे पर्याय, संसाधन हिंदी में उपलब्ध हैं। कमी है प्रयोगकर्ताओं की। हिंदी के इन संसाधनों का प्रयोग व्यावसायिक क्षेत्रों (मुद्रण, टंकन, प्रकाशन, माध्यम, सिनेमा, उद्योग आदि) में जितना होता है उतना उसका प्रयोग साहित्यिक, अनुसंधाता, अध्यापक, छात्र नहीं करते। प्रकृति का एक कालातीत एवं अपरिवर्तनीय सिद्धांत है। 'जिस चीज का प्रयोग नहीं होता, वह झड़ जाती है या खत्म होती है।' हिंदी को विश्व भाषा बनाने के लिए वेब प्रयोग की प्रतिबद्धता आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी है।

हिंदी वेब साहित्य का नया क्षितिज

हिंदी पोर्टल्स, वेबसाइटों के विकास से आज हिंदी मुद्रित साहित्य के समानांतर हिंदी वेब साहित्य की एक प्रतिसृष्टि सदृश्य दुनिया का निर्माण हुआ है। आज इंटरनेट पर साहित्य की विभिन्न वेबसाइटों पर विविधांगी साहित्य का दैनिक प्रसारण होता है। इसके अलावा ब्लॉग्स, फ़ेसबुक, चिट्ठे आदि पर जो साहित्य प्रसारित, प्रकाशित होता है वह अलग। इन्हें छोड़कर समाचार-पत्रों के ई-साहित्यिक संस्करण, रविवारीय संस्करण, पत्र-पत्रिकाओं के ई-संस्करणों के ज़रिए विपुल साहित्य संपदा का प्रकाशन होता है। वह सब स्तरीय भले हो न हो, पर इससे साहित्य प्रकाशन का क्षितिज असीम बनने में मदद ज़रूर मिली है। अब शौकिया लेखक, कवि, प्रकाशक, संपादक की ओर आँखें गड़ाकर नहीं बैठता। उसने अपने चिट्ठे खोल रखे हैं।

जहाँ तक स्तरीय वेब साहित्य के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार की बात है, अंतर्जालीय रचना में उनकी भी भरमार है। स्तरीय हिंदी साहित्य प्रकाशित करनेवाली वेबसाइटों में उल्लेखनीय हैं— 'रचनाकार', 'अनुभूति', 'अभिव्यक्ति', 'लघुकथा', 'सृजनगाथा', 'भारतीय पक्ष', 'हिंदी साहित्य मंच', 'प्रवक्ता', 'गर्भनाल', 'ई-विश्व', 'हिंदी चेतना', 'लेखनी', 'साहित्यशिल्पी' आदि। इन वेबसाइटों पर कहानी, एकांकी, रेडियो नाटक, निबंध, व्यंग्य, यात्रा विवरण, उपन्यास अंश (धारावाहिक), संस्मरण, डायरी, साक्षात्कार, समीक्षा, भाषा, व्याकरण, अनुवाद जैसी गद्य विधाओं में लेखन प्रकाशित होता है। पद्य में कविता, गज़ल, हास्य-व्यंग्य काव्य, गीत, अगीत, हाइकू, बाल कविताएँ, प्रेमगीत, विविध गीत, छंद, लंबी कविताएँ, क्षणिकाएँ, पहेली क्या नहीं प्रकाशित होता!

हिंदी वेब साहित्य प्रकाशन की अपनी विशेषताएँ हैं। वह लिखते ही (टंकित करने की देरी) दुनिया के कोने-कोने में पल भर में पहुँच जाता है। कभी-कभी तो लिखते-लिखते (जैसे चैटिंग में) पाठकों की प्रतिक्रियाएँ (पसंद, नापसंद, प्रतिसाद, निषेध, अभिनंदन) मिलती हैं। पाठक लिखित, प्रकाशित सामग्री का ओपन फोरम में संशोधन, समीक्षा, सुझाव से साझीदारी करता है। यह सुविधा मुद्रित साहित्य के संदर्भ में बड़ी देरी और प्रतीक्षा से ही संभव होती है। वेब साहित्य की अपनी प्रकृति है। वह संक्षिप्त होता है और प्रतिक्रियात्मक भी। वेब साहित्य के लेखक और पाठक दुनिया भर फैले होते हैं। यह देखा गया है कि वे काव्य, कहानी, व्यंग्य लिखना, पढ़ना अधिक पसंद करते हैं। लेखक, पाठक सभी जाति, धर्म, देश, भाषा, लिंग, उम्र के होते हैं। वेब पर प्रकाशित साहित्य कृति या रचना कितने पाठकों ने कितनी बार पढ़ी, इसका लेखा-जोखा लेखक को मिलने की स्वयंचलित सुविधा अंतर्जाल पर मूलत: उपलब्ध होती है। इससे उसका वैश्विक श्रेणीकरण अपने आप होता है। वेब साहित्य का प्रभाव क्षणिक भी होता है और कालजयी भी। वेब साहित्य डिजिटल या ई-रूप होने से उसका दस्तावेज़ीकरण

अपने आप होता है। इसमें संग्रहण, प्रेषण, प्रतिलिपि, पुराभिलेखन, अनुवाद, संपादन की सुविधा होने से उसका प्रचार, प्रसार, अनुवाद, अप्रत्याक्षित गति से होता है। वेब साहित्य में मुद्रित पत्र-पत्रिका, पुस्तकों के ई-संस्करण उपलब्ध होने से मुद्रित सामग्री का पाठक वर्ग भी दोगुना, तिगुना हुआ है। वेब पर प्रकाशित हिंदी साहित्य आशय, समस्या, स्वरूप, पात्र, भाषा सभी दृष्टि से देखा जाए तो पैदाइशी वैश्विक होता है।

हिंदी साहित्य जिन अंतर्जालीय संकेत स्थलों से प्रकाशित होता है, उनके अपने-अपने लक्ष्य होने के कारण वेब साहित्य मूलत: बहुविध और बहुआयामी होता है। हिंदी वेब कहानियाँ भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान पर आधारित और भविष्यलक्ष्यी होती हैं। भारतीय लेखक अपनी कहानियों के ज़रिए विज्ञान और अध्यात्म में मेल-मिलाप करते देखे जाते हैं। एक तरह से हिंदी वेब कहानी का रूप द्वंद्वात्मक रहा है। हिंदी वेब कहानियाँ भूमंडलीकरण की उपज रहती हैं। उनमें उदारीकरण, निजीकरण, बाज़ारवाद, सूचना और संपर्क क्रांति के परिणामों का चित्रण केंद्रीय वस्तु के रूप में उभरता परिलक्षित होता है। वेब कहानियाँ आकार-प्रकार से लघु, लघुतम, दीर्घ, मध्यम सभी प्रकार की तथा विभिन्न शैलियों में लिखी नज़र आती हैं। समय और इतिहास की दृष्टि से समग्र वेब साहित्य इक्कीसवीं सदी की देन है और वैसे ही कहानियाँ भी।

हिंदी वेब साहित्य में उपन्यास अंश, एकांकी, रेडियो नाटक, डायरी, संस्मरण, यात्रावृत्त, समीक्षा, भाषा, व्याकरण, अनुवाद की उपस्थिति अपवादस्वरूप होती है। व्यंग्य, कहानी, पुस्तक-परिचय पसंदीदा विधाएँ हैं—लेखक और पाठक दोनों स्तरों पर। उच्चांक है कविता का। वेब पर प्रकाशित साहित्य में दो तिहाई हिस्सा कविताओं का रहता है। अधिकतर साहित्यिक वेबसाइटें व्यंग्यात्मक निबंध प्रकाशित करती देखी गई हैं। इक्कीसवीं सदी विसंगत वर्तन, मूल्य पतन, नैतिक ह्रास, और व्यक्ति के दोगलेपन को अधोरेखित करती है। व्यंग्य निर्माण की दृष्टि से यह शतक उपजाऊ ज़मीन प्रदान करने का कार्य कर रहा है। इसके प्रति हमें गंभीर और अंतर्मुख होने की ज़रूरी है। वेब व्यंग्य तीखा, पैना और आक्रमक है। वह गुदगुदाता, हँसाता नहीं। यह फंतासी से हमें हकीकत से वाकिफ करता दृष्टिगोचर होता है।

वेब कविता का भंडार भावों का उमड़ता सैलाब है। अधिकतर रचनाएँ पूरे गांभीर्य से लिखी जाती हैं। इसमें रंजन की अपेक्षा समीक्षा की वृत्ति होती है। कवि मूल्यों के महत्व को अलम मानते नज़र आते हैं। वेब काव्य पाठकों को जगत् और जीवन के प्रति एक रचनात्मक दृष्टिकोण देता है।

हिंदी मुद्रित साहित्य में प्रवासी भारतीय लेखकों की उपस्थिति अपवादस्वरूप होती है। वेब साहित्य में इसके विपरीत स्थिति देखी जाती है। वेब साहित्यिक अधिकतर भारतीय और प्रवासी भारतीय रहे हैं। विदेशी मूल के लेखक जैसे वेब पर अपवाद रूप में देखे जाते हैं, वैसे ही हिंदी के ख्यातनाम साहित्यिक भी। वेब लेखकों में भारतीय मूल्य, परंपरा, संस्कृति का बेहद लगाव और आकर्षण प्रतिबिंबित होता है। अपनी मातृभूमि, मूल (जड़) तथा आत्मीय परिजनों से दूर रहने बसने की यह विधायक प्रतिक्रिया होती है। विदेशी संस्कृति के नकार, निषेध की प्रतिक्रियास्वरूप भी इसे देखा जा सकता है। यूरोप, एशियाई, अफ्रीकी, अमेरिकी, समाज और संस्कृति की यह परोक्ष रूप से आलोचना भी होती है।

हिंदी वेब लेखक शिक्षित, वैश्विक, संगणक साक्षर होने के कारण उनके पठन, पाठन, चिंतन की एक वैश्विक पृष्ठभूमि होती है। वे विभिन्न वाद, विचार, पक्ष, परंपरा, संस्कृति के अनुभव से संपन्न होते हैं। यथार्थवाद, प्रगतिवाद, अस्तित्ववाद, आधुनिकतावाद तथा उत्तर-आधुनिकतावाद की प्रवृत्तियाँ हिंदी वेब साहित्य में पाई जाती है। हिंदी वेब साहित्य विभिन्न विमर्शों को प्रतिबिंबित करता है, जैसे—स्त्री, दलित, तंत्रज्ञान, भूमंडलीकरण, पर्यावरण विमर्श। वेब साहित्य की भाषा अंग्रेज़ी प्रचुर होती है। अब हिंदी मुद्रित साहित्य में भी यह प्रवृत्ति हावी होती दिखाई दे रही है। लालित्य

आज हर भारतीय भाषा भाषियों में संगणकीय साक्षरता बढ़ रही है। पर अंतरजाल पर नियमित रूप से साहित्य लिखने का रिवाज़ हिंदी में नहीं हैं। हिंदी का जाना-माना लेखक पहले अंतरजाल पर लिखें और फिर छापें, यदि ऐसा क्रम वे जिस दिन अख्तियार करेंगे, उस दिन भारतीय भाषाओं के ज्ञानभाषा होने की यात्रा सही माने में आरंभ होगी। उसके लिए प्रत्येक भारतीय भाषाओं के पोर्टल्स लिप्यंतरण, अनुवाद की सुविधा से लैस होने चाहिए। भारत में यूनिकोड के ज़रिए समानीकरण का अनुकरणीय प्रयास हुआ है। पर उसका अपवादात्मक प्रयोग होने से हमारी उदासीनता ने उसका अपेक्षित असर व्यवहार में नहीं छोड़ा है। देवनागरी लिपि और अन्य भारतीय भाषाओं की लिपियों में बेहतर तालमेल ही उसका रामबाण उपाय है। पर हमारे भाषा वैज्ञानिक इस संदर्भ में जब पहल करेंगे वह सुदिन होगा।

और कलात्मकता की भी कोई कमी हिंदी वेब साहित्य में नहीं दिखाई देती। वह वैचारिक होता है और ललित, मनोहर भी।

भविष्य की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

विश्व में इंटरनेट के प्रयोग और हिंदी में इसके आरंभ के बीच तीन दशकों का अंतर है। वह अंतर वेब साहित्य के स्तर में भी देखा जा सकता है। विकिपीडिया, एन्साइक्लोपीडिया वर्तमान समय में संदर्भ का अद्यतन स्रोत है। उस पर साहित्य और भाषा संबंधी वेबसाइटों की सूची मिलती है। हर भाषा के अपने-अपने पोर्टल्स हैं। विश्व भाषाओं में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेन, डच, जर्मन जैसी भाषाओं की भाषा और साहित्य की वेबसाइटों का मुआयना करने पर पता चलता है कि विश्व में अंग्रेज़ी भाषा, साहित्य तथा विभिन्न ज्ञान, विज्ञानों की वेबसाइटें अधिक हैं। उसमें अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य की जो वेबसाइटें हैं, वे लेखक, विचार, वाद, भाषा, संस्था आदि के लिए समर्पित हैं। अकेली अंग्रेज़ी भाषा विषयक वेबसाइटें दुनिया भर से चलाई जाती है और उस पर दुनिया भर के लोग ऑनलाइन लिखते-पढ़ते हैं। उनमें भी स्टैटिक और इंटरेक्टिव प्रकार की वेबसाइटें हैं। अंग्रेज़ी ई-पत्रिकाएँ भी खूब हैं। उनका स्तर हिंदी की तुलना में उच्च होना स्वाभाविक है। अकेले शेक्सपीयर पर कितनी वेबसाइटें हैं। ऐसा प्रेमचंद के बारे में दिखाई नहीं देता। अंग्रेज़ी साहित्य इतिहास के कालखंडों, रचनाकारों, वादों आदि की भी अनेक वेबसाइटें हैं। इनके अलावा इस पर आधारित पी.डी.एफ. फाइल्स, पॉवर पॉइंट प्रेज़ेंटेशन, बुक रिव्यू, ई-कंटेंट, ई-बुक्स, को-लिंक्स, ब्लॉग, ट्विटर खोजे तो अलिबाबा की गुफा ही समझ लो। यह सिर्फ वैविध्य और संख्या का सवाल नहीं है। स्तर और संदर्भमूल्य से भी ये बढ़िया हैं। इंटरेक्टिव वेबसाइटों पर आदान-प्रदान करने की सुविधा होने से अंग्रेज़ी का वेबसाहित्य अपने आप विश्वव्याप्त हो जाता है। उसमें केरल का व्यक्ति लिखता है और सुदूर कोस्टारिका का भी। उसमें अपने आप एक बहुभाषिकता, बहुसांस्कृतिकता आ जाती है। अंग्रेज़ी भाषा की उदार नीति का यह नतीजा है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश को लीजिए। उसमें भारत के अक्षरशः सैकड़ों शब्द मिल जाएँगे। लिप्यंतरण, अनुवाद, संग्रहण, संपादन, संप्रेषण, प्रसंस्करण के जितने सॉफ़्टवेयर और प्रोग्राम अंग्रेज़ी के पास है, वह हमारे यहाँ कहाँ? जो हैं उनकी स्थिति न के बराबर है। गूगल पर हिंदी अनुवाद की सुविधा का इस्तेमाल कर देखने मात्र से उसके स्तर का आपको अंदाज हो जाएगा। यांत्रिक अनुवाद में हमें स्तर सुधार के बहुत प्रयास करने होंगे। विश्व को हम में समा लेने के लिए हमें विश्व में समा जाना होगा।

असमी, बँगला, बोड़ो, डोंगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मराठी, मलयालम, मणिपुरी, मैथिली, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु, उर्दू के अलावा भारत में अंग्रेज़ी भी प्रचुर मात्रा में प्रयोगित है। इन भाषाओं में से अधिकांश भाषाओं की वेबसाइटें अंतरजाल पर उपस्थित हैं। पर जहाँ तक अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य की वेबसाइटों और उन पर प्रकाशित साहित्य का सवाल है, इनका स्तर प्राथमिक है। जो व्यावसायिक वेबसाइटें हैं, उसका स्तर बढ़िया है। हिंदी की वेबसाइटें अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में फिर भी आश्वासक है। मराठी वेबसाइटें स्टैटिक अधिक है। उनमें भी पुरानी जानकारी, इतिहास, त्योहार, शुभेच्छा अस्मिता के लिए समर्पित अधिक है। दैनिक लेखन के लिए वेबसाइटों का अभाव अखरता है। वहाँ लेखकों के वेबसाइटें हैं, पर वस्तु-संग्रहालय जैसे स्थिर। उनमें संवाद, प्रतिक्रियाओं के आदान-प्रदान का अभाव है। गुजराती में शेयर्स, व्यवसाय के वेबसाइटों का जितना बोलबाला है, उतना भाषा और साहित्य का नहीं।

आज हर भारतीय भाषा-भाषियों में संगणकीय साक्षरता बढ़ रही है। पर अंतरजाल पर नियमित रूप से साहित्य लिखने का रिवाज हिंदी में नहीं हैं। हिंदी के जाने-माने लेखक पहले अंतरजाल पर लिखें और फिर छापें, यदि ऐसा क्रम वे जिस दिन अख्तियार करेंगे, उस दिन भारतीय भाषाओं के ज्ञानभाषा होने की यात्रा सही माने में आरंभ होगी। उसके लिए प्रत्येक भारतीय भाषाओं के पोर्टल्स लिप्यंतरण, अनुवाद की सुविधा से लैस होने चाहिए। यूनिकोड के ज़रिए समानीकरण का अनुकरणीय प्रयास हुआ है। पर उसका अपवादात्मक प्रयोग होने से हमारी उदासीनता ने उसका अपेक्षित असर व्यवहार में नहीं छोड़ा है। देवनागरी लिपि और अन्य भारतीय भाषाओं की लिपियों में बेहतर तालमेल ही उसका रामबाण उपाय है। पर हमारे भाषा वैज्ञानिक इस संदर्भ में जब पहल करेंगे, वह सुदिन होगा।

भारतीय भाषाओं के लिए समर्पित संस्था, संगठनों की ऐसी मानसिकता है, जो उनके व्यवहार से ऐसा विश्वास है कि अंग्रेज़ी भाषा से ही दुनिया तक पहुँचा जा सकता है। यही कारण है कि भारत के कितने ही विश्वविद्यालयों के भारतीय भाषा विभाग (मराठी, कन्नड, पंजाबी आदि) अपनी जानकारी अंग्रेज़ी में देते नज़र आते हैं। इसके विपरीत

राज्यभाषा या क्षेत्रीय भाषा के प्रकाशक (व्यावसायिक) मात्र अपनी भाषा में व्यवहार करते नज़र आते हैं। विश्वविद्यालयों के विद्वानों को उद्योजक, व्यावसायिकों से भाषा प्रयोग की दीक्षा लेने का समय आ गया है।

आज हर भारतीय भाषा-भाषियों में संगणकीय साक्षरता बढ़ रही है। पर अंतरजाल पर नियमित रूप से साहित्य लिखने का रिवाज हिंदी में नहीं हैं। हिंदी के जाने-माने लेखक पहले अंतरजाल पर लिखें और फिर छापें, यदि ऐसा क्रम वे जिस दिन अख्तियार करेंगे, उस दिन भारतीय भाषाओं के ज्ञानभाषा होने की यात्रा सही माने में आरंभ होगी। उसके लिए प्रत्येक भारतीय भाषाओं के पोर्टल्स लिप्यंतरण, अनुवाद की सुविधा से लैस होने चाहिए। यूनिकोड के ज़रिए समानीकरण का अनुकरणीय प्रयास हुआ है। पर उसका अपवादात्मक प्रयोग होने से हमारी उदासीनता ने उसका अपेक्षित असर व्यवहार में नहीं छोड़ा है। देवनागरी लिपि और अन्य भारतीय भाषाओं की लिपियों में बेहतर तालमेल ही उसका रामबाण उपाय है। पर हमारे भाषा वैज्ञानिक इस संदर्भ में जब पहल करेंगे, वह सुदिन होगा।

अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिंदी वेबसाहित्य की स्थिति आश्वासक होने का अंदाज़ आपको इंटरनेट पर उपलब्ध हिंदी भाषा और साहित्य की वेबसाइटों की सूची देखने से आ जाएगा।[1] यह संख्या की बात नहीं है। गुणवत्ता की कसौटी पर भी इसे परखा जा सकता है। भाषा का साधन विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उस भाषा के प्रयोगकर्ता अपनी भाषा का कितना प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए हमारे मोबाइल को लीजिए, उसमें हमारी भाषा के प्रयोग की सुविधा के होते हुए भी हम नंबर दर्ज़ करना, संदेश प्रेषण आदि कार्य अंग्रेज़ी में ही करते हैं। परंतु वे दूरदर्शन पर हिंदी देखना पसंद करते हैं। भाषा का विकास श्रमसाध्य होता है। सिर्फ भावुकता और अस्मिता की बात करने से नहीं होता है, इसे हमें ध्यान में रखना चाहिए।

हिंदी में नियमित रूप से ऑनलाइन कथा, कविता, विचार लिखनेवाले हिंदी प्रेमी हैं, इसलिए वेब पर हिंदी भाषा और साहित्य की सैकड़ों वेबसाइटें हैं। पर हिंदी के लब्धप्रतिष्ठित लेखक, प्राध्यापक, समीक्षक, आपको अंतरजाल पर न्यून संख्या में मिलेंगे। मिलेंगे तो भी क्लिप्स, बायोडाटा, एल्बम में। ब्लॉग, ट्विटर पर कितने हैं? किसकी अपनी वेबसाइट हैं? क्या वह रोज अद्यतन होती है? हिंदी विभाग अपने विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर क्या देते हैं? साहित्य या सेमिनार के वृत्त? क्या हिंदी का छात्र कोई कथा, कहानी नहीं लिखता? किस हिंदी विभाग की वेबसाइट पर वह नियमित रूप से प्रकाशित होता रहता है? संभावनाओं और साधनों के होते हुए भी यदि हम उन्हें इस्तेमाल नहीं करेंगे तो एक दिन झड़ जाएँगे, बंदर की पूँछ की तरह।

यदि हमारा लक्ष्य हिंदी को विश्व भाषा बनाना है…बनानी ही चाहिए, इसमें दो राय नहीं…सवाल पहल और प्रयोग का है। 'रचनाकार', 'अनुभूति', 'गर्भनाल', 'सृजनगाथा' जैसी वेबसाइट्स जो कार्य करती हैं, वैसा कार्य हिंदी की रोटी सेंकनेवाले हर व्यक्ति, संस्था, समाचार पत्र-पत्रिका, टी.वी. चैनल्स को करना होगा। हिंदी भाषिकों की वैश्विक जनसंख्या यदि दुनिया में तीसरी है, तो क्या हमें वेबसाहित्य में भी तीसरे पायदान पर नहीं होना चाहिए? जापान, जर्मनी, चेक भाषाएँ हिंदी में वेबसाइटें क्यों चलाएँ? आनेवाले दिनों में हमें अपनी उपयोजित प्रतिबद्धता सिद्ध करनी होगी, तभी हम हिंदी को विश्व भाषा बना पाएँगे। आइए, प्रण करें, प्रयोग करें, प्रतिबद्ध बनें।

संदर्भ

हिंदी वेब साहित्य, डॉ. सुनीलकुमार लवटे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भारत, प्रकाशन वर्ष 2013, पृष्ठ-336, मूल्य 600 रुपए।

'निशांकुर', रणनवरे वसाहत,
राजीव गांधी रिंग रस्ता, सुर्वेनगर,
कोल्हापुर-416007 (महाराष्ट्र)
भारत
drsklawate@gmail.com

□

कायर का जीना झूठा है, जो केवल डरना जानता है।
सच्चा जीवन वीरों का है, जो मरना जानते हैं।

—अज्ञात

27

मानकीकरण की शाश्वत समस्या और नए दौर की चुनौतियाँ

बालेंदु शर्मा दाधीच

बालेंदु शर्मा दाधीच प्रमुख हिंदी वेब पोर्टल प्रभासाक्षी. कॉम के समूह संपादक हैं।

उनके द्वारा विकसित प्रमुख हिंदी सॉफ़्टवेयर हैं—माध्यम (हिंदी वर्ड प्रोसेसर), स्पर्श (हिंदी टाइपिंग ट्यूटर), सटीक (फॉण्ट परिवर्तक), संशोधक (यूनिकोड वर्तनी संशोधक), छाया (हिंदी यूनिकोड ग्राफ़िक्स सॉफ़्टवेयर), हिंदीशिप (फ़ाइल संपीड़न युक्ति), वर्चुअल हिंदी टाइपराइटर (हिंदी टंकण सॉफ़्टवेयर) आदि।

सम्मिट नामक आई.टी. कंपनी कंप्यूटर पर हिंदी में काम करने के लिए लंबे समय से बहुत सारे फॉण्ट और एक कामयाब सॉफ़्टवेयर बेचती है, जिसका नाम है 'सम्मिट स्क्रिप्ट मैनेजर'। इस सॉफ़्टवेयर के माध्यम से हिंदी में कई तरह से टाइप किया जा सकता है। टाइप करने के इन अलग-अलग तरीकों को 'कीबोर्ड लेआउट' कहते हैं। सम्मिट ही क्यों, और भी कई कंपनियों के हिंदी शब्द संसाधकों और ऑफिस अनुप्रयोगों में ऐसे दर्जन भर कीबोर्ड लेआउट्स मिल जाते हैं।

इनके जरिए कोई एक दर्जन तरीकों से हिंदी में टाइप किया जा सकता है। एक कीबोर्ड लेआउट का प्रयोग करते हुए कोई कुंजी दबाने पर कुछ और टाइप होगा, जबकि किसी दूसरे लेआउट का प्रयोग करने पर वही कुंजी कुछ और टाइप करेगी। इन सब तरीकों के अपने-अपने नाम भी हैं। शायद 'इनस्क्रिप्ट' नाम आपने सुना होगा, जिसमें कीबोर्ड के J (जे) अक्षर को दबाने से र और L (आई) बटन को दबाने से ग टाइप होता है।

सम्मिट में इनस्क्रिप्ट तो उपलब्ध है ही, लेकिन वह साथ में और भी कई तरीकों से टाइप करने की सुविधा देता है, जैसे फोनेटिक, रेमिंगटन, लिंग्विस्ट, लाइनोटाइप, मोनोटाइप, कॉम्पसेट, देवयानी, अलंकार आदि-आदि।

लेकिन जरा इसकी तुलना अंग्रेज़ी से कीजिए। कंप्यूटर पर अंग्रेज़ी में टाइप करने के लिए कितने तरह के कीबोर्ड आते हैं? सिर्फ एक, जिसका नाम है—QWERTY। सन् 1936 में DVORAK नाम का एक अन्य Simplified कीबोर्ड भी एक बार आया था। आज भी विंडोज़, मैक और लिनक्स समेत ज्यादातर ऑपरेटिंग सिस्टमों में यह निष्क्रिय स्थिति में मौजूद है, लेकिन उसे इस्तेमाल करनेवालों की संख्या एक फीसदी भी नहीं है। आज चाहे कंप्यूटर हो, लैपटॉप हो, टैबलेट हो, स्मार्टफोन हो या कोई भी और डिवाइस, जब आप अंग्रेज़ी में टाइप करते हैं तो एक ही तरह के कीबोर्ड से करते हैं। क्या आपने ऐसे कीबोर्ड देखे हैं, जिनमें K बटन दबाने से L टाइप होता हो और U बटन दबाने से X? बिलकुल नहीं। चाहे आप दुनिया के किसी भी कोने में चले जाएँ, चाहे आप अपने अंग्रेज़ी मैटर का कोई भी फॉण्ट बदल लें, कंप्यूटर पर टाइप करने का तरीका एक और सिर्फ एक रहेगा।

इसी को मानकीकरण कहते हैं। रोमन जैसी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से कमजोर लिपि आज अगर सफल, लोकप्रिय, समृद्ध और विकासमान है तो इसका बहुत बड़ा कारण है—मानकीकरण। माना कि वहाँ पुट और But बट होता है, लेकिन हर परिस्थिति में, हर देश में, हर स्थान पर, हर पुस्तक में, हर कंप्यूटर में वह यही होता है। कुछ नियम हैं, जिनका पालन अंग्रेज़ी करती है और वे नियम कितने भी बेतरतीब, कितने भी असुविधाजनक क्यों न हों, अंग्रेज़ी उन पर कायम रहती है। ऐसा नहीं कि उसने दूसरे देशों की धाराओं को मान्यता नहीं दी है। भारतीय शैली की अंग्रेज़ी की भी अपनी अलग पहचान है तो अमेरिकी, ब्रिटिश, आस्ट्रेलियाई और दक्षिण अफ्रीकी अंग्रेज़ी की भी। लेकिन मानकीकरण के मूलभूत नियमों का वे पालन करती हैं। न सिर्फ आम जीवन में बल्कि टेक्नोलॉजी में भी। जहाँ अंग्रेज़ी के स्थानीय मानकों का प्रयोग अधिक प्रासंगिक है, वहाँ उन्हें वरीयता दी जाती है। लेकिन मानक वहाँ भी हैं, स्वच्छंदता नहीं।

दुर्भाग्य से, यही बात हिंदी और हमारी देवनागरी लिपि के बारे

में नहीं कही जा सकती। ऐसा नहीं कि सम्मिट ने एक दर्जन कीबोर्ड लेआउट उपलब्ध कराकर कोई गलती कर दी है। उसने वही किया, जो उसके कारोबार के अनुकूल था। लेकिन एक से अधिक टाइपिंग के तरीकों के रूप में दिखने वाली तकनीकी विविधता मानकीकरण के खिलाफ है। एक ही भाषा में अलग-अलग ढंग से काम करते लोग ऐसा कंटेण्ट तैयार करते रहते हैं, जो सिर्फ उसी सॉफ़्टवेयर में संपादित हो सकता है, जिसमें वह बना है। अलग-अलग किस्म के फॉण्ट, अलग-अलग कीबोर्ड लेआउट और एकदम अलग ढंग से काम करने वाले सॉफ़्टवेयर। और फिर आप इन्हीं तौर-तरीकों से बँधे रहें, उसके लिए डोंगल या सॉफ़्टवेयर लॉक अलग से।

तकनीक पर निर्भरता की ओर

क्या यह उपयोक्ता को उस तकनीक का गुलाम बनाने की कोशिश नहीं, जिसे वह इस्तेमाल कर रहा है? कंप्यूटर पर इनपुट के लिए उपभोक्ता किसी खास सॉफ़्टवेयर या युक्ति पर निर्भर क्यों बने? अंग्रेज़ी में देखिए। मानकीकृत कीबोर्ड के चलते वहाँ सॉफ़्टवेयर पर निर्भरता जैसी कोई बात नहीं है। अगर आपके कंप्यूटर में माइक्रोसॉफ्ट वर्ड न भी हो तो भी आप नोटपैड या वर्डपैड जैसे निःशुल्क उपलब्ध सामान्य सॉफ़्टवेयरों में अंग्रेज़ी में इनपुट कर सकते हैं। लेकिन अगर आप किसी गैर-मानकीकृत कीबोर्ड लेआउट का प्रयोग करते हैं तो हिंदी में इस तरह मनचाहे अंदाज में काम नहीं कर सकते। टेक्स्ट इनपुट के लिए आपको ऐसी युक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी, जो आपकी आदत के अनुकूल कीबोर्ड लेआउट मुहैया कराएँ। यहाँ मानकीकरण के प्रति गंभीरता का भाव नहीं है। यदि हिंदी में सभी लोग मानकीकृत ढंग से टेक्स्ट इनपुट करें तो अंग्रेज़ी की ही तरह हिंदी में भी अनावश्यक विविधता और युक्तियों पर निर्भरता की समस्या पेश न आए।

हिंदी में टाइप करने के दर्जनों अलग-अलग तरीके उपलब्ध रहे हैं। आखिर हमारे तकनीकविदों को इतना कष्ट उठाने की क्या जरूरत थी? किसी एक विज्ञानसम्मत पद्धति विकसित करते और उसी को प्रोत्साहित करते, लोकप्रिय बनाते तो काफी नहीं था? इतने तरीकों से तो दुनिया दूसरी दर्जनों भाषाओं का भला हो जाता! लेकिन कारोबार का तकाजा था। हमने एक मानक माँगा तो उन्होंने 50 पेश कर दिए। बताइए, अब आपको क्या शिकायत है?

मानकीकरण आ जाता तो सॉफ़्टवेयर बनाने वाली कंपनियों को नुकसान होता। उन्हें प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ता। ग्राहक कहीं भी जाने के लिए स्वतंत्र हो जाते। वे एक ही तरीके से सीखते और काम करते। उत्पादकता बढ़ती, लेकिन निर्भरता घट जाती। जिन्होंने तकनीकों और उत्पादों का विकास किया, वे भला क्यों चाहेंगे कि उन पर उपयोक्ता की निर्भरता घट जाए? कम से कम निजी क्षेत्र की भारतीय कंपनियों पर तो यह बात पूरी तरह लागू होती है।

जब सन् 2000 में माइक्रोसॉफ्ट विंडोज़ एक्सपी और विंडोज़ 2000 के जरिए कंप्यूटर पर पहली बार यूनिकोड हिंदी का आगमन हुआ तो उन सभी लोगों को बहुत हर्ष हुआ, जो फॉण्टों, कीबोर्ड लेआउटों और सॉफ़्टवेयरों की इस अराजकता से व्यथित थे। दुनिया की बड़ी-बड़ी कंपनियों और सरकारों ने मिलकर एक अंतरराष्ट्रीय पहल की थी, जिसके तहत ढाई सौ से ज़्यादा भाषाओं को यूनिकोड मानक के दायरे में लाया गया। मानकीकरण यूनिकोड का मूल तत्व, बुनियादी गुणधर्म था। उसने हर लिपि में काम करने के लिए संकेत चिह्न उपलब्ध कराए। साथ-ही-साथ उनके लिए अनुकूल मानक कीबोर्ड लेआउट की भी अनुशंसा की।

इनस्क्रिप्ट : देवनागरी के लिए अनुकूल

हिंदी के लिए यह मानक कीबोर्ड लेआउट इनस्क्रिप्ट था, जो हमारे यहाँ पहले से प्रचलित था और सबसे पहले सन् 1986 में भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा कंप्यूटर पर भारतीय भाषाओं में टाइपिंग के मानक के रूप में अधिसूचित किया गया था। सन् 2000 में माइक्रोसॉफ्ट ने यूनिकोड के अनुकूल मंगल फॉण्ट भी जारी कर दिया और तब लगा कि अब तकनीकी दुनिया में हिंदी ने मानकीकरण की दिशा में अंगद जैसा पाँव जमा लिया है। लगा कि अब सब लोग एक ही तरीके से टाइपिंग सीखेंगे और एक ही ढंग से काम करेंगे। मानकीकरण आ गया है तो तकनीकी दुनिया में हिंदी का प्रसार बढ़ेगा और उसके तकनीकी विकास की बची-खुची बाधाएँ भी जल्दी ही दूर हो जाएँगी।

आज 14 साल बाद जब तकनीकी दुनिया पर नज़र डालते हैं, तो यह देखकर खुशी अवश्य होती है कि ऐसे लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है, जो कंप्यूटरों, इंटरनेट और गैजेट्स पर हिंदी में काम करने में सक्षम हैं।

लेकिन अगर मानकीकरण के नजरिए से देखें तो यह खुशी अधिक देर तक टिकी नहीं रह पाती। इनस्क्रिप्ट के माध्यम से तकनीकी युक्तियों पर टेक्स्ट इनपुट करनेवालों की संख्या चिंताजनक अल्पमत में है। आधे-अधूरे, कामचलाऊ, हिंदी की प्रकृति से मेल न खाने वाले इनपुट माध्यम लोकप्रिय हो गए हैं।

जिस तरह आज मोबाइल फोन के माध्यम से हर नागरिक तकनीक के साथ जुड़ा हुआ है, उसे देखते हुए किसी भी भाषा के विकास, प्रसार और अच्छे स्वास्थ्य के लिए उसका तकनीक से तालमेल आवश्यक है। लेकिन किसी तकनीकी डिवाइस पर भाषा

को उपलब्ध करा देना मात्र पर्याप्त नहीं है। तकनीकी क्षेत्र में भाषा का मानकीकरण सुनिश्चित करना जरूरी है, क्योंकि कई बार जब तकनीक यह देखती है कि व्यक्ति उस पर निर्भर हो रहा है तो वह अपने उपयोगकर्ता को ही संभालने की कोशिश करने लगती है। हमने ऊपर उल्लेख किया था कि किस तरह तकनीकी कंपनियाँ तरह-तरह के फॉण्ट और कीबोर्ड लाकर उपयोक्ताओं को उन पर निर्भर बनाने लगी थीं।

तकनीक के मार्ग से भटक जाने से भाषा को होने वाला नुकसान तब विशेष तौर पर बढ़ जाता है, जब तकनीक के उपयोक्ता भाषायी दृष्टि से बहुत सक्षम, बहुत शिक्षित और उसकी शुद्धता या अशुद्धता से अधिक सरोकार रखने वाले न हों, जैसे कि हमारे आम टेलीफोन उपयोक्ता हैं। आज कुछ भी लिखने के लिए कलम और कागज की बजाय कीबोर्ड और टच-स्क्रीन का प्रयोग होता है। इसलिए भाषा को लेकर अगर कोई अनुशासन सुनिश्चित किया जाना है तो तकनीक उस अनुशासन से मुक्त नहीं हो सकती। हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुकी तकनीक आज भाषा को प्रभावित करने की स्थिति में है।

मानकीकृत टेक्स्ट इनपुट कैसा हो

तकनीकी क्षेत्र में भाषायी मानकीकरण के संदर्भ में निम्न आवश्यकताएँ विचारणीय हैं—

1. तकनीकी मानक भाषायी नियमों (प्रामाणिक चिह्नों, शब्द-रचना, वर्तनी, वाक्य-विन्यास आदि) का पालन करे। चिह्न मानकीकृत स्वरूप में हों और वैसे ही दिखें, जिस तरह हम उन्हें अपनी हस्तलिपि में अंकित करते हैं।
2. तकनीक के सभी स्तरों पर भाषायी एकरूपता सुनिश्चित की जाए। उदाहरण के लिए—
   - (क) इनपुट
   - (ख) आउटपुट (डिस्प्ले, मुद्रण आदि)
   - (ग) स्थानांतरण (इंटरनेट, इंट्रानेट, इ-मेल आदि)
   - (घ) भंडारण
3. हार्डवेयर और सॉफ़्टवेयर के विभिन्न प्लेटफॉर्मों पर भाषायी एकरूपता हो। विंडोज़ से मैक, एंड्रोइड से विंडोज़ा, स्मार्टफोन से कंप्यूटर, लैपटॉप से ईबुक रीडर, इंटरनेट से कंप्यूटर में हिंदी पाठ को लाते-ले जाते हुए उसमें कोई बदलाव नहीं होना चाहिए।

अंग्रेज़ी इन सभी स्तरों का लगभग सौ फीसदी पालन करती है। लेकिन हिंदी?

दुर्योग से हिंदी के भाषायी मानकीकरण और सरलीकरण के लिए चलनेवाली प्रक्रियाओं का हिंदी के तकनीकी विकास के साथ कोई तालमेल नहीं है। दोनों धाराएँ अलग-अलग चलती हैं। केंद्र सरकार के स्तर पर भाषायी परिमार्जन और परिवर्द्धन के प्रयास जहाँ मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से चलाए जाते हैं, वहीं तकनीकी विकास से जुड़े मामले सूचना प्रौद्योगिकी विभाग देखता है। इसी तरह, निजी, अकादमिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में होने वाले शोध, मीमांसा, मूल्यांकन, समीक्षा तथा अन्य भाषायी घटनाक्रम का तकनीकी क्षेत्र के साथ सीधा संबंध नहीं होता। यह आवश्यक है कि भाषायी विद्वान तकनीक की सीमाओं तथा विशेषताओं से परिचित हों, जबकि तकनीकी विशेषज्ञ तथा विकासकर्ता भाषा की जरूरतों तथा बदलावों को समझ सकें। जब तक इस तरह का तालमेल सुनिश्चित नहीं होता, तकनीक और भाषा अपनी-अपनी दिशा में चलती रहेंगी। उसके साथ ही तकनीकी मानकीकरण की स्थिति असंतोषजनक बनी रहेगी।

पुरानी विषयवस्तु कैसे बनी रहे प्रासंगिक

यहाँ एक समस्या सामने आती है। चूँकि तकनीक के सामने विभिन्न पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने का दायित्व भी है, इसलिए उसे ऐसे टूल्स मुहैया कराने भी जरूरी हैं, जो न सिर्फ आज के दौर की भाषायी जरूरतों को पूरा कर सकें, बल्कि पहले किए गए कामकाज को भी प्रयोग करने योग्य बनाए रखें। जब भी कोई नया सॉफ़्टवेयर आता है, तब इस बात की कोशिश की जाती है कि वह पुराने फॉरमैट्स, प्रोटोकॉल्स, फाइल सिस्टम आदि को एक सीमा तक समर्थन उपलब्ध कराता रहे। इसे बैकवर्ड कंपैटिबिलिटी कहते हैं। भाषा के संदर्भ में यह सुविधा बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यूनिकोड के आगमन से पहले तकनीकी क्षेत्र में किया गया भाषायी इनपुट सिर्फ इस कारण से अप्रासंगिक या बहिष्कृत नहीं हो जाना चाहिए कि वह गैर-मानकीकृत तथा लीगेसी (पुराने, अप्रचलित) तौर-तरीकों और पद्धतियों का प्रयोग करते हुए किया गया था। इसी तरह भविष्य में होने वाले बदलावों के साथ भी तालमेल बिठाने की क्षमता तकनीक के पास मौजूद होनी चाहिए, जिसे फॉरवर्ड कंपैटिबिलिटी कहा जाता है।

बैकवर्ड कंपैटिबिलिटी काफी हद तक मानकीकरण के विरुद्ध जाती है, लेकिन वह तकनीक का बुनियादी दायित्व है। हिंदी के संदर्भ में उसकी आवश्यकता असंदिग्ध है, जिसमें सैकड़ों किस्म के अलग-अलग ढंग से काम करनेवाले, चिह्नों की अलग-अलग संख्या वाले फॉण्टों और दर्जनों कीबोर्डों का इस्तेमाल करते हुए इनपुट किए गए टेक्स्ट की मात्रा बहुत अधिक है। इस दुविधा को दूर करने के लिए आवश्यक है कि लीगेसी पद्धतियों में इनपुट किए गए टेक्स्ट को यूनिकोड में परिवर्तित कर मानकीकरण के अनुकूल बनाया

जाए। यह एक भगीरथ कार्य है, लेकिन पूर्ण मानकीकरण सुनिश्चित करने के लिहाज से बेहद आवश्यक है।

हिंदी में पहला विरोधाभास पुराने फॉण्टों में इनपुट किए गए टेक्स्ट और नए यूनिकोड फॉण्टों के जरिए इनपुट किए जा रहे टेक्स्ट के बीच ही है। हालाँकि पुराने फॉण्टों का प्रचलन बहुत घट गया है, लेकिन पहले किया जा चुका कार्य एक तथ्य है। इन दोनों किस्मों की सामग्री के बीच दूरी जितनी कम होगी, मानकीकरण की स्थिति उतनी ही बेहतर होती चली जाएगी।

दूसरी बड़ी समस्या कीबोर्डों से संबंधित है। कहने को तो हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं का प्रामाणिक, आधिकारिक और मानक कीबोर्ड लेआउट इनस्क्रिप्ट है, लेकिन हिंदी उपयोक्ताओं के बीच लोकप्रियता के मामले में वह ट्रांसलिटरेशन नामक कीबोर्ड लेआउट से पिछड़ रहा है।

ट्रांसलिटरेशन का अर्थ है, रोमन के तरीके से में टाइप करके कंप्यूटर में हिंदी प्राप्त करने का तरीका। यानी राम लिखने के लिए अंग्रेज़ी में RAM लिखना। यह स्क्रीन पर देवनागरी के राम में बदल जाता है।

कंप्यूटर पर यूनिकोड हिंदी के आगमन ने हिंदी में टाइप करने के मानक तरीके, यानी इनस्क्रिप्ट, को लोकप्रिय बनाने का अच्छा अवसर दिया था, क्योंकि इस नए स्टैंडर्ड को लेकर हम शून्य से शुरुआत कर रहे थे। यूनिकोड हिंदी ने इस दिशा में काफी मदद की भी और जिन चार-पाँच दर्जन कीबोर्ड लेआउटों का उल्लेख मैंने पहले किया, उनमें से ज्यादातर का प्रयोग आज धीरे-धीरे बंद हो गया है। लेकिन दूसरी ओर अब हमने यूनिकोड स्टैंडर्ड का पालन करते हुए भी टाइपिंग की नई-नई पद्धतियाँ खोजनी शुरू कर दीं। एक ओर जहाँ माइक्रोसॉफ्ट ने हिंदी में यूनिकोड स्टैंडर्ड को आम यूजर्स तक ले जाने में अहम भूमिका निभाई, वहीं दूसरी तरफ बाजार के विस्तार की ललक में उसने कीबोर्ड के स्टैंडर्डाइजेशन को अहमियत नहीं दी। उसने खुद ही इंडिक इनपुट-1 और इंडिक इनपुट-2 जैसी ट्रांसलिटरेशन आई.एम.ई. पेश कर हिंदी में गैर-मानक तरीके से टेक्स्ट इनपुट को बढ़ावा दिया।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि जिन लोगों के पास हिंदी टाइपिंग का अभ्यास करने के लिए पर्याप्त समय नहीं है, उनके लिए ट्रांसलिटरेशन का प्रयोग आसान है। और भी कई भाषाओं में ऐसी सुविधाएँ उपस्थित हैं। लेकिन ट्रांसलिटरेशन को एक अतिरिक्त और तात्कालिक सुविधा के तौर पर ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उसे हिंदी में कंप्यूटर पर टेक्स्ट इनपुट की प्रधान इकाई के रूप में बढ़ावा नहीं दिया जा सकता। वैसे ही, जैसे फास्ट फूड आपके दैनिक भोजन का स्थान नहीं ले सकता।

गैर-मानकीकृत टेक्स्ट इनपुट की चुनौती

सबसे पहली बात तो यही है कि वह हिंदी कीबोर्ड मानक के खिलाफ है। लेकिन इसके अलावा और भी कई व्यावहारिक कारण हैं, जैसे—

1. इसमें पूर्ण शुद्धता के साथ टाइपिंग करने की गारंटी नहीं है, जैसे—उन्होंने ट्रांसलिटरेशन, किंकर्तव्यविमूढ़, मानसिकता, अन्वेषण, कन्वर्जिस जैसे अनगिनत शब्द।
2. संस्कृत के श्लोक, गूढ़ अक्षर आदि।
3. अंग्रेज़ी और दूसरी भाषाओं के शब्दों को उनकी मूल अंग्रेज़ी स्पेलिंग का प्रयोग करते हुए लिखना मुश्किल (नोलेज, अंकल, नेशनल)
4. अन्य देशों में प्रचलित रोमन स्पेलिंग नहीं चल पाएँगी (मॉरीशस के उदाहरण, धुरंधर, शिवसागर रामगुलाम, चिंतामणि, दक्षिण अफ्रीकी प्रयोग—शिवनाथ और लक्ष्मण (SEWNATH, Lutchman) आदि

ट्रांसलिटरेशन का प्रयोग करने वाले अनेक मित्र कहते हैं कि हमें अपने शब्दों को टाइप करने में कोई विशेष समस्या पेश नहीं आती और जो एकाध दिक्कत आती भी है तो वह उतनी महत्वपूर्ण नहीं है। हम दूसरे समानार्थक शब्द इस्तेमाल कर लेते हैं।

अगर आप ट्रांसलिटरेशन के जरिए काम कर पा रहे हैं तो उसकी वजह यह है कि माइक्रोसॉफ्ट, गूगल आदि ने अपनी आईएमईज की कमियाँ दूर करने के लिए उनके साथ कुछ ऐसे टूल प्रदान किए हैं, जो सॉफ़्टवेयर के स्तर पर काम करते हैं। मिसाल के तौर पर कुछ अक्षरों को टाइप करने के लिए आप करेक्टर मैप का इस्तेमाल करते हैं तो कुछ के लिए हिंदी आईएमई में दिए गए कीबोर्ड चार्ट का। फिर टाइपिंग के दौरान ऑटो सजेस्ट की सुविधा दी गई है, जिसमें सुझाए जाने वाले कुछ शब्दों में से माउस के जरिए अपने मतलब का शब्द आप चुन लेते हैं। मिसाल के तौर पर Rama लिखने पर आपको रम, राम, रमा और रामा शब्द सुझाए जाते हैं और आप उनमें से किसी एक का चुनाव कर लेते हैं।

सवाल उठता है कि इस तरह की सुविधाएँ देने की जरूरत क्यों पड़ी? क्योंकि इस तरह की टाइपिंग पद्धति की सीमाएँ हैं। वह आपकी आवश्यकता के लिहाज से शब्दों के इनपुट में सक्षम नहीं है। दूसरी ओर इन्हीं राम, रमा, रम और रामा शब्दों को मानक इनस्क्रिप्ट तरीके से टाइप करना चुटकियों का खेल है।

हिंदी या किसी भी भाषा के मानकीकृत कीबोर्ड की पहली अनिवार्यता है कि उसे उस भाषा में सटीक ढंग से टेक्स्ट इनपुट में सक्षम होना चाहिए। यूजर सिर्फ कीबोर्ड के जरिए अपनी बात टाइप कर सके, यह अनिवार्य है। क्योंकि कीबोर्ड का काम टेक्स्ट इनपुट

करना है। टेक्स्ट इनपुट के लिए आपको कीबोर्ड के साथ-साथ माउस और एक अतिरिक्त सॉफ़्टवेयर का भी इस्तेमाल करना पड़े, वह विज्ञान या तकनीक-सम्मत नहीं है। आप अंग्रेज़ी से तुलना करके देख लीजिए।

यह विज्ञान सम्मत इसलिए नहीं है कि बहुत सी डिवाइसेज पर माउस नहीं होता और बहुतों में अलग से सॉफ़्टवेयर नहीं चलाया जा सकता। ऐसा कीबोर्ड लेआउट, जो यूजर को इस या उस अतिरिक्त सुविधा के लिए मजबूर करता है, अक्षम है और भाषा का भला नहीं करने वाला।

जब माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, एपल और दूसरी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने देखा कि हम हिंदी भाषी अपनी भाषा की विशिष्ट तकनीकी युक्तियों में महारथ हासिल करने के लिए कुछ घंटे निकालने के लिए भी तैयार नहीं हैं, तो उन्होंने मध्यमार्ग निकालते हुए तुरंत ट्रांसलिटरेशन पद्धतियाँ सामने रख दीं। लीजिए, अब आप अपनी भाषा में काम कीजिए, हमारी भाषा के जरिए।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने कहा था—

और आज छीनने आए हैं वे
हमसे हमारी भाषा
यानी हमसे हमारा रूप
जिसे हमारी भाषा ने गढ़ा है
और जो इस जंगल में
इतना विकृत हो चुका है
कि जल्दी पहचान में नहीं आता।

अंग्रेज़ी के जरिए हिंदी लिखना हममें से बहुत से लोगों को एक आसान विकल्प प्रतीत हुआ। उसकी वजह से बड़ी संख्या में लोग हिंदी से जुड़े भी हैं, इससे इनकार नहीं है। ब्लॉगिंग, सोशल नेटवर्किंग आदि में हिंदी के प्रसार में इसका बड़ा योगदान रहा है और इसमें सिर्फ कंप्यूटर और इंटरनेट के प्रयोक्ताओं का दोष नहीं है। दोष सरकारी नीति के स्तर पर भी है, कारोबारी प्राथमिकताओं के स्तर पर भी है, जागरूकता के अभाव का भी है।

बुनियादी आवश्यकता

मुझे लगता है कि हमने हिंदी कंप्यूटर उपयोक्ताओं की एक छोटी सी जरूरत अगर पूरी कर दी होती तो हिंदी आईटी की दुनिया में इससे भी कहीं अधिक लोकप्रिय हो जाती और वह भी बिना किसी दूसरी भाषा, दूसरे लेआउटों का समर्थन लिए बिना। और वह जरूरत थी—कीबोर्ड पर हिंदी के चिह्नों को अंकित करने की अनिवार्यता, जैसा कि जापानी, चीनी, अरबी आदि भाषाओं के साथ होता है। पिछले वर्ष जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान एक प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसमें सरकार से आग्रह किया गया था कि वह तमाम आईटी हार्डवेयर कंपनियों को एक कानून के माध्यम से बाध्य करे कि अब कीबोर्ड्स में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी या संबंधित प्रांत की स्थानीय भाषा के चिह्न अंकित करना अनिवार्य होगा। ऐसे कीबोर्ड की अनुपस्थिति में यूजर अंग्रेज़ी में लिखे चिह्नों के आधार पर काम करने के लिए विवश हो जाता है। तकनीकी दुनिया में मानकीकृत हिंदी के प्रसार की वह पहली अनिवार्यता है।

भले ही ऐसे कीबोर्ड तुरंत उपलब्ध न हों, किंतु मैं आपसे आग्रह करूँगा कि हिंदी के मानक तकनीकी कीबोर्ड लेआउट, यानी इनस्क्रिप्ट को आजमाकर देखें। वह ट्रांसलिटरेशन या रोमन टू हिंदी से बहुत-बहुत बेहतर, बहुत शक्तिशाली और विज्ञान सम्मत है। सबसे अहम बात यह है कि वह संस्कृत, हिंदी और देवनागरी की ध्वन्यात्मक पद्धति के अनुकूल है।

इनस्क्रिप्ट में संयुक्ताक्षरों के उदाहरण पर गौर करके देखिए, तो आपको देवनागरी के साथ उसकी अनुकूलता स्पष्ट महसूस होगी। जैसे—विद्यार्थी लिखने के लिए व + इ मात्रा + द + हलन्त + य + आ की मात्रा + र + हलंत + थ + बड़ी ई की मात्रा। बिलकुल वैसे ही, जैसे हम बोलते हैं।

इनस्क्रिप्ट सीखना कतई मुश्किल नहीं है। हाल ही में दक्षिण अफ्रीका और मॉरीशस में हमने विश्व हिंदी सचिवालय के माध्यम से आयोजित कार्यशालाओं में लगभग 500 विदेशियों को इनस्क्रिप्ट के माध्यम से हिंदी में टेक्स्ट इनपुट करना सिखाया है।

चूँकि यह मानक कीबोर्ड है, इसलिए हर कंप्यूटर (विंडोज़, मैक और लिनक्स) और हर गैजेट (टैबलेट, स्मार्टफोन) में यह पहले से स्थापित आता है। और भविष्य में भी जिस तकनीकी युक्ति में हिंदी मौजूद होगी, उसमें इनस्क्रिप्ट कीबोर्ड लेआउट पहले से ही मौजूद होगा। क्योंकि यही यूनिकोड के साथ जुड़ा हुआ है, यही हिंदी का मानक कीबोर्ड है। यदि आप इसमें दक्षता प्राप्त कर लें तो हमेशा के लिए तरह-तरह के टूल्स ढूँढ़ने की समस्या से मुक्त हो जाएँगे। आप चाहें तो इनस्क्रिप्ट के अभ्यास के लिए लेखक द्वारा विकसित किया गया नि:शुल्क टाइपिंग ट्यूटर स्पर्श इस वेबसाइट से डाउनलोड कर सकते हैं—http://www.balendu.com/sparsh

फिर विविधता की ओर

आपको आश्चर्य होगा कि यूनिकोड में कीबोर्ड लेआउटों और IME की संख्या इनस्क्रिप्ट और ट्रांसलिटरेशन तक ही सीमित नहीं है। मानकीकरण को चुनौती देते हुए वह तेजी से बढ़ने लगी है। चार कीबोर्ड लेआउट और IME तो खुद माइक्रोसॉफ्ट ही देता है— इनस्क्रिप्ट, हिंदी ट्रेडीशनल, इंडिक इनपुट-1 और इंडिक इनपुट-2। मैकिंटोश पर दो लेआउट उपलब्ध हैं— देवनागरी और देवनागरी

QWERTY. गूगल के ऑनलाइन और ऑफलाइन ट्रांसलिटरेशन टूल हैं। याहू का भी ऑनलाइन टूल मौजूद है। उनके बाद हमारे सरकारी विभागों की फरमाइश पर भी माइक्रोसॉफ्ट ने कई कीबोर्ड लेआउट बना दिए हैं, जैसे GAIL और CBI कीबोर्ड, और इन सब में कई भिन्नताएँ हैं।

ट्रांसलिटरेशन पद्धतियों में मानकीकरण की तो बात करना ही बेमानी है, वहाँ तो जैसे उत्साह का विस्फोट सा हो रहा है, जिसकी वजह से करीब एक दर्जन किस्म के ट्रांसलिटरेशन आईएमई और कीबोर्ड आ गए हैं। मिसाल के तौर पर—माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलिटरेशन, गूगल ट्रांसलिटरेशन, आईट्रांस, बरहा, क्विलपैड, सुषा आधारित वगैरह-वगैरह। सबके अलग-अलग तरीके हैं। बड़ी स्वाभाविक जरूरत है कि यदि ट्रांसलिटरेशन पद्धति को जारी ही रखना है तो कम-से-कम उसे मानकीकृत तो करें। ऐसा एक मानक INSROT के रूप में उपलब्ध भी है, जिस पर अमल सुनिश्चित करना होगा।

क्षोभ की बात है कि हमने एक मानकीकृत स्टैंडर्ड यूनिकोड को अपनी सुविधा के लिहाज से गैर-मानकीकरण की दिशा में मोड़ लिया है। यह सिलसिला यों ही आगे बढ़ता रहा तो शायद हम घूम-फिरकर पुराने दौर में ही पहुँच जाएँ। कहते हैं कि इतिहास अपने आपको दोहराता है। अफसोस इस बात का है कि यह सब अनावश्यक है। सैकड़ों डेवलपर्स और कंपनियों की ऊर्जा अलग-अलग दिशाओं में खर्च हो रही है। यदि वे एक मानक का पालन करते तो यह ऊर्जा बेहतर कामों में लग सकती थी।

मुद्दे और भी हैं। यूनिकोड के अलग-अलग फॉण्ट्स के बीच समानता नहीं है। मिसाल के तौर पर उद्घाटन शब्द को यदि आप मंगल फॉण्ट में टाइप करते हैं तो वह अलग ढंग से दिखता है, जबकि एरियल यूनिकोड एमएस फॉण्ट में अलग ढंग से। इसी तरह से ऐश्वर्य शब्द मंगल, एरियल यूनिकोड एमएस और अपराजिता फॉण्ट्स में स्क्रीन पर अलग-अलग ढंग से उभरता है, जबकि तीनों यूनिकोड फॉण्ट हैं और एक ही कंपनी माइक्रोसॉफ्ट द्वारा जारी किए गए हैं। शृंगार को कंप्यूटर पर सही ढंग से लिखना आज तक संभव नहीं हो सका है। अद्‌भुत शब्द को लेकर मंगल फॉण्ट की विवशता बहुत अद्‌भुत है। एरियल यूनिकोड फॉण्ट जो दिखने में अधिक सुंदर है, में परिपक्व, अग्नि, श्लाघ्य, वाङ्मय, विश्लेषण, अश्लील आदि शब्दों को सही ढंग से लिख पाना मुश्किल है। हालाँकि वे व्याकरण की दृष्टि से गलत नहीं हैं, लेकिन लोक प्रचलन के लिहाज से सही नहीं हैं।

लिपि को प्रभावित करती तकनीक

आश्चर्य तब होता है जब तकनीक की यही सीमाएँ आम लोगों तक पहुँचने लगती हैं और वे उन्हीं को प्रामाणिक मानने लगते हैं। मिसाल के तौर पर मंगल फॉण्ट में द्वारा आदि को जिस तरह से लिखा जाने लगा, धीरे-धीरे वही तरीके हमारी दैनिक हिंदी में भी पहुँच गए। लोगों को लगा कि शायद देवनागरी में इन शब्दों को लिखने का यही प्रामाणिक तरीका है। गूगल ने अपने IME में पूर्ण विराम दिया ही नहीं। उसकी जगह पर डॉट का चिह्न दे दिया तो उसके अधिकांश यूजर्स ने अपनी रचनाओं और टिप्पणियों में पूर्ण विराम के स्थान पर डॉट का प्रयोग शुरू कर दिया। धीरे-धीरे यह प्रयोग चल निकला और बहुत से लोगों ने इसके समर्थन में दलीलें भी देनी शुरू कर दीं। मीडिया में भी कुछ संस्थानों ने बेचारे पूर्णविराम को त्याग दिया। गैर-मानकीकृत तकनीकों में भाषा के लिए ऐसे अनगिनत खतरे अंतर्निहित हैं।

हिंदी के फॉण्ट्स में किस तरह के चिह्न (Glyphs) प्रयोग किए जाएँगे, उसका एक मानक ISCII के दौर में बनाया गया था—ISFOC. यूनिकोड के लिहाज से भी ऐसा मानक बनाना होगा और सभी प्लेटफॉर्म्स पर उसका प्रयोग सुनिश्चित करना होगा।

नए दौर में मानकीकृत कीबोर्ड्स के सामने एक बड़ी चुनौती है—फॉर्म फैक्टर की। फॉर्म फैक्टर, यानी आकार-प्रकार। अलग-अलग आकार के गैजेट्स मानकीकृत कीबोर्ड लेआउटों के लिए बड़ी चुनौती हैं। नए गैजेट्स छोटे आकार के हैं। उनमें से कुछ आयताकार हैं और कुछ लंबवत् या Vertical और कुछ वर्गाकार हैं। कीबोर्ड के बटनों के लिए स्थान सीमित है। ऐसे में इनस्क्रिप्ट हो या कोई भी दूसरा कीबोर्ड, नए स्क्रीन साइजों के अनुसार उनके छोटे रूप भी विकसित करने की जरूरत है। ऐसा करते समय यूजर की सुविधा और तकनीकी बदलावों के साथ-साथ मानकीकरण की बुनियादी अवधारणाओं का पालन सुनिश्चित करना होगा। अन्यथा एंड्रोइड और आईओएस एप्लीकेशंस के दौर में देखते-ही-देखते हिंदी में टाइप करने के अनगिनत तरीके सामने आ जाएँगे।

तकनीकी शक्ति एक दुधारी तलवार है। अगर आम उपयोगकर्ता अपनी-अपनी युक्तियों (डिवाइसेज और गैजेट्स) पर गैर-मानकीकृत भाषा, गैर-मानकीकृत चिह्नों, कीबोर्डों आदि का प्रयोग करेंगे तो इस इंटरनेट/दूरसंचार-सक्षम युग में उसका प्रसार भी इस रफ्तार से होगा कि उस पर नियंत्रण कर पाना मुश्किल हो जाएगा। अराजकता का विस्फोट। धीरे-धीरे ये विकृतियाँ भाषा के मूल स्वरूप को भी प्रदूषित करेंगी। सच तो यह है कि वे ऐसा करने लगी हैं।

504, पार्क रॉयल, जीएच-80,
सेक्टर-56, गुड़गाँव-122 011
भारत
balendu@gmail.com

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य शताब्दी
(1913-2013)

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य की शताब्दी

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य अंतरराष्ट्रीय हिंदी साहित्य के लिए पथप्रदर्शक के रूप में तथा भारतेतर देशों में हिंदी साहित्य लेखन में अग्रणी रहा, जिसने अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी भाषा की स्थापना के लिए अमूल्य योगदान दिया।

मॉरीशस के हिंदी साहित्य का उद्भव 'होली' पर आधारित गणेशी की कविता तथा निबंध से हुआ था। यह मॉरीशस में उपलब्ध प्रथम प्रकाशित हिंदी साहित्य है। मॉरीशस में हिंदी साहित्य की नींव स्थापित करने वाली ये रचनाएँ 2 मार्च, 1913 को मणिलाल डॉक्टर द्वारा आरंभ की गई हिंदी-अंग्रेज़ी समाचार-पत्र 'हिंदुस्तानी' में प्रकाशित हुई थीं। इस वर्ष 2 मार्च, 2013 को इस ऐतिहासिक प्रकाशन ने सौ वर्षों की यात्रा पूरी की। मॉरीशसीय हिंदी साहित्य के लिए यह महत्वपूर्ण व ऐतिहासिक तिथि मील का पत्थर मानी जाती है।

इस महत्वपूर्ण तिथि को यादगार बनाना तथा मॉरीशसीय हिंदी साहित्य के बीज से लेकर संपूर्ण हृष्ट-पुष्ट, समृद्ध पेड़ बनने तक का वृत्तांत विश्व हिंदी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना समीचीन व आवश्यक हो जाता है।

वस्तुतः पत्रिका के इस अध्याय में मॉरीशस में हिंदी 'गद्य' व 'पद्य' साहित्य की शताब्दी पर विशेष आलेख प्रस्तुत हैं।

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य शताब्दी के उपलक्ष्य में विश्व हिंदी सचिवालय ने 2 मार्च, 2013 को एक शताब्दी महोत्सव का आयोजन किया था, जिसमें कुछ शैक्षिक व साहित्यिक गतिविधियों के अंतर्गत एक सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था। उस मंच से कुछ मॉरीशसीय साहित्यकारों व हिंदी विद्वानों ने मॉरीशस के हिंदी साहित्य के विभिन्न पक्षों पर शोधपत्रों के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत किए। उनमें से कुछ शोधपत्र इस भाग में प्रस्तुत हैं।

28

मॉरीशसीय गद्य-पहली शताब्दी

श्री रामदेव धुरंधर

जन्म : 11 जून, 1946 (कारोलिन ग्राम)। नागपुर विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर, अब तक अनेकों बार भारत यात्रा। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन सुरीनाम में सम्मानित। साहित्यिक संस्थाओं में हिंदी लेखन के लिए प्रशिक्षण देने में वर्षों से सक्रियता। स्थानीय रेडियो में तीन सौ से अधिक स्व लिखित एकांकी की प्रस्तुति। टी.वी. में धारावाही का प्रसारण। वसंत, रिमझिम और निर्माण पत्रिकाओं का संपादन। महात्मा गांधी संस्थान में सत्ताईस वर्ष प्रकाशन विभाग में कार्यरत रहे।

प्रकाशन : 'चेहरों का आदमी', 'छोटी मछली बड़ी मछली', 'पूछो इस माटी से', 'बनते बिगड़ते रिश्ते', 'पथरीला सोना', 'ढलते सूरज की रोशनी' *(उपन्यास)*। 'विष-मंथन', 'जन्म की एक भूल' *(कहानी संग्रह)*। 'चेहरे मेरे तुम्हारे', 'यात्रा साथ-साथ', 'एक धरती एक आकाश', 'आते-जाते लोग', 'मैं और मेरी लघु कथाएँ-संग्रह' *(लघु कथा संग्रह)*। 'कलजुगी करम-धरम', 'बंदे', 'आगे भी देख', 'चेहरों के झमेले', 'पापी स्वर्ग' *(व्यंग्य-संग्रह)*। 'इतिहास का दर्द' (फ्रेंच में अनूदित) *(नाटक)*।

2013 ई. में 'हिंदी गद्य के सौ वर्ष' शीर्षक से दो शब्द लिख रहा हूँ तो जाहिर है एक शती पूर्व के उस बिंदु पर मेरा ध्यान जाए, जब महावीर प्रसाद द्विवेदी (1870-1938) 'सरस्वती' पत्र का संपादन करते थे। खड़ी बोली का वह आरंभ काल था और उत्कर्ष काल भी। ब्रज भाषा से हो कर खड़ी बोली में आने का वह संक्रमण काल था। ब्रज भाषा ने पद्य से भारत भूमि को महिमा मंडित किया था और खड़ी बोली को पद्य और गद्य दोनों में अपनी पहचान के लिए संघर्ष करना था। वह संघर्ष सार्थक होता, क्योंकि भारतीय जन भाषा का प्रतिनिधित्व करने में एक यही भाषा अपनी सक्षमता का प्रमाण दे सकती थी। 'सरस्वती' के माध्यम से यही काम हुआ। सरस्वती पत्र पूरे भारत में छा गया था। इसमें छपना लेखकों के लिए बड़ी बात होती थी।

उर्दू से हिंदी में आए प्रेमचंद के लिए भी बड़ी बात रही होगी। बाद में वे ही प्रेमचंद स्वयं में इतनी बड़ी बात बन गए कि हिंदी सदा के लिए उनकी ऋणी हो गई। प्रेमचंद को कथा सम्राट कहा जाना उनकी गरिमा को रेखांकित तो करता ही है, गद्य सम्राट के रूप में भी उन्हें स्मरण करने में एक विशेष गरिमा है। कहा जाता है कि 'चंद्रकांता संतति' पढ़ने के लिए लोग हिंदी सीखते थे। खुशबू यह कहने में भी है कि प्रेमचंद को वे लोग भी पढ़ते थे, जो हिंदी जानते नहीं थे। प्रेमचंद ने काल्पनिक दुनिया की सैर नहीं करवाई। भारत की आत्मा, बल्कि मानवता की आत्मा से उन्होंने अपने पाठकों को रूबरू करवाया। गोदान, कफ़न, पूस की रात, कायाकल्प आदि उनकी ऐसी कृतियाँ हैं, जिनसे हिंदी गद्य को आगे की यात्रा के लिए जैसे पाँव मिले हों। बहुत कम ऐसे लेखक होते हैं जो इतिहास से भविष्य तक में अपनी हिस्सेदारी दर्ज़ कर पाते हैं। प्रेमचंद में त्रिकाल यात्रा की यह क्षमता थी, बल्कि अपने जीवन काल में ही वे ऐसे भविष्य बन गए थे, जिस भविष्य का वर्तमान बड़ा दमदार था और इतिहास अपनी पहचान में अटूट व स्वर्णिम। प्रेमचंद की सारी रचनाओं के आकलन से यह निकष हाथ लगता है कि उन्होंने हिंदी गद्य को भासमान करने के लिए जन्म लिया था। हम उनकी जिस 'गोदान' कृति को कालजयी मानते हैं, इसके प्रकाशन के दूसरे किनारे पर उनका मृत्यु-वर्ष भी पड़ता है। गोदान से उनकी साहित्यिक यात्रा पूरी हो गई। पर हिंदी जगत के लिए यहाँ से नया सवेरा उदित हुआ। न रहे प्रेमचंद की गद्य रचनाओं की मीमांसा शुरू हुई और साथ ही गद्य लेखन के लिए लोगों में उत्साह बनता चला गया।

भगवतीचरण वर्मा हिंदी के कवि हुए, गद्यकार भी। उन्होंने मंचीय कविता पाठ से अपनी पहचान का गवाक्ष खोला था। बाद में वे गद्य में आए तो इसी के हो गए। उनके बारे में 'सारिका' पत्रिका में छपा था—उन्होंने हिंदी गद्य से अपना तारतम्य स्थापित करने के बाद महसूस किया कि उनके लेखन का वास्तविक आधार तो इसी को होना चाहिए था। हिंदी गद्य की भारतीयता ने उन्हें यह कहने का संबल दिया था।

विष्णु प्रभाकर, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और यशपाल को हम गद्य लेखक के रूप में जानते हैं। विष्णु प्रभाकर का 'अर्द्धनारीश्वर', रेणु का 'मैला आँचल', अमृतलाल नागर का 'मानस का, हंस', 'हज़ारीप्रसाद द्विवेदी' का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', यशपाल का 'झूठा सच' गद्य की दृष्टि से अपनी एक विशेष अर्थवत्ता रखते हैं। मॉरीशस आए हमारे पूर्वज़ों की धरती बिहार से रामधारी सिंह दिनकर हुए, जिन्होंने गद्य और पद्य दोनों में लिखा। वे अपनी पद्य रचना 'उर्वशी' से जितने विख्यात हुए, उसी तरह 'संस्कृति के चार अध्याय' से वे गद्य धर्मी के रूप में हिंदी जगत में हमेशा बने रहेंगे। इन सभी को पढ़ने से साथ-साथ एक मिठास यह भी घुलती चलती जाती है कि गद्य के पद्यात्मक संस्करण से जुड़ रहे हैं। ये कृतियाँ जैसे हिंदी सीखने का भी द्वार खोलती हों। गद्य में धनी होना चाहें तो इसकी भी सामर्थ्य ये कृतियाँ प्रदान करती हैं। लेखक और भी अनेकानेक हैं, जिन्होंने गद्य से अपनी पहचान बनाई है। तभी तो गद्य साहित्य का कोना भरा पड़ा है। भारत से बाहर भी हिंदी गद्य का पठन-पाठन और लेखन चलता रहा है। इंग्लैंड, अमरीका, फ्रांस आदि देशों में भारतीय रोज़ी रोटी के लिए गए और गद्य में लेखन किया, यह हिंदी की उपलब्धियों का एक खास सौंदर्य है।

बल्कि मैंने तो केवल गद्य लिखा। मेरे भीतर बात कुछ इस तरह से पैठ गयी है कि गद्य जीवन के बहुत निकट पड़ता है। इस दृष्टि से मुझे बस यही सूझता है जीवन जैसा होता है गद्य उसे उसी रूप में देखता है। बालक अपने पिता से गद्य में ही तो चांद पाने का तकाजा करेगा। पद्य में बिंब इससे भी बड़ा हो सकता है, लेकिन गद्य छोटा होने का अपना कोई मनस्ताप नहीं बनाता। कुल मिला कर बात वहीं लौटती है मॉरीशस में जिसने भी, जैसे भी, हिंदी को पल्लवित पुष्पित करने में अपने श्रम और सद्‌भावना का अर्घ्य समर्पित किया वह गद्य का भी व्यक्तित्व रखता है, पद्य का भी और दोनों का भी। महत्व इस बात का है कि हिंदी की ही जय यात्रा के हम स्वप्नदर्शी हैं।

वास्तव में 'हिंदी गद्य के सौ वर्ष' शीर्षक इतना सघन और व्यापक है कि मैं महसूस कर रहा हूँ कि हिंदी गद्य के इतने मोती समेटकर भी मैं खाली हाथ रह जाने वाला हूँ। किसी एक गद्यकार पर बात करने के लिए न जाने कितने पन्नों की आवश्यकता पड़ जाए। जब कि मेरे सामने तो नाम ही नाम हैं, शिखर ही शिखर हैं। अभी हाल में यशस्वी लेखक राजेंद्र यादव के जीवन का अवसान हुआ। कमलेश्वर, राजेंद्र यादव और मोहन राकेश वे त्रयी नाम रहे, जिन्हें नई हिंदी कहानी के प्रतिष्ठाता के रूप में जाना गया। कहानी अर्थात हिंदी गद्य को इन्होंने अपने तरीके से, जो शिल्प और विधान दिया उसे एक धरोहर के रूप में देखा जाता है। कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया', मोहन राकेश का नाटक 'आधे अधूरे' और राजेंद्र यादव का उपन्यास 'सारा आकाश' सौ वर्षीय हिंदी गद्य साहित्य की वह संजीवनी शक्ति है, जो दूसरे लेखकों को बाध्य करती है कि इस तरह से तो लिख। हालाँकि ये तीनों भारतीय मध्य वर्गीय जीवन के विशेष रूप से चितेरे हुए। ऐसी परिस्थिति में इनसे वे मज़दूर अछूते रह गए, जिन्हें प्रेमचंद ने साधा था। परंतु लेखक अपनी परिसीमा बनाकर चलता है। लिखने के लिए बहुत होता है। लेखक उतने को एक साथ थाम नहीं सकता। पर जिसे थामे और उस पर समुचित प्रकाश डालकर सिद्ध कर सके, यह भी एक दुनिया होती है, वह लेखक निश्चित ही विजयी कहलाता है, पराजित कदापि नहीं।

राजेंद्र यादव ने 'हंस' पत्रिका का वर्षों संपादन किया। यह पत्रिका प्रेमचंद की विरासत थी। अब राजेंद्र यादव के न रहने पर इसकी भरपाई किस रूप में होगी, प्रेमचंद की विरासत किस ठाँव लगने वाली है, यह अनिश्चित है। धर्मवीर भारती द्वारा संपादित 'धर्मयुग' पत्रिका इन्हीं सौ वर्षों के बीच पैदा हुई। अपने तरीके से एक युग की रचना करने के बाद यह पत्रिका सदा के लिए बंद हो गई। इस पत्रिका ने सही मायने में गद्य को जिया था। धर्मवीर भारती काव्यकार के रूप में विख्यात थे। पर गद्य को महिमा मंडित करने का उन्होंने भगीरथी काम किया है। यहीं 'सारिका' के बारे में दो शब्द कह लूँ। यह कमलेश्वर के संपादन में वर्षों चलने वाली पत्रिका रही। हिंदी कहानी और सिर्फ हिंदी कहानी को भारतीय भूमि पर नए कलेवर से स्थापित करने का बीड़ा कमलेश्वर ने उठाया था। पर यहाँ भी इसी दुर्भाग्य को हावी पाया जाता है कि यह पत्रिका कमलेश्वर के जीवन काल में ही अंतिम साँस ले चुकी थी।

और बेशक भारतेतर देशों में मॉरीशस का नाम अग्रणी है। आज 'मॉरीशस में सौ वर्षों के गद्य' को उकेरने पर हम मणिलाल डॉक्टर के युग 1913 में अपने को पाएँगे। हालाँकि मणिलाल डॉक्टर 1913 से पहले के वर्षों में सक्रिय थे। पर नींव तो उन्हीं की थी। तब तक आप्रवासियों के मॉरीशस आगमन के काफ़ी वर्ष व्यतीत हो चुके थे। रोटी और व्यवस्थित जीवन के लिए संघर्ष जारी था। भाषा और संस्कृति की परिभाषा से अवगत होने से लोग इसके लिए अपने अंतस में सजगता बनाए रखते थे। उस मौके पर मणिलाल

डॉक्टर को अपने साथ पा लेना लोगों के लिए किसी वरदान से कम नहीं था। मणिलाल डॉक्टर ने अपने अखबार 'हिंदुस्तानी' के माध्यम से हिंदी भाषा की वास्तविक स्थापना पर पुरजोर बल दिया। इस दृष्टि से उन्होंने एक साथ दो काम किए। एक तो उन्होंने भारतीयता को उसका सही अधिकार दिलाने का प्रयास किया और दूसरा उन्होंने सिद्ध किया कि हिंदी इस देश में टिकने का सामर्थ्य रखती है। बेशक हिंदुस्तानी में पद्य प्रकाशित होते थे। पर उसका स्वर तो गद्य का होता था।

हिंदी गद्य ने मॉरीशस में क्रमबद्ध यात्रा की हो, इसका कोई लिखित इतिहास हमें उपलब्ध होने वाला नहीं है। पर यात्रा जैसे भी हुई हो, एक बात तय है हिंदी गद्य का अलख जगाए रखने वाले ज्यादा पढ़े लिखे होते नहीं थे। दूसरी बात यह कि गद्य लेखन अथवा पठन दुरूह भी तो होता है। ऐसे में सोचने की बात हो जाती है हिंदी गद्य ज्ञान के आधे अधूरे लोगों ने कैसे इस देश में अपनी मेहनत के वट वृक्ष बोये हों। काव्य की ओर उन्मुख होने का आधार तो स्वत: पहले से निर्धारित था, क्योंकि यहाँ लोगों के मन में तुलसीदास का काव्य वास करता था। इसी बीच मैथिलीशरण गुप्त की पद्य रचना 'भारत भारती' का मॉरीशस के हिंदीमना लोगों पर प्रभाव पड़ने लगा था। पर गद्य ने फिर भी अपनी यात्रा जारी रखी। बाद में प्रेमचंद की गद्य कृति 'गोदान' जब मॉरीशस पहुँची तो लोगों ने जैसे गहरे भटकाव के बाद एक निश्चित किनारा पा लिया हो। इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं, 'गोदान' को यहाँ रामायण जैसी चाह और भावना से पढ़ा गया है।

पूर्व पंक्तियों में मैंने भारत के जिन गद्य लेखकों की चर्चा की, उन लेखकों की रचनाएँ मॉरीशस पहुँचने पर निस्संदेह गद्य की समझ का क्षितिज विस्तृत होता गया। इस देश में शायद सब से पहले प्रोफेसर बासुदेव विष्णुदयाल ने 'गोदान' पढ़ा होगा। प्रोफ़ेसर जी के बाद सोमदत्त बखोरी जैसे स्वनामधन्य व्यक्ति से अपनी बात आगे बढ़ाना मुझे समीचीन लग रहा है। तब तक गद्यकार के रूप में अभिमन्यु अनत और कृष्णलाल बिहारी अपनी पहचान बना चुके थे। बखोरी जी उभरते हुए गद्यकारों के पितामह हुए। उन्होंने कहानीकार बनने की शैली हमें थमाई। उन्होंने पूरे मॉरीशस का हिंदी के नाम पर दौरा किया और हिंदी पढ़ने-लिखने-बोलने का अभियान चलाया। आज मॉरीशस में गद्य लेखक विस्तृत संख्या में न सही, तो भी सीमित संख्या में तो पाए ही जाते हैं।

उपन्यास, कहानी, नाटक, लघु कथा, व्यंग्य जैसी विधाएँ इन्हीं सीमित गद्यकारों के दम पर हमारे देश में अपनी पहचान बना रही हैं। फिलहाल इसे हम बूँद से अधिक तो नहीं मानेंगे। पर ऐसा भी कि इस बूँद में गहराई की क्षमता का हमें विश्वास है। अनत ने गद्य को एक मुकाम तो दिया ही। मैं अपना नाम भी सम्मिलित करने का लोभ सँवरण न कर पा रहा हूँ, बल्कि मैंने तो केवल गद्य लिखा। मेरे भीतर बात कुछ इस तरह से पैठ गई है कि गद्य जीवन के बहुत निकट पड़ता है। इस दृष्टि से मुझे बस यही सूझता है कि जीवन जैसा होता है, गद्य उसे उसी रूप में देखता है। बालक अपने पिता से गद्य में ही तो चाँद पाने का तकाजा करेगा। पद्य में बिंब इससे भी बड़ा हो सकता है, लेकिन गद्य छोटा होने का अपना कोई मनस्ताप नहीं बनाता। कुल मिलाकर बात वहीं लौटती है, मॉरीशस में जिसने भी, जैसे भी, हिंदी को पल्लवित-पुष्पित करने में अपने श्रम और सद्भावना का अर्घ्य समर्पित किया, वह गद्य का भी व्यक्तित्व रखता है, पद्य का भी और दोनों का भी। महत्व इस बात का है कि हिंदी की ही जय यात्रा के हम स्वप्नदर्शी हैं।

अपनी बात का अंत कुछ इस रूप में करना चाहूँगा। अंग्रेज़ी को कभी किसी दूसरी भाषा से खतरा नहीं हुआ। कहीं एक वाक्य लिखा हुआ मिलने वाला नहीं है कि अंग्रेज़ी को किसी भाषा से आतंकित होना है। पर हिंदी की बात जहाँ भी की जाती है, इसके साथ मानो 'खतरा' शब्द अनिवार्य रूप से जुड़ता है। दूसरे शब्दों में, हिंदी को हिंदी के अपने देश भारत में ही अवरोधों से वास्ता पड़ता है और लगता है, यही उसकी जीवनगाथा है। भाषा के मामले में यह भारत की चाहे गरीबी दर्शाती हो। पर ऐसा भी कि हिंदी के लेखक कवि इस भाषायी भारतीय गरीबी से बहुत ऊपर हिंदी में अपना मान-सम्मान पुख्ता करने में लगे हुए हैं। ऐसे लोगों को मॉरीशस के छोटे से लेखक के रूप में मेरा नमन।

कारोलिन, बेल-एर रिव्येर सेश,
मॉरीशस
rdhoorundhur@gmail.com

□

महान व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनंद देनेवाली,
उत्कृष्ट पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं।

— योगवासिष्ठ

29

मॉरीशसीय पद्य-पहली शताब्दी

श्री राज हीरामन

मॉरीशसीय कविता की एक शताब्दी को समझने या इसे अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए मैंने इसे पाँच भागों में बाँटा है, ताकि 'पंचतंत्र' की तरह यह सुगम और सहज हो :

(1) मॉरीशस की हिंदी कविता–1913–1933
(2) मॉरीशस की हिंदी कविता–1933–1953
(3) मॉरीशस की हिंदी कविता–1953–1973
(4) मॉरीशस की हिंदी कविता–1973–1993
(5) मॉरीशस की हिंदी कविता–1993–2013

प्रस्तावना-1913-1933

भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों ने इस भूमि पर मुद्रित देवनागरी लिपि पहली बार देखी जब 1907 में भारत से आए मणिलाल डॉक्टर ने 1909 में हिंदुस्तानी अखबार निकालना शुरू किया था। मणिलाल को युवा मोहनदास गांधीजी ने मॉरीशस में भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए भेजा था। गांधीजी स्वयं 1901 में इत्तेफ़ाक से मॉरीशस आ चुके थे और 19–20 दिनों तक जब तक यहाँ रहे, भारतीय मज़दूरों की गरीबी, उनका संकट और अंग्रेज़ों द्वारा ढाहे जा रहे ज़ुल्म देखकर गए थे।

सन् 1909 में हिंदुस्तानी, अंग्रेज़ी और गुजराती का एक साप्ताहिक था। बाद में वह अंग्रेज़ी–हिंदी में छपा और 1910 में साप्ताहिक से दैनिक हो गया। इसका प्रकाशन 1914 तक जारी रहा था। आज हमारे राष्ट्रीय लेखागार में हिंदुस्तानी के सिर्फ़ दो ही अंक सुरक्षित हैं (i) 15 मार्च, 1909 का पहला अंक और (ii) 2 मार्च का अंक, जिसमें होली कविता छपी है और जो मॉरीशस की पहली प्रकाशित कविता मानी जाती है। यह अंग्रेज़ों का षड्यंत्र था, जो इतने सारे सुप्रसिद्ध दैनिक हिंदुस्तानी के अंक आज अनुपलब्ध हैं।

राज हीरामन का जन्म 11 जनवरी, 1953 को मॉरीशस के उत्तरी प्रांत ग्रां बे में हुआ।

पाँच सालों तक प्राथमिक सरकारी पाठशाला में हिंदी अध्यापक रहे।

वे टाइम्स ऑफ इंदिया (बंबई) से पत्रकारिता में अनुभव प्राप्त कर चुके हैं।

उन्होंने मास्को (रूस) अंतर्राष्ट्रीय पत्रकारिता संस्थान से डिप्लोमा इन जर्नलिज्म प्राप्त किया तथा स्थानीय रेडियो और दूरदर्शन में चार सालों तक पत्रकार के रूप में कार्यरत रहे। साथ ही साथ राज हीरामनजी ने स्वदेश हिंदी साप्ताहिक का तीन सालों तक संपादन किया।

10 सालों से भी अधिक प्राथमिक सरकारी तथा माध्यमिक पाठशालाओं के हिंदी पाठ्य–लेखन पैनल का सदस्य रह चुके हीरामनजी आजकल महात्मा गांधी संस्थान के सृजनात्मक एवं लेखन विभाग में 'रिमझिम' तथा 'वसंत' पत्रिका के वरिष्ठ उप–संपादक हैं।

(1) मॉरीशस की हिंदी कविता 1913-1923

मॉरीशसीय कविता के 100 वर्ष पर लिखने से पहले यह बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यहाँ भारतीय गिरमिटिया मज़दूर (1934–1910) जब लाए जाने लगे तब उनकी भाषा भोजपुरी थी। यद्यपि महाराष्ट्र, बंगाल, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु से भी लोग आए, पर वे भी बहुसंख्यक बिहारियों की भाषा भोजपुरी ही बोलते थे।

देवनागरी का दूर–दूर तक नामोनिशान नहीं था। हाँ, रामायण, हनुमान चालीसा, संतनामा आदि ग्रंथ उन के साथ आए थे। दिन भर बैल की तरह खेतों में जोत–जात के बाद थक–हार कर उन्हीं धर्म–ग्रंथों को वे पढ़ने और भोजपुरी में बाँचकर समझ–समझाकर सुख पाते थे। चाहे वह हस्तलिखित पाठ्य सामग्री अवधी में हो या ब्रज में, कैथी में हो या नागरी में।

2 मार्च, 1913 के हिंदुस्तानी अंक में मॉरीशस की पहली कविता प्रकाशित है। हिंदुस्तानी के बहुत सारे अंकों के अभाव में 'होली' ही मॉरीशस की पहली कविता होने का गौरव पा रही है।

भारत से आए पं. लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी हिंदी के जानकार थे। उन्होंने 1923 में मॉरीशस भूमि का पहला कविता-संग्रह (बिहार से) छपवाया। संग्रह का शीषर्क 'रसपुंज कुंडलियाँ' है, यह देश का पहला पुस्तकाकार संग्रह है।

सन् 1913-1923 तक यही मॉरीशस की कविता का धूमिल चित्र है। पर इसे कविता का बीज भी कहा जा सकता है।

उपसंहार 1913-1933

ऐसा नहीं है कि इन 10 वर्षों में कविताएँ लिखी न गई हों। इस को प्रमाणित करने के लिए साक्ष्यों का अभाव है। 'हिंदुस्तानी' पहले-पहल अंग्रेज़ी और गुजराती में छपा। हिंदी, देवनागरी का प्रश्न ही नहीं आता था। बाद में 'हिंदुस्तानी' दैनिक छपता रहा, पर उस का एक भी अंक अभिलेखागार में सुरक्षित नहीं है। गिरमिटिया मज़दूरों के लिए हिंदी एक भाषा नहीं थी। पर इसका लिखित रूप देवनागरी में इस देश में अनुपलब्ध था, क्योंकि सब बिहार, बंगाल, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु के थे। हिंदी में शिफ्ट होने के लिए उन्हें समय चाहिए था और अंग्रेज़ों के अत्याचार, शोषण, अन्याय के आगे कहाँ किसी को फ़ुरसत थी पढ़ने-लिखने की। कविता तो बहुत दूर की बात थी। उचित शिक्षा-व्यवस्था भी एक अहम सवाल था, जो रेगिस्तान के पार थी।

(2) मॉरीशस की हिंदी कविता-1933-1953

मॉरीशस की हिंदी कविता पेड़ है। बीज था, पौधा बना और धीरे-धीरे बढ़ता गया। कितना बढ़ेगा, आगे के अध्यायों में आप स्वयं महसूस करेंगे। इस अध्याय में 1933 के बाद मॉरीशस की हिंदी कविता रुख बदलेगी, क्योंकि भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों के हक में लड़ने के लिए मॉरीशस के राजनीतिज्ञ तैयार हो गए और 'मज़दूर दल' का जन्म हो गया। दल के साथ-साथ हिंदी-प्रेमी आगे आए और स्वतंत्रता की आवाज़ बुलंद करने लगे।

सबसे महत्वपूर्ण बात थी—मोंताई लोंग में हिंदी प्रचारिणी सभा का जन्म। यह 1935 की बात है, यह संस्था इस देश की एकमात्र संस्था है, जो सिर्फ़ और सिर्फ़ हिंदी की सेवा आज तक कर रही है। प्रयाग विश्वविद्यालय के संचालन में स्थानीय हिंदी परीक्षाएँ करती आ रही है और इससे भी महत्वपूर्ण बात है हिंदी प्रचारिणी सभा के कुछ हिंदी दीवानों द्वारा हस्तलिखित दुर्गा का लगातार तीन (1935-1937) सालों तक मासिक इस हाथ से उस हाथ पाठकों तक पहुँचाना।

'दुर्गा' के लिखनेवाले लगभग सभी लेखक/कवि छद्म नामों से लिखते रहे। पुलिस का डर था। अंग्रेज़ उपनिवेश का भय था। सरकारी नौकरी खो जाने की नौबत भी आ सकती थी। उसके एकमात्र लेखक ज़िंदा हैं।

'दुर्गा' में मौलिक कविताएँ छपीं और साथ ही भारतीय कवियों की भी कविताएँ छपीं। ये भारत से मँगाई जाने वाली हिंदी पत्रिकाओं से उद्धृत की जाती रही थीं। संस्कृत की भी छिटपुट कविताएँ देखने को मिलीं। विदेशी (भारतीयों) की कविताओं को छापने के पीछे शायद यही कारण रहा होगा कि—

(1) हमारे यहाँ अच्छे कवियों की कमी थीं।
(2) लिखनेवाले कवि अभी आगे आए ही नहीं थे।
(3) स्थानीय कवियों को प्रेरित करने और लिखने के लिए आदर्श कविताएँ लिखने वाले का प्रकाशन आदि।

'वंदेमातरम्' से लेकर मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ मॉरीशसीय पाठकों को प्रिय थीं।

मॉरीशस की हिंदी कविता-1933-1953

सन् 1934 में पं. जदुनंदन शर्मा की दो रचनाएँ सामने आईं। 'कृष्ण की वेदी' और 'वंशी तान' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। 'रसपुंज' के लेखक पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी ने 1935 में और एक काव्य-संग्रह प्रकाशित किया 'शताब्दी सरोज'।

मेरा स्वयं से यही तात्पर्य था कि 1940 के बाद से यहाँ ऐसी कविताएँ छपने लगीं, जो मौलिक थीं, मॉरीशस की पृष्ठभूमि पर थीं मॉरीशस में जनमे कवि द्वारा लिखी गई थीं। कुल मिलाकर शत-प्रतिशत मॉरीशसीय थीं। मोंताई लोंग (धारा नगरी) की ही कृपा समझिए, जहाँ हिंदी प्रचारिणी सभा जैसी संस्था का जन्म हुआ और उसके कर्मठ सदस्यों ने हस्तलिखित 'दुर्गा' का संकलन कर हाथों-हाथ पाठकों तक पहुँचाया और फिर इसका हस्तांतरण होता रहा था।

'दुर्गा' के आवरण पृष्ठ को बनाने-सजानेवाले ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' का कवि रूप में परिचय मिलता है। उन्होंने लगातार लिखा। छोटी-छोटी ही सही उन्होंने 50 से भी अधिक काव्य संग्रह अपने जीवन काल में प्रकाशित किए—

1. 1948, मधुपर्क, ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
2. 1949, वीरगाथा, ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
3. 1949, रागिनी, ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
4. 1953, मधुकरी, ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
5. 1953, स्वतंत्रता का सुप्रभात, ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'

उपसंहार-1933-1953

सन् 1953 तक आते-आते मॉरीशसीय कविता में स्वतंत्रता का

बिगुल साफ़ सुनाई देने लगा है। मोंताई लोंग के ही कवि सोमदत्त बखोरी और अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बिक्रमसिंह रामलाला इसी राह को अपनाएँगे। सोमदत्त बखोरी मॉरीशस के 18 हिंदी परिषदों को जन्म देकर हिंदी प्रचार करेंगे, साहित्यिक पत्रिका छापेंगे तथा नए-नए हस्ताक्षरों को उस में स्थान देंगे। बिक्रमसिंह रामलाला, राजनीति में प्रवेश करेंगे, अंग्रेज़ी में मॉरीशस टाइम्स निकालेंगे और रोमानी साइज़ हिंदी में स्वतंत्रता प्रेरित कविताएँ लगातार छापेंगे।

मॉरीशस की हिंदी कविता–1953-1973

पिछले अध्याय में हम ने देखा कि मॉरीशस में हिंदी कविता का बीज बोया जा चुका था। मिट्टी ऊर्जा थी, भारतीय गिरमिटिया मज़दूरों के संघर्ष का रसायन खाद था और मॉरीशस की स्वतंत्रता की तैयारी की कमर तोड़ मेहनत पर मीठा पानी का सिंचन था।

ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' के गीत, गेय कविताएँ हिंदी कविता का बीज, जो पिछले अध्याय में बोया गया था, वह ठनठनाकर धरती को चीरता एक हरा-भरा स्वस्थ पौधा बन जाता है। इस अध्याय में भी वे छाए रहेंगे। पर अपने साथ कुछ नए कवियों को लेकर साथ-साथ चलेंगे। उनके हमउम्र सोमदत्त बखोरी, हरिनारायण सीता, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, विष्णुदत मधु 'चंद्र', 'जनार्धन' कालीचरण, इंद्रदेव भोला 'इंद्रनाथ', कृष्णा लालबिहारी, जगलाल रामा, गिरजानंद रंगू, जयरूद दोसिया आदि अपने कविता-संग्रह छपवाते हैं।

मॉरीशस की हिंदी कविता 1953-1973

1.	1953	छंद वाटिका	पं. हरिप्रसाद रिसाल मिश्र
2.	1957	भजन माला	पं. हरिप्रसाद रिसाल मिश्र
3.	1960	प्रथम किरण	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
4.	1961	शांति निकेतन की ओर	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
5.	1961	रवि रश्मि	विष्णुदत्त मधु 'चंद्र'
6.	1962	हमारा देश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
7.	1963	रास रंग	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
8.	1963	घरहू मौसा के सनेष	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
9.	1963	गुंजन	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
10.	1963	अमर संदेश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
11.	1964	लोकप्रिय गीत	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
12.	1966	सुधा कलश	जयरुद्र दोसिया
13.	1966	मॉरीशस भारती	विष्णुदत्त मधु चंद्र
14.	1966	कवि सम्मेलन	इंडियन कल्चरल एसोसिएशन
15.	1966	मधु कलश	जयरुद्र दोसिया
16.	1966	साहित्य सौरभ	इंडियन कल्चरल एसोसिएशन
17.	1967	रणभेदी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
18.	1967	वंदेमातरम्	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
19.	1967	मुझे कुछ कहना है	सोमदत्त बखोरी
20.	1968	प्रभात	हरिनारायण सीता
21.	1968	दीपावली	ठाकुरदत्त प्रसाद मिश्र
22.	1968	एक कहानी कुली की	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
23.	1968	स्वराज गीतांजलि	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
24.	1969	बिखरे सुमन	राम रतन रिसाल मिश्र
25.	1969	मधुकलश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'

26.	1970	रसवंती	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
27.	1970	सर शिवसागर रामगुलाम	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
28.	1970	मधुवन	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
29.	1970	हिंदी गौरव गान	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
30.	1970	मॉरीशस की हिंदी कविता	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
31.	1970	आदर्श गंगा	पूजानंद नेमा
32.	1971	मॉरीशस के बाढ़	गिरजानंद रंगू
33.	1971	बीच में बहती धारा	सोमदत्त बखोरी
34.	1971	मधुमास	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
35.	1971	स्वागत गान	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
36.	1971	प्रवासी स्वर	हिंदी परिषद्
37.	1972	हृदय की निधि	जगलाल रामा
38.	1972	अलग बसेरा	ज्ञानेश्वर रघुवीर 'बैरागी'
39.	1972	नव निर्माण की वेला	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
40.	1972	मैं हूँ कलयुगी भगवान	कृष्णा लालबिहारी
41.	1972	नादान	इंद्रदेव भोला इंद्रनाथ
42.	1972	रवि अंशु	लालमन बोसराम
43.	1972	प्रथम रश्मि	जनार्दन कालीचरण
44.	1973	सुरभित उद्यान	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
45.	1973	चेतना	हेमराज सुंदर
46.	1973	मुहब्बत की राहों में	चितरंजन ठाकुर
47.	1973	अभिशाप	परमेश्वर बिहारी
48.	1973	'निशा'	ठाकुरदत्त पांडेय
49.	1973	गोस्वामी तुलसीदास	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
50.	1973	मधुचक्र	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
51.	1973	हास्य वाटिका	विष्णुदत्त मधु चंद्र

उपसंहार 1953-1973

पिछले अध्याय में हम ने देखा कि मॉरीशस भूमि पर 8 कविता संग्रह प्रकाशित हुए थे। तीन संग्रह भारत से आए विद्वानों के थे, पाँच संग्रह एकदम मॉरीशसीय थे। मॉरीशस के, मॉरीशस की भूमि पर तथा मॉरीशस के कवियों द्वारा।

इस अध्याय में सचमुच मॉरीशसीय कविताओं की बाढ़ आ गई थी और लगभग 50 कविता संग्रह छप गए थे। इस अध्याय में भी ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' के कविता-संग्रह बहुमूल्य थे और नए नाम/हस्ताक्षर/कवि भी प्रकाश में आए। ब्रजेंद्र कुमार भगत के कुछ प्रकाशन बिक्रम सिंह रामलाला ने भी अपने प्रेस से किए। प्रकाशन सिर्फ कवि कविताओं के ही नहीं हुए, स्थानीय लोगों के भी हुए। हिंदी मुद्रणालय ला दिए गए थे। उन से शादी के कार्ड भी हिंदी में छपते रहे। बिक्रम सिंह रामलाला का प्रेस ही बाद में चलकर नालंदा प्रेस हुआ। उन्होंने ही नालंदा पुस्तकालय चलाया, जहाँ भारत के कई हिंदी साप्ताहिक और मासिक भी मँगाए जाने लगे थे। हिंदी पुस्तकों और कोशों की भी बिक्री होने लगी थी। मॉरीशस में हिंदी कविता के विकास में नालंदा द्वारा मँगाई जानेवाली पत्रिकाओं (धर्मयुग, माधुरी, हिंदुस्तान साप्ताहिक, पराग, नंदन आदि) ने भारी योगदान दिया है।

हिंदी प्रचारिणी सभा के बाद मोंताई लोंग के ही जनमे श्री सोमदत्त बखोरी (तब तक वह पोर्ट लुई रहने आ गए थे) ने सिर्फ हिंदी साहित्य के प्रचार के उद्देश्य से 18 (गीता के 18 अध्यायों से प्रभावित), हिंदी परिषद् शाखाएँ पूरे मॉरीशस में खोलीं। हर महीने एक शाखा में पूरे मॉरीशस से नवोदित साहित्यकार वरिष्ठ साहित्यकारों

से मार्गदर्शन प्राप्त करते। साहित्यिक लेखन-प्रेरणा के लिए उन्होंने (1969-1977) 'अनुराग' पत्रिका चलाई और तमाम नए हस्ताक्षरों को स्थान दिया। यह पत्रिका (1960-1961) तक पं. दौलत शर्मा ने चलाई थी।

पं दौलत शर्मा, बाद में उनके पुत्र तेकनाथ शर्मा ने उत्तर प्रांत के गाँव मोर्सेल्मॉ सें आंद्रे में तथा श्री धनीलाल बिदेशी ने त्रिओले में नि:शुल्क हिंदी की पढ़ाई के लिए बड़े पैमाने पर रविवारीय हिंदी पाठशाला खोलीं। इनमें भी कई कवि सामने आए। अजामिल माताबदल और इस लेख के लेखक/कवि पं. दौलत शर्मा की ही उपज हैं, जबकि धनीलाल बिदेशी के सान्निध्य में शिक्षा पाकर जगलाल शर्मा, बृजलाल रामदीन, ज्ञानेश्वर रघुवीर आदि सामने आए।

इसके साथ ही मॉरीशस की हिंदी कविता के विकास में अन्य पत्र-पत्रिकाओं, साप्ताहिकों और त्रैमासिकों ने भारी योगदान दिया।

मॉरीशस की हिंदी कविता—1973-1993

इस अध्याय में साफ़ लगने लगा है कि पौधा पेड़ बन गया है। तने मज़बूत हो रहे हैं। तने के इधर-उधर छोटी-छोटी शाखाएँ भी उगने लगी हैं। इस अध्याय में यह पाया जाएगा कि पिछले अध्याय के मुकाबले में थोड़ी कम कविता-पुस्तकें प्रकाशित हुईं, पर बावजूद इसके पिछले अध्याय से अधिक महत्वपूर्ण यह अध्याय माना जाएगा। जहाँ पिछले दो अध्यायों में ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' के कविता संग्रहों का बाहुल्य था। इस अध्याय के आते-आते उनके टक्कर के कुछ सशक्त कवि बाद में उभरकर आएँगे।

महान कथाकार अभिमन्यु अनत के इस अध्याय में नए पाँच कविता-संग्रह प्रकाशित हो जाते हैं। महात्मा गांधी संस्थान द्वारा प्रकाशित 'वसंत' पत्रिका के संपादक बन वे हिंदी रचनाकारों को प्रकाशित होने के पुल साबित होते हैं और मुनीश्वरलाल चिंतामणि, जो अंग्रेज़ी क्षेत्र के अध्यापक थे, हिंदी दुनिया से नौकरी लेकर हिंदी कविता की गाड़ी को और आगे बढ़ाते हैं। अपने पारिवारिक संस्कारों के कारण हिंदी साहित्य उनकी रग-रग में दौड़ने लगता है। ठाकुरदत्त पांडेय जहाज़ को गति देने आते हैं। बीरसेन जागासिंह के साथ-साथ प्रथम बार के लिए तीन कवयित्रियाँ आती हैं—(क) केश्ली कुमारी रागपत, (ख) रीधी रूपचंद और (ग) राजवंती अजोध्या 'नेहा'।

मॉरीशस की हिंदी कविता : 1973-1993

1.	1974	काव्य कली	ज्ञानदत्त
2.	1974	त्रिवेणी	अभिमन्यु अनत
3.	1974	सुधा कलश	जयरुद्र दोसिया
4.	1974	नन्हे द्वीप	यशवंतलाल चूड़ामणि
5.	1974	पुष्पांजलि	ठाकुरदत्त पांडेय
6.	1974	वीणा वादिनी	केश्ली कुमारी रागपत
7.	1975	मॉरीशस की हिंदी कविता	अभिमन्यु अनत
8.	1975	विजयगान	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
9.	1976	जय हिंदी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
10.	1976	तिरंगिनी	देवनन हेमराज
11.	1977	आलोक	ठाकुरदत्त पांडेय
12.	1977	प्रणाम	ठाकुरदत्त पांडेय
13.	1977	विचार वीथिका	सूर्यप्रसाद मंगर भगत
14.	1977	नागफनी में उलझी साँसें	अभिमन्यु अनत
15.	1977	सहमी सहमी सी आवाज़	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
16.	1978	देश के फूल	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
17.	1978	हिंदी पद्य पराग	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
18.	1979	चुनौती	हेमराज सुंदर
19.	1981	विश्व दर्पण	बलवंतसिंह नौबतसिंह

20.	1982	नशे की खोज में	सोमदत्त बखोरी
21.	1982	कैक्टस के दाँत	अभिमन्यु अनत
22.	1982	साँप भी सपेरा भी	सोमदत्त बखोरी
23.	1982	लोकरंजन गीतमाला	भीट्टी नारायणदत्त
24.	1983	आशा दीप	मुनीश्वरलाल चिंतामणि/इंद्रदेव भोला 'इंद्र'
25.	1984	बाल कविता माला	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
26.	1984	हीरे चमके धूल	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
27.	1984	बाल कविता माला	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
28.	1984	मधु दीप	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
29.	1984	अमर कुली गाथा	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
30.	1985	मधु बहार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
31.	1986	मधुश्री	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
32.	1986	एक डायरी बयान	अभिमन्यु अनत
33.	1987	मॉरीशस में अनुपम बहार	रीधी रूपचंद
34.	1987	छवि सागर की	मुनीश्वरलाल चिंतामणि
35.	1987	सिंदूरी माँग	राजवंती अजोध्या नेहा
36.	1988	मधुबाण	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
37.	1988	मधुर्गुंजार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
38.	1989	मॉरीशस के नौ हिंदी कवि	अभिमन्यु अनत
39.	1989	माधुरी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
40.	1989	ध्वनन	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
41.	1990	सोमदत्त बखोरी की चुनी हुई कविताएँ	अभिमन्यु अनत
42.	1991	मघुलिका	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
43.	1993	अमर गीत	हरिदेव सिनंदन
44.	1993	ललकार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
45.	1993	क्षितिज	डॉ. बीरसेन जागासिंह

उपसंहार-1973 1993

मॉरीशस में हिंदी कवियों की भरमार होने लगी थी। इस वास्ते कविता-संकलन भी संपादित हुए। महात्मा गांधी संस्थान के तत्वावधान में अभिमन्यु अनत ने दो संग्रह प्रकाशित किए। मुनीश्वरलाल चिंतामणि और इंद्रदेव भोला इंद्र ने भी हिंदी लेखक संघ की ओर से दो कविता-संग्रहों का प्रकाशन किया। अब तक मॉरीशसीय हिंदी कविता को कैंब्रिज द्वारा आयोजित सीनियर कैंब्रिज पाठ्यक्रमों (हिंदी और हिंदी साहित्य) में स्थान मिलने लगा था। उसी को ध्यान में रखते हुए डॉ. मुनिश्वरलाल चिंतामणि ने 'पद्य पराग' का संपादन किया था। कौशलेश रामफल ने भी हिंदी पाठ्यक्रम की कविता-पुस्तकें प्रकाशित की थीं। इस अध्याय तक मॉरीशसीय हिंदी कविता की नींव मज़बूती से रखी जा चुकी थी। देश-विदेश के पत्र-पत्रिकाओं में भी यहाँ के कवियों को स्थान मिलने लगा था। कवि-सम्मेलन की परिपाटी यहाँ नहीं थी। उन दिनों कवि सम्मेलनों का आयोजन बहुत कम हुआ। ब्रजेंद्र कुमार भगत की गेय कविताओं और गीत को छोड़ अब भी मुक्तक कविता लेखन जारी रहा था।

मॉरीशसीय हिंदी कविता, एक शताब्दी (1993-2013)

सन् 1993 से आज तक का मॉरीशसीय हिंदी कविता का सफ़र सुहाना रहा है। हिंदी-कविता का पेड़ पर्वत हो गया है, हिंदी संसार उनके फूलों से सुगंध का आनंद ले रहा है। उसका मीठा फल चख रहा है। उसके हरे-भरे पत्तों से प्राप्त मंद-मंद स्वस्थ हवा में जी रहा है और उसकी छाया में बैठकर चैन की नींद सो रहा है। अब आगे क्या होगा, इस की चिंता बहुत कम लोगों को है।

ब्रजेंद्र कुमार भगत, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी, ठाकुरदत्त पांडेय, जनार्दन कालीचरण, विष्णुदत्त मधु, हरिनारायण सीता आदि की पीढ़ी चली गई। अभिमन्यु अतन तो कथाकार, उपन्यासकार हैं। पर इस से हटकर उन्होंने 5–6 कविता-संग्रह निकाले, कुछ का संपादन भी किया, फिर अपनी कहानी और उपन्यास की दुनिया में वापस लौट गए। उन के बाद वाली पीढ़ी बीरसेन जागासिंह, धनराज शंभु, हेमराज सुंदर, ज्ञानेश्वर रघुवीर अभी लेखन जारी रख रही है, पर यह पीढ़ी भी बूढ़ी होने लगी है। इस अध्याय में हम पाएँगे कि नई पीढ़ी के कुछ नए नाम कविता की दुनिया से जुड़ जाते हैं। सूर्यदेव सिबोरत, कल्पना लालजी, बलवंतसिंह नौबतसिंह, महेश रामजीयावन, दानीश्वर शाम, सुमति संधु बुधन, चंपावती बम्मा, बृजलाल रामदीन, राज हीरामन आदि। नए हस्ताक्षरों में राज हीरामन 1996 से अब तक लगातार कविताओं और अन्य विधाओं की पुस्तकें प्रकाशित कराते आ रहे हैं। 1996–2012 तक उनके 9 कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

मॉरीशस की हिंदी कविता—1993-2013

1.	1993	अमरगीत	हरीदेव सिनंदन
2.	1993	ललकार	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
3.	1993	क्षितिज	डॉ. बीरसेन जागासिंह
4.	1994	जाग रे हिंदू	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
5.	1995	हिंदी वंदना	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
6.	1995	तुम	मुकेश जीबोध
7.	1995	चुप्पी की आवाज़	पूजानंद नेमा
8.	1995	काव्य परिचय	अजामिल माताबदल
9.	1995	खिले सुमन	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि
10.	1995	रस धारा	सूर्यप्रसाद मंगर भगत
11.	1996	वसंत बहार	जनार्दन कालीचरण
12.	1996	कविताएँ जो छप न सकीं	राज हीरामन
13.	1996	एहसास	धनराज शंभु
14.	1997	रसपुंज	डॉ.मुनीश्वरलाल चिंतामणि
15.	1997	छपकर रही कविताएँ	राज हीरामन
16.	1997	चुभते फूल	राज हीरामन
17.	1997	मॉरीशस का आदि काव्य कनन	प्रह्लाद रामशरण
18.	1997	मॉरीशस मध्यकालीन काव्य प्रसून	प्रह्लाद रामशरण
19.	1998	हँसते काँटे	राज हीरामन
20.	1998	दस्तक	सुमति बुधन
21.	1998	कुछ कल की, कुछ आज की	हरिनारायण सीता
22.	1998	अभिमन्यु अनत समग्र कविताएँ	डॉ. कमल किशोर गोयनका
23.	1999	मॉरीशस के आठ समकालीन कवि	महेश रामजीयावन
24.	2000	अपनी ज़मीन की तलाश	डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि
25.	2000	क्षितिज के पार	डॉ. बीरसेन जागासिंह
26.	2000	मधु संदेश	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
27.	2000	मधु घोष	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
28.	2000	मधु वाणी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'

29.	2000	मधु हाला	ब्रजेंद्र कुमार भगत'मधुकर'
30.	2000	चुनावी भटनियाँ	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
31.	2000	मधु मंत्रणा	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
32.	2001	युग पुरुष रामगुलाम की अमर कहानी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
33.	2001	मिलेनियम पुरुष महात्मा का पैगाम	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
34.	2001	मेरी भौजी	ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर'
35.	2001	सर शिवसागर सामगुलाम	कल्पना लालजी
36.	2001	एक लघु ज्वालामुखी	डॉ. हेमराज सुंदर
37.	2001	अलग प्रीत की रीत	ज्ञानेश्वर रघुवीर बैरागी
38.	2002	सच्ची खबर	डॉ. हेमराज सुंदर
39.	2002	अस्वीकृति में उठे हाथ	डॉ. हेमराज सुंदर
40.	2002	भोजपुरी लोक गीतिका	श्रीमती सुंदरी रामशरण
41.	2003	मानसी कमल	सं ज्ञानेश्वर रघुवीर

इस तरह से 2000 से 2003 के आते-आते तकरीबन हर वर्ष मॉरीशस में हिंदी के 7 से लेकर 10 प्रकाशन होते रहे हैं। पर इस अध्याय के आरंभ तक भी डॉ. ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' और डॉ मुनीश्वरलाल चिंतामणि स्थानीय कविता में छाए रहते हैं। 2003 में उनकी संपूर्ण 'काव्य रचनावली' छपती है फिर तो यह चिराग गुल हो जाता है। डॉ. मु. चिंतामणि भी 2009 के अंत में अंतिम साँस लेते हैं।

एक पीढ़ी थी रसपुंज और यदुनंदन शर्मा की जिस से अंत में ब्रजेंद्र कुमार भगत आ मिलते हैं और सब से अधिक टिकने वाले कवि हो जाते हैं। फिर एक के बाद उस पीढ़ी में जुड़ते जाते हैं हरिनारायण सीता, मु. चिंतामणि, ठाकुरदत्त पांडेय, सोमदत्त बखोरी, पूजानंद नेमा आदि।

इन शीर्ष कवियों के बाद तो कवियों और कविता-संग्रहों के प्रकाशन की संख्या बढ़ी।

2004 में परमेश्वर बिहारी की 'गुरु दक्षिणा' छपती है, कल्पना लालजी की 'खट्टी-मिठी यादें', बलवंत सिंह नौबतसिंह की 'पुष्पांजलि', सूर्यदेव सिबोरत की 'एक फूल गन्ने का' आदि। कुछ समय बीमारावस्था के बाद राज हीरामन का छट्ठा काव्य संग्रह 'उजाले का अंधेरा' 2005 में प्रकाशित होता है। डॉ. सतिश चंद्र 'मॉरीशस का हिंदी साहित्य : एक''एक समृद्ध परंपरा' में लिखते हैं—'वर्तमान में राज हीरामन शीर्ष कवि के रूप में स्थान पाते जा रहे हैं। उनके कई कविता संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं जिन में मॉरीशसीय लोक जीवन का बेबाकी से व्यक्त हुआ है।' वे 2006 में 'अँधेरे का उजाला' प्रकाशित करवाते हैं। राज हीरामन अपने सहयोगी राशपासिंह के साथ 'मॉरीशस की हिंदी कविता का संपादन करते हैं, 39 कवियों की वे कविताएँ संकलित हैं जो महात्मा गाँधी संस्थान में एक कवि गोष्ठी के दौरान पढ़ी गई थीं। धनवंती ईसरसिंह का संग्रह इसी साल में छपता है।

2007 में राज हीरामन की और एक पुस्तक आती है 'एक ज़मीन आसमान पर' और धनराज शंभु का 'अरमान'। इसी साल हिंदी प्रचारिणी सभा ने स्व. सूरज प्रसाद मंगर भगत का कविता-संग्रह 'काव्य वीथिका' और स्व. ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' के काव्य संकलन छापे।

2008 निरंतरता का साल रहा। कवि और कविता अपने उछाल पर थे। 'धरती तले आकाश' राज हीरामन का आठवाँ काव्य-संग्रह साल 2009 का पहला प्रकाशन रहा। डॉ. बीरसेन जागासिंह की 'पुष्पांजलि' इसी साल प्रकाशित हुई। राज रानी गोबिन, महेश रामजियावन, जयदत्त जीऊत, मोहनलाल बृजमोहन, बृजलाल रामदीन, जयवंती रंगू, धर्मानंद भंटु, रजनी झरी आदि छपते रहे।

2010/11/12 में भी मॉरीशस की कविता फली-फूली। धनराज शंभु, राज हीरामन, सुंदर आदि छपते रहे। धनराज की 'एहसास' छपी। हीरामन की 'नेहा की निधि' प्रकाशित हुई। इन की स्वर्गीय पत्नी नमिता सति सावित्री 'कविताएँ जो छप न सकीं-II' भी 2012 में छपी, जिस में कविता-तत्व कम है और वह प्रेम-पत्र अधिक है। इस पीढ़ी के पद्यकारों के सक्रिय होते हुए भी नई पीढ़ी के कुछ नाम हमारे बादल में चमकने लगे। विनय गुदारी, गुलशन सुखलाल, बीगन आदि अकेले नहीं आए, अपने साथ नई पौध की एक फौज लेकर आए, जिस से मॉरीशसीय कविता को बड़ी उम्मीदें बँधी हैं। यही स्थानीय कविता के भविष्य हैं। इन नामों में केवल नायक,

विश्वानंद पतिया, प्रभा बिसेसर, राजस्वरी देवी झरी, प्रीतम गजाधर, वशिष्ठ झमन, संध्या देवी झमन, अरविंद नेकीतसिंह, सहलील तोपासी, जिष्णु हरिशरण, अंजलि हजगैबी, लक्ष्मी जयपोल, देव सीसा और लवना रामधनी हैं : गुलशन सुखलाल द्वारा निर्मित फ़ेसबुक कविता-मंच 'दूसरी शताब्दी का साहित्य' के ये पिछले रचनाकार हैं, जो अपनी पिछली पीढ़ियों की मशाल थामने जा रहे हैं।

उपसंहार 1993-2013

यह अध्याय मॉरीशस की हिंदी कविता का समृद्धकाल है। मॉरीशस के एक-दो कवि भारत के कवियों के बराबर लिखते हैं और कविता की मुख्यधारा में जा बैठते हैं। कुछ वर्षों से लगभग हर साल मॉरीशस के कवियों की लगातार पुस्तकें छपती आ रही हैं। इस देश से न हिंदी मरेगी, न हिंदी साहित्य और ना ही हिंदी कविता। मॉरीशस ही ऐसा देश है भारत से बाहर जहाँ सबसे अधिक हिंदी प्रकाशन हो रहे हैं।

बो माँगिये, पेरेवबेर,
मॉरीशस
rajheeramun@gmail.com

□

सदाचार के तीन आधार हैं—अदम्यता, सुकर्म और पवित्रता।

—विद्यानंद 'विदेह'

सुसंस्कृत मनुष्य ही समानता के सच्चे प्रचारक हैं।

—मैथ्यू आर्नोल्ड

सच्ची संस्कृति मस्तिष्क, हृदय और हाथ का अनुशासन है।

—शिवानंद

संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।

—हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

मनुष्य ने जगत् में जो कुछ सत्य और सुंदर पाया है
और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।

—प्रेमचंद

30

'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका एवं मॉरीशस का प्रारंभिक हिंदी साहित्य

श्री धनराज शंभु

जन्म : 14 नवंबर, 1956।

शिक्षा : 1977 में प्रशिक्षण महाविद्यालय से प्रशिक्षण प्राप्त कर हिंदी अध्यापक बने और अब तक हिंदी अध्यापनरत।

रचनाएँ : 1976 में गतरंगिनीग कविताएँ, 1996 में 'एहसास' कविताओं और गजलों का संग्रह अन्य पत्र-पत्रिकाओं, अखबरों आदि में रचनाएँ प्रकाशित, जिन में वसंत, आक्रोश, पंकज, रिमझिम, प्रभात आदि प्रमुख हैं।

मॉरीशस हिंद महासागर में स्थित मोती की तरह चमकता हुआ एक सितारा जैसा भूखंड है, जो एक शांतिमय द्वीप की तरह उभरा हुआ है। यह टापू एक बहु सांस्कृतिक, बहुभाषी एवं बहुजातीय देश है। अफ्रीका महाद्वीप के पास होने के कारण इसे उसी का हिस्सा माना जाता है, लेकिन यहाँ की परिस्थिति को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह भारत देश का एक टुकड़ा है, यह विशेषण भी दिया जाता है कि मॉरीशस एक छोटा भारत है। प्रारंभिक काल में यह द्वीप बस ज्वालामुखी से उत्पन्न एक भूखंड था, जिसकी किसी ने गिनती तक नहीं ली थी। फिर जहाजों के आने-जाने से यह एक सुस्ताने भर की जगह बन गई। इसी तरह कई देशों के लोग इधर से गुज़रे। सब से पहले पुर्तगाली, फिर अरब तत्पश्चात् डच, फ्रांसीसी और अंत में अंग्रेज़ों ने इसे अपना स्थान बनाया। समय-समय पर नाम भी परिवर्तित होता गया, जैसे 'मास्कारेनहस', दिनो आराबी, मोरिस, ईलदेफ्रांस और अंत में मॉरीशस। उपनिवेश काल से लेकर आज तक मॉरीशस नाम ही प्रसिद्ध है।

यह कहा जा सकता है कि मॉरीशस में हिंदी साहित्य का मौखिक रूप उस समय से प्रारंभ हो गया था, जब हमारे पूर्वज शर्तबंध मज़दूर के रूप में आए थे। उस समय वे अपने साथ कुछ धार्मिक ग्रंथ और अपने दिमाग में कुछ सांस्कृतिक गीत, मंत्र आदि लेकर आए थे। इन्हें अपने जीवन बिताने का सहारा भी बना चुके थे। कभी चोरी से, कभी पेड़ों की छाया में रामायण गाकर, समझाकर हिंदी साहित्य की नींव रखी। वह नींव बैठकाओं में और भी मजबूत होती गई।

मॉरीशस में हिंदी लिखित साहित्य का श्रीगणेश 1913 में श्री गणेशी कौलेशरसिंगजी के लेख एवं कविता से माना जा सकता है। उस समय उन्होंने 'मॉरीशस टाइम्स' में एक लेख 'होली' और कविता भी 'होली' शीर्षक से छपवाए थे। अर्थात मॉरीशस में साहित्य लेखन इन्हीं दो रचनाओं से प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे पत्रिकाओं एवं अन्य रचनाओं का जन्म हुआ। साथ में कई लेखक, साहित्यकार एवं रचनाकार भी सामने आए। उन्हीं में से दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका भी एक है, जिसे मॉरीशसीय हिंदी साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका का काल

काल की दृष्टि से देखा जाए तो दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका का जन्म कुछ विद्वानों द्वारा बीसवीं सदी के चौथे चरण में हुआ। इस पत्रिका का रचनाकाल बहुत लंबा तो नहीं हो सका, लेकिन वह 1935 से 1937 तक माना जाता है। पत्रिका का जन्म एक ऐसे काल में हुआ था, जब यह टापू परतंत्र था और औपनिवेशिक वातावरण में जीने के भय से जीवन बसर हो रहा था। एक ओर जहाँ प्रकाशन की असुविधा थी, वहीं दूसरी ओर परतंत्र रूप से डरकर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की भी हिचकिचाहट थी। इन सभी स्थितियों के बावजूद रचनाओं का प्रकाश में आना हिंदुस्तानी संस्कृति, समाज-सुधार, राजनीतिक व शैक्षणिक उत्थान एवं जागरण का युग था। लगभग 1960 के वर्ष में भारतीय संस्कृति की रक्षा की चिंता मॉरीशस के भारतीयों को खाये जा रही थी। यही कारण है कि भारतीय विद्वानों ने भाषा एवं धर्म-संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार के लिए यहाँ पर आने और जाने का एक सिलसिला शुरू किया। यदि कुछ लोग

भारत से मॉरीशस आ रहे थे तो कुछ लोग भारत भी जा रहे थे। उनके आने का कारण भारतीय मज़दूरों की रक्षा थी तो यहाँ से जानेवालों का कारण शिक्षा ग्रहण करना था। वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर इस द्वीप को सुधारकर विकसित रूप में लाना चाहते थे। उस समय विदेश में पढ़ने के लिए जो गए थे, वे हैं—सर्वश्री जयनारायण रॉय, प्रोफेसर बासदेव विष्णुदयाल, सर शिवसागर रामगुलाम आदि। उन्हीं विद्वानों में से श्री सुरुज प्रसाद मंगर भगतजी एक कृषक वर्ग के होते हुए भी भारतीय पत्रिकाएँ मँगाकर स्वयं पढ़ते और अपने समकालीन हितैषियों को भी पढ़ाते थे। इन्हीं पत्रिकाओं के लेखों से प्रभावित होकर हस्तलिखित 'दुर्गा' पत्रिका निकालने या बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई। यह हस्तलिखित पत्रिका 1935 से 1938 तक चली। हाथ से लिखकर आपस में बाँटकर पढ़ना और विचार-विनिमय कर दूसरे तक पहुँचाना; पुनः वापस सुरुज प्रसाद मंगर भगतजी के पास लौट आती थी। भगत जी दूरदर्शी थे। उनको पता था कि साधारण कागज़ पर हाथ से लिखी रचना कभी भी नष्ट हो सकती है, इसीलिए उन्होंने सभी का संकलन किया। हिंदी प्रचारिणी सभा के पूर्व मंत्री होने के नाते उन्होंने सारी पत्रिकाओं का संकलन बनाकर रखा। आज भी हिंदी प्रचारिणी सभा के नेमनारायण गुप्त पुस्तकालय में यह संकलन देखा जा सकता है। इस प्रकार तीनों संकलनों को सुरक्षित रखा गया है। आज भी 'दुर्गा' पत्रिका हिंदी साहित्य की धरोहरों में से एक महत्वपूर्ण मूल्यांकन वस्तु है, जिसको सँभालकर रखना अति आवश्यक है।

इन तीनों संग्रहों की सामग्रियाँ

'दुर्गा' के तीनों संग्रहों में काफ़ी रचनाएँ पाई जाती हैं। इन पर दृष्टि दौड़ाने पर पता चलता है कि उस समय के रचनाकारों को विश्व हिंदी साहित्य का ज्ञान था, इसीलिए उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी कलम चलाई। इन पत्रिकाओं में संपादकीय से लेकर हस्त रचित कार्टूनों का भी प्रयोग किया गया है। यह कहना अनुचित न होगा कि 'दुर्गा' पत्रिका भले ही उस समय में रची गई है, लेकिन आज भी रचनाएँ सटीक हैं। आज भी समाज और व्यक्ति की समस्या लगभग वही हैं, अंतर इतना है कि उस समय लोग खुलकर नहीं लिख पाते थे। उन रचनाकारों के अंदर एक डर घर कर बैठा था कि कहीं उनको गोरे मालिक की ओर से दंड न मिल जाए, क्योंकि वह समय उपनिवेश का था। पत्रिका में 21 विधाएँ हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

क्रम संख्या	विषय	संख्या
1.	संपादकीय	297
2.	लेख	730
3.	कविताएँ	63
4.	कहानियाँ	167
5.	व्यंग्य	6
6.	पत्र	17
7.	पुस्तक समीक्षा	9
8.	अनुवाद	45
9.	विचार संग्रह	11
10.	समाचार	15
11.	चुटकुले	10
12.	गद्य काव्य	25
13.	यात्रा संख्या	38
14.	नाटक	7
15.	लघुकथा	9
16.	इंटरव्यूह-भेंटवार्त्ता	14
17.	सम्मति	17
18.	अभिभाषण	14
19.	पहेली	2
20.	संस्मरण	12
21.	चित्र-कार्टून-रेखाचित्र	177

ये सभी सामग्रियाँ 1935 से 1937 के अंतराल में 34 अंकों में उपलब्ध 1986 रचनाएँ प्रकाश में आई हैं। 'दुर्गा' के फरवरी 1937 में प्रकाशित श्री केशवदेव के लेख से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भारत से कुछ पत्रिकाएँ मॉरीशस मँगाई जाती थीं। पठन-पाठन के बाद इन रचनाकारों में प्रेरणा जगाती थीं। वे पत्रिकाएँ थीं माधुरी, सुधा, चाँद, सरस्वती, विश्वामित्र, वाणी, प्रताप आदि।

डॉ. कमल किशोर गोयनका, जो प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ हैं और मॉरीशस के परम हितैषी, बल्कि उनको मॉरीशस मित्र भी कहा जाता है, का कहना है कि ''यदि 'दुर्गा' पत्रिका हस्तलिखित न होती और प्रकाशित होकर अन्य अनेक पाठकों के हाथ में पड़ती तो शायद नई पीढ़ियों को सारी विधाओं में लेखनी चलाने का मौका अवश्य प्राप्त होता।''

'दुर्गा' पत्रिका के हस्तलिखित रचनाकार

हमने यह सुन रखा था कि भारत में जब अंग्रेज़ों का राज्य था, तब कवि या लेखकगण छद्मनामों से या छायावादी रूप में या प्रकृति की आड़ लेकर लिखते थे, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनको दंड न मिल जाए और कितनों को मिला भी, जिन में प्रेमचंद एक ज्वलंत उदाहरण हैं।

हमें यह जानकर आश्चर्य होता है कि उपनिवेश काल में मॉरीशस में भी छद्म नामों से लिखने की आवश्यकता पड़ी थी। दरअसल, दुर्गा हस्तलिखित पत्रिका के सभी रचनाकार छद्म नाम से ही लिखा करते थे। कारण कई हो सकते हैं। प्रथम तो यह है कि यहाँ गोरे मालिकों का राज्य था। दूसरा, उनको डर था कि जब शिक्षा प्राप्त करने से उनको वंचित रखा जाता था तो लिखने का अधिकार भला उनको कैसे मिल सकता था। उन लेखकों के उपनाम क्रमश: इस प्रकार हैं—1. राजकुमार, 2. देवें, 3. सत्य, 4. गणपतिदास, 5. केशवदेव, 6. प्रबोद्धचंद, 7. व्यास, 8. सत्येंद्र, 9. चिगारी, 10. कुमार, 11. हरिलाल, 12. शैलेंद्र, 13. बासदेव शंभु आदि। इनमें और कुछ नाम हैं, जिन की पहचान तक नहीं हो पाई है। कहना उचित ही होगा कि इनकी रचनाएँ मौलिक होती थीं। इन्होंने भारतीय पत्रिकाओं से प्रेरणा ग्रहण की, लेकिन उनकी नकल नहीं की। कहीं-कहीं पर उन्होंने रचनाओं का अनुवाद भी किया, लेकिन साफ शब्दों में कह दिया है कि यह रचना अमुख पत्रिका या पुस्तक से ली गई है।

'दुर्गा' पत्रिका के छद्म नामों के पीछे असली नाम इस प्रकार हैं—हिंदी प्रचारिणी सभा के पूर्व मंत्री श्री सुरुज प्रसाद मंगर भगत, जो 'दुर्गा' पत्रिका के स्थापक भी माने जा सकते हैं, कई नामों से लिखते थे। वे नाम हैं 'ज्वालामुखी, दिवेश्चंद्र भगत, इंद्रभूषण, चिंगारी, प्रबोद्धचंद्र दिवाकर, शिशिरचंद्र, खन-खन आदि।

केशवदेव का सही नाम नेम नरायण गुप्त, कुमार का असली नाम हमारे देश के वरिष्ठ एवं राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत मधुकर, व्यास नाम से लिखने वाले श्री बृजलाल धनपत, देवेंद्र नाम से लिखने वाले थे बासदेव शंभु। इनमें और भी नामों की पहचान करना शेष है। हमें गर्व और सुखद आश्चर्य है कि उन सारे लेखकों में से आज केवल एक मात्र लेखक श्री बृजलाल धनपतजी जीवित हैं, जिनकी उम्र 102 साल है। ईश्वर की कृपा से वे आज भी हिंदी के सब कार्यक्रमों में उपस्थित रहते हैं और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बेहतर हैं।

प्रारंभ में दुर्गा पत्रिका संदेश वाहक, सूचनात्मक लेखों से प्रभावित थी। धीरे-धीरे इस में साहित्यिक लेख एवं रचनाएँ भी अंतर्निहित होती गईं। इन संकलनों में जनवरी अंक में 1 फरवरी में 2, अप्रैल में 3, जून में 1, जुलाई में 1, सितंबर में 1 और नवंबर में एक। इस प्रकार कुल दस मौलिक कविताएँ प्रकाश में आईं। 'कहानियों' की संख्या भी 20 से 25 तक बताई जा सकती है। इनमें कुमार गुलाब द्वारा लिखित गरीबी, बबुआ श्यामदत्त द्वारा बाबाजी, केशवदेव द्वारा नास्तिक, बासदेव शंभु द्वारा 'एक लोभी ब्राह्मण' सुखदेव विष्णुदयाल द्वारा लिखित एक गरीब बच्चे का हृदय, जो फ्रेंच कहानी पर आधारित थी। सभी कहानियों में तत्कालीन समस्याओं की जानकारी दी गई है। उस समय के पारिवारिक, सामाजिक, वैयक्तिक और राजनीतिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। 'निबंध' दुर्गा पत्रिका की मुख्य विधा रही है। इनकी संख्या 50 के ऊपर है। ये निबंध विभिन्न समकालीन समस्यओं एवं घटनाओं पर लिखे गए हैं। ये निबंध आज भी सटीक हैं। आज के युग में भी इन बातों पर विचार-विनिमय किया जा सकता है।

'दुर्गा' पत्रिका लिखने के पीछे उद्देश्य

संपादक ज्वालामुखी या सुरुज प्रसाद मंगर भगत तथा अन्य सहयात्रियों ने पत्रिका के लिए कुछ उद्देश्य निश्चित किए थे। कई उद्देश्यों में से पत्रिका की दीर्घायु और सुरक्षा के लिए ऐसे सात उद्देश्य या नियमों पर विशेष ध्यान दिया गया था। वे इस प्रकार हैं—

1. जनवरी 1935 के प्रथम अंक में यह लिखा गया था कि हिंदी विद्यार्थियों में लेखन के प्रति रुचि प्रदान करना।
2. हिंदी की शक्ति तुलनात्मक दृष्टि से अन्य भाषाओं के सामने प्रस्तुत करना।
3. मुरदा कौम में क्रांति की रूह फूँकना।
4. नवयुवकों को कर्मपथ पर अग्रसर करना।
5. राजनीति से परिचित कराना।
6. हिंदी-हिंदू धर्म का रहस्योद्घाटन करना।
7. हिंदी की बाद दिग्दिगंत तक फैलाना।

इन सात नियमों के आधार पर ही पत्रिका का जीवन यहाँ तक रह सका। उस समय के रचनाकार और पाठक भी बाकायदा अनुशासित थे। वे कभी भी अपने पथ से गुमराह नहीं हुए। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कटिबद्ध थे।

पत्रिका के लेखकों की सीमा-रेखा एवं नियम पालन

किसी भी कार्य के लिए नियम का पालन अति आवश्यक है। संपादक चाहता था कि पत्रिका की आयु लंबी हो और उपनिवेश काल में किसी भी व्यक्तित्व के प्रति अन्याय न हो, न ही गोरे मालिकों द्वारा किसी प्रकार के उलझन सामने आएँ। किसी के चरित्र को बिना क्षति पहुँचाए ही अपनी रचनाओं को लिखें और दूसरों तक पहुँचा सकें। वे नियमावलियाँ क्रमशः इस प्रकार बताई जा सकती हैं—

1. दुर्गा पत्रिका की हर प्रति अंग्रेज़ी के प्रथम सप्ताह में प्रकाश में आए।
2. लेखकों को नि:शुल्क पत्रिका पढ़ने का अधिकार होगा।
3. पत्रिका दो दिनों की अवधि में पढ़कर वापस कर देनी होगी।
4. 'दुर्गा' पत्रिका को हर हिंदी पाठक पढ़ सकता है, बशर्ते कि वे पत्रं-पुष्पम् की सहायता कर सके।
5. पत्रिका की सारी सामग्रियों पर सर्वाधिकार सुरक्षित हो।
6. 'घासलेट' लेख न लिखे जाएँ और प्रकाशित न हों।
7. लेख गाली-गलौच या व्यक्तिगत आक्षेपों से परे हों।
8. कागज, कलम, स्याही, स्वरचित चित्र लेखकों के अपने होंगे।
9. संपादक को लेखों का कतर-ब्योंत करने का पूर्ण अधिकार होगा।

संपादक सुरुज प्रसादजी इन नियमों पर पूरा ध्यान देते रहे और अनुशासित ढंग से इनका पालन भी करते थे। शायद यही कारण है कि कठिनाई और उपनिवेश की स्थिति में भी पत्रिका इतने दिनों तक जीवित रह सकी।

'दुर्गा' पत्रिका का नामकरण

किसी भी चीज के नामकरण से पहले काफ़ी माथा-पच्ची करनी पड़ती है। जो भी नाम रखा जाता है, सोच-समझकर ही रखा जाता है। बच्चों या किसी व्यापारिक केंद्र के नामकरण के लिए तो पंडित-पुरोहित को देखना पड़ता है। इस पत्रिका के नाम के लिए कई नाम रखे गए जैसे सुरुज प्रसाद मंगर भगत ने तो इसका नाम 'ज्वालामुखी' रखा था। फिर आपसी विचार विनिमय के बाद 'क्रांतिकारी', 'ज्वाला', 'अंधेर', 'अभिमन्यु' और अंत में श्री केशवदेव ने इसका नाम 'दुर्गा' प्रस्तावित किया और सभी रचनाकारों ने इसी नाम के लिए स्वीकृति दी। श्री एस.एम. भगतजी को यह नाम इसलिए ज़्यादा पसंद था, क्योंकि वे इस टापू में पत्रिका के माध्यम से स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महात्मा गांधी तथा सुभाष चंद्र बोस की क्रांति जैसा वातावरण बनाना चाहते थे। 'दुर्गा' पत्रिका के माध्यम से इस उपनिवेश-टापू में हिंदुओं के मन-मस्तिष्क में क्रांति पैदा करना चाहते थे। उनको विश्वास था कि जिस प्रकार दुर्गा देवी ने राक्षसों पर प्रहार किया था, उसी प्रकार हमारे हिंदू भी दुर्गा के माध्यम से उस समय के अत्याचारियों पर प्रहार करना चाहते थे।

'दुर्गा' पत्रिका का आवरण

शुरू-शुरू में पत्रिका का आवरण कैसा हो, इस पर भी विचार करना बड़ा आवश्यक है। आवरण जितना आकर्षक हो, उतना ही लोगों को पसंद आएगा। इस विचार से फ़रवरी 1935 के अंक को देखा जाए तो दुर्गा का आवरण लखनऊ से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'माधुरी' के आवरण को काटकर बनाया गया है। इसी प्रकार अन्य प्रतियों के आवरण को कभी अपनी मौलिकता में प्रस्तुत करते थे तो कभी अपनी रुचि और समझबूझ के धरातल पर आकर्षक बनाने का प्रयास करते थे। हम कल्पना कर सकते हैं कि उस समय में किसी भी प्रकार की सुविधा न थी, उनको कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। इस झलक से हिंदी के प्रति उनके रुझान का पता चल जाता है।

'दुर्गा' पत्रिका में साहित्यिक विधाओं की विविधता

प्रारंभ में दुर्गा पत्रिका संदेश वाहक, सूचनात्मक लेखों से प्रभावित थी। धीरे-धीरे इस में साहित्यिक लेख एवं रचनाएँ भी अंतर्निहित होती गईं। इन संकलनों में जनवरी अंक में 1 फ़रवरी में 2, अप्रैल में 3, जून में 1, जुलाई में 1, सितंबर में 1 और नवंबर में एक। इस प्रकार कुल दस मौलिक कविताएँ प्रकाश में आईं। 'कहानियों' की संख्या भी 20 से 25 तक बताई जा सकती है। इनमें कुमार गुलाब द्वारा लिखित 'गरीबी', बबुआ श्यामदत्त द्वारा 'बाबाजी', केशवदेव द्वारा 'नास्तिक', बासदेव शंभु द्वारा 'एक लोभी ब्राह्मण' सुखदेव विष्णुदयाल द्वारा लिखित 'एक गरीब बच्चे का हृदय', जो फ्रेंच कहानी पर आधारित थी। सभी कहानियों में तत्कालीन समस्याओं की जानकारी दी गई है। उस समय के पारिवारिक, सामाजिक, वैयक्तिक और राजनीतिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। 'निबंध' दुर्गा पत्रिका की मुख्य विधा रही है। इनकी संख्या 50 के ऊपर है। ये निबंध विभिन्न समकालीन समस्यओं एवं घटनाओं पर लिखे गए हैं। ये निबंध आज भी सटीक हैं। आज के युग में भी इन बातों पर विचार-विनिमय किया जा सकता है।

इंटरव्यू या भेंट वार्ता

इस पत्रिका में ऐसी वार्ताएँ भी प्राप्त हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। मार्के की बात यह है कि स्वयं भगतजी ने खन-खन द्वारा इंदुभूषण का साक्षात्कार करवाया है, जबकि दोनों व्यक्ति एक ही हैं।

भगतजी ने ही खन-खन और इंदुभूषण की भूमिका निभाई थी।

पत्र

पत्र की बात निराली है। इस विधा की जानकारी देने के लिए संपादक ने स्वयं नवंबर अंक में 'स्वर्ग की चिट्ठी' नाम से एक पत्र लिखा है। लेखक गिरीशचंद्र, पता स्वर्गधाम। ऐसे ही विचित्र पते वाले कुछ मौलिक यथार्थ और कुछ काल्पनिक पत्रों की संख्या सत्रह तक है।

चित्र

'दुर्गा' पत्रिका में कुछ चित्रों की संख्या भी पाई जाती है। ये लगभग 60 के करीब हैं। कहीं 'वाटर कलर' के माध्यम से रंगीन बनाया गया है तो कहीं कागजी कलम से रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहीं-कहीं तो लेखों में आकर्षण लाने के लिए अन्य भारतीय पत्रिकाओं के चित्रों को काटकर स्थिति और वातावरण की माँगानुसार रचनाओं के बीच में चिपकाया गया है। आवश्यकतानुसार हर प्रकार का प्रयोग किया गया है।

कार्टून

उस जमाने में यह विधा नहीं के बराबर थी। संपादक महोदय ने अपनी पत्रिका में विविधता लाने के लिए कई चित्रों को काटकर स्वयं जोड़-जाड़कर कार्टून का रूप दिया, जो आज के हास्य-व्यंग्य रचनाओं के समान ही चुटीले हैं। आज जो प्रयोग अखबारों में किया जा रहा है, उस समय में भगतजी ने अपनी पत्रिका में कर दिखाई थी।

विज्ञापन

यह प्रयोग तो पत्रिका के माध्यम से औरों को अवगत कराने का काम होता है। दरअसल मेजबानी करने वालों या 'स्पोनसोशीप' के लिए अखबारों में विज्ञापन दिया जाता है, पर भगतजी ने अपनी पत्रिका में 17 विज्ञापनों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए यह विज्ञापन लिया जा सकता है—''पोर्ट लुई के अर्जुन-द्वारका मिश्र की दुकान से मिठाई खरीदिए!'' आदि।

सूचना

दुर्गा के माध्यम से जनता तक सूचना भी भेजी जाती थी; जैसे किसी की मृत्यु हो जाए तो समय, स्थान, जगह और स्वयं व्यक्ति के बारे में सूचना दी जाती थी। विवाह संस्कार के बारे में भी सूचना दी जाती थी। कभी मृत्यु भी हो गई हो तो जानकारी प्राप्त की जा सकती थी। इस तरह दुर्गा पत्रिका को उस समय-सीमा को ध्यान में रखकर देखा जाए तो अपने आप में एक अद्‍भुत प्रयास रहा है। कहा जा सकता है कि बंजर या रेगिस्तान में पानी तलाश करने का प्रयास इसी के माध्यम से हुआ है।

'दुर्गा' पत्रिका के साथ घटी आश्चर्यजनक बात

एक बार साल 2000 के लगभग भारतीय सरकार द्वारा प्राचीन रचनाओं की प्रदर्शिनी दिल्ली (भारत) में लगी थी। मॉरीशस में भारतीय राजदूत द्वारा हस्तलिखित दुर्गा का सन् 1935 (उन्नीस सौ पैंतीस) वाला संकलन भारत की प्रदर्शिनी के बाद कहीं खो गया। कई वर्षों तक इसका कोई पता नहीं चला। एक रोज़ डॉ. गोयनका राजदूत भवन में गए तो उनकी नज़र इस पत्रिका पर पड़ी। चूँकि वे इन पत्रिकाओं से परिचित थे। वे पहचान गए और काफ़ी लिखा-पढ़ी के बाद पुन: यह पत्रिका भारतीय राजदूत की सहायता से मॉरीशस वापस आई। आज वह संग्रह हिंदी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित है। इसकी प्राप्ति के संबंध में काफ़ी लिखा-पढ़ी करनी पड़ी और डॉ. गोयनका के परिश्रम से यह संभव हो पाया।

हस्तलिखित 'दुर्गा' ने घने जंगल को काटकर एक ऐसी पगडंडी बनाई है, जो भावी पीढ़ी के लिए गली और बाद में चौड़े व सुगम रास्ते का रूप लेकर निखर आएगी। उन्हीं रास्तों से गुजरकर आज विशेष रूप से मॉरीशसीय हिंदी साहित्य विश्व की बुलंदियों को छू रही है। डॉ. गोयनका के अनुसार, ''कोई भी साहित्य दुर्गा के अध्ययन के बिना पूर्ण या सार्थक नहीं हो सकता।''

डॉ. विनोद बाला अरुण ने कहा, ''मॉरीशसीय हिंदी साहित्य के लिए एस.एम. भगत नींव का काम करते हैं।''

लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' के अनुसार, ''प्रवासी हिंदी साहित्य के इतिहास के निर्माण काल में स्वर्णाक्षरों से सुशोभित होगा। भगतजी मॉरीशस में हिंदू, हिंदी एवं हिंदुस्तानी मॉरीशसीयता की नई चेतना के प्रतीक पुरुष हैं। ऐसे महापुरुषों को स्वर्णाक्षरों में श्रद्धांजलि देनी चाहिए।''

दुर्गा हस्तलिखित कष्टसाध्य, देशभक्ति आदि के चित्रयुक्त तथा गद्य-पद्य में संपादित एक आधुनिक तपस्या है, जिसका फल आज भी हम सारे हिंदी-प्रेमी चख सकते हैं। अंतत: यही कहा जा सकता है कि दुर्गा अपने आप में एक ऐतिहासिक निधि है, एक ऐसा दीपक है, जिस के बिना मॉरीशसीय हिंदी साहित्य अधूरा ही माना जाएगा।

प्रधान
हिंदी प्रचारिणी सभा
लोंग माउंटेन
मॉरीशस

□

31

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य का अनुवाद, प्रक्रिया एवं समस्याएँ

डॉ. राजरानी गोबिन

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य अपनी अथक, अनवरत यात्रा के सौ वर्ष पूरा कर चुका है और इस यात्रा के अनंतर विभिन्न साहित्यिक विधाओं की विपुल मात्रा में रचना हुई है। यह समृद्ध साहित्य हिंदी पाठक वर्ग तक ही सीमित न रह जाए, इस मूलभूत बात को ध्यान में रखकर, मॉरीशसीय हिंदी साहित्य का यदा-कदा अनुवाद भी होता रहा है।

अन्य भाषाओं में रचित साहित्य को हिंदी पाठकों के सामने लाने का बीड़ा मॉरीशसीय अनुवादकों ने उठाया, यथा—

हिंदी से फ्रेंच में अनूदित साहित्य

लेखक	उपन्यास	साहित्य अनुवादक	वर्ष
अभिमन्यु अनत	एक बीघा प्यार	केशन बद्धू, डॉ. शकुंतला बुलेल	1997
अभिमन्यु अनत	लाल पसीना	केशन बद्धू, इज़ाबेल जारी	2001
लेखक	**कहानी**	**अनुवादक**	**वर्ष**
अभिमन्यु अनत	चयनित कहानियाँ	आश्लेखा कालिकाँ प्रोआग	1983
लेखक	**कविता**	**अनुवादक**	**वर्ष**
सोमदत्त बखोरी	चयनित कविताएँ	सोमदत्त बखोरी	1990
लेखक	**नाटक**	**अनुवादक**	**वर्ष**
अभिमन्यु अनत	रोक दो कान्हा	डॉ. राजरानी गोबिन डॉ. राजकुमारी ईसर	2009
लेखक	**कहानी**	**अनुवादक**	**वर्ष**
	ले फ़ाब्ल दे ला फोंटेन Les Fables de la Fontaine	भुवनेश्वर सोनू	

लेखक	नाटक	अनुवादक	वर्ष
मोलियर Molière	ले बुर्जुआ जाचियम Le Bourgeois Gentilhomme	ब्रजनाथ माधव	1957
मोलियर Molière	लावार L'avare	ब्रजनाथ माधव	1958

लेखक	उपन्यास	अनुवादक	वर्ष
बेरनार्दें दे सें प्येर Bernardin de Saint Pierre	पाल ए विरजिनी Paul et Virginie	बासुदेव विष्णुदयाल	1959
बेरनार्दें दे सें प्येर Bernardin de Saint Pierre	ला शोमियेर ऐंदियन La Chaumière Indienne	बासुदेव विष्णुदयाल	1959
आलेजाद्र दूमा Alexandre Dumas	जार्ज Georges	बासुदेव विष्णुदयाल	1963
वोल्टेर Voltaire	कांदिद Candide	ब्रजनाथ माधव	1957

इस शोध-पत्र के माध्यम से अनुवाद की प्रक्रिया एवं उससे संबंधित समस्याओं पर विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास किया जा रहा है।

अनुवाद की प्रक्रिया

अनुवाद करते समय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है विषय का चयन। साहित्य का अनुवादक प्राय: उसी विषय का चयन करता है, जो उसकी दृष्टि में मर्मभेदी है। अश्लेखा कालिकाँ प्रोआग ने अभिमन्यु के एक पूरे कहानी-संकलन का नहीं, विभिन्न संकलनों से चयनित कहानियों का अनुवाद किया। जब मैंने अभिमन्यु के नाटक 'रोक दो कान्हा' पढ़ा तो इसकी मूल संवेदना से मैं इतनी प्रभावित हुई कि मेरे रोंगटे खड़े हो गए, आँखें भी भर आईं। यह नाटक कृष्ण की रोमांचक लीलाओं पर आधारित न होकर, निशस्त्रीकरण पर केंद्रित है, जिसमें लेखक ने अत्यंत कलात्मक ढंग से युद्ध के दुष्परिणामों के प्रति सचेत किया है। ऐसी गहन कृति की मूल संवेदना का प्रचार हिंदी जगत तक ही क्यों संकुचित रहे ? विश्व भर तक ऐसा महत्वपूर्ण संदेश पहुँचाने के लिए अनुवाद से उत्कृष्ट और कोई माध्यम नहीं सूझा। 'रोक दो कान्हा' का फ्रेंच में अनुवाद करने का विचार आया। मैं एवं मॉरीशस विश्वविद्यालय की डॉ. राजकुमारी ईसर ने मिलकर अनुवाद किया। हम दोनों ने माध्यमिक विद्यालय में क्वीन एलिज़बथ कॉलेज में फोर्म एक से छ: तक हिंदी की पढ़ाई साथ की, फिर राजकुमारी फ्रेंच की विशेषज्ञ बनी और मैं हिंदी क्षेत्र में आगे बढ़ी। 'रोक दो कान्हा' नाटक का पाठ चार बार किया, क्योंकि कृति की मूल संवेदना एवं उसके उद्‌देश्य तक पैठे बिना अनुवाद करना श्रेयस्कर नहीं है।

अनुवाद करने से पूर्व लेखक से अनुमति माँगना अनिवार्य समझा जाता है। अभिमन्यु जी से लिखित रूप में अनुवाद की स्वीकृति ली गई। हिंदी से फ्रेंच में मैंने नाटक का एक प्रथम अनुवाद किया। पांडुलिपि डॉ. ईसर को सौंपी, क्योंकि फ्रेंच भाषा के अत्याधुनिक रूप, फ्रांसीसी संस्कृति की सूक्ष्मता से वह मुझसे अधिक अवगत हैं। पांडुलिपि में फलत: परिष्कार आ गया।

'रोक दो कान्हा' में कुछ ऐसे स्थल आए, जहाँ लेखक के संकेतार्थ संबंधी शंकाएँ उत्पन्न हुईं। अपनी जिज्ञासा की तृप्ति हेतु हम पुन: लेखक के घर पहुँचे। शंकाएँ मिटीं। अभिमन्यु की भेंटवार्त्ता

भी हिंदी में ली गई, जिसका अनूदित रूप परिशिष्ट में संलग्न किया गया।

अंतिम चरण में हमने अनूदित पांडुलिपि प्रो. विनेश हुकुम सिंह को दी, जो फ्रेंच के वरिष्ठ भाषाविज्ञानविद् एवं हिंदू संस्कृति के प्रशंसक भी हैं। उनके सुझावों के अनुकूल पांडुलिपि में निखार लाया गया। पुन: पांडुलिपि लेखक को दिखाई गई। उनकी अंतिम स्वीकृति प्राप्त करने पर ही प्रकाशन की ओर अग्रसर हुए।

अनुवाद संबंधी समस्याएँ

शीर्षक का अनुवाद

शीर्षक यदि सार्थक एवं गंभीर हो तो रचना के प्रति लोगों का सहज आकर्षण होता है और रचना का मूल्य भी बढ़ जाता है। पुस्तक के शीर्षक को लेकर समस्या हुई। फ्रेंच भाषी लोग कान्हा शब्द से कम अवगत हैं, कृष्ण से अधिक परिचित। अत: कान्हा का अनूदित रूप कृष्णा बनाना पड़ा। रोक दो कृष्णा में भी कुछ अस्पष्टता सी थी। क्या रोका जाए? छेड़छाड़, छबीलापन या युद्ध? शीर्षक अंतत: बना Arrête cette guerre Krishna। सुविधा के लिए कुछ लेखक शीर्षक को ज्यों-का-त्यों लिप्यंतरित कर जाते हैं, जैसे अश्लेखा ने 'बख्शीश' कहानी शीर्षक के साथ किया।

सांस्कृतिक शब्दावली का अनुवाद

अनुवादक की सबसे बड़ी चुनौती है सर्वाधिक समतुल्यता तक सीमित रहना, जिससे कि लक्ष्य भाषा का पाठक उचित बिंब ग्रहण कर पाए। इस दृष्टि से सांस्कृतिक शब्दावली का अनुवाद करना बहुत कठिन है। इस संदर्भ में सभी अनुवादकों का एक ही समाधान है—शब्दों को ज्यों-का-त्यों लिप्यंतरित कर देना और पाद टिप्पणी के रूप में उनकी व्याख्या दे देना। अश्लेखा अनुवाद करते समय पुजारी, चोली, संधी, भाई, मुड़िया पहाड़ का मात्र लिप्यंतरण करती है, फिर पाद टिप्पणी देती है।

शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए. हिंदी और एम.ए. हिंदी, पी-एच.डी.। Department of Bhojpuri Folklore and oral traditions में सहायक शोधकर्ता।

प्रकाशन : स्थानीय पत्रिका जैसे वसंत तथा रिमझिम और भारतीय पत्रिकाओं में लेख कविताएँ, लेख प्रकाशित। हाल ही में अभिमन्यु अनत कृत 'रोक दो कान्हा' का फ्रेंच भाषा में अनुवाद। वयस्कों के लिए Apprenons Hindi, Introductory Course in Hindi तथा हिंदी में सांस्कृतिक शब्दावली का कोश प्रकाशित किया है।

संप्रति : महात्मा गांधी संस्थान के हिंदी विभाग में वरिष्ठ प्रध्यापिका।

'मुड़िया पहाड़' संबंधी पाद टिप्पणीः

"Selon une tradition orale, un jeune homme, pour avoir été parjure envers les fées, avait été transformé par elles en cette 'Montagne à la tête'."

''एक वाचिक परंपरा के अनुकूल एक तरुण पुरुष, जो परियों के साथ विश्वासघात करने के फलस्वरूप उनके द्वारा सिर वाले पहाड़ में रूपांतरित हुआ था।''

(पाठकों की सुविधा हेतु पुन: अनुवाद)

'रोक दो कान्हा' के अनुवाद के समय भद्र, कुलभूषण, चक्रव्यूह, अस्त्रपति, कुलवधु, तिलक, मुरलीधर, वंशीधर, मधुसूदन, रक्षा सूत्र आदि शब्दों के साथ ऐसा ही प्रयोग किया गया।

द्विअर्थक अथवा बहुअर्थक शब्दों, जैसे धर्म, मर्यादा, अनीति आदि का अनुवाद करना भी कठिन रहा है।

ध्वन्यात्मक शब्दों का अनुवाद

मूल या स्रोत भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा भाषा में प्रभावोत्पादकता लाई जाती है। भाषा की लोच की रक्षा हेतु इन शब्दों का अनुवादक लिप्यंतरण मात्र करता है। आवश्यकता पड़ने पर पाद टिप्पणी में व्याख्या दी जाती है। अश्लेखा थू-थू या छी शब्दों का व्यवहार ऐसे ही करती हैं। 'रोक दो कान्हा' में आए घोड़ों की टाप के लिए प्रयुक्त ध्वन्यात्मक शब्द कोटोटोक कोटोटोक कोटोटोक को किन शब्दों से स्थानापन्न करते?

मुहावरे एवं लोकोक्तियों का अनुवाद

मुहावरे एवं लोकोक्तियों का अनुवाद करना दुष्कर कार्य है, इनका शाब्दिक अनुवाद करना उचित नहीं होता। कभी-कभी पूरे मुहावरे का अनुवाद एक शब्द अथवा क्रिया द्वारा करना पड़ता है और प्रभाव तब समान नहीं रह जाता।

सोमदत्त बखोरी की अनूदित कविता का उदाहरण—

मूल वाक्य	अनूदित वाक्य	पाठकों की सुविधा हेतु पुनः अनुवाद
गलियों की खाक छानता था किसमत को कोसते हुए	Je trainais les rues En maudissant mon destin	मैं गलियों में भटकता था अपनी किस्मत को कोसते हुए
मारा–मारा फिरता था	Je ne savais où aller	कहाँ जाना है नहीं पता था

अभिमन्यु के कुछ उदाहरण लीजिए—

मूल वाक्य	अनूदित वाक्य	पाठकों की सुविधा हेतु पुनर् अनुवाद
कुरुक्षेत्र में वीरगति प्राप्त होने वाले उन सैकड़ों	Ces milliers qui sont morts	वे हज़ारों जिनकी मृत्यु हुई
द्रोणाचार्य का पैर छूता है इस तलवार ने मृत्यु के घाट उतारा	Salue Dronacharya Cette épée a tué…,	द्रोणाचार्य को प्रणाम इस तलवार ने मारा
मेरे सुहाग को मिटाने की चेष्टा न करें	N'essayez pas de m'enlever mon époux	मेरे पति को उठाने का प्रयास न करें

कुछ अन्य मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ, जिनका अनुवाद करना दुष्कर रहा है

नियति की चक्की की धुन बना देना, जिसकी लाठी उसकी भैंस, विनाश काले विपरीत बुद्धि, पांडव सेना के छक्के छुड़ा दिए, आग भड़काने के लिए उसमें घी उड़ेलना।

काव्यात्मक शैली का अनुवाद

जहाँ आलंकारिक शैली आई, वहाँ भी समस्याएँ उत्पन्न हुईं। केशन बद्धु द्वारा संपन्न अनुवाद का अंश देखिए, जहाँ मात्र शैली ही काव्यात्मक नहीं है, वाक्य भी जटिल, संश्लिष्ट है—

चंद ऐसे भी पन्ने थे जो भारतीय मज़दूरों के खून–पसीने से कुछ इस तरह से भीगे हुए थे कि उन्हें आग जला न सकी और जो पन्ने जले भी, उनकी राख को खाद समझ नियति ने खेतों में बिखेर दिया।

D'autres sont tellement imprégnées de la sueur et du sang des travailleurs indiens que même le feu n'a pu les détruire. Quant aux pages qui n'ont malheureusement pas résisté aux flammes, elles ont été réduites en cendres et ces cendres….Dame Nature les a transformés en fumier et répandus dans les champs!

"अन्य पन्ने भारतीय मज़दूरों के खून पसीने से इतने तरबतर थे कि आग भी उन्हें जला न सकी। जो पन्ने आग से बच नहीं पाए, वे खाक में परिवर्तित हुए और वे खाक… लेडी प्रकृति ने उन्हें खाद में रूपांतरित किया और खेतों में बिखेर दिया।" (पाठकों की सुविधा हेतु पुनः अनुवाद)

मिश्रित लंबे वाक्य को अनुवादक ने तीन वाक्यों में विग्रह किया है। उन्होंने अपनी ओर से जोड़ा भी है और नाटकीय प्रभाव की वृद्धि हुई।

रोक दो कान्हा के कुछ उदाहरण—

मूल वाक्य	अनूदित वाक्य	पाठकों की सुविधा हेतु पुनर् अनुवाद
सैकड़ों वीरों के सिर गाजर- मूली की तरह काट गिराए गए	Des milliers de braves ont été décapités sans pitié	सैकड़ों वीर निर्दयतापूर्वक मारे गए
कैसे भर लूँ अपने आँचल में जीवन भर का अँधेरा?	Comment puis-je plonger dans l'obscurité pour toujours	कैसे मैं सदा के लिए जाऊँ अंधकार में डूब

गीतों का अनुवाद

गद्य साहित्य में गीतों का समावेश सरसता भरता है। 'अश्लेखा' कहानी का अनुवाद करते समय भोजपुरी गीत का अनुवाद न कर उसका लिप्यंतरण करती है। पाद टिप्पणी में उसका अर्थ देती है—

"भर सहरवा घूम आवे के चार अन्ना दाम बा
चल भइया घूमा दे ज़िंदगी में का बा···"
"Bhar Saharwa Ghum ave ke chaar anna dam ba
Chal bhaiya ghouma de zindagi mein ka ba"

पाद टिप्पणी में लिखती है—Pour se promener à travers la ville, cela ne nous coute que vingt-cinq sous, alors viens mon amour, promène-moi-donc, qu'y a-t-il d'autre, dis moi, dan la vie?

'रोक दो कान्हा' में अभिमन्यु स्वयं भगवद्‌गीता में आए कुछ श्लोकों को उद्धृत करते हुए उनका हिंदी अनुवाद देते हैं। 'Arrête cette guerre Krishna' में हमने भी उन उद्धरणों का लिप्यंतरण ही किया। फिर उनका अनुवाद फ्रेंच में दिया।

मूल्यांकन

- मॉरीशस में हिंदी में या हिंदी से जो साहित्य अनूदित हुआ है, वह मात्रा में अधिक नहीं है।
- पद्य से गद्य का अधिक अनुवाद हुआ है, क्योंकि पद्य का अनुवाद करना बहुत कठिन है।
- अनुवाद करते समय मूल का साहित्यिक सौष्ठव नष्ट होता है, पर साथ-साथ अनुवाद की बदौलत हिंदी लेखक की मूल संवेदना, उसकी क्षमतायोग्यता का प्रचार-प्रसार वैश्विक स्तर पर संभव हुआ है।
- अंग्रेज़ी से हिंदी या हिंदी से अंग्रेज़ी में अनुवाद की तुलना में फ्रेंच से हिंदी या हिंदी से फ्रेंच में अनुवाद अधिक मात्रा में हुआ है।

सुझाव

अनुवाद श्रमसाध्य है, पुस्तक लेखन से भी कठिन है एवं समय उपभोगी भी है। यदि हिंदी साहित्यानुवाद को बढ़ावा देना चाहते हैं तो वैश्विक स्तर पर अनूदित कृतियों के क्रय-विक्रय पर विशेष ध्यान देना होगा। इससे अनुवादकों की न प्रेरणा शुष्क होगी, न ही उनकी अंतरात्मा की रचनात्मक शक्ति दबेगी। और न ही उनकी वितरणाकांक्षा की प्रबल इच्छा मिटेगी।

संदर्भ-ग्रंथ

- Les Empereurs de la nuits, chroniques Mauriciennes de Abhimanyu Unnuth traduites et présentées par Aslakha Callikan-Proag; Les Editions de l'Ocean Indien, Moka, Ile Maurice, 1983
- Rencontres, Ed. by Danielle Tranquille & Soorya Nirsimloo-Gayan (Centre for Mauritian Studies), 2000, Mahatma Gandhi Institute, Republic of Mauritius
- 'रोक दो कान्हा', अनत अभिमन्यु, 1986, गांधी नगर, दिल्ली, किताबघर।

वरिष्ठ प्राध्यापिका
महात्मा गांधी संस्थान, मोका मॉरीशस
rajranigobin@yahoo.com

□

32

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता : अंतर्संघर्ष एवं मुक्ति का आह्वान

डॉ. संयुक्ता भुवन रामसारा

शिक्षा : बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए. और पी-एच.डी.
प्रकाशन : 'निराला : रचना और अंत:संघर्ष' तथा 'Booklet on thoughts on peace' संस्कृत शास्त्र, शास्त्रीय संगीत का अध्ययन किया है। स्थानीय तथा अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में लेख का प्रकाशन हो चुका है।
संप्रति : महात्मा गांधी संस्थान के हिंदी विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापिका के रूप में कार्यरत।

संघर्ष और अंतर्संघर्ष आधुनिक मानव जीवन का दैनिक एवं स्वाभाविक अंग बन गया है। इसी प्रकार यह अतिशयोक्ति नहीं वरन अकाट्य सत्य है कि अंतर्संघर्ष ही सृजनात्मकता का स्रोत है और इस प्रकार साहित्य भी अंतर्संघर्ष की ही उपज है। साहित्य समाज के बीच से उपजता है और यही साहित्य जीवन की आलोचना भी करता है। अंतर्संघर्ष का जन्म अंतर्जगत और बाह्य जगत के भेदक तत्वों के अंतर्द्वंद्व से होता है, जो तदनंतर साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होता है।

पंत की अतिप्रसिद्ध पंक्तियाँ इसी भावधारा को पुष्ट करती हैं—

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

इसी प्रकार हरिवंशराय बच्चन ने भी कहा, ''मैं रोया तुम कहते गाना?'' पाश्चात्य कवि Shelley ने अपनी रचना 'To the Skylark' में भी कहा कि 'Our sweetest songs are those that tell our saddest thoughts'. अर्थात् 'हमारे दर्द भरे अनुभव ही हमारे मधुरतम गीत हैं।' 'हिंदुस्तानी' पत्र में सन् 1913 में प्रकाशित मॉरीशस की प्रथम हिंदी कविता 'होली' में भी पीड़ाजन्य मुक्ति की चाह से होली मनाई जाने का संकेत मिलता है—

जप तप गान वेदन को, भी उत्साह बिसराई।
मिलत परस्पर से संबंध, दाह कष्ट बिसराई।

फिर भी सहृदय रचनाकार के अंत:स्थल से न:सृत यह दर्द सामान्य व्यक्ति की पीड़ा नहीं, जो दो बूँद आँसू बहाकर चुप हो जाए या 'हाय! हाय!' की सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में विलीन हो जाए। अपितु यह संवेदनशील कवि मानस को करुणा से आप्लावित कर उसे संपादित एवं झंकृत कर चेतन तथा अवचेतन शक्तियों के सामंजस्य से काव्य-रचना के रूप में प्रवाहित होती है। ऐसी ही रचनाएँ कालजयी बन व्यक्ति और समाज के नव निर्माण के सशक्त प्रेरक स्रोत बनती हैं और इस प्रकार अंतर्संघर्ष से काव्य की उत्पत्ति माननेवालों में मुक्ति की छटपटाहट निरंतर विद्यमान रहती है। मॉरीशसीय हिंदी साहित्य के शताब्दी महोत्सव के पुण्यावसर पर यह कहते हुए हमें गर्व अनुभव हो रहा है कि हमारे देश में भी ऐसी कालजयी रचनाएँ हैं और स्वाभाविक हैं कि ऐसे श्रेष्ठ साहित्य-सृजक भी हैं। आज के दिन उन सभी को स्मरण करना हमारा पुनीत कर्तव्य है। वैसे तो स्वतंत्रता से पूर्व पीड़ाजन्य संघर्ष से उत्पन्न रचनाएँ विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं।

प्रारंभिक काल में पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज', पं. जदुनंदन शर्मा से लेकर मध्यकाल या संघर्षकाल (1935-1968) के श्री जयनारायण रॉय, ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर', सूर्यप्रसाद मंगर भगत, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी आदि की कविताओं में स्वराज्य आंदोलन, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार, गोरों के अत्याचार, राजनीति बनाम कूटनीति, गद्दारी तथा नारी-मुक्ति से संबंधित रचनाएँ भरपूर मिलती हैं, जो कि संघर्ष के बल पर स्वतंत्रता-प्राप्ति का आह्वान करती हैं।

विचारणीय बात यह है कि परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त होने पर भी संवेदनशील कवियों तथा आम जनता का संघर्षरत जीवन जारी रहा। ऐसा क्यों? मॉरीशस धरा पर 12 मार्च, 1968 में एक नवीन प्रभातकालीन वेला का अभ्युदय हुआ। जन-मन में मंगलकारी

योजनाएँ और कल्याणकारी स्वप्न सँजोकर आई स्वतंत्रता। स्वतंत्रता शब्द की गहराई में पैठने से अर्थ निकलता है 'स्व' और 'तत्र' अर्थात् 'आत्मा' की 'व्यवस्था' या 'राज्य', जहाँ सकारात्मकता और संतुष्टि हो।

परंतु देश की आज़ादी के पश्चात् भी मॉरीशसवासियों को जिस आशा और आकांक्षा की पूर्ति की अभिलाषा थी, वह अप्राप्य रही। मोहभंग की स्थिति बनी रही। विश्वविख्यात रचनाकार अभिमन्यु अनत ने 'जन आंदोलन के प्रणेता' में प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल के जन-आंदोलन के सांस्कृतिक अभियान पर बोलते हुए कहा है, ''शारीरिक दासता तो अब नहीं रही थी, लेकिन मानसिक दासता से राष्ट्र और जाति छुटकारा नहीं पा सकी थी।''

इसी कड़ी में पूजानंद नेमा ने आज़ादी को ललकारते हुए इस तलाश को जारी रखने की दिशा प्रदान की है। उन्मुक्त स्वर में वे कहते हैं।

आज़ादी चेहरों का तबादला नहीं
गुलामों की एजेंसी भी नहीं
वायदे नहीं, नारे नहीं
आज़ादी वह नौकरी भी नहीं
जो एक नयी गुलामी दे जाए।

समय बीतता रहा, परंतु बेहतर जीवन के स्थान पर महँगाई, भाई-भतीजावाद, बेरोज़गारी, विसंस्कृतिकरण, भ्रष्टाचार, असमानता आदि विसंगतियाँ जीवन को संघर्षमय बनाती रहीं। हमारे सजग साहित्यकारों ने इन तथ्यों को जीया है, परखा है और इन अनुभूत सत्यों को अपनी रचनाओं द्वारा अभिव्यक्त किया है। कुछ ऐसे उदारचित्त रचनाकार भी हुए हैं, जिन्होंने सामने के कुहासों को चीरकर बेहतर समाज के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया है।

मोहभंग के इसी दौर से जूझते हुए हमारे एक कवि ने लिखा है—

कभी मैं चकित होता था
जब उलटी गंगा बहती थी
और अब तो लगता है कि
दूसरी तरह वह बह नहीं सकती।

(हेमराज सुंदर)

इसी प्रकार राजनीतिज्ञों की कठपुतली बने व्यवस्थापकों एवं सत्ताधारियों के अत्याचार और शोषण की नई गुलामी को चुनौती देते हुए कवि अभिमन्यु अनत कह उठे हैं—

मेरी कोठी का अनाज
तुम्हारी मुट्ठी में क्यों बंद है?
मेरी मुट्ठी के कैक्टस में
फूल क्यों नहीं आया?

आजकल युवा पीढ़ी के सामने जो सबसे बड़ी चुनौती है, वह है नौकरी की। डिग्री होते हुए भी नौकरी न मिलने के कारण कवि ने मनोरम और पारदर्शी रूप में व्यक्त किया है—

''विख्यात लेखन महाविद्यालय से
बड़ी उम्मीद लेकर सीखी पत्रकारिता,
पर नौकरी न मिली
दीखनी थी बाकी अभी चाटुकारिता।

(सोमदत्त बखोरी)

आधुनिक संदर्भ में यह कितना कटु सत्य है।

आज हर मानव किसी-न-किसी रूप में जूझ रहा है, रुपए से, परिवार से, समाज से या फिर व्यवस्था से। इस समष्टिगत पीड़ा को अभिव्यक्त करने हेतु कवि कह उठा हैं—

निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि आज हम इतिहास के एक ऐसे संक्रमण एवं महत्वपूर्ण काल में हैं, जहाँ जन-जन में नवयुग के आगमन की कामना समाई हुई है। यह तभी संभव है, जब हम 'स्व' पर नियंत्रण पाएँ, क्योंकि बाह्य परिस्थितियों पर हमारा कोई वश नहीं। लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों का सहर्ष एवं विजयी रूप से सामना करने हेतु आंतरिक शक्तियों का सशक्तीकरण करना ही होगा। इसकी एक अति महत्वपूर्ण कड़ी है—सबकुछ करते हुए जीवन में आध्यात्मिकता का संचार। अंतर्संघर्ष से मुक्ति की यह यात्रा 'नर से नारायण' की यात्रा है तो 'कामायनी' के मनु की 'चिंता' से 'आनंद' तक की यात्रा भी है। यह राम-रावण युद्ध का भी द्योतक है और अंततः गांधीजी के रामराज्य का भी आह्वान करता है। यह सृष्टि-मंच का कुरुक्षेत्र है, जहाँ कौरव-पांडव में विनाशकारी युद्ध चल रहा है। यह प्रत्येक मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत यात्रा है जिसे उसे स्वयं पूरा करना है, तभी वास्तविक स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी। सकारात्मक अंतर्संघर्ष से विनाशकारी रात्रि का अवसान होगा, जिससे गति, सद्गति तथा मुक्ति की प्राप्ति होगी।

चारों ओर खीज
हर आत्मा के भीतर
क्रोधाग्नि की लपटें
* * *
शनैः शनैः पिघलकर
खो रही है अस्तित्व अपना
यह धरती, यह आकाश, ये तारे।

(सूर्यदेव सिबोरत)

नौकरी-पेशा नारी के अंतर्संघर्ष और विवशता को देख कभी यह प्रश्न उठता है कि शास्त्रों में ऋषि-मुनियों ने ठीक ही लिखा है कि गृहिणी का स्थान घर पर है? क्या बाह्य जगत् के दौड़-धूप में वह अपने नारियोचित गुणों, ज़िम्मेदारियों को निभाने में अपेक्षाकृत कम तो नहीं पड़ती जा रही है? एक ऐसी ही नारी की करुण गाथा सुनिए—

इस अँधेरे में पस्त होकर
जब मैं शाम को घर की दहलीज़ पर
पैर रखती हूँ तो…
मेरे कलेजे का यह हिस्सा
जो हर रोज़ मैं काटकर रख जाती हूँ
पिघल गया होता है।

(सुमति संधु)

इस अंतर्संघर्ष की छटपटाहट में मुक्ति की चाह समाई हुई है।

हिंदी साहित्य शताब्दी के शुभावसर पर और देश की स्वतंत्रता के पैंतालीस वर्ष पूरे होने की पावन वेला में ये पंक्तियाँ जिजीविषा को सशक्त करती हैं, जहाँ कवि नए लोक की कल्पना की उड़ान भरते हैं—

''मुझे किसी दूर-दराज की जगह ले चलो,
जहाँ नया क्षितिज हो नए वृक्ष हों।''

इसी तरह नई धरती की कामना करते हुए कविमन बोल उठा है—

मुझे एक बीघा आसमान दो
एक अलग चाँद सितारे बोऊँगा
अपने अँधेरे से दूर
अपना एक अलग सूरज उगाऊँगा।

(महेश रामजियावन)

इस प्रकार व्यस्त जीवन से उत्पन्न कुंठाओं, निम्न वर्ग की मजबूरियों, पारिवारिक टूटन, वर्ग-संघर्ष आदि से मुक्त, सुखी-शांत एवं समृद्ध जीवन की परिकल्पना करते हुए कवि व्यंग्य कसता है—

शांति शांति पुरस्कार बाँटने
शांति पाठ करने से नहीं आएगी
शांति सफ़ेद कबूतरों की टोली नहीं
बारूद बेचने वालों की कूटनीति नहीं।
आएगी शांति,
अपने आप आएगी
हर अरुणोदय के साथ आएगी।

(सोमदत बखोरी)

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आज हम इतिहास के एक ऐसे संक्रमण एवं महत्वपूर्ण काल में हैं, जहाँ जन-जन में नवयुग के आगमन की कामना समाई हुई है। यह तभी संभव है, जब हम 'स्व' पर नियंत्रण पाएँ, क्योंकि बाह्य परिस्थितियों पर हमारा कोई वश नहीं। लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों का सहर्ष एवं विजयी रूप से सामना करने हेतु आंतरिक शक्तियों का सशक्तीकरण करना ही होगा। इसकी एक अति महत्वपूर्ण कड़ी है—सब कुछ करते हुए जीवन में आध्यात्मिकता का संचार। अंतर्संघर्ष से मुक्ति की यह यात्रा 'नर से नारायण' की यात्रा है तो 'कामायनी' के मनु की 'चिंता' से 'आनंद' तक की यात्रा भी है।

यह राम-रावण युद्ध का भी द्योतक है और अंततः गांधीजी के रामराज्य का भी आह्वान करता है। यह सृष्टि-मंच का कुरुक्षेत्र है, जहाँ कौरव-पांडव में विनाशकारी युद्ध चल रहा है। यह प्रत्येक मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत यात्रा है जिसे उसे स्वयं पूरा करना है, तभी वास्तविक स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी। सकारात्मक अंतर्संघर्ष से विनाशकारी रात्रि का अवसान होगा, जिससे गति, सद्गति तथा मुक्ति की प्राप्ति होगी।

इस त्रिवेणी का मिलन अति अर्थपूर्ण है, अर्थात् मॉरीशसीय हिंदी साहित्य शताब्दी, शिवरात्रि और स्वतंत्रता दिवस सभी को एक ही समय पर मनाना। इनमें अंतर्संबंध यही है कि कलयुग की अंधकारपूर्ण रात्रि को भेदकर ही सच्ची स्वतंत्रता की प्राप्ति होगी और इसमें देववाणी हिंदी का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है।

वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी विभाग
महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस

□

33

मॉरीशस में हिंदी पत्रिका का उद्‌भव और विकास

धरमवीर गंगू

शिक्षा : Joint Diploma in Hindi & Indian Philosophy (महात्मा गांधी संस्थान), बी.ए. हिंदी with Education (महात्मा गांधी संस्थान), पी.जी.सी.ई हिंदी (महात्मा गांधी संस्थान और एम.आई.ई), एम.ए. हिंदी, एम.ए. दर्शन (Philosophy)

संप्रति : मेबर्ग आर्य समाज के प्रधान, आर्य सभा मॉरीशस की युवा शाखा के महामंत्री, रॉयल कॉलेज क्यूर्पिप में हिंदी शिक्षक तथा डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज में अंशकालिक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं।

मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता का उद्‌भव उन्नीसवीं सदी के प्रथम दशक में हुआ। इसने सौ वर्ष की यात्रा तय कर ली है। यह सर्वविदित है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। हिंदी पत्रकारिता साहित्य की अधुनातन विधा है। इसके माध्यम से ज्ञान और विचार पाठकों तक पहुँचते रहे हैं। मॉरीशस के हिंदी पत्रकारों ने पत्रकारिता द्वारा जिस साहित्य का सृजन किया है, उसमें तत्कालीन युग के समूचे समाज की आवाज़ सुनाई देती है।

वर्तमान में पत्रकारों ने अपनी रुचि और परिस्थिति के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों का चुनाव किया है। फलत: पत्रकारिता के विविध स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इन स्वरूपों का वर्गीकरण कई नामों से किया गया है, यथा– आर्थिक पत्रकारिता, ग्रामीण पत्रकारिता, संसदीय पत्रकारिता, खेल पत्रकारिता, रेडियो पत्रकारिता, दूरदर्शन पत्रकारिता, विधि पत्रकारिता, चित्रपट पत्रकारिता आदि।

गत सौ वर्षों की हिंदी पत्रकारिता के इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होगा कि मॉरीशस में समय–समय पर जिन पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा, उसमें कोई भी पत्र–पत्रिका किसी विशिष्ट विषय के आधार पर वर्गीकृत नहीं हुआ है। इन पत्र–पत्रिकाओं में समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति, इतिहास आदि से संबंधित सामग्रियाँ साथ–साथ प्रकाशित होती रही हैं।

मॉरीशस में गत सौ वर्षों में प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं के नाम बताना समीचीन होगा। प्रथम पत्र 'हिंदुस्तानी' का प्रकाशन 15 मार्च, 1909 में हुआ था। दूसरी 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' है, जिसका प्रकाशन 1911 में हुआ। 'ओरिएंटल गजेट' नाम की तीसरी पत्रिका 1912 में निकली। चौथी पत्र 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' 1920–24 तक छपता रहा। पाँचवाँ पत्र 'मॉरीशस मित्र' का प्रकाशन 1924 से 1932 तक होता रहा। 'मॉरीशस आर्य पत्रिका' ने सन् 1928 में पुनर्जन्म लिया और 1940 तक जीवित रही। 'आर्यवीर' 1929 से 1945 तक चलता रहा। 15 दिसंबर, 1933 से 1942 तक 'सनातन धर्मांक' का प्रकाशन–काल था। सन् 1935 में 'वसंत' ने जन्म लिया। इसका एक ही अंक प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने सन् 1935 में 'दुर्गा' नामक एक हस्तलिखित पत्रिका निकाली, जिसका जीवन–काल मात्र तीन वर्ष का था। सन् 1939 में 'जागृति' ने जन्म लिया और इसका प्रकाशन ग्यारह वर्षों तक होता रहा। सन् 1942 में 'मासिक चिट्ठी' निकली और सन् 1950 तक प्रकाशित होती रही। सन् 1945 से 1950 तक 'आर्यवीर–जागृति' नाम से आर्य समाज की पत्रिका छपती रही। 'सैनिक' नामक पत्र सन् 1946 में प्रकाशित हुआ, जो मात्र एक वर्ष तक चला। सन् 1948 में डॉ. शिवसागर रामगुलाम राजनीतिक चुनाव में विजयी हुए। उनके प्रयास से सन् 1948 से 1982 तक 'जनता पत्र' का प्रकाशन होता रहा। सन् 1948 में ही 'जमाना' नामक एक दूसरा समाचार–पत्र छपा, जो लंबे समय तक छपता रहा। आर्य सभा मॉरीशस ने अपना मुखपत्र 'आर्योदय' का प्रकाशन 9 नवंबर, 1950 से प्रारंभ किया। यह अनवरत रूप से कभी साप्ताहिक तो कभी पाक्षिक और कभी मासिक रूप में आज तक चलता आया है। सन् 1953 में 'वर्तमान' पत्र का प्रकाशन हुआ, जिसका जीवन–काल केवल एक वर्ष का था। सन् 1956 से 1959 तक 'मज़दूर' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। सन् 1960 में 'नवजीवन' निकला, जो 1964 तक जीवित रहा। सन् 1960 में एक और पत्र निकला 'समाजवाद', जो एक ही साल में काल–कवलित हो गया। सन् 1961 में 'अनुराग' प्रकाश में आया। इसका भी वहीं हाल हुआ, जो 'समाजवाद' का हुआ। सन् 1964 से 1967 तक 'कांग्रेस' समाचार–पत्र का प्रकाशन होता रहा। सन् 1965 में 'बाल सखा' निकला, जिसका जीवन–काल थोड़े ही समय का था।

सन् 1969 में 'अनुराग' ने फिर से जन्म लिया और 1977 तक

जीवित रहा। सन् 1979 से आज तक निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश में आईं—'दर्पण', 'आभा', 'हमारा देश', 'निर्माण', 'स्वदेश', 'इंद्रधनुष', 'आक्रोश', 'मुक्ता', 'पंकज', 'रिमझिम', 'सुमन' और 'विश्व हिंदी समाचार'।

उपरिलिखित पत्र-पत्रिकाओं में 'आर्योदय', 'वसंत', 'रिमझिम', 'आक्रोश', 'सुमन', 'पंकज', 'विश्व हिंदी समाचार' एवं 'विश्व हिंदी पत्रिका' अब तक निरंतर निकलती रही हैं, क्योंकि ये संस्थाओं की पत्रिकाएँ हैं। जिनका प्रकाशन-व्यय संस्थाओं की ओर से होता है।

जनता

'जनता' मॉरीशस की आज़ादी की लड़ाई का पत्र था। यह लगातार चौंतीस वर्ष तक प्रकाशित होता रहा। यह पत्र 'मज़दूर दल' के नेता डॉक्टर शिवसागर रामगुलाम और श्री जयनारायण राय के राजनीतिक आंदोलन का प्रतिनिधि था।

ज़माना

'ज़माना' कई दशकों तक प्रकाशित होता रहा। पंडित वासुदेव विष्णुदयाल इसके प्राण थे। इस पत्र ने हिंदुओं की अस्मिता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 'जमाना' राजनीतिक पार्टी Independent Forward Block अर्थात 'स्वतंत्र अग्रगामी दल' का मुखपत्र था।

वसंत

'वसंत' महात्मा गांधी संस्थान का प्रकाशन है, जो लंबे समय से प्रकाशित होता आ रहा है। यह शुद्ध साहित्यिक पत्रिका है, जिसको सजाने-सँवारने में अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, धनपाल हीरामन, डॉ. बीरसेन जगासिंह, डॉ. हेमराज सुंदर आदि साहित्यकारों का स्तुत्य योगदान रहा है।

रिमझिम-सुमन

'रिमझिम' भी महात्मा गांधी संस्थान का प्रकाशन है। 'हिंदी संगठन' ने अपनी ओर से 'सुमन' छापा, दोनों बाल पत्रिकाओं ने मॉरीशस में बाल साहित्य को बढ़ावा दिया है।

आक्रोश

'आक्रोश' के सर्वेसर्वा श्री सत्यदेव टेंगरजी हैं। यह सरकारी हिंदी अध्यापकों का मुखपत्र है, जिसमें विविध विषयों पर लेख छपते रहे हैं। अपने नाम के अनुसार ही यह पत्र अपनी भूमिका निभाता रहा है।

पंकज

'पंकज' पत्रिका हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा निकलती रही है। यह साहित्यिक पत्रिका है। इसके माध्यम से अनेक नवोदित साहित्यकार प्रकाश में आए हैं। इस पत्रिका में साहित्य की अनेक विधाएँ छपती रही हैं।

इंद्रधनुष

श्री प्रह्लाद रामशरण के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'इंद्रधनुष' का मॉरीशस की पत्र-पत्रिकाओं में एक विशेष स्थान है। यह अपने विषय का एक अनोखा पत्र है। यह मूलत: मॉरीशस के इतिहास से संबंधित विषयों पर आधारित रहती है।

आर्य समाज की पत्र-पत्रिकाएँ

आर्य समाज द्वारा प्रकाशित पत्र 'मॉरीशस आर्य पत्रिका', 'आर्यवीर', 'जागृति' आदि एक दशक से अधिक जीवित रहे। 'आर्योदय' एक ऐसा पत्र है, जो गत तिरसठ वर्ष से लगातार छपता आया है। इस पत्र ने मॉरीशस में हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिसकी चर्चा आज तक किसी लेखनी द्वारा नहीं हुई है। यद्यपि इस पत्र का प्रमुख उद्देश्य धर्म-प्रचार रहा है, तथापि समय-समय पर स्थानीय और भारतीय साहित्यकारों की कविताएँ, कहानियाँ, लेख, निबंध, विवरण, संस्मरण, पल्लवन, पत्र आदि प्रकाशित होते रहे हैं।

पत्र-पत्रिकाओं के संपादक

पिछले सौ वर्षों में जिन संपादकों ने हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया, उनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं—बैरिस्टर मणिलाल, मगनलाल डॉक्टर, श्री खेमलाल लाला, पंडित रामावध शर्मा, पंडित काशीनाथ किष्टो, पंडित लक्ष्मणदत्त, श्री नृसिंहदास, श्री सूर्यप्रकाश मंगर भगत, पंडित बेणिमाधव सतीराम, पंडित आत्माराम विश्वनाथ, श्री जयनारयण राय, श्री बख्तावरसिंह, श्री राजेंद्र अरुण, पंडित दौलत शर्मा, पंडित मोहनलाल मोहित, श्री अजामिल माताबदल, पंडित धरमवीर धूरा, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, श्री विष्णुदत मधु, श्री इंद्रदेव भोला, श्री रामदेव धुरंधर, श्री अभिमन्यु अनत, श्री सत्यदेव टेंगर, डॉ. बीरसेन जगासिंह, श्री मूलशंकर रामधनी, श्री सत्यदेव प्रीतम, डॉ. उदयनारायण गंगू, डॉ. हेमराज सुंदर, श्री धनपाल हीरामन, श्री प्रह्लाद रामशरण आदि। इन संपादकों में हिंदी के कई अच्छे विद्वान और साहियकार थे और है। इनके द्वारा लिखे गए संपादकीय के ऐतिहासिक महत्व को नकारा नहीं जा सकता; परंतु इनके लेखन में एक बात अवश्य खटकती है, वह है संपादकीय कला का अभाव। संपादक में जन-कल्याण की भावना होनी चाहिए। उनकी लेखनी से संपूर्ण समाज को एक नई दिशा अथवा दृष्टि मिलती है। भ्रष्टाचार उन्मूलन, विशेष सुधार आदि विषयों को संपादक अपने संपादकीय में महत्व देता है। पत्रकारिता में निपुण संपादक कठिन-से-कठिन विषयों पर गंभीरता से मनन करते हुए उसे सहज और सरल बनाने का प्रयास करता है। संपादकीय के पाठक शिक्षित अल्पशिक्षित, सभी वर्ग के लोग होते हैं, इसलिए आवश्यक है कि संपादकीय सरल, सुबोध और स्पष्ट शैली में लिखा जाए। संपादकीय लेखन में भाषा अत्यंत साहित्यिक नहीं होनी चाहिए कि पाठक समझ ही न पाए। हमारे बहुत से संपादक यह भूल गए हैं कि संपादकीय ही पत्र की आवाज़ होता है।

जो भी हो हमारे संपादकों ने मॉरीशस में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार, हिंदू धर्म एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उनके नाम और कार्य मॉरीशसीय हिंदी साहित्य के इतिहास में स्मरणीय रहेंगे।

दुलर गली , मेबर्ग

□

34

मधुकर की काव्य-कला का स्वरूप-भाषा और छंद

डॉ. लालदेव अंचाराज

शिक्षा : पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. ऑनर्स, एम.आई.ई. मॉरीशस से पी.जी.सी.ई., एम.ए., आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापटनम से एम.ए. हिंदी, पी-एच.डी.,

कृतित्व : 1964 से हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत, प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ाया, हिंदी शिक्षाधिकारी ग्रेड ए, महात्मा गांधी संस्थान में हिंदी व्याख्याता, दो पुस्तकें 'सुबोध अलंकार वाटिका' तथा 'अंचराज साहित्य संचयन' प्रकाशित।

सम्मान : कई सम्मानपत्र प्राप्त।

संप्रति : सेवानिवृत्त, हिंदी लेखक संघ के प्रधान।

भाषा मॉरीशस के राष्ट्रकवि श्री ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की हिंदी काव्य सेवा किसी परिचय की वांछनीयता नहीं रखती। यह सत्य है कि मधुकर जी ने गुप्त जी के समान महाकाव्य नहीं रचे, परंतु उनकी हिंदी काव्य रचनाओं का अक्षय कोश उन्हें मॉरीशस के सर्वोच्च कवि की श्रेणी में खड़ा कर देता है। उनका स्वभाव जितना सहज, सरल और सरस है, उनकी भाषा भी वैसी ही सहज, सरल एवं सरस है।

उनकी काव्य-रचना 'मेरी भौजी' की भाषा शैली के संबंध में महात्मा गांधी संस्थान के भूतपूर्व भाषा विभागाध्यक्ष एवं वरिष्ठ हिंदी व्याख्याता डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि के अनुसार

कवि ने अपनी सरल सुबोध भाषा शैली में 'मेरी भौजी' के विभिन्न गुणों पर प्रकाश डाला है। यथा—

दुनिया में गम खाकर भौजी
नित छमा दान करती भौजी
मर्यादा की रक्षा करती
प्रिय परंपरा पर बलि जाती
मानव-सेवा की बेदी पर
नित प्राण चढ़ाती हर्षाती।

मधुकर जी के सरस शब्दों से सज्जित वर्ण्य विषय बड़ा रोचक, सजीव और मार्मिक बन पड़ा है—

यदि आज बना हूँ राष्ट्र कवि
दिखला कर अपनी कलम छवि।
मानवता ज्ञान सरोवर के,
साहित्य गगन में चंद्र रवि
प्रेरणा दायिनी है भौजी।

एक ओर जहाँ ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' जी की भाषा सरल और सहज है, वहीं दूसरी ओर उनकी भाषा संस्कृत गर्भित भी है। यथा—

इंदिरा प्रिय दर्शिनी, मृदु भाषिणी।
हिंद की महिमा पुरातन नवल भद्रोद्भाविनी,
सकल वेद, पुराण, गीता-ज्ञान गरिमा सारिणी।
कर रहा यह देश अभिनंद सहर्ष कृपालिनी,
युगल चरणों में चढ़ाकर मुकुल-माल मृगालिनी।

कवि भगत की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह राष्ट्र जन जीनव की भाषा है। उनकी भाषा स्वतंत्रता संग्राम और जनजागरण की भाषा है—

सरताज विक्रम राम की नव सेना स्वागत है
दिल्ली पर दिल्ली वाले-नव-भारत का है नाज,
अर्जुन बलि परताप और शिवा की राखो लाज।
अशोक अकबर भीम से वीरों की ताकत है,
आजाद हिंद देश की नव सेना स्वागत है।

यह तो है भारत राष्ट्र के स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित भगतजी की भाषा और मॉरीशस राष्ट्र के जन जागरण संबद्ध उनकी भाषा का स्वरूप कुछ इस प्रकार है—

जागो देश जगीओ रे!
होली फाग मनाओ रे!
राष्ट्र भावना देशभक्ति के गौरव गान सुनाओ रे!
चौरंगे झंडे को सजधज आसमान लहराओ रे!

भेद भाव को दूर भगाकर मैत्री तान सुनाओ रे!
मॉरीशस का सकल विश्व में इज्जत मान बढ़ाओ रे!
सबको गले लगाओ रे!
तीस बरस की आजादी पर खुशियाँ खूब मनाओ रे!
नाचो, गाओ, धूम मचाओ, रंग गुलाल उड़ाओ रे!
सत्य न्याय की पिचकारी भर जगती तल नहलाओ रे!
अँधियारे को दूर भगाकर जीवन ज्योति जलाओ रे!
ढोलक झाल बजाओ रे!

मॉरीशस राष्ट्र संबद्ध जनजागरण की भाषा का एक और उदाहरण दृष्टव्य है—

अरे! अजादी जगा रहल बा।
मॉरीशस गगनवा में विजय पताका उड़ा टहल बा।
अरे! आजादी जगा रहल बा।
पुरुब दिशा में सूरज जागल, रात गुलामी के अब भागल
सभी जनाबर पंछी जागल, जगल चंद्रमा, तारा जागल
भइल सबेरा, आलस छोड़, स्वतंत्रता अब जगा रहल बा।
धरती जन जागरण अरु आकास भी जागल,
जनता के विश्वास भी जागल,
शिव शंकर कैलास से जागल, पुरखन के इतिहास भी जागल।
जगल भवानी, चंडी जागल, काली भैरव जगा रहल बा।

भगतजी की सामाजिक और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भोजपुरी और खड़ी बोली लोक मानस की जान है। उनकी प्रांजल भाषा भावना प्रधान, अनुभूतिपूर्ण और अभिव्यक्ति की सफलता व सरसता हिंदी की साक्षात प्रतिमूर्ति है। उन्होंने अपनी रचना 'हिंदी वंदना' में भोजपुरी को हिंदी की जननी कहा है। सन् 1994 में मॉरीशस स्थित भारतीय उच्चायोग के द्वितीय सचिव (शिक्षा एवं भाषा) डॉ. नवल किशोर शर्मा ने कवि के उपर्युक्त कथन का समर्थन इन शब्दों में किया है—

''कवि ने भोजपुरी को हिंदी की जननी कहा है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यद्यपि इसे स्वीकार करना कठिन है। किंतु कवि की मातृभाषा भक्ति भोजपुरी को हिंदी की जननी कह दे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वह जननी और मातृभाषा को माँ के रूप में ही स्वीकार करता है, क्योंकि माँ भी बालक का शृंगार करती है, उसे अभिव्यक्ति देती है और वाणी भी भोजपुरी और हिंदी के संदर्भ में यह उसी प्रकार स्वीकार्य है, जिस प्रकार गंगोतरी से निकलने वाली गंगा सागर तक पहुँचते-पहुँचते भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न नामों से जानी-पहचानी जाती है। इतना ही नहीं, फ़िजी, ट्रिनिडाड, सूरीनाम, गुयाना, अफ्रीका आदि देशों में जहाँ-जहाँ भोजपुरी भाषी लोग कुली व मज़दूरों के रूप में गए वहाँ-वहाँ उन्होंने उस ज़मीन के साथ ही साथ हिंदी को भी पल्लवित-पुष्पित किया। आज यदि उन देशों में हिंदी है तो भोजपुरी ही उसकी स्रोतस्विनी है। खड़ी बोली हिंदी को विश्व भाषा का शरीर देने वाली जननी भोजपुरी ही है और भले ही भोजपुरी लोग मज़दूर के रूप में जहाँ-तहाँ गए, लेकिन वे वस्तुत: हिंदी के पूत-सपूत और राजदूत थे।

इस संदर्भ में भगतजी की कविता 'भोजपुरी जननी हिंदी' की है—

भोजपुरी जननी हिंदी की आप्रवासी के प्राण,
भोजपुरी को समझो भाई देवों का वरदान।
भोजपुरी बिन नहीं जगत में होता हिंदी मान,
भोजपुरी के कारण मिलता हिंदी को सम्मान।
भोजपुरी के बल पर मित्रो! मिला राज्य अधिकार,
भोजपुरी के कारण आदर करती है सरकार।
भोजपुरी हिंदी के रक्षक हिंदु वीर जवान,
हिंदी के अमृत बरसाओ होगा सच कल्याण।

मॉरीशस के राष्ट्रकवि श्री ब्रजेंद्र कुमार भगत के काव्य में न केवल संस्कृत, हिंदी, भोजपुरी भाषाओं का ही प्रयोग हुआ है, बल्कि उनकी रचनाओं में अंग्रेज़ी, फ्रेंच और क्रियोली के शब्द भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं—

आया नया जमाना, घर में नहीं है खाना,
फिर भी सिनेमा जाना।
आजकल के छोकड़ा बीटुल बनेला,
रंग बिरंग के सिमिज पहिनेला,
छोकड़ी नियर आपन बार छोड़ेला,
गली में चले ला त ऐटर बने ला॥
आया नया जमाना।
आज काल के छोकरी बार काटेला,
लापुद लोरूयों से मुँह लिपेला
साड़ी के बदले मिनिजिप पहिने ला,
इज्जत मरजादा पर लात मारेला।
आया नया जमाना॥

इस कविता में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, क्रियोली और भोजपुरी भाषा के शब्दों का एक साथ प्रयोग किया गया है। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि मधुकर जी का अन्य भाषाओं पर भी वैसा ही अधिकार है, जैसा हिंदी और भोजपुरी पर है।

'बीटुल' क्रियोली शब्द है और इसका अर्थ बीटल्स।

'सिमिज' अर्थात शेमिज़ फ्रेंच शब्द है।

इसी प्रकार लापुद लोस्यों तथा मिनिज़िप भी फ्रेंच शब्द हैं।

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगत जी की काव्य-भाषा संस्कृत-गर्भित, हिंदी, भोजपुरी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच और क्रियोली से पुष्ट जन जीवन की भाषा है और अर्थवत्ता की दृष्टि से भी निस्संदेह मॉरीशस में अतुलनीय और बेजोड़ है।

छंद विधान

मधुकर जी की रचनाओं पर दृष्टि-निक्षेप मात्र से ही उसमें निहित छंद वैविध्य का अनुमान लगाया जा सकता है। छंद शास्त्र के प्रति भगतजी की गहरी रुचि रही है। उन्नीस दिसंबर उन्नीस सौ उनहत्तर में डॉ. हरिवंशराय बच्चन द्वारा भगत जी के 'हिंदी गौरव गान' शीर्षक काव्य संग्रह की लिखी भूमिका की निम्न पंक्तियाँ इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

''हिंदी कविता ने जो उपलब्धि भारत में की है, उसके मापदंड से इन रचनाओं को देखना इनके प्रति अन्याय करना होगा।''

हिंदी संकीर्णता नहीं उदारता की भाषा है। उसे अपने पास-पड़ोस की भाषाओं से अपना भंडार समृद्ध करने में संकोच नहीं होना चाहिए।

ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारणों से जो हिंदी मॉरीशस में विकसित होगी, उसका रूप हमारी हिंदी से भिन्न होगा तो आश्चर्य नहीं। उचित भी यही होगा कि मॉरीशस के जन-जीवन में व्याप्त सभी भाषाओं से अपना संपर्क बनाकर हिंदी अपना विकास करे।

भगतजी ने प्रमुखत: दोहा, चौपाई, छप्पय, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि छंदों में कविताएँ की हैं, फिर भी उनकी रचनाओं में गेय तत्व प्रधान रूप में पाया जाता है। उनकी हर रचना गेय है। उनकी रचनाओं को यदि लयात्मक गीति काव्य कहा गए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

यहाँ लयात्मक छंद (गीति काव्य) पर कुछ प्रकाश डाल देना उचित ही होगा—

''लयात्मक छंद में मात्रा अथवा वर्णों के नियमित विधान की ओर कवि उतना सचेष्ट नहीं रहता जितना लय की ओर। संगीत की राग-रागिनी के आधार पर या स्वतंत्र लय के आधार पर लयात्मक छंदों की रचना होती है। मात्रा या वर्णों के नियमित विधान की ओर यद्यपि कवि का आग्रह नहीं रहता, तथापि इस प्रकार के छंदों मे प्रवाह की कमी नहीं होती।''

इस दृष्टि से महात्मा गांधी संस्थान के भाषा विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि जी का कथन उल्लेखनीय है—

''कवि की सभी रचनाएँ गेय हैं। वे सभा समाजों में तथा कवि सम्मेलनों में इन कविताओं को गाकर सुनाते हैं।''

विश्वविख्यात कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के कथनानुसार श्री मधुकर जी मॉरीशस आकाशवाणी से गीत, कविता आदि प्रसारित कर हिंदी की प्रगति में योगदान देते आए हैं।

उनमें भाव प्रवणता भी है और अपने आप को मनमोहक, आकर्षक गीतों द्वारा व्यक्त करने की तीव्र बुद्धि भी।

स्वयं कवि के अपने शब्द इस बात की पुष्टि करते हैं कि उनकी कविताएँ गीतिकाव्य हैं—

'' 'मधुपर्क' के बाद दूसरा पुष्प 'रागिनी' के रूप में आज मैं साहित्य-प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है कि आप महानुभावों ने जिस तरह 'मधुपर्क' को अपनाया, उससे कहीं अधिक स्नेह के साथ इस गीत-संग्रह को अपनाएँगे। 'रागिनी' में मैंने सुंदर राग तथा तर्ज और चालू भाषा का प्रयोग किया है, ताकि आप हिंदी प्रेमी अच्छी तरह गीतों के भावों को समझ और अपना सकें। गीत लिखते समय मैंने यह भी कोशिश की है कि कविता के नियमों का यथा संभव पालन करूँ, किंतु कहीं-कहीं सिनेमा की आकर्षक तर्ज अनजाने से कुछ गाने कविता न रहकर तुकबंदियाँ हो चले हैं। एक भयंकर भूल जो 'कैलाश पति' शीर्षक गीत में रह गई है, उसे सुधारे बिना मैं रह नहीं सकता। उसमें पढ़ना चाहिए शंभू के मस्तक से माता धरणी धार बहाती न कि जो लिखा गया वाक्य है। त्रुटियाँ किससे नहीं होतीं? किसी कवि का कहना है कि भाव अनोखो चाहिए भाषा कोऊ होय। मैं अपनी कमज़ोरियों को छिपाने के लिए ऐसा नहीं कह रहा हूँ बल्कि जहाँ कहीं भी अन्य भूलें रह गई हों, उनके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।''

श्री ब्रजेंद्र कुमार जी संगीत और कवित्व में विशेष अभिरुचि रखते हैं। साहित्याचार्य, चतुर्वेदी सूर्यनारायण शास्त्री की उक्त पंक्ति भी भगत जी के काव्य का गीतकाव्य होना प्रमाणित करती है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों एवं कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगत जी के छंद-विधान में गीति काव्य की प्रधानता है। उन्होंने अपने काव्य में मात्रिक और वर्णिक छंदों का प्रयोग समान अधिकार और सफलतापूर्वक किया है।

उनके काव्य में प्रयुक्त वर्णिक अर्ध समछंद का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

फेडरेशन शीश महल में,
तोड़ फोड़ करने वालो
आलायंस बाकि दल दल में,
जान बूझ फँसने वालो
श्रमिक जनों की कमाइयों को
लूट करके खाने वालो
खिचड़ी अलग पकाना छोड़ो
पहली मई का शुभ संदेश

इस छंद के प्रथम, तृतीय, पंचम और सप्तम चरण में ग्यारह (11) ग्यारह (11) तथा द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ एवं अष्टम चरण में नौ (9) नौ (9) वर्ण हैं। अत: छंद की दृष्टि से उपर्युक्त छंद वर्णिक अर्ध समछंद है।

इसी प्रकार मात्रिक समछंद के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या बराबर होती है। मधुकर जी के मधु मंत्रणा काव्य संग्रह से मात्रिक समछंद का उदाहरण दष्टव्य है—

दिन में रक्षक जनता सेवक बनकर के फिरते हैं।
रजनी में तक्षक भक्षक बन नित्य डसा करते हैं।
राज सिंहासन पदवी खातिर चाल चला करते हैं।
सत्य न्याय का गला काटकर साधु संत बनते हैं।

उपर्युक्त छंद के प्रत्येक चरण में 26-26 मात्राएँ हैं और उक्त छंद एक मात्रिक समछंद है।

मधुकर जी के छंद विधान की एक नवीन विशेषता यह भी है कि एक ही छंद में उन्होंने वर्णिक और मात्रिक, दोनों छंदों के नियमों का साथ-साथ तथा सफल प्रयोग किया है और यह गुण किसी प्रतिभाशाली कवि में ही संभव हो सकता है। यह छंद एक ही साथ मात्रिक समछंद तथा वर्णिक सम छंद है। जिसमें छंद के सभी चरणों में 28-28 मात्राओं एवं 20-20 वर्णों का प्रयोग हुआ है। उदाहरण प्रस्तुत है—

चुन चुनाव में इनसे मित्रो डटकर के लड़ना है।
इनकी हस्ती मस्ती आगे कभी नहीं झुकना है।

ऐसे छंद में राष्ट्रकवि मधुकर जी की वास्तविक छंद शास्त्र ज्ञान गरिमा परिलक्षित होती है। मधुकर जी ने भिन्न-भिन्न छंदों के माध्यम से देश के उत्थान के लिए अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। अपने लोकप्रिय काव्य संग्रह 'मधु मंत्रणा' में उन्होंने दोहा छंद के माध्यम से अपने भावों की सुंदर अभिव्यक्ति की है—

नवमी के अतिशुभ दिवस, लिया राम अवतार।
खुशियाली आनंद में, झूम उठा संसार॥

जीत दिलाई स्त्य को, झुठाई को हार।
युग-युग में आते सदा, हरने को भूभार॥

इसी प्रकार उनकी अन्य कृतियों में दोहों के अत्यंत सुंदर उदाहरण देखे जा सकते हैं—

खड़े भगत संसद भवन सबकी चाहत खैर।
नहीं किसी से दोस्ती नहीं किसी से बैर॥

नए साल के गर्व में मत हो जाओ चूर।
धन दौलत की आग में बनो नहीं मगरुर॥

खरचोगे यदि बहुत तुम मिल जाओगे धूल।
तड़पेंगे दुख दर्द में बच्चे बिना कसूर॥

दमक रहे साहित्य में, आज अनेकों दास।
लेकिन रघुवर दास में, अनुपम तुलसीदास॥

मधुकर जी के काव्य में चौपाइयों का भी सहज, स्वाभाविक एवं सफल प्रयोग हुआ है। 'मधु वाणी' काव्य संग्रह से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

रामजनम दिन का संदेशा। झंडा लाल उड़ाइ देशा॥
राजनीति के रण में भाई। जिसने दौलत खूब लुटाई॥
उसकी दुनिया हँसती भाई। फाँसी चढ़ती है सच्चाई॥
कुटिलाई करके चतुराई। जीवन भर बिरयानी खाई॥
फूट द्वेष की आग लगाई। जग में अपनी दाल गलाई॥

मधुकर जी ने कवित्त छंद में भी अत्यंत सुंदर और पर्याप्त मात्रा में काव्य रचना की है—

खस का बैठक तोड़ कर हुआ नवल निर्माण।
हिंदी के इतिहास में चला सफल अभियान॥
चला सफल अभियान देश में सन छब्बीस सुजान।
लेकर श्रमिक से पाँच सेंट का दान॥

× × ×

खा लो पी लो मौज उड़ा लो कर्जा लेकर प्यारे।
रिश्वत लेकर आज बना लो बँगला बढ़िया प्यारे।
बँगला बढ़िया प्यारे दो दो मोटर रख लो भाई।
जनता की पूँजी हथियाकर अपनी करो बढ़ाई॥
नहीं किया ऐसा जो तुम भूखे मर जाओगे।
चला जाएगा हाथ से मौका रो रो पछताओगे॥

सवैया

सवैया छंद में भी मधुकर जी ने पर्याप्त काव्य-सृजन किया है। भारतीय परंपरा के अनुसार अपने गुरु, कविवर रसपुंज को याद करते हुए उनकी वंदना में उन्होंने सवैया छंद का सुंदर प्रयोग किया है—

भारत के कवि हो रसपुंज, सुधामय काव्य रचावन हारे।
कोमल गान कलामय कुंज में राग सुहावन गावत हारे॥
न्याय, कला, सत, त्याग, सुमारग संकट काल दिखावन हारे।
भारत से लघु भारत में, नव प्रेम पराण बिखेरन हारे॥
रागिइनी अर्पित है शुचि सुंदर, ध्यान धरूँ मन में बहुबारे।
पारस हो रविचंद्र गुरुवर, मैं जुगनू सम पास तुम्हारे॥
पावन हो तुम ज्ञान सरोवर, मैं कविता गृह आज पधारे।
सेवक जान के पार करो, सुर-राग की नाव पड़ी मझधारे॥

भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के सन् 1970 की मॉरीशस यात्रा के समय उनके स्वागत हेतु कविवर मधुकर जी ने हरिगीतिका छंद में सरस स्वागत गीत लिखा था। इस गीत से कवि की वर्णिक छंद के प्रति ज़बरदस्त पकड़ स्पष्ट होता है—

इंदिरा प्रियदर्शिनी मृदुभाषिणी।
हिंद की महिमा पुरातन नवल भद्रोद्भाविनी।
सकल वेद पुराण गीता ज्ञान गरिमा सारिणी।
कर रहा यह देश अभिनंदन सहर्ष कृपालिनी।
युगल चरणों में चढ़ाकर मुकुल माल मृणालिनी।
इंदिरा प्रियदर्शिनी मृदुभाषिणी।।
हम भूल यदि जाएँ तुम्हारी याद को सौभागिनी।
शिशु समझकर हम को क्षमा करना सुमंगलकारिणी।
संदेश हम को जो सुना कर जा रही अनुरागिनी।
रखेंगे हम उसको सदा मानस भवन में मानिनी।
इंदिरा प्रियदर्शिनी मृदुभाषिणी॥

हम यह स्वीकार कर चुके हैं कि मधुकर जी के काव्य में छंद वैविध्य के साथ-साथ गेय तत्व की प्रधानता है। पर उन्होंने भिन्न-भिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के गीत लिखे हैं। उनकी कुछ प्रमुख काव्य शैलियों को इस प्रकार देखा जा सकता है—

ग़ज़ल

चलता नहीं रे भैया
खोटा सदा रुपैया।
चलता नहीं जगत में खोटा सदा रुपैया।
हिंदी के नाम पर तुम धब्बा न डालो भैया
हिंदी की लाज को तुम अब भी बचालो भैया
कहता विनम्रता से मधुकर किसन कन्हैया।
हिंदी भलाई में ही
हिंदू भलाई भैया॥

विवाह गीत

प्रेम से आरती उतारो जी! बर ब्याहन आयो।
गावहु मंगलचारि जी! बर ब्याहन आयो॥
कंचन थारी कपूर के बाती, प्रेम से आरती उतारो जी, बर ब्याहन आयो।
सोने के गेडुआ गंगाजल पानी, प्रेम से आरती उतारो जी, बर ब्याहन आयो।
अच्छत, चंदन-फूल सुगंधी, प्रेम से आरती उतारो जी,
बर ब्याहन आयो॥

मधुकर जी ने भोजपुरी भाषा में भी अपनी काव्य सृजन क्षमता का पूरा-पूरा परिचय दिया है। 'विरहा' के माध्यम से कवि का जहाँ छंद शास्त्रीय ज्ञान उद्घाटित हुआ है वहीं पर भोजपुरी भाषा की सरसता और मार्मिकता का परिपाक भी हुआ है।

लाल घोड़वा में राम चढ़ि आइले ऊजर घोड़वे भगवान।
सोने के पलकिया में सीता चढ़ि ऐली, संग में पायक हनुमान॥
राम लछुमनवा हो बनवा के चलेले, सीता जी चलेली संग लोर।
राम लछुमनवा के लागल पियासवा, सीता देवी अमरीत घोर॥

इसी प्रकार झूमर का एक सुंदर उदाहरण द्रष्टव्य है—

तोहर मुँह करिखा लगी।
गमत बाटे, नाच बाटे, केकरा संग जैबों?
हम जैबों देवरवा के साथ, तोहर मुँह करिखा लगी।
चोली ना चुनरी बाटे, केकरा संगे जैबों?
हम जैबों ननदोसी के साथ, तोहर मुँह करिखा लगी॥
राजा मोर सुहाग बानी, तोहरा संगे जैबों?
हम रहबों मड़ैया में साथ, काहे मुँह करिखा लगी॥

ललना भी कवि का प्रिय सामयिक गीत है और इसके अनेक सुंदर उदाहरण देखे जा सकते हैं—

जेहि घर जनमे ललनवा त ओहि घर धनि-धनि हो।
होंनहार विरवन के पतवा चिकन भल लागे लाहो।
राम पुतवा के ऐसन छछनवा, निरखि मन गाजेला हो।
देहु-देहु सखिया असीस ललन मुँह चूमहु हो।
राम गोदिया में लेई लपेट, करेजवा जुड़ावहु हो।
मोरिसस देसवा के होई हैं हमारा पूत सेवक हो।
राम अस पूत जुग-जुग जीए त इहे हम असीसत हो॥

जागरण गीतों की रचना में कवि ने हिंदी और भोजपुरी दोनों ही भाषाओं के शब्द विधान और साथ प्रचलित छंदों का प्रयोग किया है—

उठो हो जागो भोर भई, उठो हो रात सुहानी गई।
सूर्य गगन में चमक रहा है, बुझा दीप मानस का जला है।
नव प्रकाश जगत में फैला है, ज्योति जलि है नई॥

जाग रही है दुनिया सारी, बालक, वृद्ध, युवा, नर-नारी।
बुलबुल चहक रही है डारी, कोयल कूक गई।
दुख की रैन अब बीत चुकी है, सुख शांति के दिवस उगे हैं।
टूट गई जंजीर गुलामी, छूट सलामी गई॥

राष्ट्रीय गीत में मधुकर जी की राष्ट्र के प्रति आस्था, कर्तव्यनिष्ठा आदि कूट-कूटकर भरी है। इन गीतों में भी 'गेयता' पर कवि का सर्वाधिक ध्यान रहता है—

पंद्रह अगस्त हर साल है आता हमको याद दिलाता।
नवल तिरंगा फहरे नभ में, लहरे विजय पताका।
घर-घर में आनंद मगन हो, शांति-सुधा-बरसाता।
शोषित मानव के मानस में क्रांति सदा उपजाता।
गौरव गीत सुनाता।
परहित प्रीति सिखाता।...पंद्रह अगस्त।

गेयता की दृष्टि से मधुकर जी के धार्मिक और भक्तिगीत भी विशेष विवेच्य है—

जय, जय, जय, जय, जय शिब शक्ति।
मानव मन के अन्तराल में जगे तुम्हारी भक्ति।
एक शक्ति शांति बरसाती,
एक क्रांति की आग लगाती।

प्रधान, हिंदी लेखक संघ
शिवाला रोड, लावोंचियर, मॉरीशस

□

हिंदी के विविध आयाम : कुछ विचार-बिंदु

किसी भी भाषा के स्वाभाविक विकास के लिए यह अति आवश्यक होता है कि उस भाषा के प्रयोक्ता उसी के विषय में निरंतर चिंतनरत रहें। हिंदी भाषा पर भी इस प्रकार के चिंतन-मनन की अपनी परंपरा सदियों से रही है।

नए उपकरणों, प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आविर्भाव से इस प्रकार की अभिव्यक्तियों को नई दिशा मिली है तथा एक प्रकार से इस प्रक्रिया का लोकतंत्रीकरण भी स्वाभाविक रूप से हुआ है। इस दृष्टि से यह हिंदी के लिए शुभ संकेत है कि प्रिंट मीडिया के साथ-साथ वेबसाइट, ब्लॉग, सोशल नेटवर्किंग साइट आदि पर भाषा से जुड़े मुद्दों को लेकर चर्चा, वाद-विवाद, विचार-विमर्श अत्यधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

इन मंचों पर की गई अभिव्यक्तियों में पर्याप्त मात्रा में ऐसे लेख, टिप्पणियाँ आदि मिलते हैं, जो विचारोत्तेजक होने के साथ-साथ अत्यंत आकर्षक प्रस्तुति के भी धनी हैं।

लेखक अपने ब्लॉग या वेबसाइट पर अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करता है। ये विचार लेखक के अपने हैं और विश्व हिंदी पत्रिका के संपादकों का अथवा आप पाठकों का इन विचारों से सहमत होना भी आवश्यक नहीं है। परंतु हिंदी का एक अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन होने के नाते विश्व हिंदी पत्रिका का कर्तव्य बनता है कि यह पत्रिका आप पाठकों का इन विचार-बिंदुओं से साक्षात्कार कराए और हिंदी पर विचार-विमर्श की इस प्रक्रिया के लोकतंत्रीकरण में अपना विनम्र योगदान दे।

35

क्यों पिछड़ी और कैसे हाइटेक होगी हिंदी?

तुषार बनर्जी

गद्य, पद्य और साहित्य से लदी हुई हिंदी की आम छवि डिजिटल जगत में तेज़ी से बदलती दिख रही है। हिंदी अपने नए अवतार में युवाओं के एक वर्ग को कूल लगती है। ढेरों तकनीकी सुधार और लिखावट के तरीके में मामूली बदलाव का इंटरनेट पर हिंदी का प्रयोग करने वालों की संख्या पर भी अब असर दिखाता है। कंप्यूटर पर भाषाओं की तकनीक के जानकार मानते हैं कि इंटरनेट पर अब अंग्रेज़ी से ज़्यादा हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ फल-फूल रही हैं।

इंटरनेट की सबसे बड़ी कंपनी गूगल के भारत के प्रमुख राजन आनंदन ने बीते दिनों एक साक्षात्कार में कहा, ''इंटरनेट पर अगले 30 करोड़ नए यूजर्स अंग्रेज़ी नहीं बल्कि भारतीय भाषाएँ बोलने वाले आएँगे।'' वैसे शुरुआती दौर में ब्लॉगिंग से इंटरनेट पर हिंदी को काफ़ी प्रचार मिला, लेकिन ब्लॉगिंग का वह जुनून लंबे समय तक टिक नहीं सका।

सोशल मीडिया ने ब्लॉगिंग को पछाड़ा

हिंदी के ब्लॉग्स को जुटाने वाले और इंटरनेट पर हिंदी के क्षेत्र में कार्य करने वाली वेबसाइट ब्लॉगवाणी डॉट कॉम के संस्थापक मैथिली शरण गुप्ता ब्लॉगिंग के रुझान में गिरावट के पीछे सोशल मीडिया को ज़िम्मेदार ठहराते हैं।

मैथिली शरण गुप्ता कहते हैं, ''हिंदी ब्लॉगिंग के चलन में, खासतौर पर साल 2004 के बाद से उछाल आया, लेकिन यह उछाल ज़्यादा समय तक टिक नहीं पाया, क्योंकि मुझे लगता है कि इन ब्लॉग्स में लोगों के काम की बात कम नज़र आती थी और कथा-कहानियाँ, निबंध ज़्यादा होते थे। लिहाजा लोग इससे अलग होते गए। आज के दौर में फ़ेसबुक ने ब्लॉगिंग को पूरी तरह से खत्म कर दिया है। हालाँकि हिंदी को इसने फायदा पहुँचाया है।''

उन्होंने कहा, ''इंटरनेट पर हिंदी को सबसे अधिक फ़ायदा पहुँचाया अखबारों की वेबसाइटों ने, जिसने लोगों को खूब जोड़ा। आँकड़ों को ही देख लीजिए, आज मुझे कई अखबारों की वेबसाइटों में काम कर रहे दोस्त बताते हैं कि उनका रोज़ का दो लाख से पाँच लाख तक का ट्रैफ़िक होता है। जबकि किसी भी अच्छे हिंदी ब्लॉग में रोज़ के पाँच हज़ार लोग भी आ जाएँ तो उसे सुपरहिट माना जाता था।''

मैथिली शरण गुप्ता कहते हैं कि इंटरनेट पर हिंदी वेबसाइटों पर जितनी तेज़ी से लोग आ रहे हैं, उतनी ही तेज़ी से इन वेबसाइटों की कमाई भी बढ़ रही है, लिहाज़ा भविष्य हिंदी और अन्य भाषाई वेबसाइटों का ही है। अगले चार साल में हम इस क्षेत्र में अप्रत्याशित बढ़त देखेंगे।

हिंदी की तकनीक

हिंदी के चलन में आई तेज़ी के लिए तकनीकी सुधार भी काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार है। सीडैक जैसी सरकारी और कई गैर-सरकारी संस्थाओं ने हिंदी फॉण्ट्स बनाने और उनमें सुधार के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया है। भारत सरकार का उपक्रम सीडैक (प्रगत संगणन विकास केंद्र) पिछले करीब 25 साल से कंप्यूटरों पर भारतीय भाषाओं की उपलब्धता बढ़ाने और उसे बेहतर करने पर काम कर रहा है।

संस्था के निदेशक, प्रोफेसर रजत मूना मानते हैं कि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की तकनीक में जो सुधार किए जा रहे हैं, उससे इंटरनेट पर उनकी उपयोगिता बढ़ेगी। ''सीडैक शुरुआत से ही हिंदी को डिजिटल जगत में प्रयोग के लिए तकनीकी तौर पर और आसान बनाने पर काम कर रहा है। कंप्यूटरों पर हिंदी के स्थायी उपयोग के लिए हमने कई सॉफ़्टवेयर भी बनाए, जिसमें आईलीप सर्वाधिक लोकप्रिय रहा।''

प्रोफेसर रजत मूना, निदेशक सीडैक

''हिंदी की टाइपिंग अब भी कई लोगों के लिए एक समस्या

''हिंदी को मोबाइल और टैबलेट जैसी डिवाइसेस पर लाने के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। हमारी कोशिश है कि इन जगहों पर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को तकनीकी दिक्कतों का सामना न करना पड़े।''

है। लोग ज़्यादातर अंग्रेज़ी में टाइप करते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए हम स्पीच और हैंडराइटिंग रिकगनीशन तकनीक पर काम कर रहे हैं।

सॉफ़्टवेयर प्रयोग में हैं, लेकिन इनमें सुधार किया जा रहा है। भविष्य में हम ऐसी कई अन्य तकनीक देखेंगे जिसमें ऑडियो या हस्तलिखित संदेश का अनुवाद करना आसान हो जाएगा।

''हिंदी को मोबाइल और टैबलेट जैसी डिवाइसेस पर लाने के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं। हमारी कोशिश है कि इन जगहों पर हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को तकनीकी दिक्कतों का सामना न करना पड़े।''

शब्दकोश की कमी

केवल सरकारी क्षेत्र की संस्थाएँ ही नहीं, बल्कि कई जुनूनी शख्सियतों ने भी हिंदी को डिजिटल बनाने के लिए अपनी रातें खराब कीं।

मध्य प्रदेश के जगदीप सिंह दांगी को करीब पंद्रह साल पहले इंजीनीयरिंग की पढ़ाई करते वक्त एहसास हुआ कि कंप्यूटर पर हिंदी की गैर-मौजूदगी किसी हिंदीभाषी के लिए कितनी मुश्किलें पैदा कर सकती है।

पेशे से इंजीनियर जगदीप दांगी ने उसी वक्त एक हिंदी शब्दकोश बनाया, जिसमें उन्होंने 40 हज़ार शब्द डाले। उन्होंने इसके बाद साल 2006 तक कई हिंदी फॉण्ट कनवर्टर, सॉफ़्टवेयर बनाए, जो आज भी चलन में हैं। लेकिन वे खुद भाषा को कंप्यूटर के लिए बाधा नहीं मानते।

उन्होंने कहा, ''कंप्यूटर केवल बाइनरी समझता है, यानी 0 और 1। किसी भी भाषा को कंप्यूटर अपने तरीके से समझता है, लिहाजा जो भी अंग्रेज़ी या दूसरी किसी भाषा में हो सकता है, वह हिंदी में भी हो सकता है। उसे बस हिंदी में प्रोग्राम किए जाने की ज़रूरत होती है।''

जगदीप दांगी, हिंदी तकनीक विशेषज्ञ

''इस वक्त हिंदी को ज़रूरत है तो बस एक वृहद शब्दकोश की। शब्दों का मतलब जितना सटीक होता जाएगा, अनुवाद या टाइपिंग उतना ही अच्छा होगा।''

''तकनीकी सुधार तो होते रहेंगे, लेकिन महत्वपूर्ण होगा यह देखना कि युवाओं को लिखने-पढ़ने में हिंदी का प्रयोग कितना सहज लगता है।''

संवाददाता, बी.बी.सी. हिंदी
tushar.banerjee@bbc.co.uk
tushar.banerjee@hotmail.com

साभार : बी.बी.सी. हिंदी, शुक्रवार 13 सितंबर, 2013

☐

36

'लिवे देबते' क्या होता है? मामला लिप्यंतरण का

योगेंद्र जोशी

श्रीमतीजी टेलीविजन पर कार्यक्रम देख रही थीं और मैं कमरे के एक कोने में कुरसी पर बैठा अखबार के पन्ने पलट रहा था। अचानक उन्होंने आवाज़ दी, 'अरे भाई, ये लिवे देबते क्या होता है?'

'लिवे देबते? देखूँ, कहाँ लिखा है?' कहते हुए मैं उनकी ओर मुखातिब हुआ। उन्होंने टीवी की ओर इशारा किया। मैंने उस ओर नज़र घुमाई तो पता चला कि वे समाचार चैनलों पर कूदते-फाँदते ए.बी.पी. न्यूज पर आ टिकी हैं। परदे पर चैनल नं., समय, कार्यक्रम, आदि की जानकारी अंकित थी। चैनल बदलने पर इस प्रकार की जानकारी हिंदी में हमारे टीवी के परदे पर 2-4 सेकंड के लिए सदैव प्रकट होती है। उस विशेष मौके पर राजनेता, पत्रकार तथा विशेषज्ञों के 5-6 जनों के जमावड़े के बीच किसी मुद्दे को लेकर बहस चल रही थी।

मैंने पाया कि टीवी परदे पर उपलब्ध जानकारी में वास्तव में लिवे देबते भी शामिल था। उसे देख एकबारगी मेरा भी माथा चकराया। इस लिवे देबते का मतलब क्या हो सकता है? अपने दिमाग का घोड़ा सरपट दौड़ाते हुए मैं उसकी खोज में मन ही मन निकल पड़ा। मेरे दिमाग में यह बात कौंधी कि यह तो हिंदी के शब्द लगते नहीं। स्वयं से सवाल किया कि ये कहीं किसी अन्य भाषा के शब्द तो नहीं, जो अंग्रेज़ी के रास्ते यहाँ पहुँचे हों! रोमन में ये कैसे लिखे जाएँगे, यह जिज्ञासा भी मन में उठी और मुझे तुरंत बुद्धत्व प्राप्त हो गया। समझ गया कि यह तो 'LIVE DEBATE' है, जो उस कार्यक्रम का सार्थक शीर्षक था। वाह! वाह रे चैनल वालो कार्यक्रम को हिंदी में जीवंत बहस या इसी प्रकार के शब्दों में लिख सकते थे। अथवा इसे लाइव डिबेट लिख देते। न जाने किस मशीनी ट्रांसलिटरेशन (Transliteration) प्रणाली का उन्होंने प्रयोग किया कि यह लिवे देबते बन गया। ध्यान दें कि रोमन अक्षरों के लिए L= ल, I= ई, V= व, E= ए, D= द, B= ब, A= अ, T= त, का ध्वन्यात्मक संबंध स्वीकारने पर उक्त लिप्यंतरण मिल जाता है। परंतु अंग्रेज़ी में रोमन अक्षरों की ध्वनियाँ इतनी सुनिश्चित नहीं होतीं, यह संबंधित लोग भूल गए।

और जब दूसरे दिन फिर चैनल को हम देखने बैठे तो देखा कि गलती दूर हो चुकी है। परदे पर लाइव डिबेट अंकित नज़र आ रहा था।

इस घटना ने इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान खींचा कि हमारे देश में सर्वत्र अंग्रेज़ी छाई हुई है और हिंदी माध्यमों पर परोसी जाने वाला ज्ञान अंग्रेज़ी में उपलब्ध जानकारी के अनुवाद/लिप्यंतरण पर आधारित होता है; अथवा तत्संबंधित उच्चारण को देवनागरी में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रक्रिया में कभी-कभी हास्यास्पद प्रस्तुति भी पेश हो जाती है, क्योंकि अनुवाद करने वाला शब्दों से संबंधित ध्वनियों से सदैव परिचित नहीं होता और शायद उसे किसी स्रोत से जानने की कोशिश भी नहीं करता। दो-एक उदाहरणों पर गौर करें—

1. समाचार-पत्र हिंदुस्तान में मुझे जर्मनी की समाचार/रेडियो/टीवी संस्था का कभी-कभार उल्लेख देखने को मिल जाता है। लिखा रहता है डाइचे विले (Deutsche Welle),जब कि होना चाहिए था 'डॉइच वेलऽ' निकटतम उच्चारण। ऐसा क्यों है? इसका कारण मेरी समझ में इस तथ्य को नज़रअंदाज़ करना है कि अधिकांश यूरोपीय भाषाओं की लिपि मूलत: रोमन है, जिसे लैटिन भी कहते हैं। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं विशेषक चिह्नों (diacritics) का प्रयोग भी होता है। किंतु हर भाषा के उच्चारण के नियम अलग-अलग हैं, जो बहुधा अंग्रेज़ी से पर्याप्त भिन्न रहते हैं। उच्चारण की दृष्टि से फ्रांसीसी एवं तत्पश्चात अंग्रेज़ी घटिया मानी जाती है। जर्मन भाषा के नियम अधिक साफ़-सुथरे हैं। कुछ भी हो, किसी व्यक्ति, संस्था अथवा शहर आदि विदेशी नामों का संबंधित भाषा के बोलने वालों के उच्चारण से भिन्न नहीं होना चाहिए। वह नाम उस भाषा

में भी रोमन में ही लिखा जाता है तो क्या उसे हम अंग्रेज़ी के हिसाब से बोलें, क्योंकि हम केवल अंग्रेज़ी से सुपरिचित है? जर्मन में आल्बर्त आइंस्ताइन बोला जाता है न कि ऐल्बर्ट आइंस्टीन। किसे सही माना जाए? इन बातों की जानकारी मुझे तब हुई जब एम.एस-सी. पाठ्यक्रम के दौरान मुझे एक आस्ट्रियाई सज्जन से प्राथमिक जर्मन पढ़ने का मौका मिला। (आस्ट्रिया की भाषा भी जर्मन है।)

2. मैं जब एम.एस-सी. में पढ़ता था तो हमें आरंभ के कुछ समय तक रज्जू भैयाजी (जो कालांतर में आर.एस.एस. के प्रमुख बने थे) ने भी पढ़ाया था। हम लोग फ्रांसीसी वैज्ञानिक Langevin, को लांजेविन कहते थे। उन्होंने ही हमें बताया कि यह फ्रांसीसी नाम असल में लाजवां बोला जाता है। इसी प्रकार यह भी जाना कि वैज्ञानिक Fermat का नाम फर्मा है न कि 'फर्मैट'।
3. ब्रिटेन का एक शहर है Leicester जहाँ अनेक भारतीय बसे हैं। मैं उसे लाइसेस्टर कहता था। इंग्लैंड पहुँचने पर पता चला कि वह लेस्टर है।
4. दो-तीन रोज़ पहले अखबार में अमेरिका के Yosemite राष्ट्रीय उद्यान (कैलिफ़ोर्निया) के बारे में खबर थी। उसमें इस स्थल को योसेमाइट कहा गया था। बहुत अंतर तो नहीं, फिर भी यह योसेमिती कहा जाता है, जो स्पेनी भाषा पर आधारित है, जिसका प्रचलन आरंभ से ही उस क्षेत्र में काफ़ी रहा है। वहाँ पहुँचने पर मुझे पता चला कि जिस शहर को मैं सैन जोस (San Jose) समझता था वह दरअसल सान होजे कहलाता है।

किसी भाषा का विस्तृत ज्ञान कदाचित किसी को नहीं होता है। किंतु जो लोग पत्रकारिता जैसे व्यवसाय में लगे हों, उन्हें सही-सही वर्तनी एवं उच्चारण जानने की उत्कंठा होनी ही चाहिए। आज के युग में शब्दकोश तथा इंटरनेट काफ़ी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

28 अगस्त, 2013
ब्लॉग : हिंदी तथा कुछ और भी
हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की
दशा पर फुटकर टिप्पणियाँ

□

ज्ञान स्वयमेव वर्तमान है, मनुष्य केवल उसका अविष्कार करता है।

—स्वामी विवेकानंद

ज्ञान के लिए किया जानेवाला कर्म सभी कर्मों में श्रेष्ठतम है।

—अश्वघोष

पुस्तकों का भाग्य अध्ययनकर्ता की योग्यता पर निर्भर करता है।

—टेरेंटियनस मारस

37

‘अंतरराष्ट्रीय’ और ‘अंतर्राष्ट्रीय’

सुयश सुप्रभ

हिंदी अनुवाद समूह में प्रकाश शर्माजी ने ‘अंतरराष्ट्रीय’ और ‘अंतर्राष्ट्रीय’ वर्तनियों की चर्चा की। मैंने उन्हें इन शब्दों में जवाब दिया—

हिंदी में ‘अंतरराष्ट्रीय’ और ‘अंतर्राष्ट्रीय’ दोनों प्रचलित हैं। ऐसे शब्दों में एकरूपता पर ध्यान देना चाहिए। लेखक को एक ही पाठ में इन दोनों वर्तनियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

‘अंतरराष्ट्रीय’ को बेहतर वर्तनी बताने वाले लोग यह तर्क देते हैं कि ‘अंतर्राष्ट्रीय’ का अर्थ है ‘राष्ट्र के भीतर का’। इसे आप ‘अंतर्देशीय’ शब्द के संदर्भ में बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। ‘अंतर्देशीय’ का अर्थ है ‘देश के भीतर का’। ‘अंतरराष्ट्रीय’ में जिस ‘अंतर’ का प्रयोग हुआ है, उससे एक से अधिक देशों के बीच की बात वाला संदर्भ बेहतर ढंग से सामने आता है।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की ‘देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण’ नाम की किताब में ‘अंतरराष्ट्रीय’ का प्रयोग हुआ है।’

योगेंद्र जोशीजी ने इन दोनों वर्तनियों के बारे में विस्तार से बताया—

‘‘संस्कृत के अनुसार अंतरराष्ट्रीय (अंतर्देशीय) शब्द राष्ट्र/देश के भीतर को इंगित करता है, जब कि अंतरराष्ट्रीय (अंतरदेशीय) शब्द राष्ट्र/देश के बाहर का संकेत देता है। देश के भीतर पत्राचार के लिए अंतर्देशीय पत्रों का चलन है, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अस्वीकार्य हैं। हिंदी में अंतरराष्ट्रीय के लिए अंतराष्ट्रीय/अंतराष्ट्रिय भी शब्दकोश सुझाते हैं।

‘अंतर’ उपसर्ग की भाँति प्रयुक्त होता है और सामान्यत: किसी एक वस्तु या भाव के भीतर अन्य के होने का भाव व्यक्त करता है, अंदर समाया हुआ आदि। इसके विपरीत, अंतर शब्द दो/बहुतों के बीच को व्यक्त करता है। तदनुसार अंतर्राष्ट्रीय = अन्तर्+राष्ट्रीय = राष्ट्र के भीतर, और अंतरराष्ट्रीय = अंतर+राष्ट्रीय = अलग-अलग राष्ट्रों के बीच। मुझे संस्कृत में अंतराष्ट्रीय शब्द नहीं दिखा। हो सकता है, यह हिंदी में ही अंतरराष्ट्रीय के लिए कालांतर में प्रयुक्त होने लगा हो। हिंदी शब्दकोश में यह है। यह भी ध्यान दें कि अंतर्देशीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समानार्थी हैं।

गौर करें तो यह भी आप पाएँगे की अंतर् तथा अंतर कभी-कभी समानार्थी भी बन जाते हैं। जब शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होने लगते हैं तो उनका अंतर कभी-कभी अस्पष्ट हो जाता है। ऐसा एक उदाहरण वि उपसर्ग का है, जो कब कैसे अर्थ बदलेगा, कह पाना कठिन होता है। आप इन शब्द-युग्मों पर गौर करें—

क्रय-विक्रय, कृति-विकृति, ख्यात-विख्यात, गुण-विगुण, जय-विजय, ज्ञान-विज्ञान, देश-विदेश, नत-विनत, पक्ष-विपक्ष, फल-विफल, भक्त-विभक्त, भाग-विभाग, भिन्न-विभिन्न, भूति-विभूति, मति-विमति, मुक्त-विमुक्त, योग-वियोग, रति-विरति, राग-विराग, लय-विलय, शुद्ध-विशुद्ध, शेष-विशेष, सम-विषम, संगत-विसंगत, स्मित-विस्मित, हार-विहार।

‘‘आप पाएँगे कि कहीं तो शब्द कमोबेश वहीं रहते हैं, तो कहीं उसकी तीव्रता/उत्कृष्टता बढ़ जाती है; कहीं विपरीत अर्थ देखने को मिलता है तो कहीं नया अर्थ पूर्णत: असंबद्ध-सा रहता है।’’

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ‘अंतरराष्ट्रीय’ और ‘अंतर्राष्ट्रीय’ में से किसी एक वर्तनी को सही घोषित करना संभव नहीं है। जहाँ तर्क के आधार पर ‘अंतरराष्ट्रीय’ को बेहतर वर्तनी कहा जा सकता है, वहीं प्रयोग के आधार पर ‘अंतर्राष्ट्रीय’ भी स्वीकार्य वर्तनी है।

15 अक्तूबर, 2012
अनुवाद की दुनिया ब्लॉग से साभार
anuvaadkiduniya.blogspot.com

38

हिंदी का संकोच···और अंग्रेज़ी के संकेत!

श्री ललित कुमार

मेरे एक परिचित हैं, जो फ़ोन पर बड़े ज़ोर-ज़ोर से बातें करते हैं। जब वे फोन पर हों तो उनकी आवाज अपने आप ही दुगनी (या शायद तिगुनी) ऊँची हो जाती है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि उनकी बातें आस-पास सभी को मजबूरन सुननी पड़ती हैं। आज वे जाने किससे बातें कर रहे थे। बातचीत के दौरान उन्होंने मेरी मिसेज, आपकी मिसेज, मिसेज ये, मिसेज वो इत्यादि जाने कितनी बार बोला।

यह सब मजबूरन सुनते हुए मैं सोच रहा था कि हम हिंदी भाषी कुछ शब्दों को लेकर इतना शरमाते क्यों हैं? ईमानदारी से कहूँ तो मैं शरमाने की जगह खिसियाना लिखना चाहता हूँ। बहुत से हिंदी भाषी कुछ शब्दों के उच्चारण के बारे में इतने अधिक असहज हैं कि अधिकांश लोग इन शब्दों की ज़रूरत महसूस होते ही असहज हो जाते हैं। ऐसे में वे सेकेंड के एक छोटे हिस्से के लिए ही सही, पर सोचते ज़रूर हैं कि यह कैसे बोलूँ!

और इस असहजता से आखिरश: उन्हें कौन बचाता है?

अंग्रेज़ी

मैंने नोट किया है कि जिन्हें अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं आती, वे भी कुछ हिंदी शब्दों के अंग्रेज़ी समानार्थक शब्द प्रयोग करने में ज़्यादा सहज अनुभव करते हैं। इसका एक उदाहरण तो मैं ऊपर दे ही चुका हूँ। बहुत से हिंदी भाषी अपनी पत्नी को पत्नी, धर्मपत्नी या बीवी कहने में उतने सहज नहीं हैं, जितना सहज वे मिसेज बोलने में अनुभव करते हैं। यदि अंग्रेज़ी में ही बोलना है तो मिसेज की जगह वाइफ़ बोलना एक बेहतर शब्द-प्रयोग होगा। महिलाएँ भी अपने पति को पति कहने की बजाय वे, उन्हें, बंटी के पापा जैसे संबोधनों से पुकारती हैं। महिलाओं के संदर्भ में खैर समझा जा सकता है कि हमारे समाज में पुरुष सत्ता होने के कारण धीरे-धीरे महिलाएँ वे, उन्हें, बंटी के पापा इत्यादि संबोधनों का प्रयोग शुरू कर देती हैं, लेकिन पुरुषों पर तो ऐसा कोई बंधन नहीं है। फिर पुरुष किस कारण पत्नी शब्द की बजाय मिसेज शब्द का प्रयोग करते हैं। मेरे लिए यह समझना कुछ मुश्किल है। हालाँकि पत्नी के लिए अंग्रेज़ी समानार्थक वाइफ होता है, लेकिन मिसेज का चलन क्यों है, इस बात को समझने की कोशिश करना रोचक साबित हो सकता है!

हिंदी का संकोच

चलिए कुछ और उदाहरण देखते हैं। बहुत से हिंदी-भाषी मुस्लिम या मुसलमान शब्द की जगह मोहम्मडन शब्द का प्रयोग करते हैं। ऐसा नहीं कि ये लोग अपने अंग्रेज़ी-ज्ञान का दिखावा करना चाहते हैं, बात केवल असहजता की है। यह सत्य है कि बहुत से लोग मुसलमान बोलते समय असहज महसूस करते हैं और फिर उनका दिमाग जाने कहाँ से मुहम्मडन शब्द खोजकर लाता है और उनके मुँह से यह शब्द उच्चरित हो जाता है। यहाँ भी इस बात को नोट किया जाना चाहिए कि जिस तरह पत्नी के लिए मिसेज पर्फेक्ट अंग्रेज़ी शब्द नहीं है, उसी तरह मुसलमान शब्द के लिए भी मोहम्मडन कोई पर्फेक्ट शब्द नहीं है। (संदर्भ के लिए बता दूँ कि अंग्रेज़ी में मोहम्मडन शब्द पैगंबर मोहम्मद के अनुयायियों के लिए प्रयोग होता था, लेकिन अब इस शब्द की जगह अंग्रेज़ी में मुस्लिम शब्द का प्रयोग अधिक किया जाता है।)

आजकल यह भी देख रहा हूँ कि किसी स्थूल काय व्यक्ति के लिए मोटा शब्द प्रयोग करने की बजाय लोग कहते हैं : वो थोड़ा हैल्थी है"'यहाँ भी बात वही है कि मोटा बोलने में हिचकिचाहट है और उसकी जगह एक गलत अंग्रेज़ी शब्द का प्रयोग किया जाता है। हालाँकि यह उदाहरण पहले दो उदाहरणों से कुछ भिन्न इसलिए है कि किसी को मोटा कहने से उसे ठेस लग सकती है और इसलिए सही शब्द की जगह एक इशारा प्रयोग किया जाता है। यह दूसरी बात है कि हैल्थी कहते समय लोग हाथों के इशारे से अपना वास्तविक

मल-मूत्र के लिए पॉटी और बाथरूम शब्द का प्रयोग लोग शालीनता बनाए रखने के लिए करते हैं। यहाँ मुझे यह समझ नहीं आता कि मल, मूत्र और पेशाब जैसे शब्दों में शालीनता की कमी क्यों मानी जाती है? लोग चाहे गलत अंग्रेजी शब्द ही प्रयोग करें लेकिन अंग्रेजी शब्द इसलिए प्रयोग किए जाते हैं क्योंकि हमारी सोच पर अभी भी अंग्रेजी सभ्यता की गहरी छाप है और हम उस सभ्यता को कहीं-न-कहीं अपनी सभ्यता, भाषा और संस्कृति से अधिक स्वच्छ मानते हैं।

आशय और अधिक स्पष्ट कर ही देते हैं।

मल-मूत्र के लिए भी लोग हिंदी शब्दों से पैदा होने वाली असहजता से भाग कर पॉटी और बाथरूम जैसे अंग्रेज़ी (और गलत) शब्दों की पनाह लेते हैं। 'अजी सुनते हो, पप्पू को बाथरूम आ रहा है' जैसे अजीब वाक्य बहुधा सुनने में आते हैं। बाथरूम स्नान करने के कमरे को कहते हैं। अब किसी को पूरे का पूरा कमरा कैसे आ सकता है, यह अचरज का विषय है। माँ-बाप स्वयं भी गलत शब्दों का प्रयोग करते हैं और अपने बच्चों को भी वही गलत प्रयोग सिखाते हैं। 'अजी सुनते हो, पप्पू को पेशाब करना है' कहने में लोग बड़ी असहजता अनुभव करते हैं।

बहरहाल, ऐसे और भी कई उदाहरण हैं। मेरी रुचि इन उदाहरणों के बनिस्बत उस मानसिकता में अधिक है, जो हमसे इस तरह के प्रयोग करवाती है। मानसिकता यही है कि जब हम सीधे रूप से कोई शब्द प्रयोग करने में सकुचाते हैं तो हम उसकी जगह किसी अन्य संकेतात्मक शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। आइए ऊपर दिए उदाहरणों को एक बार फिर से देखते हैं—

मोटा की जगह हैल्थी शब्द का प्रयोग लोग इसलिए करते हैं, ताकि उस व्यक्ति को बुरा न लगे। यह एक मान्य और आसानी से समझ में आने वाला कारण है।

मल-मूत्र के लिए पॉटी और बाथरूम शब्द का प्रयोग लोग शालीनता बनाए रखने के लिए करते हैं। यहाँ मुझे यह समझ नहीं आता कि मल, मूत्र और पेशाब जैसे शब्दों में शालीनता की कमी क्यों मानी जाती है? लोग चाहे गलत अंग्रेज़ी शब्द ही प्रयोग करें, लेकिन अंग्रेज़ी शब्द इसलिए प्रयोग किए जाते हैं, क्योंकि हमारी सोच पर अभी भी अंग्रेज़ी सभ्यता की गहरी छाप है और हम उस सभ्यता को कहीं-न-कहीं अपनी सभ्यता, भाषा और संस्कृति से अधिक स्वच्छ मानते हैं।

मुसलमान शब्द के लिए मोहम्मडन शब्द मेरे विचार में विशुद्ध संकोच का उदाहरण है। स्वतंत्रता के समय और उसके बाद से अब तक स्थानीय स्तर पर उत्पन्न कुछ तनाव तथा इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न संकटों के कारण अनेक धर्मों के बीच खुलापन में कुछ बदलाव आया है। इसी कारण कुछ लोग मुसलमान शब्द प्रयोग करने में भी हिचकिचाते हैं और उसकी जगह मोहम्मडन शब्द प्रयोग करते हैं, जो लोगों को शायद कुछ ढका-छिपा और संकेतात्मक लगता है।

यह सब तो ठीक है; लेकिन लोग अपनी पत्नी को पत्नी कहने की अपेक्षा मिसेज किस मानसिकता के तहत कहते हैं, यह समझना मेरे लिए थोड़ा मुश्किल है। पत्नी शब्द में न तो मोटा शब्द की ठेस है; न ही मल-मूत्र करना अशालीनता है और न ही मुसलमान शब्द का संकोच है। फिर भी लोग पत्नी शब्द प्रयोग करते हुए शरमाते हैं और मिसेज बोलने में ज्यादा सहजता अनुभव करते हैं। मुझे इसके पीछे का कारण समझ में नहीं आता, लेकिन शायद इसके पीछे 'मैं अंग्रेज़ी जानता हूँ' वाला कारक काम करता है। शायद शहर के लोग गाँव में अपनी ससुराल में पत्नी को मिसेज कहकर आस-पास के लोगों को अपरोक्ष रूप से बताते होंगे कि मैं शहर का पढ़ा-लिखा व्यक्ति हूँ और तुम लोगों की तरह जोरू, घरवाली, बीवी या पत्नी जैसे शब्द प्रयोग नहीं करता।

मैं नहीं जानता कि आप लोग इन कारणों से कितने सहमत होंगे, लेकिन मैंने बस वही लिखा जो अपने आस-पास देखा और जैसा उसे समझा। हो सकता है, मैं गलत होऊँ, इसलिए आप सभी पाठकों की राय से सहायता लेकर अपनी समझ को बेहतर बनाने का प्रयास करूँगा।

मकान नं. 679, वार्ड नं. 3, महरौली
नई दिल्ली-110030
india.lalit@gmail.com
http://dashamlav.com/1877

□

अंतरराष्ट्रीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता 2012 के विजेताओं की कहानियाँ प्रस्तुत हैं।

विश्व हिंदी दिवस 2013 के उपलक्ष्य में विश्व हिंदी सचिवालय ने एक '**अंतरराष्ट्रीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता**' का आयोजन किया था। प्रतियोगिता के विजेताओं की घोषणा विश्व हिंदी दिवस समारोह के दौरान की गई। विश्व हिंदी पत्रिका के पाठकों के आस्वादन हेतु विजेता प्रविष्टियाँ प्रस्तुत हैं—

प्रथम स्थान

'ब्रेकिंग न्यूज़'—श्री रवींद्र कात्यायन (भारत)

द्वितीय

'ऊपर वाला कमरा'—सुश्री भावना हरिशरण (मॉरीशस)

तृतीय स्थान

'अटेंशन–एक व्यंग्य कथा!!!'—श्री विजय कुमार सप्पत्ति (भारत)

39

ब्रेकिंग न्यूज़

श्री रवींद्र कात्यायन
भारत

आज बिरजू बहुत हताश है। सीधा सा ग्रामीण युवक बिरजू अपनी तरंग में एक सुनसान सड़क पर चला जा रहा है—दिशाहारा सा। वह दु:खी और परेशान ज़रूर है, लेकिन उसके चेहरे पर आत्मविश्वास की परछाईं भी झलक रही है। सड़क चौड़ी और सुनसान है। कुछ देर पहले उसने एक बड़ा चौराहा पार किया है। चौराहे पर बरगद के पेड़ के नीचे लगे हैंडपंप से उसने अपनी प्यास भी बुझाई थी। लेकिन अपनी हताशा के चलते वह चौड़ी सुनसान सड़क पर निरुद्देश्य आगे बढ़ता गया। उसकी चाल में ही जैसे उसकी निरुद्देश्यता झलक रही है। किंतु बिरजू के कदमों में जैसे ब्रेक लगा—अरे! यह कौन? इतनी धूप में! इस तरह!

सड़क के किनारे अधलेटे से एक विक्षिप्त या पागल व्यक्ति पर बिरजू की दृष्टि पड़ी और उसी पर गड़ गई। वह व्यक्ति अधेड़ था। बिरजू यह अनुमान न लगा पाया कि वह पागल है या मानसिक रूप से रोगी या कोई और, लेकिन बिरजू उसके पास गया ज़रूर। शायद अपनी निरुद्देश्यता को दूर करने का कोई सार्थक कारण बने अथवा सहज जिज्ञासा के वशीभूत होकर ही वह पागल के निकट गया। पागल के पास फटी-पुरानी सड़ी पोटलियों में बहुत सा कूड़ा-कबाड़ा जमा था। हालाँकि बिरजू बड़ी सतर्कता से उसके निकट गया था, लेकिन पागल ने उस पर कोई खास ध्यान न दिया। पर जब बिरजू उसके बिलकुल करीब आ गया तो वह कुछ सशंकित सिखाई दिया।

पागल को सशंकित देखकर बिरजू वहीं ठहर गया। उसे लगा कि पता नहीं पागल किस दर्जे का पागल है! बिरजू के रुक जाने से पागल अपने में फिर खो गया। बिरजू ने उसके सामान पर नज़र डाली। कोई भी सामान काम का नहीं था और पागल के पास उस सामान का कोई अर्थ भी नहीं था, सिवाय एक चीज़ के। दस-बारह सालों से पुजारी का काम करने वाले बिरजू की नज़र पागल के पास बड़े जतन से रखे हुए एक काले गोल पत्थर पर पड़ी। उसे देखते ही बिरजू की आँखों में एक लपक उठी। अरे! यह तो···। गौर से देखने पर उसे पत्थर पर एक तिरछी भूरी लाइन भी दिखाई दी। 'जय बाबा भोलेनाथ!' बिरजू का धार्मिक मन स्वयं ही श्रद्धा से झुक गया। उस पत्थर को देखते हुए बिरजू को पागल ने शंका से देखा और सुरक्षा के लिए उसे अपने हाथों से ढक लिया। पागल के इस रुख से बिरजू आगे बढ़ गया।

लेकिन बिरजू को चैन नहीं था। वह अनिश्चितता में कुछ सोचकर लौट आया। वह अपने झोले से रोटियाँ और प्याज निकालता है और पागल को देता है। भूखा पागल तेज़ी से रोटियाँ खाता है। बिरजू उसके पास बैठ जाता है। पागल को खाने में तल्लीन देखकर बिरजू उस पत्थर को सहमते हुए हाथ लगाता है। लेकिन यह क्या? पागल एक झटके से बिरजू का हाथ झटक देता है। बिरजू उठ जाता है और जाने लगता है।

पागल रोटी खाकर वहीं लेट जाता है और सो जाता है। कुछ देर बाद बिरजू वापस आता है और दबे पाँव पागल के पास आकर उसका पत्थर उठा लेता है और चुपके से चौराहे की ओर निकल जाता है।

बिरजू उस सुनसान चौराहे के किनारे लगे बरगद के पेड़ के नीचे बैठ जाता है, जहाँ एक सरकारी हैंडपंप लगा है। बरगद के तने में रंगीन धागे लिपटे हैं, जिन्हें गाँव की औरतें पूजा करते समय बाँध जाती हैं। यह चौराहा हाइवे पर है, इसलिए इस पर बड़ी गाड़ियों का आना-जाना लगा रहता है।

बिरजू ने उस पत्थर को पानी से धोया और श्रद्धा से उसे बरगद के चारों ओर बने छोटे से चबूतरे पर रख दिया। अब वह एक पत्थर नहीं रह गया था—वह शिवलिंग बन गया था। दोनों हाथ जोड़कर बिरजू ने पूरी आस्था और तन्मयता से सस्वर शिव तांडव स्तोत्र का पाठ किया—

''जटाटवीगलज्ज्लप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्यलम्बितां भुजंङ्गतुङ्गमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥''

हैंडपंप से जल लेकर बिरजू ने शिवलिंग का जलाभिषेक किया और स्वयं पानी पीकर एक किनारे बैठ गया। अब उसके चेहरे पर हताशा-निराशा का रंचमात्र भी अंश नहीं था। भोलेनाथ ने जैसे उसका आत्मविश्वास लौटा दिया था। आश्वस्त बैठे हुए बिरजू को झपकी लग गई।

कुछ देर बाद एक ट्रक वाला उधर से गुज़रा और पानी पीने के लिए रुका, साथ में उसका क्लीनर भी उतरा। उन्होंने पत्थर को शिवलिंग समझा और 'जय भोलेनाथ' कहकर जेब से पाँच रुपए का सिक्का निकालकर चढ़ा दिया। बिरजू ने अधखुली आँखों से यह दृश्य देखा। ट्रक वाले के जाने के बाद बिरजू ने शिवलिंग को प्रणाम किया और सिक्का उठा लिया। उसके चेहरे पर असीम श्रद्धा का भाव जगा। उसी श्रद्धा से अभिभूत होकर उसने पत्थर के चारों ओर ठीक तरह से सफ़ाई कर दी। अब वह पत्थर पागल का पत्थर न था, वह शिवलिंग में परिवर्तित हो चुका था, जिसका रखवाला था बिरजू पंडित!

कुछ देर बाद दूसरी ओर से एक कीमती कार आकर रुकी। उसका ड्राइवर पानी लेने के लिए हैंडपंप पर आया। वह कार में पानी डालता है। उसके साथ एक अधेड़ औरत है, जो शायद उसकी माँ है। माँ जी वहाँ आकर हाथ-मुँह धोती हैं और शिवलिंग पर श्रद्धा से पचास रुपए का नोट चढ़ाती हैं। माँ जी को नोट चढ़ाते देख बिरजू वहाँ आ जाता है और उनके लिए आशीर्वचन का पाठ कर देता है। माँ जी उससे प्रभावित हो जाती हैं। वे बिरजू से पूछती हैं, आप यहाँ कैसे आए और यहाँ शिवलिंग की स्थापना कब हुई?

बिरजू दार्शनिक होकर कहता है, ''मैं तो रमता जोगी बहता पानी की तरह हूँ, माँजी! जिस दिन सपने में भोले बाबा ने बुलाया, उसी दिन चला आया उनकी सेवा में! वे फिर कहीं बुलाएँगे, तो वहाँ चला जाऊँगा। ये तो इनकी माया है, जैसा चाहेंगे, वैसा ही होगा। मुझे भी क्या पता था कि मैं यहाँ आ जाऊँगा…'' इतना कहकर बिरजू खो जाता है उन यादों में, जिन्होंने उससे उसका गाँव-घर छुड़ा दिया।

बिरजू को याद आता है अपना गाँव। कम उम्र से ही वह गाँव के मंदिर में पूजा करवाने लगा था। मासूमियत से भरा हुआ नौजवान बिरजू बड़ी ईमानदारी से लोगों की पूजा करवाता था, उन्हें आशीर्वाद देता था। लोग बड़े प्रसन्न होते कि बिरजू पंडित ने मंत्र बड़ी अच्छी तरह से पढ़े हैं। हालाँकि बड़े पुजारी महादेव दुबे इसी कारण उससे चिढ़ते थे कि गाँव वाले उसे बहुत पसंद करते हैं। बड़े पुजारी उसे बिना बात के डाँटते रहते थे और सारा चढ़ावा अपने पास रखते थे। लेकिन बिरजू को इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता था। लेकिन मंदिर के दानपात्र में जो रुपया आता था, उस पर पंचायत का हक होता था, क्योंकि पंचायत ने ऐसा ही नियम बना रखा था। महादेव दुबे का स्वभाव भी कुछ रुखा और दुनियादार जैसा था, इसलिए भी बिरजू पर लोगों की अधिक आस्था थी। लेकिन एक दिन लोगों की आस्था ही बिरजू के लिए खतरा बन गई।

बिरजू ने रात के समय महादेव दुबे को दानपात्र से चोरी करते हुए देख लिया। महादेव बिरजू को देखकर बहुत परेशान हो गए, लेकिन कुछ सोचकर उन्होंने शोर मचा दिया। गाँव की भोली जनता जुट गई। महादेव ने बिरजू पर चोरी का इलज़ाम लगा दिया। भीड़ ने बिरजू को बहुत पीटा। लोगों की आस्था नफ़रत में बदल गई। गाँव के मुखिया ने बिरजू को एक कोठरी में बंद करवा दिया और अगले दिन पंचायत बुला ली। महादेव की गवाही पर बिरजू को दोषी माना गया। पंचायत मानती है कि वह बहुत दिनों से दानपात्र का पैसा गायब कर रहा था। ऐसे इनसान को गाँव में रहने का कोई हक नहीं, क्योंकि उसने गाँववालों की भावनाओं से खिलवाड़

अब रोज़ शाम को मंदिर के पास दो घंटे का जागरण होने लगा। मंदिर का कद दिन-पर-दिन ऊँचा होता जा रहा था। उस चौराहे का कायापलट हो गया था। अब उस इलाके के विधायक, नेता और पुलिसवाले भी बिरजू से आशीर्वाद लेने आने लगे। बिरजू बहुत अच्छी तरह से पूजा करवाता है और लोग उसे बहुत चाहने लगे हैं, ये बातें लोगों में प्रसिद्ध हो गईं। कभी-कभी उसकी कही गई कई बातें सही हो गईं, जिससे लोग उसे बहुत सम्मान देने लगे। दूसरी बात यह कि बिरजू लालची नहीं है। वह सारा चढ़ावा मंदिर के निर्माण और गरीबों को खिलाने में खर्च कर देता है। इससे उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई है। कई भिखारी वहीं स्थायी रूप से डेरा डाल चुके हैं।

किया है। पुलिस में देने से गाँव की बदनामी न हो, इसलिए पंचायत उसे गाँव छोड़ने का आदेश देती है।

बेसहारा बिरजू ने गाँव छोड़कर शहर का रुख किया। शहर पहुँचने से पहले उसे एक ठोकर लगी और वह गिरते-गिरते बचा। आँख खुली तो उसने देखा, गाँव की एक सुंदर लड़की उसके सामने खड़ी उसे घूर रही है। लड़की ने बिरजू को धीरे से धक्का देकर जगाया। बिरजू जैसे नींद खुलने से गिरते-गिरते बचा। उसने बिरजू से पूछा, 'तुम कौन हो?'

'आँ··· हम हैं बिरजू!'

'कौन बिरजू?'

'हम पुजारी हैं और आज ही यहाँ आए हैं।'

'पुजारी··· तो ये भोलेनाथ तुम्हीं लेकर आए हो?'

'लेकर नहीं, ये तो यहीं प्रकट हुए हैं। इनकी कृपा से हम यहाँ आए हैं। भोले बाबा ने सपने में दर्शन देकर यहाँ बुलाया कि यहाँ आओ और उनकी स्थापना करो। बस! हम चले आए।'

'हूँ! हमारा नाम सुमित्रा है! हम यहाँ की मालिन हैं। इधर के पाँच गाँवों में फूलमाला हम ही बेचते हैं।'

'वाह! तब तो बहुत अच्छा है। काहे कि फूलमाला की ज़रूरत तो यहाँ भी होगी।'

'तो कल से ही रखवा देती हूँ।'

'रखवा देती हूँ···किससे?'

'मेरा छोटा भाई संजय है, अभी आता होगा, वो उधर जाता है पांडेपुर की तरफ़। वो देखो आ रहा है।'

'ये तो बहुत अच्छा है। संजय फूल लेकर यहाँ बैठ जाएगा तो भक्तों को आराम हो जाएगा।'

'भक्तों को आराम हो चाहे न हो, हमको ज़रूर हो जाएगा। दिन-दिन भर भटकती हूँ तो पेट भरता है। भगवान पर चढ़ाने के लिए लोगों को ताज़ा फूल चाहिए, लेकिन पैसे देने में उनकी नानी मरती है। अरे, हम भी तो फूल खरीदकर लाते हैं, तो उसका दाम नहीं लेंगे? बताओ?'

'बिलकुल···क्यों नहीं लोगी? भला मंदिर में आते हैं तो लोग फूलमाला खरीदते हैं कि नहीं? तुम कल से यहाँ संजय को बैठा दो और बेलपत्र, फूल, धतूरा, दूब, पान आदि रखवा दो।'

'ठीक है, संजय भी आ गया। ऐ संजय! ई हैं बिरजू पंडित! बाबा भोलेनाथ इनको दर्शन देकर बुलाए हैं कि यहाँ मंदिर बनाओ। तो तुम कल से फूल, पत्ती, माला, सब लेकर यहीं बैठना।'

'भोलेनाथ! मंदिर!'

'हाँ रे! अच्छा हुआ, इधर कोई मंदिर था भी नहीं। कल से आ जाना, ठीक!'

संजय स्वीकार में सिर हिलाता है, लेकिन वह अभी भी आश्चर्य में है।

'अच्छा पंडितजी, अब हम चलते हैं। कल सवेरे संजय आ जाएगा।'

'हाँ-हाँ, बहुत अच्छा, चलो सुमित्रा, चलो संजय!'जय बाबा भोलेनाथ!'

कहकर शिवलिंग के सामने मस्तक झुकाना नहीं भूलते।

उधर जब पागल बाबा की नींद खुली तो पत्थर को न पाकर उसे कुछ बेचैनी हुई। उसने अपना सारा सामान गुदड़ियों से निकालकर बाहर फैला दिया कि कहीं वह उनमें न छिपा हो। लेकिन वह तो वहाँ था ही नहीं। पर उसका अस्थिर मन कुछ देर में ही उसे भूल गया।

दूसरे दिन सुबह चलते हुए वह उस पेड़ तक आया, जहाँ बिरजू ने उसका पत्थर स्थापित कर रखा था। बिरजू ने पागल को देखते ही उसे कुछ दूर पर बैठा दिया और उसे कुछ खाने को दिया। तभी सुमित्रा अपने भाई संजय के साथ आई और फूलमाला की डलिया के साथ उसे बैठाकर चली गई। पागल कुछ देर रुककर और दी हुई चीज़ें खाकर वापस चला गया। उसे जाते देखकर बिरजू कुछ आश्वस्त हुआ।

बिरजू ने संजय की मदद से कुछ पत्थर, ईंटें, लकड़ी और इसी तरह की प्राकृतिक वस्तुएँ इकट्ठा करवाई और बरगद के पास ही ऊँची सी जगह पर दो-तीन फुट ऊँचा एक ढाँचा जैसा बनाया। आज कल से अधिक आमदनी हुई, क्योंकि फूल, बेलपत्र आदि की व्यवस्था होने से भक्तों ने दक्षिणा अधिक चढ़ाई। संजय उसका सहयोगी, साथी और मार्गदर्शक हो गया। संजय पास के बाज़ार से खाना बनाने का सामान ले आया। दोपहर में बिरजू ने रोटियाँ बनाईं, जो उसने संजय के साथ खाईं। दोपहर तक सब फूल खत्म हो गए।

शाम के समय सुमित्रा आई। वह संजय के लिए कुछ खाने का सामान लाई थी। उन तीनों ने मिलकर खाया। दिन भर की रिपोर्ट लेकर उसने बिरजू से कहा, 'ऐसे कैसे चलेगा? तुम रोटी बनाओगे कि मंदिर सँभालोगे? मैं तुम्हारे और संजय के लिए खाना भिजवा दूँगी।'

ढाँचा देखकर उसने सराहा और कहा, 'पंडितजी, ऐसा कुछ करो कि ये ढाँचा जल्दी ही ऊँचा उठ जाए।'

बिरजू सोच में पड़ गया। रात में उसने उस पत्थर को ढाँचे में रख दिया। सुबह सुमित्रा ढाँचे पर लटकाने के लिए एक लाल कपड़ा ले आई। संजय आज डलिया भर फूल लेकर आया। आज

एक और आदमी उसके साथ था, जिसके साथ नंदी था। अब मंदिर की धजा पूरी हो गई।

हाइवे से गुज़रती हुई गाड़ियाँ, आते-जाते हुए लोग, आस-पास के गाँव वाले वहाँ कुछ फूल, पैसे चढ़ाने लगे। कुछ भक्त नंदी को तेल चढ़ाने और घास खिलाने लगे। इस प्रकार वहाँ एक छोटा सा मंदिर बन गया। मंदिर का स्वरूप लेते-लेते उस पर आस-पास के गाँववालों की नज़र भी पड़ी। सुबह-शाम गाँव की स्त्रियाँ, बच्चे मंदिर आने लगे। मंदिर का प्रभाव छोटे से बड़ा होने लगा, साथ में बिरजू का यश भी फैलने लगा।

पागल अब मंदिर के आस-पास ही रहने लगा। बिरजू उसे बाबा कहता है। उसकी देखा-देखी सब उसे पागल बाबा कहने लगे। बिरजू बाबा को नियमित रूप से खाना, प्रसाद भिजवाता रहता है। मंदिर का चढ़ावा बढ़ने लगा तो बिरजू ने उसे भिखारियों में बाँटने और चारों ओर कुछ सुविधाएँ बनवाने में खर्च कर दिया। अब मंदिर का ढाँचा कुछ और ऊँचा हो गया था और पास में बिरजू का कमरा भी बन गया था। सुमित्रा ने भी उसे कुछ नई सलाह दी। उसने जागरण करने वाले जयकिशन उर्फ जैकी को बिरजू से मिलाया और रोज़ शाम को मंदिर पर दो घंटे भजन गाने का प्रस्ताव रखा। जैकी ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसे कुछ पैसे भी मिलने की उम्मीद थी, और नियमित काम से उसका यश भी बढ़ने वाला था।

अब रोज़ शाम को मंदिर के पास दो घंटे का जागरण होने लगा। मंदिर का कद दिन-पर-दिन ऊँचा होता जा रहा था। उस चौराहे का कायापलट हो गया था। अब उस इलाके के विधायक, नेता और पुलिसवाले भी बिरजू से आशीर्वाद लेने आने लगे। बिरजू बहुत अच्छी तरह से पूजा करवाता है और लोग उसे बहुत चाहने लगे हैं, ये बातें लोगों में प्रसिद्ध हो गईं। कभी-कभी उसकी कही गई कई बातें सही हो गईं, जिससे लोग उसे बहुत सम्मान देने लगे। दूसरी बात यह कि बिरजू लालची नहीं है। वह सारा चढ़ावा मंदिर के निर्माण और गरीबों को खिलाने में खर्च कर देता है। इससे उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई है। कई भिखारी वहीं स्थायी रूप से डेरा डाल चुके हैं।

पागल बाबा अब थोड़ा सुधर गया है। उसने नहाना-धोना शुरू कर दिया है। किसी से बोलता तो नहीं है वह, लेकिन शांत रहता है। वह वहीं घूमता रहता है, लेकिन उसे मंदिर में जाने नहीं दिया जाता है। एक दिन वह दोपहर में मंदिर में झाँक लेता है। उसे अपना पत्थर दिखाई देता है। जैसे ही वह उसे लेने बढ़ता है कि संजय चिल्ला देता है कि पागल बाबा भगवान् को छू रहा है। भक्त उसे पकड़कर बाहर कर देते हैं। बिरजू को जब यह बात पता चलती है तो वह पागल बाबा को कुछ खाने के लिए देता है। लेकिन उस दिन से बाबा अपने पत्थर को लेने की फिराक में रहता है। सुमित्रा भी अब अधिकतर मंदिर में ही रहने लगी है। उसे बिरजू से प्रेम हो गया है। बिरजू भी उसे चाहता है, लेकिन कहने में शरमाता है।

शिवरात्रि का पर्व बहुत धूमधाम से मनाया जा रहा है। सुबह से ही भक्तों का ताँता लगा है। बिरजू सबको पूजा करवा के आशीर्वाद दे रहा है। स्थानीय विधायक गोटिया बिरजू से कई बार आशीर्वाद ले चुका था और आज उसने मंदिर के पास ही एक छोटा सा स्टेज बनवाया कि अपनी राजनीतिक रोटियाँ भी सेंक सके। उसके साथी, चमचे, गुर्गे वहाँ जमा थे और शहर

गोटिया के समर्थक तैयार होकर अस्पताल की ओर चले। सुमित्रा भी बिरजू के साथ छिपती हुई अस्पताल पहुँची। अब तक पुलिस की सख्ती भी कम हो गई थी। गोटिया के समर्थक वेश बदलकर अस्पताल पहुँचे और स्टाफ की मदद से पागल को पीछे के गेट से बाहर निकालने में कामयाब हो गए, जहाँ बिरजू और सुमित्रा उनका इंतजार कर रहे थे। बिरजू और सुमित्रा ने उन लोगों को रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे कुछ न कर सके। तब बिरजू पागल को पकड़कर बैठ गया कि इसे मत मारो, यह निर्दोष है। यह बोल नहीं सकता, गूँगा-बहरा है। लेकिन इस समय तो गोटिया के गुर्गे गूँगे-बहरे बने हुए थे। पागल को बचाने में बिरजू अधिक देर ठहर नहीं सका और हाथापाई में गिर पड़ा। वे पागल को लेकर भागने लगे तो बिरजू ने उनका रास्ता रोक लिया और कहा कि तुम लोग इसे नहीं ले जा सकते। लेकिन उन लोगों ने बिरजू को ज़ोर का धक्का दिया और पागल को लेकर भागे। बिरजू उनके पीछे भागा और एक गुर्गे को पकड़ लिया। उसने अपने मज़बूत हाथों से बिरजू को एक तरफ फेंक दिया, जिससे उसका सिर एक पत्थर से टकरा गया और वह वहीं ढेर हो गया।

से आने वाले अधिकारियों, मंत्रियों और धन-कुबेरों का स्वागत कर रहे थे। आगंतुकों को वे बिना लाइन के बिरजू से आशीर्वाद भी दिलवाते और दक्षिणा भी चढ़वाते। इस बड़ी घटना से फ़ायदा उठाने के लिए उसने कुछ चैनलों और अखबारवालों को भी बुला लिया था। आखिर नया-नया मंदिर बना था, मान्यता क्यों न होती! सबकुछ बड़ी अच्छी तरह से चल रहा था।

दोपहर में जब भीड़ कुछ देर के लिए कम हुई कि पागल बाबा मौका पाकर चुपके से मंदिर में घुसा और शिवलिंग उठाकर भागा। जैसे ही वह बाहर आया कि किसी भक्त की नज़र उस पर पड़ी। शोर मच गया और भीड़ जमा हो गई। लोगों ने पागल बाबा को पीट-पीटकर अधमरा कर दिया। इस घटना की प्रत्यक्षदर्शी बनी 'अपनी खबर' चैनल की तेज़-तर्रार रिपोर्टर सुनीता अय्यर, जो गोटिया के निवेदन पर मंदिर की पूजा को कवर करने आई थी। अब उसे एक चटपटा मसाला मिल गया।

जैसे ही लोगों ने पागल को पीटना शुरू किया, बिरजू शोर सुनकर वहाँ आया और लोगों को रोकने लगा। लेकिन भीड़ इतनी नाराज थी कि जब तक वह पागल तक पहुँचता, पागल अधमरा हो चुका था। बिरजू पागल को बचाने के लिए उस पर लेट गया कि उसे बचा ले, लेकिन लोगों का जुनून ऐसा था कि पागल को पीटने के चक्कर में बिरजू भी चोट खा गया और बेहोश हो गया। सुनीता ने फुरती से अपने चैनल में बाइट दे दी, जो पाँच मिनट में ही लाइव प्रसारित हो गई। ब्रेकिंग न्यूज के रूप में सुनीता की खबर को दूसरे चैनलों ने लपक लिया और लगभग 15-20 मिनट में ही वहाँ चैनल वाली चार गाड़ियाँ और पहुँच गईं।

इधर घायल बिरजू और पागल को गोटिया व उसके आदमी पास के सरकारी अस्पताल लेकर चले गए। पुलिस आ गई तथा उसने बिरजू और पागल पर पहरा बैठा दिया। अब कोई भी उन तक पहुँच नहीं सकता था। अस्पताल में बिरजू और पागल को आई.सी.यू. में भरती कर लिया गया। बिरजू को तो सब लोग पुजारी के रूप में जानते थे, लेकिन पागल की शिनाख्त नहीं हो सकी।

सभी प्रमुख चैनलों पर यह खबर छा गई कि किसी ने पागल का रूप धरकर रिंग रोड के मंदिर को भ्रष्ट करने की कोशिश की है। मंदिर में अफरा-तफरी का माहौल है। गुस्साई भीड़ ने उस बने हुए पागल को बहुत पीटा और शिवलिंग ले जाने के चक्कर में पागल ने मंदिर के पुजारी बिरजू पंडित पर भी जानलेवा हमला किया है और उनकी जान अभी भी खतरे में है।

उधर गोटिया ने मंदिर के परिसर में बने स्टेज पर अपने समर्थकों की एक छोटी सी सभा कर डाली। भारी संख्या में गाँव वाले और बाहर के बहुत से लोग वहाँ मौजूद थे। अखबारों और चैनलों के रिपोर्टर तो पहले ही आ चुके थे। उन्हें कुछ और मसाला चाहिए था। गोटिया के भड़काऊ भाषण के बाद उसके समर्थकों ने देश को बाँटने वाली शक्तियों से टकराने वाले नारे लगाए और पागल को पाकिस्तान का एजेंट बताया। उन्होंने यह भी कहा कि अब पागल जैसे मुसलमानों को कड़ा सबक सिखाने का वक्त आ गया है। अगर बिरजू पंडित को कुछ हो गया तो हम अस्पताल में घुसकर पागल को सजा देंगे। चैनल वालों ने इस मुद्दे को इस कदर उछाला कि अधिक्तर जनता पागल को आई.एस.आई. या पाकिस्तान का एजेंट मानने लगी। एक चैनल ने उसे आतंकवादी गतिविधि करार दिया। दूसरे ने उसे राष्ट्रदोही और इनसानियत के लिए सबसे बड़ा खतरा। तीसरे ने उसे किसी बड़ी साजिश का सूत्रधार बताया। अब यही बचा था कि उसकी पहचान कैसे स्थापित की जाए।

सरकारी अस्पताल के बाहर सभी चैनलों की वैन जमा हो गईं। पुलिस कमिश्नर ने व्यक्तिगत रुचि लेकर अस्पताल पर पहरा कड़ा कर दिया। किसी को भी पागल या बिरजू से मिलने से रोक दिया गया। डॉक्टरों ने पागल और बिरजू के इलाज में अपनी सारी शक्ति लगा दी। सुनीता ने अपने चैनल में पिटते हुए पागल की तस्वीरें और वीडियो जारी करवा दीं। अब उसका प्रमोशन भी निश्चित हो गया। घटनाक्रम कुछ इस तरह आगे बढ़ा कि दो दिन में ही सारे शहर में कर्फ़्यू लगाने जैसे हालात हो गए।

गोटिया के समर्थन में मंदिर के बाहर धर्म की रक्षा के लिए कई धार्मिक नेताओं ने एक बड़ी सभा का ऐलान किया। गोटिया के कारण बहुत से राजनीतिक लोग भी इसमें शामिल हो गए। शाम को हुई सभा में ऐलान किया गया कि जिन लोगों ने हमारी धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया है, हम उन्हें चेतावनी देते हैं कि उनकी इन हरकतों को कतई बरदाश्त नहीं करेंगे। भीड़ ने ज़ोर-शोर से नारेबाज़ी शुरू कर दी। जनता भड़क उठी और धर्म की रक्षा के लिए सड़कों पर उतर आई। पुलिस उनकी इस गतिविधि पर नज़र रखे हुए थी। लेकिन भीड़ बहुत हो गई और उसे सँभालना मुश्किल हो गया।

सूबे के मुख्यमंत्री ने गोटिया को फोन किया और उसे जनता को शांत करने के लिए कहा। लेकिन गोटिया इस मौके को कैसे छोड़ सकता था। उसने जनता को और भड़का दिया। लिहाजा गोटिया के समर्थकों ने कुछ इलाकों में तोड़-फोड़ करनी शुरू कर दी। कुछ कार्यकर्ताओं ने मुसलिम बहुल क्षेत्रों में मार-पीट कर दी।

जिससे अब यह लड़ाई हिंदू–मुसलिम जनता के बीच शुरू हो गई। शहर में दंगे भड़क उठे। पुलिस ने कर्फ़्यू लगा दिया। एक चैनल ने इस पूरे घटनाक्रम पर तीन विशेषज्ञों को बुलाकर चर्चा शुरू कर दी। एक चैनल ने तो यह खुलासा भी किया कि पागल का खतना भी हुआ है।

उधर अस्पताल में पागल को होश आ गया, लेकिन वह कुछ बोल नहीं सकता था। बिरजू की हालत सुधर गई और उसे आई.सी.यू. के बाहर वार्ड में भेज दिया गया। लेकिन पुलिस का पहरा बराबर बना रहा। उधर यह खबर उड़ गई कि पागल जान–बूझकर चुप्पी साधे बैठा है। ज़रूर वहा किसी बड़ी साज़िश का हिस्सा है, जो अपना मुँह नहीं खोल रहा है।

गोटिया ने पुलिस की मदद से बिरजू से मुलाकात की। उसने बिरजू से पूछा कि उसने पागल को बचाने की कोशिश क्यों की? तो बिरजू ने कहा कि पागल निर्दोष है। तो गोटिया ने कहा, 'तुम्हारा दिमाग फिर गया है पंडित। पागल को निर्दोष बता रहे हो? मुझसे तो कह दिया, लेकिन और किसी से मत कहना, वरना इसमें तुम्हारी मिलीभगत बता देंगे और देशद्रोह के नाम से ज़िंदगी भर चक्की पिसवाएँगे।'

बिरजू डर गया। सुमित्रा ने अस्पताल की नर्स की मदद से बिरजू से मुलाकात की। बिरजू ने उसे बता दिया कि पागल निर्दोष है। लेकिन सुमित्रा ने उसे चुप रहने को कहा, क्योंकि गोटिया और उसके लोगों ने जो हंगामा मचाया था, उससे सारे शहर में सांप्रदायिक हिंसा फैलने लगी थी। और सुमित्रा भी नहीं जानती थी कि कैसे इस मुसीबत से छुटकारा पाया जाए।

बिरजू कुछ सोचने की स्थिति में नहीं था। वह एक छोटा पुजारी था, लेकिन ऐसी स्थिति का सामना उसने कभी नहीं किया था। सुमित्रा और उसने सोचा कि पागल को बचाया जाए। लेकिन कैसे?

अगले दिन बिरजू को छुट्टी मिल गई। उसे गोटिया के आदमी गाजे–बाजे के साथ मंदिर ले गए। सुनीता अय्यर के चैनल ने बिरजू और गोटिया को बुलाया। गोटिया ने बिरजू को कई तरह से समझाया था कि क्या कहना है, लेकिन बिरजू को बहुत अधिक समझ में नहीं आया। लाइव शो में बिरजू ने पागल की सच्चाई बताने की कोशिश की, लेकिन चैनलवाले और गोटिया ने उसे बोलने ही नहीं दिया। उसकी आवाज़ दबकर रह गई।

इधर यह खबर राष्ट्रीय खबर बन चुकी थी। सारे देश में हलचल मची हुई थी। हर व्यक्ति की नज़र इस खबर पर थी कि पागल कौन है और उसका बयान आया या नहीं? दो–तीन दिन इन्हीं कयासों में लग गए।

उधर जाने कैसे सुनीता अय्यर को यह पता चल गया कि पागल गूँगा है और बोल नहीं सकता। उसने अपने चैनल को यह खबर लगाने को कहा। लेकिन चैनल–हेड ने कहा कि तुम मूर्ख हो। अच्छी खासी हलचल को किल करना चाहती हो!

इधर गोटिया ने अपने कुछ विश्वास पात्र समर्थकों को मंदिर में बुलाया और उन्हें भोले नाथ की कसम दिलाकर अस्पताल भेजा कि किसी तरह उस पागल रूपी आतंकवादी को खत्म कर दो। यह बात सुमित्रा ने सुन ली और उसने बिरजू को बता दी।

गोटिया के समर्थक तैयार होकर अस्पताल की ओर चले। सुमित्रा भी बिरजू के साथ छिपती हुई अस्पताल पहुँची। अब तक पुलिस की सख्ती भी कम हो गई थी। गोटिया के समर्थक वेश

गोटिया के समर्थक तैयार होकर अस्पताल की ओर चले। सुमित्रा भी बिरजू के साथ छिपती हुई अस्पताल पहुँची। अब तक पुलिस की सख्ती भी कम हो गई थी। गोटिया के समर्थक वेश बदलकर अस्पताल पहुँचे और स्टाफ़ की मदद से पागल को पीछे के गेट से बाहर निकालने में कामयाब हो गए, जहाँ बिरजू और सुमित्रा उनका इंतज़ार कर रहे थे। बिरजू और सुमित्रा ने उन लोगों को रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे कुछ न कर सके। तब बिरजू पागल को पकड़कर बैठ गया कि इसे मत मारो, यह निर्दोष है। यह बोल नहीं सकता, गूँगा-बहरा है। लेकिन इस समय तो गोटिया के गुर्गे गूँगे-बहरे बने हुए थे। पागल को बचाने में बिरजू अधिक देर ठहर नहीं सका और हाथापाई में गिर पड़ा। वे पागल को लेकर भागने लगे तो बिरजू ने उनका रास्ता रोक लिया और कहा कि तुम लोग इसे नहीं ले जा सकते। लेकिन उन लोगों ने बिरजू को ज़ोर का धक्का दिया और पागल को लेकर भागे। बिरजू उनके पीछे भागा और एक गुर्गे को पकड़ लिया। उसने अपने मज़बूत हाथों से बिरजू को एक तरफ़ फेंक दिया, जिससे उसका सिर एक पत्थर से टकरा गया और वह वहीं ढेर हो गया।

बदलकर अस्पताल पहुँचे और स्टाफ़ की मदद से पागल को पीछे के गेट से बाहर निकालने में कामयाब हो गए, जहाँ बिरजू और सुमित्रा उनका इंतज़ार कर रहे थे। बिरजू और सुमित्रा ने उन लोगों को रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे कुछ न कर सके। तब बिरजू पागल को पकड़कर बैठ गया कि इसे मत मारो, यह निर्दोष है। यह बोल नहीं सकता, गूँगा-बहरा है। लेकिन इस समय तो गोटिया के गुर्गे गूँगे-बहरे बने हुए थे। पागल को बचाने में बिरजू अधिक देर ठहर नहीं सका और हाथापाई में गिर पड़ा। वे पागल को लेकर भागने लगे तो बिरजू ने उनका रास्ता रोक लिया और कहा कि तुम लोग इसे नहीं ले जा सकते। लेकिन उन लोगों ने बिरजू को ज़ोर का धक्का दिया और पागल को लेकर भागे। बिरजू उनके पीछे भागा और एक गुर्गे को पकड़ लिया। उसने अपने मज़बूत हाथों से बिरजू को एक तरफ़ फेंक दिया, जिससे उसका सिर एक पत्थर से टकरा गया और वह वहीं ढेर हो गया।

सुमित्रा बिरजू की हालत देखकर चिल्लाने लगी। बिरजू को जरा सा होश आया। उसने कहा, 'पागल बाबा निर्दोष है। वो शिवलिंग पागल बाबा का है।'

लेकिन सुमित्रा ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। उसे तो बिरजू को बचाने का खयाल आ रहा था। अस्पताल के एक कर्मचारी को जाते देखकर वो चिल्लाई—'बचाओ···बिरजू पंडित को बचाओ! उन लोगों ने बिरजू पंडित को मार डाला है। वो पागल बाबा को भी मार देंगे।' लेकिन जब तक वह कर्मचारी आता, बिरजू की नब्ज़ बंद हो चुकी थी।

उधर मीडिया में ब्रेकिंग न्यूज़ शुरू हो गई कि आतंकवादियों ने अस्पताल पर हमला करके पागल बने अपने साथी को छुड़ा लिया है और उन्होंने बिरजू पंडित की हत्या कर दी है।

गोटिया के समर्थकों ने पागल को मारकर रास्ते में फेंक दिया। मीडिया में फिर ब्रेकिंग न्यूज़ फ्लैश हो रही है कि आतंकवादियों ने अपने साथी को भी मार डाला कि कहीं वह उनकी पहचान जाहिर न कर दें।

बहरहाल, एक बार फिर शहर में अनिश्चित कालीन कर्फ्यू लगा दिया गया है कि बिरजू की हत्या से कहीं फिर दंगा न भड़क जाए।

हाँ, मंदिर पर गोटिया के समर्थकों का अखंड भजन चालू है, जब तक यह मामला ठंडा न पड़ जाए।

□

क्रोध से कीर्ति नष्ट होती है और क्रोध स्थिर लक्ष्मी का भी नाशक है।

—मत्स्यपुराण

क्षमा धर्म है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है तथा क्षमा शास्त्र है।

—वेदव्यास

सज्जन मूर्ख के दोष को सदा क्षमा कर देते हैं।

—ब्रह्मवैवर्तपुराण

दंड देने की शक्ति होने पर भी दंड न देना सच्ची क्षमा है।

—महात्मा गांधी

40

ऊपर वाला कमरा

सुश्री भावना हरिशरण
मॉरीशस

'बाबू ! बाबू !'

माँ ने नीचे से आवाज़ दी। इसी तरह वह अपने बेटे को बुलाती थी। चार-पाँच बार आवाज़ देने के बाद सुनाई दी—'क्या है?'

'चटनी बनाई है। लोगे?'

'किसकी?'

'मूँगफली की।'

'ले आओ।'

माँ खुश हुई। इतने दिनों के बाद अब वह अपने बेटे से भेंट करने जा रही थी, अपने ही घर में। एक साल बीत चुका था बेटे की शादी हुए। अब पहले जैसा कुछ न रहा। हर बार बेटे का माँ के पास आकर मजाक करना, चुटकी काटना, हलकी सी मार सहना, वह झूठ-मूठ का रोना, हँसी मज़ाक—कुछ भी नहीं। अब तो तरसती है माँ, बाबू की एक झलक के लिए।

माँ धीरे-धीरे सीढ़ियों को पार करती हुई ऊपर वाले कमरे की ओर बढ़ रही थी। वही कमरा जो लोन लेकर बनवाया था अपने बेटे और बहू के लिए। पति तो कब के गुज़र चुके थे। उसने दरवाज़ा खटखटाया धीरे से, जैसा उसके बेटे ने उसे आदेश दिया था। दरवाज़ा खुला।

'ये रही, मूँगफली की चटनी!' हाँफते हुए माँ ने बाबू को कटोरी थमाई। वही सुगंध थी, वही नुस्खा था, बस रिश्ते में कुछ अटक गया था।

'ओह! दो। खाने ही जा रहा था।' वार्तालाप को और ज़्यादा लंबा नहीं करना चाहता था बाबू, कहीं पत्नी फिर से नाराज न हो जाए।

'बहू कैसी है?' बहू के लिए प्रेम था, पर किसी को दिखाई नहीं दे रहा था। वार्तालाप को और लंबा करने की कोशिश कर रही थी माँ। लेकिन अफसोस!

'वो सो गई है। मैं भी थोड़ा थका हुआ हूँ।' कुछ न कहकर भी बेटे ने आँखों से ही अपनी व्यस्तता और माँ के साथ अधिक बात न करने की चाह जाहिर कर दी थी। माँ चुपचाप सीढ़ियाँ उतरकर अपने कमरे में चली आई।

पिछले 4-5 महीनों से यही हाल था। बेटे के व्यवहार का यह बदलाव माँ को दिन ब दिन नोचता जा रहा था। 25 वर्षों तक जो बेटा माँ के साथ रहा, उसका साथ दिया, माँ की पूजा की, आज वही बाबू कई दिनों तक माँ को देखने भी नहीं आता ऊपर वाले कमरे से। सात बजे काम पर जाने के लिए जब मोटर साइकिल निकालता है तो माँ हर बार बाहर निकलती है, बेटे को अलविदा-शुभ दिन कहने के लिए। बाबू को माँ कभी दिख जाती है, कभी नहीं दिखती, लेकिन माँ हमेशा रहती है। बाबू तो अपेक्षा भरी नज़र दौड़ते हुए चला जाता है। माँ को चाहिए था—दिन में बस एक बार बेटे के दर्शन, बहू के साथ कुछ बातें, थोड़ा सा प्यार। इनमें से कुछ भी नसीब नहीं हो रहा था।

माँ एक कमरे वाले घर में आई थी रहने, शादी करके बाबू के पिताजी के साथ। गरीब परिवार की थी। माँ-बाप गुज़र गए थे। चाचा-चाची के यहाँ रहती थी। कभी स्कूल का मुँह देखा नहीं था। लड़की जो थी। चाचा-चाची के यहाँ जो भी उसे चाहिए था—पूछकर लेना था। एक-दो बार गलती से बिना पूछे उसने लोटे-बरतन इस्तेमाल किए थे, उसे मार पड़ी थी, गालियाँ सुनाई गई थीं और भूख भी मिली थी। शादी करके अपने नए घर में जब वह आई तो डर था, मगर सपने भी थे। धीरे-धीरे पति के प्यार ने उसके डर को मिटाया, उसके सपनों को पोषित किया।

पहली बार पति घर के सामान, कोमिशियों खरीदकर लाए थे नए साल में। मेहनत की पहली कमाई मिली थी। सामानों में लिमोनाद पेय पदार्थ भी शामिल था। माँ ने चाचा-चाची के यहाँ इसे कभी छुआ तक नहीं था। पति काम पर गए थे। वह घर का सारा काम करके बैठी थी। लिमोनाद की बोतल को देख रही थी, देखती रही, उसे छुआ नहीं। शाम को पति आए तो नहाने के लिए कपड़े दिए, चाय पिलाई। नहाकर जब पति आए तो सहमकर उसने पूछा, 'क्या थोड़ी सी लिमोनाद पी सकती हूँ?'

पति अवाक् खड़े रहे। उनकी आँखों से आँसू बहे थे। पत्नी को गले से लगाया था।

एक कमरे वाला वह मकान घर बना और साल–दर–साल बड़ा होता गया। बेटे के आने से और प्रगति हुई। बेटे को पढ़ाया–लिखाया गया। वह बड़ा हुआ और माता–पिता बूढ़े। इसी बीच एक दिन पति को सुबह जगाया तो वह सोता रह गया। माँ ने अकेले ही अपने बलबूते पर बेटे का विवाह कराया था।

आज न पति का साया रहा और न बेटे का प्यार मिल रहा था। बहु दिन भर ऊपर वाले कमरे में ही रहती थी। एक–दो बार उतरती थी, मैले कपड़े छोड़ जाने के लिए। माँ कुछ न कहती थी। अपने बुढ़ापे में भी काम में जुटी रहती थी। बेटे ने कई बार हालात से मजबूर होकर माँ से पैसे उधार में लिये थे लौटाने का वादा देकर, जो उसने कभी नहीं निभाया।

माँ पूरी तरह से भीग चुकी थी। पूरी ताकत के साथ उसने आवाज़ दी। कई बार आवाज़ दी। कोई जवाब नहीं मिला। दरवाज़ा खटखटाया, धीरे से जिस प्रकार बेटे ने खटखटाने को कहा था। कोई उत्तर न मिला। माँ की खुशी दुख में बदलने लगी। उसकी साँसें बहुत तेज़ हो गई थीं। धड़कनें डमरू की भाँति हिल-डुल रही थीं। कोई नहीं निकला। दरवाज़ा नहीं खुला। बस लाईट ऑफ कर दी गई और बहू की क्रोध भरी चीख सुनाई दी।

रात का समय था। बेटा कब काम से लौटा था, कब ऊपर वाले कमरे में चला गया था, कब भोजन कर लिया था, कुछ पता न चला। कई बार माँ ने उस कमरे को कोसा भी, जो उसे अपने बच्चों से इतनी दूर रखता है। उसे तोड़ देने का मन किया। फिर आँखें बंद करके अपने कृष्ण को याद करने लगती थी। दोपहर से बादल छाए थे। मानो रोने के लिए एकदम तैयार थे। अपने पति की याद आ रही थी उसे। अजीब अनुभूति हो रही थी। रोज़ की तरह वह बेटे से एक बार मिलने के लिए, एक बार बात करने के लिए, बहू के गले लगने के लिए तड़प रही थी। उसकी आँखों से आँसू बहते जा रहे थे। रोज़ तो रोकर वह अपने आप को सँभाल लेती थी। लेकिन आज कृष्ण भी उन आँसुओं को रोकने में मदद नहीं करना चाहते थे, ऐसा उसे लगा।

बादल गरजकर प्रहार करने लगे। भूमि चुपचाप उस तोड़ती बारिश को अपने आगोश में ले रही थी, बिलकुल उसी तरह, जैसे माँ चुपचाप पीड़ा सह रही है। माँ ने कितने तूफ़ान, कितनी पीड़ाएँ, कितने दुख सहे थे। लेकिन आज वह हारकर टूटती जा रही थी। न जाने कैसा डर अपने साये में उसे घेरे जा रहा था।

माँ उसी बड़ी सी कुरसी पर बैठी थी, जिसपर उनके पति बैठा करते थे। मूसलधार वर्षा हो रही थी। रात के 8 बजे थे। बादल गरजते जा रहे थे। कहीं से अचानक माँ में बेटे से जाकर मिलने की चाह जागी। लेकिन डर था, कहीं बेटे से फिर ताने और डाँट न सुनने को मिले। वह तड़प रही थी। उसने फिर सोचा—एक बार तो उससे जाकर पूछ लूँ, 'दरवाज़ा और खिड़कियाँ ठीक से बंद हैं न?' एक ही झटके में सबकुछ भुलाकर उसने निश्चय किया कि वह बेटे को देखने ज़रूर जाएगी, ऊपर वाले कमरे में।

जो सीढ़ियाँ ऊपर वाले कमरे की ओर जाती थीं, वे बाहर थीं। डर और बेटे को देखने की तीव्र इच्छा के सहारे माँ ने घुटनों के दर्द को भुलाक़र पुरानी छतरी उठाकर खोली और दरवाज़ा खोलते हुए बाहर निकली। ऐसी तेज़ हवा और मूसलधार बारिश के बीच वह धीरे–धीरे जैसे–तैसे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। जिस मुकाम पर वह पहुँचना चाहती थी, उसका अंत क्या होगा, उसे खुद पता नहीं था। उसने ऊपर की ओर देखा, कमरे से रोशनी आ रही थी। आशा की एक किरण उसके मन में चमक उठी। उसके कदम कुछ तीव्र हो गए थे। उस भयानक मौसम में भी वह मुसकरा रही थी। हाँफती–हाँफती, ठिठुरती, सँभलती हुई वह ऊपर पहुँची कि अचानक हाथ से छतरी छूट गई और पता नहीं किस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उड़ चली।

माँ पूरी तरह से भीग चुकी थी। पूरी ताकत के साथ उसने आवाज़ दी। कई बार आवाज़ दी। कोई जवाब नहीं मिला। दरवाज़ा खटखटाया, धीरे से जिस प्रकार बेटे ने खटखटाने को कहा था। कोई उत्तर न मिला। माँ की खुशी दुख में बदलने लगी। उसकी साँसें बहुत तेज़ हो गई थीं। धड़कनें डमरू की भाँति हिल–डुल रही थीं। कोई नहीं निकला। दरवाज़ा नहीं खुला। बस लाईट ऑफ कर दी गई और बहू की क्रोध भरी चीख सुनाई दी।

हवा, ठंड, बारिश के बीच जो धक्का माँ को लगा, उसे बयान करना असंभव है। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि उस समय उसके कान में 'सुईईईईं' सी ध्वनि गूँज उठी। गरमी सी उसके वृद्ध शरीर में दौड़ पड़ी। धड़कनें एकदम से लड़खड़ा गईं। माँ बेहोश होने लगी।

पेड़ से जिस प्रकार पत्ता टूटकर ज़मीन पर स्वच्छंद गिरता है, उसी प्रकार ऊपर वाले कमरे से नीचे ज़मीन तक का सफ़र माँ ने तय किया था, रात को, दो ही सेकेंड में। सुबह वह पड़ी थी नीचे ही। ऐसी दिख रही थी मानो बारिश ने उसे भिगोकर भय से मुक्त कर दिया हो। उसकी आँखें खुली थीं, मानो शिकायत कर रही थी, उसी ऊपर वाले कमरे से!

□

41

अटेंशन-एक व्यंग्य कथा

विजय कुमार सप्पत्ति
भारत

कुछ दिन पहले तक मेरी हालत बहुत खराब थी, मुझे कहीं से कोई भी अटेंशन नहीं मिल रही थी, हर कोई मुझे बस टेंशन देकर चला जाता था; जैसे मैं रास्ते का भिखारी हूँ और बस मुझे भीख में केवल टेंशन ही चाहिए था। मैं बहुत दुखी था। कोई रास्ता नहीं सुझाई देता था। मुझे कहीं से कोई भी अटेंशन मिलने के आसार नज़र नहीं आ रहे थे। मैंने बहुत कोशिश की, इधर से उधर, किसी तरह से मुझे अटेंशन मिले, लेकिन मुझे कोई फायदा नहीं हुआ। उलटा टेंशन बढ़ गई। ऊपर से बीबी-बच्चे और आस-पड़ोस के लोग और ताना मारते थे कि इतनी उम्र हो गई, मुझे कोई जानता ही नहीं। रोज़ अखबार और टीवी, रेडियो में दूसरों के नाम और उनके किए गए अच्छे-बुरे काम देख-पढ़-सुन कर दिल जल जाता था। मुझे लगने लगा था कि मेरा जन्म बेकार हो गया है।

थक-हारकर मैंने अपने सबसे अच्छे दोस्त को फोन लगाया और उससे अपना दुखड़ा रोया। उसने मुझे बहुत समझाने की कोशिश की, कि अटेंशन पाने के चक्कर में मेरी टेंशन बढ़ जाएगी। उसने कहा कि अटेंशन केवल बुरे कामों में ज़्यादा मिलती है, अच्छे कामों में कम मिलती है। अब इतने बरसों से मैं अच्छा बनकर रहा हूँ, लेकिन मुझे तो कोई अटेंशन नहीं मिली, सो सोच लिया कि बुरा बनकर ही अटेंशन लूँगा। उसने बहुत समझाया, लेकिन मैंने एक न सुनी, मैंने उससे कह दिया कि अगर वो मुझे कोई उपाय न बताए तो वह मेरा दोस्त नहीं।

अब बरसों की दोस्ती दाँव पर थी, उसने मुझसे पूछा कि अगर मैं ऑफ़िस में पैसों की कोई गड़बड़ करूँ तो मेरा नाम पुलिस के पास जाएगा और इस तरह से मुझे अटेंशन भी मिलेंगी। मैं थोड़ा सा हिचकिचाया। मैंने कहा, यार, इतने बरसों में जो नहीं हुआ, वो काम करके, बुढ़ापे में क्यों अपना नाम खराब करूँ। फिर उसने कहा कि मैं अपने बॉस को छूरा भोंक दूँ, शायद इससे मुझे प्रसद्धि मिल जाए। मुझे उसका ये उपाय पसंद तो बहुत आया, क्योंकि मैं बॉस को सख्त नापसंद करता था। लेकिन छुरा मारने के नाम से दिल धड़क गया, क्योंकि आज तक मैंने कोई मार-पीट नहीं की थी। मैंने उससे कहा कि मैं उसके खाने में ज़हर मिला देता हूँ। दोस्त ने कहा कि लेकिन इससे तेरी तरफ़ कोई अटेंशन नहीं आएगा। किसी को जब पता ही नहीं चलेगा कि तूने ये किया है तो तेरी तरफ़ किसी की अटेंशन नहीं आएगी। उसकी बात में दम था, फिर उसने कहा कि उसके चेहरे पर स्याही फेंक दे। जब वह किसी मीटिंग में होगा, तब तुझे अटेंशन मिल जाएगी। उसका यह आईडिया मुझे अच्छा लगा।

दूसरे दिन, जब ऑफिस की बोर्ड मीटिंग थी, तब मैं भरी मीटिंग में अपने बॉस पर चिल्लाया और उससे कहा कि उसने मेरी ज़िंदगी खराब कर दी है, और यह कहकर गुस्से से अपने पेन की स्याही उसके ऊपर फेंक दी। वह सावधान था, झुक गया और मेरे द्वारा फेंकी गई स्याही, हमारे कंपनी के मालिक पर गिरी। मेरी कंपनी के मालिक ने दुनिया देखी थी, उसने मेरा गुस्सा सहन कर लिया और समझदारी से काम लिया, उसने मेरे बॉस और मेरी तनख्वाह 25 प्रतिशत कम कर दी और कहा कि अगली बार, इस तरह की घटना होने पर, हम दोनों को नौकरी से हटा देगा। इस घटना से मुझे कोई अटेंशन नहीं मिली। लेकिन घर आने पर पत्नी ने मेरी तनख्वाह कम होने वाली बात पर ऐसा रौद्र रूप दिखाया कि मेरे तिरपन काँप गए।

मैंने फिर अपने दोस्त को फोन किया, कहा कि मुझे कोई ज़्यादा अटेंशन नहीं मिली हैं और अब लोग इस घटना को भूल भी चुके है। मैं कुछ धमाकेदार कार्य करना चाहता हूँ। कुछ रास्ता बताए। मेरे दुनियादार दोस्त ने कुछ देर सोचा और कहा कि यार, तू मोहल्ले की किसी औरत को छेड़ दे, पुलिस आकर तुझे ले जाएगी और तुझे इस दुष्ट काम के लिए हर कोई कोसेगा तथा तेरी बड़ी बदनामी होगी। इस काम से तो तुझे 100 प्रतिशत अटेंशन मिल

जाएगी। बात में तो दम था, कॉलेज के ज़माने में अक्सर ऐसा करने से मोहल्ले में बातें होती थीं। सो मैं उसकी बात मान गया।

मैंने शाम को मोहल्ले के नल पर जाकर पानी भरने के लिए बालटी हाथ में ली। मेरी पत्नी ने कहा कि मेरी तबीयत तो ठीक है न? जिस आदमी ने ज़िंदगी में काम नहीं किया, वो अब पानी भरने जा रहा है। मैंने कहा, कोई खास नहीं, बस यों ही तुम्हारी मदद करना चाह रहा हूँ। मोहल्ले में एक ही नल था और शाम को वहाँ बड़ी भीड़ रहती थी, बहुत सी औरत जिन्हें मैं भाभी कहता था (और होली के दिन रंग डालकर छेड़ता था) वहाँ पानी भरने आती थीं, वे सब वहाँ थीं और मुझे देखकर आश्चर्य से हँसने लगीं, सबने पूछा कि आज होली नहीं है, फिर आज पानी भरने यहाँ कैसे? मैंने मुसकराकर कहा, मैं तो आज ही होली खेलने के बहाने तुम सबको छेड़ने आया हुआ हूँ। यह कहकर मैंने जल्दी से अपने पड़ोस की भाभी पर पानी डाल दिया। उसे बहुत गुस्सा आया, वह कुछ कहने ही वाली थी, कि पड़ोस की दूसरी भाभी ने उसके कान में कुछ कहा, बस फिर क्या था, थोड़ी ही देर में मैं और दूसरी औरतें मिलकर नल पर पानी की होली खेलने लगे। मैं बड़ी कोशिश कर रहा था कि मैं औरतों को छेड़कर भाग जाऊँ। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, खूब हो-हल्ला होने के बाद वहाँ की औरतों ने मुझे लाकर मेरी धर्मपत्नी को सौंप दिया और कहा कि मैं वहाँ आकर सारी औरतों पर पानी डाल-डालकर छेड़ रहा था। इतना कहकर वे सब तो चली गईं, लेकिन मेरा क्या हाल हुआ होगा, उसे मैं शब्दों में बयान नहीं कर सकता···। हाय, उस बात की याद आते ही तन-मन काँपने लगता है।

कुछ दिन बाद मैंने फिर अपने दोस्त को फ़ोन किया, उसे कुछ नया रास्ता बताने को कहा। उसने कहा कि सुन, तू किसी शराब की दूकान में जाकर हल्ला कर दे। पुलिस आकर तुझे ले जाएगी। आइडिया अच्छा था। फिर उसने कहा कि शराबी के दो ही ठिकाने, एक तो ठेका और दूसरा थाने! मैं मान गया, संध्या समय घर से निकल पड़ा और मोहल्ले के एकमात्र शराब के ठेके पर पहुँच गया। वहाँ जाकर शराब पी और नशे में मैंने वहाँ पर मौजूद दूसरे ग्राहकों और शराबियों से लड़ना शुरू किया। यह देखकर ठेके के मालिक ने मुझे झापड़ मारा और मैं बेहोश हो गया, उसने मुझे घर लाकर छोड़ा और मेरी प्यारी सी धर्मपत्नी को सारी बात सुनाई। कुछ देर बाद मुझे होश आया, देखा तो सामने यमराज मेरी पत्नी के रूप में बैठा था। उसकी बाद की कथा मत पूछिए।

अब मैं बहुत दुखी हो चुका था। कोई भी मुझे किसी भी प्रकार की अटेंशन नहीं दे रहा था। बल्कि ज़िंदगी में बहुत से टेंशन पैदा होते जा रहे थे। बहुत दुखी होकर मैंने फिर अपने दोस्त को फोन लगाया। उसे कहा कि यह मेरा आखरी फोन है उसे, अगर वो कुछ न कर पाया मेरे लिए तो मैं आत्महत्या कर लूँगा। मेरी यह बात सुनकर दोस्त ने घबराकर कहा कि मैं तुझे आखिरी रामबाण उपाय बता रहा हूँ, इसकी सफलता की पूरी गारंटी है। उसने फुसफुसाकर मुझे एक धाँसू उपाय बताया, उपाय सुनते ही मैं कह उठा—''What an idea Sir जी!'' अब रास्ता साफ़ था, मुझे अटेंशन मिलने ही वाली थी।

दूसरे दिन, शहर में उस राजनीतिक पार्टी की महासभा हुई और एक महान भ्रष्ट नेता भी आया। एक अच्छा आदमी के नाते मुझे भी बुलाया गया। उस नेता का भाषण चल ही रहा था कि मैं उठकर सामने गया और अपना जूता उसे दे मारा। बस फिर क्या था, हंगामा खड़ा हो गया, पुलिस ने मुझे पकड़ लिया, लेकिन फिर अचानक मेरी देखादेखी करीब 5 बंदे और खड़े हो गए और उन्होंने भी अपने जूते उस नेता की तरफ उछाल दिए। चारों तरफ जोरदार हंगामा शुरू हो गया, पुलिस हम सबको थाने लेकर गई और हमें हवालात में ठूँस दिया गया। शहर में बहुत धूम हो गई थी, लोग सड़कों पर आ गए थे। टीवी, रेडियो और प्रेस में मेरी चर्चा हो रही थी। कुछ समय

कुछ दिन बाद मैंने फिर अपने दोस्त को फ़ोन किया, उसे कुछ नया रास्ता बताने को कहा। उसने कहा कि सुन, तू किसी शराब की दूकान में जाकर हल्ला कर दे। पुलिस आकर तुझे ले जाएगी। आइडिया अच्छा था। फिर उसने कहा कि शराबी के दो ही ठिकाने, एक तो ठेका और दूसरा थाने! मैं मान गया, संध्या समय घर से निकल पड़ा और मोहल्ले के एकमात्र शराब के ठेके पर पहुँच गया। वहाँ जाकर शराब पी और नशे में मैंने वहाँ पर मौजूद दूसरे ग्राहकों और शराबियों से लड़ना शुरू किया। यह देखकर ठेके के मालिक ने मुझे झापड़ मारा और मैं बेहोश हो गया, उसने मुझे घर लाकर छोड़ा और मेरी प्यारी सी धर्मपत्नी को सारी बात सुनाई। कुछ देर बाद मुझे होश आया, देखा तो सामने यमराज मेरी पत्नी के रूप में बैठा था। उसकी बाद की कथा मत पूछिए।

बाद, हमें एक वार्निंग देकर छोड़ दिया गया। लोगों ने हमारी रिहाई पर उत्सव मनाया। मेरे गले में फूलों की माला थी और मुझे गाजे-बाजे के साथ घर लाकर छोड़ा गया।

मुझे लगने लगा कि अब मुझे अटेंशन मिल रही है। मुझे मेरी अटेंशन मिल रही है। मुझे मेरी अटेंशन एक पाव-किलो नज़र आ रही थी। घर पर मेरी बीबी ने मुझे मुसकराकर देखा और कहा, तुम तो बड़े बहादुर निकले जी,और मुझे एक झप्पी दी, मुझे अब अटेंशन आधा किलो लगने लगी। थोड़ी देर बार बेटे ने आकर पाँव छुए और कहा, Dad, I am proud of you. मुझे अब अटेंशन एक किलो नज़र आने लगी, मुझे बड़ी खुशी हो रही थी। पास-पड़ोसी के लोग आए और कहने लगे, मैं उनके मोहल्ले में हूँ, इस बात पर उन्हें गर्व है। मेरी अटेंशन अब 5 किलो हो गई थी। शहर के लोग मेरा आदर-सत्कार कर रहे थे, हर कोई मुझे अपनी सभा और कार्यक्रम का अध्यक्ष बना रहा था। मेरा अटेंशन अब 10 किलो हो गया था। हर अखबार, टीवी, रेडियो में मेरे ही चर्चे थे, पान ठेले से लेकर सब्ज़ी मार्केट तक और सिनेमा हॉल से लेकर लोकसभा तक, हर जगह बस मैं ही छाया हुआ था, अब मेरा अटेंशन 50 किलो का हो गया था। मैं बड़ा खुश था।

मेरे बॉस ने मुझे तरक्की दे दी थी, मेरे सहकर्मी रोज़ मुझे अपना खिलाने लगे, ऑफिस की कुछ औरतें मुझे देखकर मुसकराने लगीं, यार लोग मेरे साथ अब घूमने आने के लिए तड़पते थे। मेरी अटेंशन अब 100 किलो से ज़्यादा हो गई थी, मुझे परम खुशी हो रही थी। चारों तरफ मेरा नाम था, टीवी, रेडियो और अखबार मेरे नाम के बिना साँस नहीं ले पाते थे।

फिर अभी कल की ही बात है, जिस राजनैतिक पार्टी के नेता को मैंने जूता मारा था, उसी पार्टी ने मुझे अब मेरे शहर का उम्मीदवार बनाया है और मुझे चुनाव का टिकट दिया है। अब मेरे चारों तरफ़ अटेंशन है, कहीं कोई टेंशन नहीं है, बस खुशी-ही-खुशी है। इतना अटेंशन तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था। मैं अब अटेंशन के नीचे दब-दब जाता था। मैंने अपने दोस्त को फोन करके कहा, यार तेरी युक्ति तो काम कर गई, अब चारों तरफ़ अटेंशन ही अटेंशन है···। वो हँसने लगा।

अब कोई टेंशन नहीं है। आह जिंदगी कितनी खूबसूरत है! वाह मज़ा आ गया! हर तरफ़ सिर्फ मेरे लिए ही अटेंशन है।

अटेंशन ज़िंदाबाद! राजनीति ज़िंदाबाद!!
जनता ज़िंदाबाद! अटेंशन ज़िंदाबाद!!

□□□

विजय का अर्थ हमेशा सर्वप्रथम होना नहीं होता बल्कि विजय का अर्थ होता है कि आप किसी काम को पहले से बेहतर ढंग से कर रहे हैं।

—बोनी ब्लेयर

हर किसी पर विश्वास कर लेना खतरनाक बात है पर उस से भी खतरनाक बात है किसी पर भी विश्वास न करना।

—अब्रहाम लिंकन

मौन, महान शक्ति का स्रोत है।

—लओ त्सू

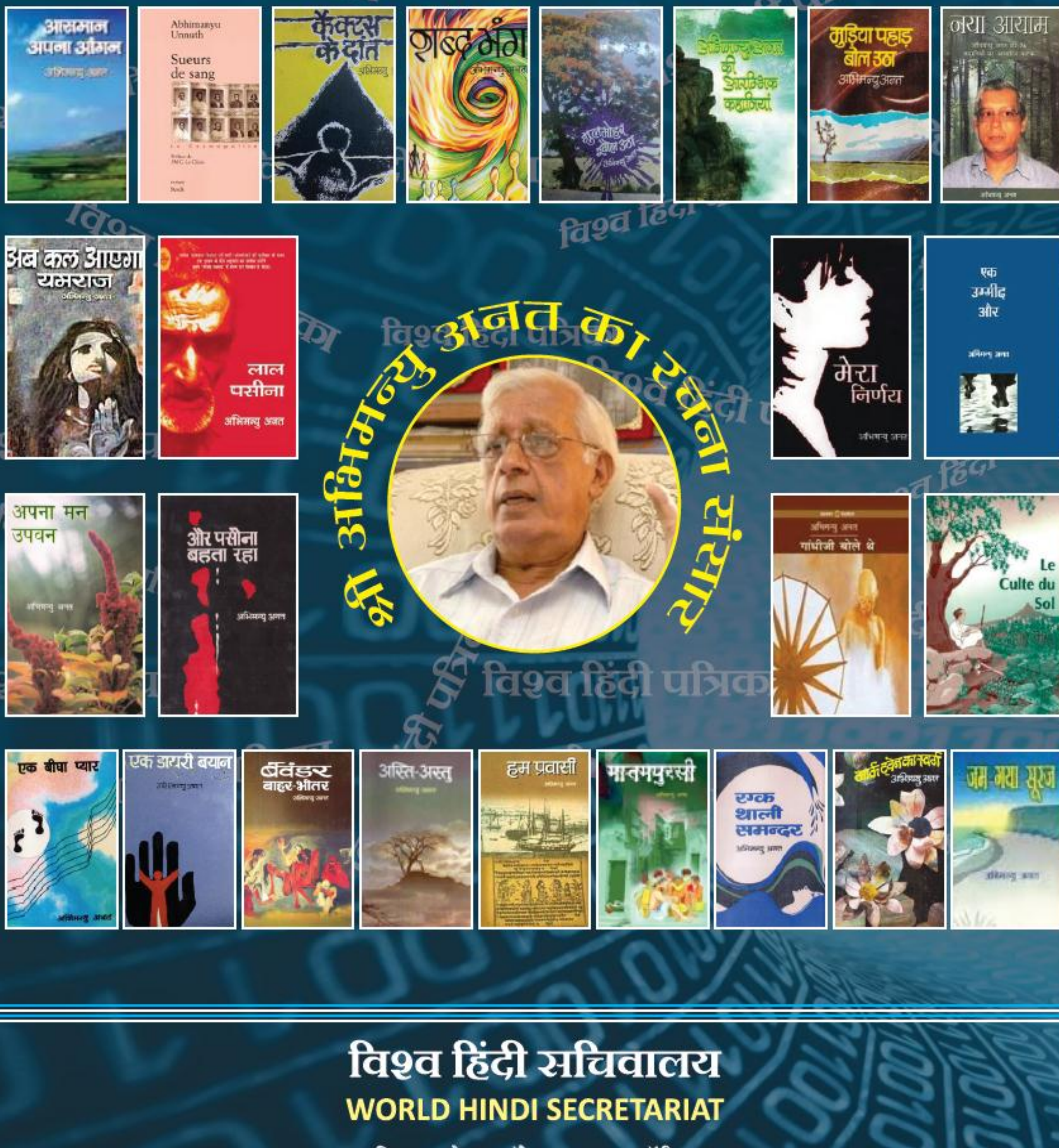

विश्व हिंदी सचिवालय

WORLD HINDI SECRETARIAT

स्विफ्ट लेन, फॉरेस्ट साइड, मॉरीशस

Swift Lane, Forest Side, Mauritius

फोन/Ph: 00-230-6761196 • फैक्स/Fax: 00-230-6761224

इ-मेल/e-mail: info@vishwahindi.com • वेबसाइट/website: www.vishwahindi.com

मुद्रक : **विद्या विहार,** नई दिल्ली-110002 (भारत) • vidyaviharnd@gmail.com